जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)

लाडनूं-341306 (राजस्थान)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

एम.ए. (पूर्वार्द्ध)

विषय : राजनीति विज्ञान

तृतीय पत्र : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

Expert Committee

Sr.No.	Name	Designation	Organization
1.	**Prof. K.S. Saxena**	Retd. Professor	Rajasthan University, Jaipur
2.	**Prof. Kanta Katariya**	Professor	Jai Narayan Vyas University, Jodhpur
3.	**Dr. Rajesh Sharma**	Associate Professor	Rajasthan University, Jaipur
4.	**Prof. Anil Dhar**	Professor	Jain Vishva Bharati Institute, Ladnun
5.	**Dr. Jugal Kishore Dadhich**	Associate Professor	Jain Vishva Bharati Institute, Ladnun
6.	**Prof. A.P. Tripathi**	Professor,	Jain Vishva Bharati Institute, Ladnun

ISBN No. 978-93-83634-56-9

लेखक

डॉ मुकेश चन्द शर्मा

सहायक आचार्य,
एस.एस. जैन सुबोध कॉलेज, रामबाग सर्किल,
जयपुर (राजस्थान)

कापीराइट :

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

नवीन संस्करण : 2019

मुद्रित प्रतियां : 750

प्रकाशक

जैन विश्वभारती संस्थान

(मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनूं - 341306 (राजस्थान)

मुद्रक :

आदित्य प्रिन्टर्स एवं स्टेशनर्स, जयपुर

विषय-सूची

क्र.सं.	ईकाइ	पृष्ठ संख्या
1.	इकाई–1 : यथार्थवादी एवं नव यथार्थवादी उपागम	1-5
2.	इकाई–2 : उदारवादी एवं नव उदारवादी उपागम	6-10
3.	इकाई–3 : मार्क्सवादी तथा अन्य विप्लववादी उपागम	11-19
4	इकाई–4 : नव–विप्लववादी उपागम	20-24
5	इकाई–5 : उत्तर–संरचनावादी और उत्तर–आधुनिकतावादी उपागम	25-28
6	इकाई–6 : महिलावादी उपागम	29-33
7	इकाई–7 : पर्यावरणवादी उपागम	34-38
8	इकाई–8 : एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका की विश्व दृष्टि	39-48
9	इकाई–9 : शीत–युद्ध का अन्त	49-54
10	इकाई–10 : शीत युद्धोत्तर मुद्दे	55-60
11	इकाई–11 : उभरती शक्तियाँ	61-64
12	इकाई–12 : क्षेत्रीय समूह	65-73
13	इकाई–13 : भूमण्डलीकरण (वैश्वीकरण)	74-79
14	इकाई–14 : अन्तर्राष्ट्रीय असाम्यताएँ	80-87
15	इकाई–15 : अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों के तत्व	88-93
16	इकाई–16 : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का प्रबन्धन	94-98
17	इकाई–17 :नवीन वैश्विक (भूमंडलीय) व्यवस्था में भारत	99-103
18	इकाई–18 : आत्म निर्णय का अधिकार	104-108
19	इकाई–19 : हस्तक्षेप/आक्रमण	109-116
20	इकाई–20 : परमाणु प्रसार	117-125

21	इकाई–21 : अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद	126-133
22	इकाई–22 : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भूमिका	134-139
23	इकाई–23 : राष्ट्रों के बीच असमानता	140-144
24	इकाई–24 : विश्वव्यापी भूमण्डलीय निगमवाद और राज्य प्रभुसत्ता	145-149
25	इकाई–25 : मानवाधिकार और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार	150-155
26	इकाई–26 : अमेरिकी शक्ति का परिवर्तनशील स्वरूप	156-161
27	इकाई–27 : चीन एक उभरती हुई शक्ति	162-167
28	इकाई–28 : केन्द्रीय एशियाई गणतन्त्रों का आविर्भाव	168-172
29	इकाई–29 : संजातीय पुनरूत्थान और पहचान युद्ध	173-176
30	इकाई–30 : आदिवासी/मूलवासी आंदोलन संरचना	177-181
31	इकाई–31 : जनसंख्या विस्थापनः राज्यांतरिक और अंतर्राज्य	182-188
32	इकाई–32 : पार राष्ट्रीय आन्दोलनः सांस्कृतिक और सभ्यतामूलक	189-192
33	इकाई–33 : गैर सरकारी संगठनों की भूमिका	193-197
34	इकाई–34 : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में न्यास की अवधारणा	198-201
35	इकाई–35 : मानव सुरक्षा	202-205

इकाई–1

यथार्थवादी एवं नव यथार्थवादी उपागम

(Realistic and Neo Realistic Approach)

यथार्थवादी उपागम

(Realistic Approach)

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के यथार्थवादी सिद्धान्त का अर्थ, स्वरूप एवं उद्देश्यों का वर्णन किया गया है इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :–

- यथार्थवादी सिद्धान्त का अर्थ जान सकेंगे।
- यथार्थवादी सिद्धान्त के विकास के बारे में जान सकेंगे।
- नव–यथार्थवादी सिद्धान्त के बारे में जान सकेंगे।
- यथार्थवाद और नव–यथार्थवाद में अन्तर समझ सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

यथार्थवादी उपागम अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की व्यवहारिक व्याख्या की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण उपागम है। यह उपागम पूर्णतया तथ्यों एवं विश्व की वास्तविक घटनाओं पर आधारित है जिसमें पूर्व मान्यताओं एवं अमूर्त आदर्शों का कोई स्थान नहीं हैं। यह अनुभव एवं तर्क पर आधारित है। यथार्थवाद शक्ति के रूप में परिभाषित राष्ट्रीय हित की अवधारणा पर बल देता है। यह उपागम राजनीति का उसी रूप में अध्ययन करता है जैसी वह थी और जैसी वह है। अतः राष्ट्रीय हित के लिए संघर्ष ही इस उपागम का आधार है और यही इसकी विषयवस्तु है।

यथार्थवाद की बुनियादी मान्यता यह है कि राष्ट्रों के बीच विरोध एवं संघर्ष किसी न किसी रूप में बने रहते हैं। यथार्थवादी इन विरोधों एवं संघर्ष को कोई आकस्मिक घटना नहीं मानते। उनका मानना है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे यह निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। उनका यह भी मानना है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति (Power) या प्रभाव (Influence) के लिए निरन्तर प्रयास होते रहते हैं और कोई अन्तर्राष्ट्रीय कानून इसे नियन्त्रित नहीं कर सकता।

यथार्थवाद के अनुसार, यथार्थवाद तथ्यों के उचित मूल्यांकन उनमें तर्कसंगत अर्थो को खोजने की प्रक्रिया है। यह दृष्टिकोण इस बात पर बल देता है कि विदेश नीति सम्बन्धी निर्णय राष्ट्रीय हित के आधार पर लिए जाने चाहिए न कि नैतिक सिद्धान्तों और भावनात्मक मान्यताओं के आधार पर।

1.2 यथार्थवादी उपागम का विकास

यथार्थवादी उपागम का निरन्तर विकास हुआ है। 18वीं तथा 19वीं शताब्दी से यथार्थवादी विचारधारा का प्रचलन था, जिसे द्वितीय, तृतीय विश्वयुद्ध के बाद पुनः अपनाया गया। 1942 में **येल विश्वविद्यालय** के प्रोफेसर **निकोलस जे. स्पाइकमैन** ने यथार्थवादी उपागम पर बल दिया वर्तमान में **मॉर्गेन्थो** ने इस सिद्धान्त को दार्शनिक आधार प्रदान किया। 19वीं शताब्दी में मॉर्गेन्थो से पूर्व **ट्राइस्ट्रके**, **नीतशे**, **एरिक काफमैन**, **फ्रेडरिक वल्किन्स**, **हैराल्ड लालवेल**, **डेविड ईस्टन** आदि विचारकों ने यथार्थवादी सिद्धान्त के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला। 1945 के बाद **ई.एच. कार**, **जार्ज श्वारजनबर्गर क्विन्स राइट मार्गेन्थो** ने राजनीतिक यथार्थवाद को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में लागू करने का प्रयास किया।

1.3 यर्थाथवाद की विशेषताएँ

1. यथार्थवाद राज्य केन्द्रित विचारधारा है।
2. यथार्थवाद शक्ति राजनीति का पर्याय है।
3. यथार्थवादियों के अनुसार राज्यों का सर्वोपरि लक्ष्य अपनी सुरक्षा और अपने अस्तित्व की रक्षा है।
4. राज्य अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के लिए संघर्षरत रहते हैं।
5. राज्यों में दीर्घकालीन सहयोग अथवा मैत्री सम्भव नही है। "राज्यों के न तो स्थायी मित्र होते है न स्थायी शत्रु .... राष्ट्रीय हितों का संरक्षण ही एकमात्र स्थायी मित्र होता है।"
6. राज्यों के शक्ति सम्बन्धों को सापेक्ष शक्ति (Relative Power) बनाम निरंकुश शक्ति (Absolute Power) के परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त किया जाता है।

1.4 मॉर्गेन्थो का यथार्थवादी सिद्धान्त

मॉर्गेन्थों को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के यथार्थवादी उपागम का मुख्य प्रर्वतक माना जाता है। यह सिद्धान्त राष्ट्रों के मध्य शक्ति के लिए संघर्ष के सभी पहलुओं का अध्ययन करता है। मॉर्गेन्थों ने अपनी प्रसिद्ध कृति "राष्ट्रों के मध्य राजनीति" (Politics Among Nation) में यर्थाथवादी सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या की। वे प्रथम विद्वान है जिन्होंने एक

यथार्थवादी प्रतिमान (A Realistic Model) विकसित किया है। इास क्षेत्र में उनके इस महान योगदान के कारण अनेक विद्वान यथार्थवाद और मॉर्गेन्थोवाद को समानअर्थी मानते है।

राजनीतिक यथार्थवाद को समझने और उसको व्यवहार में लाने के लिए मॉर्गेन्थो ने छः सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जो इस प्रकार है –

1.4.1 पहला सिद्धान्त

मावनीय स्वभाव के वस्तुनिष्ठ कानूनों पर आधारित राजनीतिक सिद्धान्त :– मॉर्गेन्थो के अनुसार राजनीति सामान्य समाज की तरह, उस वस्तुनिष्ठ नियमों द्वारा संचालित होती है जिसकी जड़ें मानव स्वभाव में है।

मॉर्गेन्थो के अनुसार राजनीति पर प्रभाव डालने वाले सभी नियमों की जड़ें प्रकृति में होती हैं। मनुष्य जिन नियमों के अनुसार संसार में क्रियाकलाप करता है वे सार्वभौमिक है और ये नियम नैतिक मान्यताओं से हमेशा अछूते रहे हैं। उसका मत है कि राजनीति के किसी भी सिद्धान्त को केवल नवीनता या पुरानेपन के आधार पर बहिष्कृत नहीं किया जा सकता बल्कि उसे विवके व अनुभव की द्विपक्षीय–परीक्षा के अन्तर्गत लाया जाना चाहिए। इस प्रकार यथार्थवाद के लिए तथ्यों को निश्चित करने तथा विवके द्वारा उनमें सार प्रदान करने में ही सिद्धान्त निहित होता है।

इस प्रकार मॉर्गेन्थो के प्रथम सिद्धान्त के अनुसार राजनीति कुछ ऐसे वस्तुनिष्ठ नियमों व कानूनों के आधार पर चलती है जो मानव स्वभाव पर आधारित होते हैं। इनका ज्ञान प्राप्त करके हम राजनीति का अध्ययन कर सकते हैं तथा इनका ज्ञान मानव सम्बन्धों के इतिहास के अध्ययन से प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा करने से तथ्यों तथा तर्क पर आधारित राजनीतिक सिद्धान्त की रचना की जा सकती है।

1.4.2 दूसरा सिद्धान्त

राष्ट्रीय शक्ति के रूप में परिभाषित राष्ट्रीय हित :– मॉर्गेन्थो के यथार्थवादी सिद्धान्त का दूसरा प्रमुख तत्व है – राष्ट्रहित की प्रधानता। मॉर्गेन्थो ने राष्ट्रीय हित को शक्ति कहकर पुकारा है। मॉर्गेन्थो का मत है कि शक्ति के नाम से लक्षित स्वार्थो (राष्ट्रीय हित) का विचार ही वह प्रमुख मार्गदर्शक है जो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में यथार्थवाद का पथ प्रदर्शन करता है।

मॉर्गेन्थो के अनुसार राजनीति का मुख्य आधार हित और उसकी सुरक्षा है। इसलिए राजनीति को भी शक्ति से अलग रखकर नहीं समझा जा सकता। मॉर्गेन्थो की मान्यता है कि विदेश नीति निर्माता राजनीजिज्ञ शक्ति को, जो राजनीति का केन्द्र बिन्दु है आधार मानकर ही नीतियों की रचना करते हैं। इतिहास भी इसका पूर्णतः समर्थन करता है कि कोई भी राष्ट्रीय हित जिसके पीछे शक्ति नहीं होती है केवल कागजों पर या कल्पना में ही अस्तित्व रखता है तथा राष्ट्रों ने सदैव शक्ति के आधार पर कार्य किया है। विदेश नीति के निर्माता सदैव शक्ति को राजनीति का केन्द्र बिन्दु मानते हैं तथा इसी आधार पर नीति निर्माण करते है।

1.4.3 तीसरा सिद्धान्त

हित सदैव परिवर्तनीय होते है :– यथार्थवादी उपागम के अनुसार राष्ट्रीय हित ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का सार है, परन्तु फिर भी राजनीतिक यथार्थवाद शक्ति पर आधारित राष्ट्रीय हित के विचार को किसी शाश्वत अथवा सदैव के लिए निश्चित दृष्टिकोण से नहीं बाँधता। परिस्थितियाँ उन राष्ट्रीय हितों को प्रभावित करती हैं जिनके आधार पर राजनीतिक निर्णय लिये जाते है। अतः बदलती हुई परिस्थितियों के संदर्भ में राष्ट्रीय हित का विचार करके तदुपरान्त शक्ति पर जोर दिया जाना चाहिए। मॉर्गेन्थो के शब्दों में, "इतिहास के एक विशिष्ट काल में राजनीतिक कृत्य को निश्चित रूप देने वाले हितज का रूप उन राजनीतिक व सांस्कृतिक परिस्थितियों पर आश्रित रहता है जिसके मध्य विदेश नीति का निर्माण होता है।" इस प्रकार शक्ति के सिद्धान्त पर आधारित किसी विदेश नीति की विषय सामग्री तथा इसके उपयोग का ढ़ग राजनीतिक व सांस्कृतिक वातावरण से निश्चित होता है।

1.4.4 चौथा सिद्धान्त

अमूर्त नैतिक नियम राजनीति पर लागू नहीं होते :– यथार्थवादी दृष्टिकोण के अनुसार, नैतिकता के सार्वभौमिक सिद्धान्त राज्यों पर ज्यों के त्यों लागू नहीं किये जा सकते, अपितु उन्हें समय और स्थान के अनुसार परिवर्तित करना पड़ता है। यथार्थवाद का आगृह है कि राष्ट्रों को नैतिक सिद्धान्तों का पालन विवके और संभावित परिणामों के आधार पर ही करना चाहिए। बिना विवके के राजनीतिक नैतिकता का कोई अर्थ नहीं है।

मॉर्गेन्थो के शब्दों में, "बुद्धिमता के बिना, यानि किसी कथित नैतिक कार्य के राजनीतिक परिणामों पर ध्यान दिये बिना राजनीतिक नैतिकता नहीं हो सकती। यथार्थवाद बुद्धिमता को वैकल्पिक राजनीतिक कार्यों के परिणामों की तुलना करना सबसे उत्तम गुण मानता है।"

1.4.5 पाँचवा सिद्धान्त

विश्व व राष्ट्र के सामान्य नैतिक नियम भिन्न–भिन्न :– यथार्थवादी सिद्धान्त के अनुसार राष्ट्र राज्य या विश्व के सामान्य नैतिक नियम पृथक–पृथक होते हैं। किसी सावभौमिक नैतिक कानून का पालन प्रत्येक देश के लिए अवश्य ही लाभदायक

होगा यह सही नहीं है। यह भी सम्भव है कि वह राष्ट्र के लिए गम्भीर परिणाम उत्पन्न कर दे। नैतिक सिद्धान्तों के लिए अपने राष्ट्रीय हितों को बलिदान कर देना किसी भी व्यक्ति के लिए बुद्धिमतापूर्ण नहीं माना जा सकता। साथ ही राजनीतिक उद्देश्यों के लिए नैतिकता की तिलांजली के देना भी इतिहासकार उचित नहीं मानते यह दोनों ही अतिवादी है और बचाव का उपर्युक्त मार्ग यही है कि प्रत्येक देश अपने राष्ट्रीय हितो की दिशा में अग्रसर हो।

1.4.6 छठा सिद्धान्त

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की स्वायत्तता :– यथार्थवादी सिद्धान्त राजनीतिक क्षेत्र में स्वायत्तता की माँग करता है। मॉर्गेन्थो के अनुसार, "राजनीतिक यथार्थवादी राजनीतिक क्षेत्र में स्वायत्तता का समर्थन करता है, जैसे – अर्थशास्त्री, विधिवेत्ता व नीतिशास्त्र का लेखक अपनी–अपनी स्वायत्तता का समर्थन करते हैं। वह शक्ति के नाम से वर्णित स्वार्थ के रूप में सोचता है, जैसे – अर्थशास्त्री धन नामक स्वार्थ को लेकर विचार करता है, विधिवेत्ता कानून की वैधिक नियमों की अनुरूपता का और नीतिशास्त्र का लेखक कार्यों की नैतिक सिद्धान्तों से अनुरूपता का विचार करता है।

1.5 सिद्धान्त का विश्लेषण

मॉर्गेन्थो के यथार्थवादी उपागम के छः सिद्धान्तों का अध्ययन करने के पश्चात् निम्नलिखित तर्क दिये जा सकते हैं :–

1. **यथार्थवादी सिद्धान्त की तीन मूलभूत मान्यताएं हैं :–** (i) राष्ट्रीय हितों की सिद्धी के लिए प्रयास (ii) प्रत्येक राष्ट्र का हित उसके भौगोलिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव के विस्तार में निहित है। (iii) प्रत्येक राष्ट्र अपने हितों की रक्षा के लिए निरन्तर प्रयासरत रहता हैं।
2. **मानवीय व्यवहार पर आधारित :–** यथार्थवादी सिद्धान्त मानवीय व्यवहार पर आधारित है।
3. **शक्ति प्राप्ति के लिए प्रयास :–** प्रत्येक राष्ट्र अधिक से अधिक शक्ति प्राप्त करना चाहता है।
4. **नैतिकता विहीन :–** राष्ट्रीय हितों की अपेक्षा नैतिकता का महत्व सीमित होता है।
5. **संघर्ष की आवश्यकता पर बल :–** राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के लिए संघर्ष आवश्यक है।

1.6 मॉर्गेन्थो के यथार्थवाद की आलोचना

मॉर्गेन्थो के यथार्थवादी सिद्धान्त की कई विचारकों द्वारा आलोचना की गई जिनमें बैनो वासरमैन, राबर्ट ट्रेकर, स्टेनले हाफमैन आदि प्रमुख है। इनके द्वारा निम्न आलोचनाएं की गई :–

1.6.1 अवैज्ञानिक दृष्टिकोण :– मॉर्गेन्थो की यह मान्यता है कि मानव के स्वभाव से अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार जन्म लेता है, अस्पष्ट बात है। एक स्थान पर मॉर्गेन्थो कहता है कि उसका सिद्धान्त मानव स्वभाव पर आधारित है परन्तु वह मानव स्वभाव की वैज्ञानिक विवेचना नहीं करता है। इसमें मॉर्गेन्थो ने वैज्ञानिक पद्धति को न अपनाकर केवल सैद्धान्तिक रूप को ही स्वीकार किया है। अतः इसमें पूर्णता नहीं है।

1.6.2 एकपक्षीय सिद्धान्त :– अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के दो पक्ष हैं, एक है : संघर्ष और दूसरा है : सहयोग। यथार्थवाद के सिद्धान्त में मॉर्गेन्थो ने केवल संघर्ष पक्ष पर ही बल दिया है, सहयोग पक्ष पर नहीं। जबकि सहयोग का पक्ष भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का उतना ही महत्तवपूर्ण पहलू है जितना कि संघर्ष।

1.6.3 नैतिकता के महत्त्व की उपेक्षा :– मॉर्गेन्थो ने नैतिकता के महत्त्व की उपेक्षा की है। उसके सिद्धान्त में राष्ट्रीय हित सर्वोपरि हो जाते हैं, जबकि नैतिकता को गौण स्थान मिलता है। यदि राज्य इस तरह व्यवहार करने लगेंगे तो अन्तर्राष्ट्रीय अनैतिकता को बढ़ावा मिलेगा, अन्तर्राष्ट्रीय कानून निर्बल होंगे और अराजकता पनपने लगेगी।

1.6.4 अस्पष्ट तथा विरोधाभीसी :– मॉर्गेन्थो के सिद्धान्त की एक आलोचना परस्पर विरोधी दृष्टिकोण अपनाना है। मॉर्गेन्थो ने अपनी पुस्तक *Politics among Nations* में लिखा है कि, "जिस प्रकार अर्थशास्त्र का सम्बन्ध धन से है उसी प्रकार राष्ट्रीय हित का सम्बन्ध शक्ति से है।" किन्तु अपनी दूसरी पुस्तक डाइलेमाज ऑफ पॉलिटिक्स *(Dilemmas of Politics)* में वह लिखता है कि 'अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का ध्येय सामान्य होना चाहिए ताकि वह अन्य क्षेत्रों में भी प्रवेश कर सके।' इस प्रकार वह दो परस्पर विरोधी विचार प्रस्तुत करता है।

1.6.5 मॉर्गेन्थो की शक्ति की अवधारणा की आलोचना :– मॉर्गेन्थो ने शक्ति पर बहुत अधिक बल दिया है। वह सभी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की व्याख्या एकमात्र शक्ति पाने की लालसा के आधार पर ही करना चाहता है। अधिकांश विद्वान अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की एक ऐसी जटिल प्रक्रिया समझते हैं, जिसकी व्याख्या किसी एक तथ्य के आधार पर नहीं की जा सकती। राष्ट्रीय हित को शक्ति के अतिरिक्त अन्य तत्व; जैसे – शासन का स्वरूप, जनता का विश्वास और विचार, राज्य की आन्तरिक स्थिति प्रभावित करते हैं। मॉगेन्थो इन सभी की उपेक्षा करता है।

1.6.6 आधुनिक समय के अनुकूल नहीं :– आज की बदलती हुई परिस्थितियों में मॉर्गेन्थो का सिद्धान्त है कि राष्ट्र का लक्ष्य मात्र शक्ति प्राप्त करना तथा उसे अपने हित से ही प्रयोग करना उचित नहीं रह गया है। आज राष्ट्रों में सहयोग

की प्रवृत्ति भी तेजी से उभर रही है। अतः मॉर्गेन्थो का सिद्धान्त वर्तमान में उनता महत्त्वपूर्ण नहीं रह गया हैं, क्योंकि वह वर्तमान परिस्थितियों से दूरी बनाये रखता है।

1.6.7 संघर्ष एवं विस्तारवाद का समर्थन :– मॉगेन्थो शक्ति के लिए संघर्ष को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की प्राकृतिक तथा दृढ़ वास्तविकता मानता है। उसका दावा है कि साधारण मनुष्यों की भाँति राष्ट्रों के लिए भी यह प्राकृतिक है कि वे शक्ति के संघर्ष द्वारा दूसरों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करें। इस शक्ति के लिए संघर्ष का उग्र स्वरूप युद्ध ही है। अगर हम शक्ति संघर्ष को प्राकृतिक मान लें तो हमें युद्ध को प्राकृतिक तथा न्यायसंगत मानना पड़ेगा, जो अनुचित है।

1.6.8 यह सिद्धान्त यथार्थवादी नहीं है :– कुछ आलोचक; जैसे–रॉबर्ट टेकर (Robert Tucker), कैन्निथ वाल्ट्ज (Kenneth Waltz) आदि मॉर्गेन्थो के सिद्धान्त को वास्तविक यथार्थवादी सिद्धान्त भी नहीं मानते। देखने में तो यह यथार्थवादी लगता है परन्तु वास्तव में यह आदर्शवादी है। मॉर्गेन्थो के शब्दों में, "एक राष्ट्र सदैव आपने राष्ट्रीय हितों को बनाये रखना तथा सुरक्षित रखना चाहता है और यही उसे करना भी चाहिए।" एक विशेष रूप में मानवीय स्वभाव को परिभाषित करना, फिर उसे ही तर्कों का आधार मानने के लिए कहना, वास्तव में आदर्शवाद है न कि यथार्थवाद।

1.6.9 विश्व के प्रति अवास्तविक विचार :– मॉर्गेन्थो का विश्व को एक स्थिर क्षेत्र मानना जिसमें शक्ति सम्बन्ध अपने आप को समय रहित एकरसता में प्रतिपादित करते हैं, बड़ा अवास्तविक है।

1.7 नव यथार्थवादी उपागम (Neo Realistic Approach)

नव यथार्थवाद परम्परागत यथार्थवाद से भिन्न उपागम है इस उपागम के उद्‌भव में क्विंसी राइट (Quincy Wright), स्प्राउट (Sprout) आदि लेखकों का विशेष योगदान रहा। लेकिन एक क्रमबद्ध विचारधारा के रूप में इसे महत्त्वपूर्ण बनाने का श्रेय कैन्निथ वाल्टज (Kenneth Waltz) को दिया जाता है।

नव यथार्थवाद जिसको 1980 के दशक मे लोकप्रियता मिली इस बात को स्वीकार करता है, कि शक्ति यद्यपी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का केन्द्रीय बिन्दु है परन्तु इसके साथ–साथ कुछ अन्य तत्वों विशेषकर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की संरचनाओं (Structure of International system) को भी महत्व देता है। नव यथार्थवाद यह स्वीकार करता है कि वे केवल राष्ट्रीय शक्ति राष्ट्रीय हित ही नही अपितु अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की संरचना भी राज्यों के व्यवहार, उनकी विदेश नीतियों तथा उद्देश्यों को निर्धारित करती हैं। नव यथार्थवाद में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को केवल राष्ट्र राज्यों द्वारा किये जाने वाले शक्ति के लिए संघर्ष के रूप मे परिभाषित नहीं किया जाता क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की संरचना के अध्ययन के बिना किसी भी राज्य के वास्तविक व्यवहार का अध्ययन नहीं किया जा सकता।

1.8 कैन्निथ वाल्टज का नव यथार्थवाद

नव यथार्थवाद के मुख्य प्रतिपादक कैन्निथ वाल्टज ने अपनी पुस्तक ***थ्योरी ऑफ इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स (1979)*** में नव यथार्थवाद की विस्तृत चर्चा की। जिसे **संरचनात्मक यथार्थवाद** (Structural Realism) भी कहा जाता है। वाल्टज का सिद्धान्त मुख्य रूप से अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के ढ़ाँचे, इसकी पारस्परिक इकाईयों और व्यवस्था की निरंतरता तथा इनमें बदलाव पर केन्द्रित है। वाल्टज ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के वैज्ञानिक सिद्धान्त को पेश करने की कोशिश की है। नव यथार्थवाद में व्यवस्था की संरचना, खासकर शक्ति का सापेक्ष बँटवारा विश्लेषण का मुख्य केन्द्र है। इसमें नायक (राज्य) की भूमिका अपेक्षाकृत कम महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि संरचनाएँ उन्हें निश्चित तरीको से भूमिका निभाने को बाध्य करती है। प्रायः यह संरचनाएँ राज्यों तथा उनके नेताओं के कार्यों का निर्धारण करती है। वाल्टज अराजक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था पर जोर देते हैं। जो विकेन्द्रित है। अराजक विश्व में कई अंतर्देशीय आर्थिक नायकों द्वारा राज्यों के अधिकारों को क्षति पहुँचाने की आशंका रहती है।

वाल्टज के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की संरचना निर्णायक रूप में सभी राष्ट्रों के व्यवहार को गहन रूप में प्रभावित करती है। दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् उत्पन्न शीत युद्ध की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था ने सभी राज्यों की विदेश नीतियों तथा व्यवहारों को दृढ़ रूप में प्रभावित किया। नव स्वतन्त्र राज्यों ने गुट–निरपेक्षता का व्यवहार इसी तत्व के प्रभाव में अपनाया। अतः अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की संरचना भी राष्ट्र राज्यों के आपसी सम्बन्धों और व्यवहार को निर्धारित करती है। परमाणु शास्त्रों के आगमन तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठन–संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना ने निश्चय ही दूसरे विश्व युद्ध कि पश्चात् की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था ने वातावरण में विरोध तथा सहयोग दोनों को उत्पन्न किया। शीत युद्ध की उत्पत्ति ने गुटनिरपेक्षता तथा गुट–निरेपक्ष राज्यों में आपसी सहयोग की व्यवस्था को उत्पन्न किया। शीत युद्ध के समर्थक देशों ने गुट–निरपेक्षता का विरोध किया तथा इसने भी उनको दो ध्रुवों में बांट दिया। इस प्रकार वाल्टज़ तथा उसके समर्थको ने नव यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाया तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को शक्ति–संघर्ष की व्यवस्था के साथ–साथ अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के साथ भी जोड़ा।

1.9 नव यथार्थवाद की प्रमुख विशेषताएँ :– नव यथार्थवाद की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :–

1. नव यथार्थवाद व्यवहारवादी क्रांति एवं व्यवस्था उपागम से प्रभावित है।

2. इन्होंने यथार्थवाद का विश्लेषण वस्तुनिष्ठ एवं वैज्ञानिक रूप मे किया।
3. इन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का विश्लेषण, अन्तर्राष्ट्रीय संरचना के आधार पर किया है। इनके अनुसार 'अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की संरचना अराजकता होती हैं।'
4. नव–यथार्थवादियों के अनुसार, 'राज्य की शक्ति कई तत्वों के मिलने से बनती है।' इसलिए शक्ति का अभिप्राय मूलतः सैन्य शक्ति नहीं है, जैसाकि परंपरागत यथार्थवादियों ने माना।
5. नव यथार्थवादियों के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में प्रत्येक राज्य का व्यवहार प्रकार्यात्मक रूप में समान होता है व छोटे व बड़े दोनों राज्य अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी सुरक्षा के लिए व शक्ति अर्जित करने के लिए कार्य करते हैं।
6. नव यथार्थवाद, यथार्थवाद की मान्यताओं का खण्डन नहीं करता है बल्कि विश्लेषण के तरीके में बदलाव करता है।

1.10 यथार्थवाद और नव यथार्थवाद में अन्तर –

नव यथार्थवादी दृष्किोण यथार्थवादी दृष्किोण से भिन्न है। परम्परागत यथार्थवाद का एकमात्र केन्द्रीय बिन्दु यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति केवल शक्ति के लिए संघर्ष ही है तथा यह तथ्य मानव स्वभाव की दृढ़ एवं स्थायी विशेषताओं पर आधारित है। यह समस्त अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की व्याख्या राष्ट्रीय शक्ति–राष्ट्रीय हित के आधार पर करता है तथा अन्य तत्वों जैसे न्याय कानून व्यवस्था आदि को नाम मात्र का भी महत्व नहीं देता। ऐसे परम्परागत यथार्थवाद के समर्थक एच.जे. मार्गेन्थों और इसके समर्थक रहे है। ऐसा यथार्थवाद 1940–80 के समय में अत्यन्त लोकप्रिय रहा।

इसके विपरीत नव–यथार्थवाद जिसकी लोकप्रियता 1980 के दशक में हुई, इस बात को स्वीकार करता है कि शक्ति का तत्व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का केन्द्रीय बिन्दु है परन्तु इसके साथ–साथ यह कुछ अन्य तत्वों विशेषकर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की संरचनाओं (Structural of International System) को भी महत्व देता है। नव यथार्थवाद यह स्वीकार करता है कि केवल राष्ट्रीय शक्ति–राष्ट्रीय हित नहीं है अपितु अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की संरचना भी राज्यों के व्यवहार, उनकी विदेश नीतियों तथा उद्देश्यों को निर्धारित करती है। नव यथार्थवाद में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को केवल राष्ट्र राज्यों द्वारा किए जाने वाले शक्ति के लिए संघर्ष के रूप में परिभाषित नहीं किया जाता क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की संरचनाओं के अध्ययन के बिना किसी राज्य के वास्तविक व्यवहार का अध्ययन नहीं किया जा सकता।

1.11 सारांश

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का यथार्थवादी दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की व्यवहारिक व्याख्या करता है। यह दृष्टिकोण इस मान्यता पर आधारित है कि राष्ट्रों के मध्य संघर्ष व विरोध किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में यह निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। इस दृष्टिकोण के तथ्यों के उचित मूल्यांकन पर बल दिया जाता है, नैतिकता और मूल्यों का इस दृष्टिकोण में कोई स्थान नहीं है। इस दृष्टिकोण की मान्यता है कि प्रत्येक राष्ट्र अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के लिए निरन्तर संघर्ष करता रहता है और प्रत्येक राष्ट्र के हित उसके भौगोलिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव के विस्तार में निहित है।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के यथार्थवादी सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
2. कैन्निथ वाल्ट्ज के नव यथार्थवाद का वर्णन कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. यथार्थवादी सिद्धान्त की विशेषताएँ बताईए।
2. नव यथार्थवाद की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. यथार्थवाद और नव यथार्थवाद में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का यथार्थवादी सिद्धान्त क्या हैं ?
2. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के यथार्थवादी सिद्धान्त समर्थकों के नाम बताईए।
3. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के नव यथार्थवादी सिद्धान्त मुख्य प्रतिपादक कौन हैं ?

इकाई–2

उदारवादी एवं नव उदारवादी उपागम

(Liberal and Neo Liberal Approaches)

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत उदारवादी उपागम का अर्थ, मान्यताओं तथा नव उदारवाद का अर्थ, प्रमुख उदारवादी, उपागम का विश्लेषण किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :–

- अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के उदारवादी का अर्थ समझ सकेंगे।
- अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के उदारवादी उपागम की मान्यताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- नव उदारवादी उपागम का अर्थ समझ सकेंगे।
- नव उदारवादी उपागम के विभिन्न सिद्धान्तों को समझ सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के अध्ययन में उदारवादी उपागम का विशेष महत्त्व है। उदारवादी सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का यथार्थवादी सिद्धान्त से भिन्न विश्लेषण प्रस्तुत करता है। उदारवादियों के अनुसार मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है, अतः उदारवादी यथार्थवादियों की इस बात का खण्डन करते हैं कि युद्ध विश्व राजनीति की एक अनिवार्य स्थिति है। वे इस बात से भी सहमत नहीं है कि विश्व के मंच पर राज्य ही प्रमुख अभिकर्ता है यद्यपि वे राज्य के महत्व को से इंकार नहीं करते तथापि वे राज्य के साथ–साथ बहुर्राष्ट्रीय निगमों, आतंकी समूहों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों को भी विश्व राजनीति के कुछ क्षेत्रों में केन्द्रीय भूमिका निभाते हुए पाते हैं।

उदारवादियों के अनुसार समस्त मानवीय व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु व्यक्ति है, राज्य, समाज और अन्य संस्थाएं व्यक्ति के कल्याण के साधन मात्र हैं। इसलिए समस्त राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था का निर्धारण व्यक्ति को केन्द्र बिन्दु मानकर होना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीयतावाद और विश्व शांति में उदारवादियों का पूर्ण विश्वास है अतः उदारवाद केवल एक राष्ट्र की सीमा के अन्तर्गत ही नही बल्कि सम्पूर्ण विश्व के लिए भी आदर्श प्रस्तुत करता है। लोकतान्त्रिक पद्धति की सरकार उदारवाद का सबसे महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है। यह जनतन्त्र के मूल आधार लोकप्रिय सम्प्रभुता की धारणा मे विश्वास करता है।

2.2 अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के अध्ययन का उदारवादी उपागम :–

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के अध्ययन के उदारवादी उपागम का उद्गम 17वीं शताब्दी की उदारवादी विचारधारा के साथ हुआ। **ग्रोसियस** और **जॉन लॉक** के उदारवाद के क्रमबद्ध दर्शन की शुरूआत की। लॉक को **उदारवाद की आत्मा** कहा जाता है। राजनीतिक दृष्टिकोण से उदारवाद एक विशाल आंदोलन था, जिसका प्रभाव पश्चिमी यूरोप के देशों और अमेरिका पर पड़ा, लेकिन इसका सबसे व्यवस्थित विकास ब्रिटेन मे हुआ। उदारवादी दर्शन के अनुसार राज्य का प्राथमिक दायित्व समस्त आवश्यक हितों की रक्षा करना है तथा उन अवस्थाओं और माध्यमों की रक्षा करना है, जिनके द्वारा हितों का संघर्ष कम से कम बल प्रयोग के द्वारा समाप्त किया जा सकता है। इनका मानना है कि शासन की कुछ निश्चित कानूनी और संवैधानिक सीमाओं के भीतर रहकर कार्य करना पड़ता है। कार्यपालिका कानून की सीमाओं में रहती हुई अपने विवके से कार्य करती है। इसमें आदेश अथवा स्वेच्छाचारी शक्ति को कोई प्रभाव नहीं होता। इसी कारण उदारवादी शासन के बारे में कहा जाता है कि वह शक्ति पर नहीं, बल्कि इच्छा पर आधारित होता है।

2.3 उदारवादी उपागम की मान्यताएँ :– उदारवादी उपागम की कुछ महत्त्वपूर्ण मान्यताएँ इस प्रकार है :–

1. उदारवादियों के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में संघर्ष संक्रमणकालीन है।
2. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे लोकतन्त्र के प्रसार व अन्तर्राष्ट्रीय विधि को महत्त्वपूर्ण बनाकर संघर्ष को समाप्त किया जा सकता है।
3. उदारवादी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को नैतिकता से प्रेरित व संचालित मानते हैं।
4. उदारवादियों के अनुसार मानव स्वभाव अच्छा होता है। मानव स्वभाव तार्किक व अच्छा होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सहयोग सम्भव है।
5. व्यक्तियों और राज्यों दोनों के हित अनेक आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं... अन्ततः हितों का निर्धारण राज्यों और व्यक्तियों की सौदा करने की सामर्थ्य से होता है।
6. पारस्परिक हित अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में सहयोग को स्थायित्व प्रदान करते हैं... बल प्रयोग के साधनो का आश्य लिए बिना, राज्यों के मध्य सहयोग सम्भव है।
7. उदारवादी उपागम व्यक्तिवाद, तार्किकता, स्वतन्त्रता, न्याय और सहिष्णुता के मूल्यों पर जोर देता है।

8. व्यक्ति प्राथमिक अन्तर्राष्ट्रीय अभिकर्ता होते हैं–व्यक्ति के हित तथा समाज की प्रगति एक–दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं।
9. राज्यों के हित गतिशील होते हुए अपने और दूसरों के हितों को ध्यान में रखते हैं–राज्यों के हितों में समय के साथ परिवर्तन होते रहते हैं क्योंकि व्यक्तियों के मूल्य बदलते रहते हैं।
10. उदारवादी राज्य अन्य देशों के हितों और नीतियों को भी ध्यान में रखते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि उदार लोकतन्त्र का विकास अन्य व्यक्तियों के हितों की चिन्ता अपनी चिन्ता के रूप में देखने पर बल देता है।
11. उदारवादी समाज के प्रमुख लक्ष्ण है : अनेकता तथा बहुलता और सहमति एवं संविधानवाद की मान्यताओं के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का गठन।
12. उदारवाद पूँजीवादी वर्ग का आर्थिक दर्शन है जो मुक्त व्यापार तथा समझौते पर आधारित पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का समर्थन करता है जिसमें राज्य की दखलंदाजी तथा नियन्त्रण बिल्कुल न हो।
13. स्वतन्त्र समझौते, व्यापार, प्रतियोगिता, बाजार अर्थव्यवस्था तथा बाजारू समाज का समर्थन करते हुए उदारवाद आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए राज्य की आर्थिक मामलों में राज्य की दखलंदाजी का विरोध किया है।

2.4 नव उदारवादी उपागम (Neo Liberal Approach)

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों मे नव उदारवादी उपागम मुक्त व्यापार व मुक्त बाजार को प्रोत्साहन देता है। यह सिद्धान्त उदारवादी उपागम मे सुधार (Update) करते हुए यह मानता है कि राज्य अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों मे मुख्यकर्ता है तथापि गैर राज्यकर्ता (NSA,s) और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों (IGO,s) को भी महत्त्वपूर्ण मानता है। जहाँ उदारवाद को वैश्वीकरण के प्रथम युग की विचारधारा के प्रथम युग की विचारधारा कहा जाता है वहीं नव उदारवाद को वैश्वीकरण का द्वितीय युग (Second Era of Globalization) कहा जाता है। जिसके बीज द्वितीय महायुद्ध के बाद प्रस्फुरित हो गये थे। ब्रेटन वुड व्यवस्था के माध्यम से स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय मोद्रिक स्थिरता मे नव उदारवाद की जड़े निहित है।

नव उदारवाद की सर्वोत्तम परिभाषा है – अहस्तक्षेपवाद, पूँजीवाद बाजार आधारित अर्थव्यवस्था, निजीकरण और व्यापारिक समझौते। यह एक प्रकार से अनुदारवादी व्यवसायिक नीतियों को प्राश्रय देने वाली विचारधारा है जिसका उद्देश्य विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों पर बजट अनुशासन लागू करते हुए सन्तुलित बजट एवं व्यापार बहाव को तेज करना।

नव उदारवाद के प्रमुख समर्थकों में **स्टीफेन गुस्ताव सेन (Steffen Gustav Sen) रोनाल्ड रीगन (Ronald Reagan) माग्रेट थैचर (Margret Thather) आलन ग्रीन स्पान (Alan Green Span)** तथा **थामय एल. फ्रीडमैन** आदि का नाम प्रमुख है इन विद्वानों ने उदार वैश्वीकरण की अवधारणा का समर्थन किया।

2.5 प्रमुख नव उदारवादी उपागम :–

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का अध्ययन करने की दृष्टि से प्रमुख उदारवादी उपागम निम्नलिखित है :–

(I) विश्व राज्य सिद्धान्त
(II) बहुलवादी सिद्धान्त
(III) भूमण्डलीय अवधारणा
(IV) संघर्ष समाधान
(V) निर्भरता और अन्तर निर्भरता सिद्धान्त
(VI) कार्यात्मकता सिद्धान्त

2.5.1 विश्व राज्य सिद्धान्त :– नव उदारवादियों के अनुसार विश्व राज्य की अवधारणा तात्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व्यवस्था के लिए एक महत्त्वपूर्ण कदम मानी जा सकती है। संयुक्त राष्ट्र संघ की दुर्बलता, आणविक प्रतिस्पर्धा, अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षैपास्त्र और संहारात्मक शस्त्रों के आविष्कार ने तीसरे महायुद्ध का खतरा बढ़ा दिया है। मानव सभ्यता के अस्तित्व के लिए विश्व के सभी देशों को मिलकर एक ऐसे विश्व संघ का निर्माण करना होगा जिसमे शान्ति और व्यवस्था का दायित्व विश्व सरकार का हो। विश्व राज्य की कल्पना करने वाले विचारकों का मानना है कि जिस प्रकार राज्य की शक्ति ने अपनी सीमाओं मे शान्ति स्थापित की है, नागरिकों द्वारा एक–दूसरे के प्रति हिंसापूर्ण व्यवहार पर नियन्त्रण किया है, उसी प्रकार राष्ट्रों के ऊपर भूमण्डलीय स्तर पर एक ऐसा राज्य होना चाहिए जो राज्यों के एक–दूसरे पर आक्रमणों को रोके तथा विश्व शान्ति बनाये रखे। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की भयंकरता तथा प्रकृति को देखते हुए उनके समाधान के लिए विश्व राज्य किसी न किसी रूप में होना आवश्यक समझा जाने लगा है।

विश्व राज्य ऐसा राज्य होगा जो किसी विशेष प्रदेश की सीमाओं में बंधा हुआ नहीं, अपितु सारे भूमण्डल में फैला हुआ होगा, विश्व के सभी भागों में रहने वाले व्यक्ति इसके नागरिक होंगे, वे इसके प्रति निष्ठा रखेंगे, इनके आदेशों का पालन करेंगे। इस राज्य की सरकार द्वारा क्षमतापूर्वक रीति से काम करने के लिए तथा युद्ध रोकने के प्रयासों में सफलता पाने के लिए यह आवश्यक है कि उसे सब राज्यों के ऊपर अधिकार प्राप्त हो, वह उनका उसी प्रकार नियन्त्रण कर सके

जैसे राज्य की शक्ति वर्तमान समय में अपने क्षेत्र में रहने वाले नागरिकों का करती है। **क्लाड** के अनुसार, **"विश्व राज्य की सरकार ऐसी शक्तिशाली केन्द्रीय संस्था है जो अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों को रोकने का कार्य सफलतापूर्वक कर सके।"**

विश्व राज्य की आवश्यकता :– वर्तमान में निम्न कारणों से विश्व राज्य की आवश्यकता पड़ती है :–

1. विश्व राज्य के बिना स्थायी शान्ति स्थापना सम्भव नहीं है।
2. विश्व के आर्थिक विकास के लिए विश्व राज्य की आवश्यकता है।
3. युद्धों को रोकने के लिए विश्व राज्य की आवश्यकता है।
4. राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद की विभीषिका से मानवता को बचाने के लिए विश्व राज्य की आवश्यकता है।
5. आतंकवाद व पर्यावरणीय समस्याओं के खतरे से विश्व को बचाने हेतु विश्व राज्य की आवश्यकता है।

विश्व राज्य निर्माण की प्रक्रिया :– विश्व राज्य निर्माण के लिए निम्न उपाय किये जा सकते हैं :–

1. **विश्व विजय द्वारा** – छोटे–बड़े सम्प्रभु राज्यों को पराजित करके एक केन्द्रीय शक्ति का निर्माण किया जा सकता है।
2. **विश्व संघ निर्माण द्वारा** – सभी राज्यों को मिलाकर एक एकीकृत संघ का निर्माण किया जा सकता है।
3. **विश्व समुदाय के निर्माण द्वारा** – सभी देशों के नागरिकों के बीच सांस्कृति, शैक्षणिक, सामाजिक एवं आर्थिक सहयोग की भावना विकसित करके राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है।

2.5.2 बहुलवादी सिद्धान्त :– नव उदारवादियों के बहुलवादी दृष्टिकोण के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में वे सभी संगठन कर्ता की भूमिका अदा करते है जो संगठित होते हैं तथा अपने नीति लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए किसी न किसी प्रकार जन समर्थन पर आधारित होते हैं। बहुलवादी धारणा राज्य कर्ताओं के साथ–साथ और गैर–सरकारी संगठनों, बहुराष्ट्रीय निगमों तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों को भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन का प्रभावी पात्र मानता है।

आज हम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति अथवा विश्व राजनीति के अध्ययन को मात्र सम्प्रभु राज्यों की भूमिका के अध्ययन तक ही सीमित नहीं कर सकते। विश्व राजनीति के अध्ययन की पृष्ठभूमि को व्यापक करते हुए बहुराष्ट्रीय निगमों और गैर–सरकारी संगठनों की भूमिका को भी उसमें सम्मिलित करना होगा।

2.5.3 भूमण्डलीय अवधारणा :– भूमण्डलीयकरण या वैश्वीकरण राष्ट्रों की राजनीतिक सीमाओं के आर–पार आर्थिक लेनदेन की प्रक्रियाओं और उनके प्रबन्धन का प्रवाह है। विश्व अर्थव्यवस्था में आया खुलापन, आपसी जुड़ाव और परस्पर निर्भरता के फैलाव को भूमण्डलीयकरण कहा जा सकता है। इस प्रक्रिया के तेज विस्तार ने विश्व अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण बदलाव ला दिए है। भूमण्डलीयकरण की यह प्रक्रिया अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक लेनदेन पर लगी रोक के हटने से शुरू हुई। विश्व अर्थव्यवस्था में कई तरह की रूकावटें दूर होने से भूमण्डलीयकरण की प्रक्रिया के लिए रास्ता साफ हुआ है, व्यापार के क्षेत्र में खुलापन आया है और विदेश निवेश के प्रति उदारता बढ़ी है। साथ ही वित्तीय क्षेत्र में भी उदार नीतियां अपनायी जा रही है। यातायात एवं संचार क्षेत्र में आई क्रान्ति ने विश्व को बहुत पास ला दिया है। औद्योगिक संगठनों में नई प्रबन्ध व्यवस्थाओं के विकास ने भी भूमण्डलीयकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान की है। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक एकीकरण आपसी सहयोग और मुक्त व्यापार के द्वारा विश्व को एक विश्व गाँव में परिवर्तित करना आज विश्व के प्रत्येक देश एवं व्यक्ति के समक्ष एक आदर्श है। इसी तरह आतंकवाद परमाणु युद्ध, नशीली वस्तुएं एवं एड्स तथा पर्यावरण संरक्षण जैसी समस्याएं विश्वव्यापी हैं। अतः इसके निवारण हेतु निर्णय–निर्माण के स्वरूप विश्व का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास कर रहे है।

2.5.4 संघर्ष समाधान :– उदारवादी विचारक मानवीय विवके में अटूट श्रद्धा रखते है तथा यह मानते है कि सहयोग द्वारा विभिन्न राज्यों के मध्य संघर्ष को कम करने में सहायता मिल सकती है। उनका मानना है कि सहयोग शक्ति के बिना प्रयोग के पारस्परिक हितों की समानता के आधार पर सुनिश्चित किया जा सकता है। इस संदर्भ में विभिन्न उदारवादी विचारों को पारस्परिक निर्भरता एवं गणतंत्रतात्मक उदारवाद की श्रेणियों में विभाजित करके संघर्ष समाधान के सिद्धांत का संतुलित अध्ययन किया जा सकता है।

पारस्परिक निर्भरता सिद्धांत में विश्वास रखने वाले उदारवादी विचारकों का मानना है कि अंतर्राष्ट्रीय अर्थक्षेत्र में श्रम का उच्च विभाजन पारस्परिक निर्भरता को गति प्रदान करता है और जब दो राष्ट्रों की पारस्परिक निर्भरता अधिक विकसित की जाती है, तो हिंसात्मक संघर्ष में स्वाभाविक रूप से कमी हो जाती है, यथा–द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जापान एवं जर्मनी के उत्थान से इस विचारधारा को प्रोत्साहन मिला जापान जैसे राष्ट्र ने पारस्परिक निर्भरता बढ़ाने हेतु श्रम विभाजन को विकसित करने एवं सैनिक व्यय को कम करने पर बल दिया। इस विचार को शीत–युद्ध के बाद की दुनिया में महत्त्व मिला, जिससे विश्व के अधिकांश राष्ट्रों ने आर्थिक एवं व्यापारिक संघ बनाने पर जोर दिया। आज विश्व में अनेक आर्थिक समूह हैं, यथा यूरोपीय संघ, एसियान, सार्क एवं नाफ्टा, इत्यादि।

इस प्रकार पारस्परिक निर्भरता सिद्धांत ने बल प्रयोग के विकल्प के रूप में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया द्वारा पारस्परिक निर्भरता को प्रश्रय दिया, जिससे सैनिक संघर्ष की प्रक्रिया काफी कम हो गई और बातचीत के द्वारा किसी समस्या का समाधान ढूंढना महत्त्वपूर्ण हो गया।

गणतंत्रात्मक उदारवादी संघर्ष समाधान के समर्थक युद्ध के बदले में विधि के शासन एवं शांतिपूर्ण सहअस्तित्व में अधिक विश्वास रखते है। उनका मानना है कि अन्य व्यवस्थाओं की अपेक्षा लोकतंत्रात्मक सरकार विधि के पालन को ज्यादा महत्त्व प्रदान करती है। अतः विश्व–शांति की स्थापना में वे निश्चय ही सफल होंगे। लोकतांत्रिक राष्ट्र में सरकार पर जनता का नियंत्रण रहता है और जनता सामान्यतः युद्ध नहीं चाहती, इसलिए लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था विश्व–शांति के लिए प्रेरक सिद्ध हो सकती है। साथ ही लोकतांत्रिक राष्ट्र नैतिक मूल्यों का पालन करते हैं, जो समान रूप से घरेलू एवं विश्वस्तर पर विवादों के शांतिपूर्ण समाधान का मार्ग विकसित करेगा तथा निरंतर बढ़ता हुआ आर्थिक सहयोग लोकतांत्रिक देशों में पारस्परिक निर्भरता बढ़ाएगा, जिससे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में संघर्ष की संभावना क्षीण होगी और शांति व्यवस्था को बढ़ावा मिलेगा। व्यवहार में आज देखा जा सकता है कि विश्व के राष्ट्र अनेक आर्थिक संगठनों के सदस्य हैं, इससे अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बढ़ावा मिलता है।

2.5.5 निर्भरता सिद्धान्त :– राष्ट्र राज्यों के मध्य विद्यमान असमान अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के आधार पर निर्भरता सिद्धान्त अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के उभरते स्वरूप के विश्लेषण का प्रयास करता है। निर्भरता सिद्धान्त निम्न स्तर के विकसित देशों के आन्तरिक परिवर्तनों का विश्लेषण करने वाला ऐसा उपागम है जो उनके निम्नस्तरीय विकास की विश्व आर्थिक विकास के परिप्रेक्ष्य में व्याख्या करता है। प्रारम्भिक स्तर पर यह किसी अल्पविकसित देश की सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक संरचनाओं का अध्ययन प्रस्तुत करता है। अन्तिम चरण में यह विश्व पूंजीवादी व्यवस्था में इनके विकास का अध्ययन आन्तरिक परिवर्तनों तथा बाह्य परिवेश की अन्तःक्रिया के परिप्रेक्ष्य में करता है। निर्भरता सिद्धान्त के समर्थक तीसरे विश्व के निर्धन और आर्थिक रूप से निर्भर देशों के विकास की निम्न स्तरीय स्थिति का अध्ययन उस सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रक्रिया के संदर्भ में करते हैं जो कि इन देशों को विकसित एवं समृद्ध देशों के साथ जोड़ती है। अनेक विद्वान निम्नस्तर के अल्पविकसित देशों को "परिधियाँ" तथा विकसित देशों को केन्द्र कहते है। उनका मत है कि इस परिधि में सामजिक, आर्थिक प्रक्रिया के स्वरूप का विश्लेषण विश्व पूँजीवादी व्यवस्था, जिस पर विकसित देशों का वर्चस्व है, के विश्लेषण के आधार पर किया जा सकती है।

1. निर्भरता सिद्धान्त का प्रमुख मन्तव्य यह है कि तृतीय विश्व के देशों की सामाजिक–आर्थिक प्रक्रियाओं की प्रकृति का निर्धारण निम्नस्तरीय विकास की प्रक्रिया, जो विश्वस्तर पर पूंजीवादी विस्तार का एक परिणाम है, द्वारा होता है। निम्नस्तरीय विकास की प्रक्रिया इन देशों की बाह्य निर्भरता के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ी होती है।
2. अधिकांश निर्भरता सिद्धान्तकार आमतौर से स्वीकार करते हैं कि निम्नस्तरीय विकास सदैव बाह्य निर्भरता से उत्पन्न होता है।
3. समृद्ध विकसित देशों में विकास का स्तर तथा अल्प विकसित देशों के निम्न विकास का स्तर दो असम्बन्धित प्रक्रियाएं नहीं हैं बल्कि ये दोनों पूंजीवादी विस्तार के कारण उत्पन्न एक–दूसरे से गुंथे हुए परिणाम हैं।
4. निर्भरता सिद्धान्त निम्नस्तरीय विकास को पूंजीवादी विस्तार की उपज के रूप में प्रस्तुत करता है, क्योंकि इसके अनुसार पूंजीवादी विस्तार से असमान विनिमय उत्पन्न होता है तथा जिसमें केन्द्र अपने लाभ हेतु परिधियों के संसाधनों एवं श्रम का शोषण करता है।
5. निम्नस्तरीय धीमी गति से विकास परिधि की विशेषता है तथा निर्भरता की स्थिति में ही परिधि का अस्तित्व बना रहता है। वस्तुतः निर्भर देश विकसित देशों की परछाई में ही रहते हैं।
6. यह वह स्थिति है जो निर्भर देशों के विकास करने की क्षमता को परिसीमित करती है। यह पूंजीवादी के विस्तार के द्वारा प्रतिबन्धित होती है। इसका परम्परागत स्वरूप साम्राज्यवाद या उपनिदेशवाद था जबकि इसके सामयिक स्वरूप नव–उपनिवेशवाद हैं।

2.5.6 कार्यात्मकता सिद्धान्त :– इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रवर्तक डेविड मित्रेनी हैं। अन्य समर्थकों में **जेजफ नाई**, **अर्नेस्ट हास**, **जे.पी. स्वेल**, **पाल टेलर**, **जान बर्टन**, **क्रिस्टोफर मिचेल** आदि का नाम प्रमुख है। कार्यात्मकतावादी सिद्धांत यह मानता है कि राष्ट्र–राज्य व्यवस्था अब अपर्याप्त सिद्ध हो रही है और यह मानवता की आवयश्यकताओं को पूर्ण करने में असमर्थ हो रही है। इसलिए अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में तनावों, विरोधों एवं युद्धों को समाप्त करने का प्रयास करके विश्व के लोगों के सामाजिक–आर्थिक कल्याण पर ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए अर्थात् वे राज्य की सीमाओं को महत्त्व न देकर लोगों के आपस में सहयोग को बढ़ावा देने हेतु क्षेत्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना एवं विभिन्न सामाजिक–आर्थिक कार्यों को आपसी सहयोग एवं क्रियाओं द्वारा पूरा करना चाहते हैं।

अतः कार्यात्मकतावाद शांतिपूर्ण एकीकृत सहयोग विश्व की स्थापना करके राजनीतिक विरोधों, मतभेदों एवं समस्याओं के स्थान पर आर्थिक, सामाजिक हितों की पूर्ति पर अपना ध्यान केन्द्रित करने का पक्षधर है। इनका मानना है

कि किसी एक क्षेत्र में कार्यात्मक सहयोग का विकास अन्य क्षेत्रों में ऐसे विकास का आधार बनेगा जिसके प्रभाव से क्षेत्रीय, सामाजिक, आर्थिक एकीकरण होगा, जो आगे चलकर अंतर्राष्ट्रीय एकीकरण को व्यापक आधार प्रदान करेगा तथा विश्व के लोग राष्ट्रीय राज्य व्यवस्था की प्रभुसत्ता पर आधारित सीमाओं की मानसिकता से बाहर निकलकर आपसी एकीकरण की ओर बढ़ेंगे।

इस प्रकार कार्यात्मकतावाद का मानना है कि पहले कम महत्त्व के क्षेत्रों में सामाजिक–आर्थिक सहयोग होगा, लेकिन इसकी सफलता से अधिक से अधिक महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में सहयोग का वातावरण बनेगा और धीरे–धीरे व्यापक रूप से सामाजिक–आर्थिक एकीकरण की स्थापना होगी। इससे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों का एक बड़ा नेटवर्क स्थापित होगा तथा विश्व–शांति एवं सुरक्षा की समस्या कम होगी और विश्व विकास के उद्देश्यों की पूर्ति विश्व के लोगों के विकास द्वारा होगी। इस प्रकार सहयोग एवं एकता की मानसिकता से तकनीकी विशेषज्ञों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग एवं विकास की स्थापना होगी।

2.6 सारांश

इस प्रकार उदारवाद स्वतन्त्रता, समानता एवं लोकतन्त्र का समर्थन करने वाली अवधारणा है जिसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व का सवार्गीण विकास होता है। उदारवाद परिवर्तन और प्रगति का संदेश देता है। उदारवाद हिंसा व क्रान्ति के स्थान पर क्रमिक परिवर्तन में विश्वास रखता है। अन्तर्राष्ट्रीय और विश्वशांति में इसकी गहरी आस्था है। उदारवाद ने विभिन्न राष्ट्रों में औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित किया। इसने धर्म और राजनीति को पृथक करके धर्म निरपेक्ष राष्ट्र के विचार को प्रोत्साहित किया।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के उदारवादी सिद्धान्त का विवेचन कीजिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के नव उदारवादी उपागम का विश्लेषण कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. उदारवादी उपागम की प्रमुख विशेषताएँ बताईए।
2. नव उदारवादी उपागम की प्रमुख मान्यताओं पर प्रकाश डालिए।
3. निर्भरता सिद्धान्त की विशेषताएँ बताईए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. नव उदारवाद क्या हैं ?
2. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के उदारवादी सिद्धान्त के प्रमुख समर्थकों के नाम लिखिए।
3. कार्यात्मक सिद्धान्त के प्रमुख समर्थकों के नाम बताइये।

इकाई – 3

मार्क्सवादी तथा अन्य विप्लववादी उपागम

(Marxist and Other Radical Approach)

3.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में मार्क्सवादी उपागम की मान्यताओं, आधार व विभिन्न विप्लववादी उपागमों का वर्णन किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :–

- मार्क्सवादी उपागम की मान्यताओं का अध्ययन कर सकेंगे।
- विभिन्न विप्लववादी उपागमों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का मार्क्सवादी उपागम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था को एक इकाई मानकर उसकी प्रक्रियात्मक अभिव्यक्तियों को समझने का प्रयास करता है। यह दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की प्रकृति तथा परिवर्तन का विश्लेषण करता है। इसमें अन्तःशास्त्रीय अध्ययन दृष्टिकोण निहित है।

मार्क्सवादी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को वैश्विक स्तर पर वर्ग संघर्ष के प्रतिरूप में देखते है। इसमें पूंजीवादी देश गरीब देशों का शोषण करते हैं और अपने स्वार्थों की सुरक्षा के लिए युद्ध तथा साम्राज्यवाद की नीतियों को अपनाते हैं। इस समस्या का एक समाधान है : विश्व के सभी मजदूर, जिनका कोई देश नहीं होता है और जो केवल अपने वर्ग से सम्बन्धित होते हैं, संगठित हों और पूंजीवाद तथा उससे सम्बन्धित सभी बुराइयों को उखाड़ फेंके। इस मार्क्सवादी दृष्टिकोण का तात्कालिक उद्देश्य है, पूंजीवाद को उखाड़ फेंकना और अन्तिम उद्देश्य है अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक साम्यवादी समुदाय का निर्माण करना जिसमें पूंजीवादी व्यवस्था की बुराइयां–शोषण, विस्तारवाद, असमानता, युद्ध न हों। जहां पर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के यथार्थवादी तथा उदारवादी सिद्धान्त यथापूर्व स्थितिवादी (Status Quoist) हैं वहां मार्क्सवादी दृष्टिकोण परिवर्तनवादी है यह सबसे अधिक बल परिवर्तन पर देता है।

अन्तर्राष्ट्रीय रातनीति के प्रति मार्क्सवादी विचार उसके राष्ट्रीय राजनीति के प्रति विचारों से मिलते है। जिस प्रकार प्रत्येक राज्य के अन्दर अमीर और गरीब दो वर्गों के बीच संघर्ष चलता रहता हैं उसी तरह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में पूंजीवाद राज्यों तथा पूंजीवादी व्यवस्था द्वारा शोषित गरीब और पिछड़े हुऐ राज्यों में संघर्ष चलता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विस्तारवाद और युद्ध के द्वारा अमीर राज्य गरीब राज्यों का शोषण करते हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार विश्व में समाजवाद की स्थापना के बाद शोषण का अन्त होगा। आन्तरिक शोषकों के विरोध में मजदूर संघर्ष राज्यों में समाजवाद लाएंगे और आगे चलकर समस्त राज्यों की साम्राज्यवादी शक्तियां एकजुट होकर विश्वस्तरीय पूंजीवाद को उखाड़ फेंकेंगी।

3.2 मार्क्सवादी उपागम की मान्यताएँ

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के मार्क्सवादी उपागम निम्न मान्यताओं पर आधारित है–

3.2.1 मार्क्स के अनुसार विश्व एक भौतिक जगत है इसमें घटनाएँ तथा वस्तुएँ एक दूसरे से सम्बद्ध है अतः सामाजिक जीवन में परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिवर्तनों का कारण भौतिक परिस्थितियाँ हैं और भौतिक परिस्थितियों से मार्क्सवाद का अभिप्राय आर्थिक सम्बन्धों से है।

3.2.2 मार्क्स वर्ग संघर्ष को समाजिक परिवर्तन का माध्यम मानता है। 'कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' के रचियताओं ने यह सिद्धान्त साफ–साफ निरूपित किया कि वर्गाधारित विग्रहपूर्ण समाजों में विकास की प्रेरक शक्ति वर्ग संघर्ष ही होता है। "अभी तक आविर्भूत समस्त समाज का इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास रहा है।" पूंजीवादी युग में दो वर्ग होते है : पूंजीपति या बुर्जआ तथा श्रमजीवी या सर्वहारा। पूंजीवादी समाज का सबसे उत्पीड़ित वर्ग होने के साथ–साथ सर्वहारा सर्वाधिक क्रान्तिकारी वर्ग भी होता है। मजदूर वर्ग का संघर्ष क्रान्ति का रूप ले लेता है जिसमें सर्वहारा वर्ग बुर्जआ को सत्ताच्युत कर अपना प्रभुत्व स्थापित करेगा।

3.2.3 मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय समाज भी अमीर और गरीब अर्थात् विकसित और विकासशील राज्यों में विभाजित है। अमीर देश वे हैं जो विकसित और शक्तिशाली हैं तथा जिनका आर्थिक शक्ति पर एकाधिकार है। इसके विपरीत गरीब देश वे हैं जो पिछड़े हुए, अविकसित और जो बुर्जआ राज्यों द्वारा शोषित किए जाते हैं।

3.2.4 पूंजीवादी देश आपसी कलह और संघर्ष में लगे रहते हैं, लेकिन गरीब तथा विकासशील देशों पर नियन्त्रण बनाये रखने के लिए एकजुट हो जाते हैं। आर्थिक शक्ति की सर्वोपरिता का तर्कसंगत परिणाम आर्थिक शक्तियुक्त वर्ग का प्रभुत्व की अवस्था में होना है। यह राजनीतिक शक्ति की गौणता का सूचक है।

3.3 मार्क्सवादी दृष्टिकोण के आधार

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का मार्क्सवादी दृष्टिकोण अनेक दार्शनिक सिद्धान्तों एवं धारणाओं पर आधारित हैं, इनमें प्रमुख निम्नलिखित है–

3.3.1 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या : मार्क्सवाद इस विचार का समर्थक है कि सभी स्थानीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक सम्बन्धों का निर्धारण भौतिक तत्व करते हैं। यह राजनीति तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की व्याख्या भौतिक उत्पादन शक्तियों की प्रक्रिया के ऐतिहासिक विकास के रूप में करता है। भौतिक व्याख्या तथा वर्ग संरचना निश्चित समय में जो कुछ पैदा करते हैं वही राजनीति तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की प्रकृति तथा मार्ग को निर्धारित करते हैं।

3.3.2 वर्ग–संघर्ष : दो आर्थिक वर्गों के बीच संघर्ष एक ऐतिहासिक तथा शाश्वत सत्य हैं। प्रत्येक समाज दो वर्गों में विभाजित होता है : *(i)* अमीर : जिनके पास साधन हैं और जो शोषक हैं। इस वर्ग के पास उत्पादन के साधन तथा पैसा होता है जिसका प्रयोग ये लोग अपने स्वार्थ (लोभ) की पूर्ति में करते हैं। दूसरा वर्ग है : *(ii)* गरीब : जो साधनहीन है और मजदूरों के वर्ग हैं जिसका शोषण होता है। यह वर्ग पसीना बहाते हैं फिर भी अमीरों द्वारा शोषित होते हैं। इसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय समाज भी अमीर तथा गरीब राज्यों के बीच विभाजित है। अमीर (पूंजीवादी, बुर्जुआ) देश वे हैं जो विकसित तथा शक्तिशाली राज्य हैं जिनका आर्थिक शक्ति पर एकाधिकार है। इसलिए इन राज्यों के पास विश्व स्तर पर भी राजनीतिक शक्ति होती है। इसके विपरीत गरीब राज्य वे हैं जो पद दलित हैं, अविकसित हैं और बुर्जुआ राज्यों द्वारा शोषित किये जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय समाज में अमीर राज्य प्रभुत्वशाली एवं प्रभावी हैं जबकि गरीब राज्य इनके दबाव में रहते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह विभाजन साम्राज्यवादी बुर्जुआ (पूंजीवादी) राज्यों तथा समाजवादी राज्यों के बीच होता है। तीसरी दुनिया के समाजवादी राज्य वास्तव में समाजवादी वर्ग से सम्बन्धित होते हैं क्योंकि वे भी साम्राज्यवादी बुर्जुआ देशों के शोषण का शिकार हो रहे होते हैं।

3.3.3 पूंजीवादी साम्राज्यवाद तथा साम्राज्यवादी संघर्ष : साम्राज्यवादी बुर्जुआ देश आपसी कलह और संघर्ष में लगे रहते हैं लेकिन गरीब तथा विकासशील देशों पर नियन्त्रण बनाये रखने के लिए इकट्ठे रहते हैं। वे उस व्यवस्था को, जो उनके लिए उनयुक्त है, बनाए रखने के लिए एक प्रकार का शक्ति संतुलन बनाये रखते हैं। इन देशों के मजदूर वर्ग इस स्थिति में नहीं होते कि वे उनके पूंजीवादी शासन को लोकतांत्रिक साधनों से (चुनाव) अथवा क्रांतिकारी साधनों से उखाड़ फेंके। लेकिन ये वर्ग समाजवादी व्यवस्था में मजदूरों को दी गई शक्तियों से शक्ति ग्रहण करते हैं और उनकी सेवा शर्तों में सुधार से इन्हें शक्ति मिली है जिससे बुर्जुआ ताकतों की शोषणात्मक शक्तियों का परिसीमन होता है।

3.3.4 विश्व में समाजवादी राज्यों का जन्म और उनकी पूंजीवाद के विरोध की नीति : समाजवादी राज्य शक्तिशाली बनते हैं। मजदूर इन देशों में शोषण को समाप्त करते हैं। उन्हें बुर्जुआ के हाथों से शोषण से छुटकारा मिल जाता है। लेकिन पूंजीवादी तथा तीसरी दुनिया के देशों में मजदूरों का शोषण आधुनिक समय में भी जारी है। इसलिए मार्क्सवादियों की यह घोषणा है कि अब शोषण को उखाड़ फेंकना चाहिए।

3.3.5 पूंजीवादी राज्यों का तीसरी दुनिया के देशों पर नव–बस्तीवाद नियन्त्रण : वर्तमान में पूंजीवादी बुर्जुआ राज्य तीसरी दुनिया के देशों के लोगों पर नव–उपनिवेशवाद द्वारा नियन्त्रण कर रहे हैं। समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो में शोषक वर्ग ही इसके घटक हैं। दूसरे वर्ग में मजदूर लोग हैं, केवल औद्योगिक मजदूर ही नहीं अपितु अन्य सभी मजदूर भी जो शोषण का अन्त करने के लिए संघर्ष कर रहे है। मजदूरों की शक्ति में वृद्धि पूंजीवादी देशों में शोषण को रोक सकती है।

इस प्रकार मार्क्सवादी दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में एक ओर पूंजीवादी बुर्जुआ देशों तथा दूसरी ओर समाजवादी तथा तीसरी दुनिया के समाजवाद समर्थक देशों के बीच सम्बन्धों का विश्लेषण करना चाहता है। ऐतिहासिक भौतिकवाद, वर्ग संघर्ष अपने शोषण के विरूद्ध मजदूरों का एकीकरण आदि धारणाओं के आधार पर यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के अध्ययन का समर्थन करता है।

3.4 मार्क्सवादी उपागम के प्रमुख तत्व

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के मार्क्सवादी उपगाम के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं –

3.4.1 सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयकरण : अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में मार्क्सवादी दृष्टिकोण सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयवाद पर आधारित है जो स्वयं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मजदूरों की एकता के सिद्धांत पर आधारित है। मार्क्सवादी विश्वास करते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद की स्थापना उनका अन्तिम उद्देश्य है। यह बुर्जुआ राष्ट्रवाद के विरोध में तथा सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयवाद के पक्ष में है।

सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयवाद के सिद्धांत में शामिल हैं :

(i) संसार के मजदूरों का सामूहिक हित–ये हित सभी प्रकार की राष्ट्रीयता की भावना से स्वतन्त्र हैं ;

(ii) मजदूरों का कोई देश नहीं होता, प्रत्येक देश के मजदूर को सबसे पहले राजनीतिक सर्वोच्चता को प्राप्त करना है। पहले राज्य में अपना घटक बनाए। यह अपने आप में राज्य हैं ;

(iii) सर्वहारा की मुक्ति के लिए संगठित कार्यवाही पहली शर्त है ; तथा

(iv) एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति द्वारा शोषण जब खत्म हो जाएगा तब उसी अनुपात में एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण भी खत्म हो जाएगा तथा एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के प्रति शत्रुतापूर्ण व्यवहार भी खत्म हो जाएगा।

3.4.2 साम्राज्यवाद का विरोध : अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में मार्क्सवादियों का विचार है कि संसार में बुर्जुआ व्यवस्था का टूटना निश्चित है। पूंजीवाद अपने अन्तिम विस्तारवाद को प्राप्त कर चुका है। युद्ध, सैन्यकरण तथा सशस्त्र संघर्ष विस्तारवाद की नीतियां बन चुकी हैं। समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध दर्शाते हैं कि :

(i) पूंजी अन्तर्राष्ट्रीय हो गई है और इस पर एकाधिकार हो गया है ;

(ii) असमान राजनीतिक, आर्थिक विकास पूंजीवाद का निर्बाध कानून है ; तथा

(iii) श्रमजीवी क्रांति न केवल यूरोपीय देशों में बल्कि अन्य पूंजीवादी देशों में भी सम्भव है। यही दूसरे देशों के दलित लोगों को संसार की समाजवादी क्रांति की ओर आकर्षित करने के लिए आधारभूत केन्द्र बिन्दु बनेगी।

3.4.3 आत्म–निर्णय का अधिकार : अन्तर्राष्ट्रीय समाज के गठन के लिए मार्क्सवादी आत्मनिर्णय की भावना को सिद्धांत रूप में स्वीकार करते हैं। ये इस बात से सहमत हैं कि विश्व के सभी देशों को अपनी राजनीतिक नीति निर्धारित करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए और उपनिवेशवाद खत्म होना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में सभी देशों के आत्म–निर्णय का अधिकार ही टिकाऊ और शक्तिशाली आधार प्रदान कर सकता है।

3.4.4 शान्तिमय सह–अस्तित्व : मार्क्सवादियों का विश्वास है कि सभी राष्ट्र–राज्यों को; बिना किसी देश की राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था की आलोचना किए, शान्तिमय ढंग से रहना चाहिए।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो में मार्क्सवादी सिद्धान्त सर्वहारा का अधिनायकवाद, पूंजीवाद का विरोध, आत्मनिर्णय तथा शान्तिमय सह–अस्तित्व का सिद्धान्त पर आधारित है। यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को इसके न्यायसंगत निष्कर्ष तक आगे बढ़ाने में विश्वास रखता है।

3.5 अन्य विरलववादी उपागम

अन्य विरलवादी उपागमों के अन्तर्गत – साम्राज्यवाद, उपनिपवेशवाद, नव–उपनिवेशवाद, प्रभुत्व (वर्चस्व) सिद्धान्त आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। यथा –

3.5.1 साम्राज्यवाद

सामान्यतः जब कोई राज्य सैनिक शक्ति द्वारा अथवा अन्य उपायों से अपनी सत्ता और प्रभुता का विस्तार अपने राज्य की सीमाओं से बाहर करने लगता है तो वह राज्य साम्राज्य का रूप धारण कर लेता है। उसकी यह नीति साम्राज्यवाद कहलाती है। इसमें एक राष्ट्र या जाति का शासक वर्ग बलपूर्वक अन्य जातियों और राष्ट्रों की स्वतन्त्रता का अपहरण करके उन पर अपना राजनीतिक आधिपत्य स्थापित करके उनकी सम्पत्ति, भूमि, उद्योगों, व्यापार आदि का प्रयोग करके अपने स्वार्थ लाभ के लिए करता है।

साम्राज्यवाद पर कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं–

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका (Encyclopaedia Britannica) के अनुसार, "यह राज्य की ऐसी नीति है जिसका उद्देश्य अपने राज्य की सीमाओं से बाहरा रहने वाली ऐसी जनता पर अपना नियन्त्रण स्थापित करना होता है जो सामान्य रूप से ऐसे नियन्त्रण को स्वीकार करने के लिए अनिच्छुक है।"

एन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना (Encyclopaedia Americana) के अनुसार, "साम्राज्यवाद तकनीकी दृष्टि से आगे बढ़े हुए समाज द्वारा इस दृष्टि से पिछड़े हुए समाज पर अपने प्रभुत्व का विस्तार करना है।"

3.5.2 साम्राज्यवाद की विशेषताएँ –

(i) साम्राज्यवाद का क्षेत्र विस्तृत और आकार विशाल होता है।

(ii) साम्राज्यवाद किसी राज्य द्वारा दूसरे राज्यों पर अपने राजनीतिक और आर्थिक प्रभुत्व का विस्तार है।

(iii) साम्राज्य में अनेक जातियों तथा राष्ट्रीय इकाइयों का होना आवश्यक है।

(iv) साम्राज्य के सारे अंग एक केन्द्रीय सत्ता के अधीन होते हैं।

(v) साम्राज्यवाद स्थापित करने वाले देश के पास अधीनस्थ राज्यों की अपेक्षा तकनीकी दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि के अस्त्र–शस्त्र, रणनीति कौशल, अधिक पूँजी और उत्पादन के उन्नत साधन होते हैं।

(vi) साम्राज्यवाद देश अपने हितों का ही केवल ध्यान रखता है और अपने अधीन देशों का शोषण करता है।

(vii) साम्राज्यवादी देश अपने हितों की रक्षा और बढ़ोत्तरी के लिए सब प्रकार के अनुचित साधनों का प्रयोग करते हैं।

(viii) साम्राज्यवाद का प्रधान आधार सैनिक शक्ति होता है।

3.5.3 साम्राज्यवाद के सिद्धान्त

साम्राज्यवाद के तीन प्रमुख सिद्धान्त पाये जाते है। यथा –

1. **मार्क्सवादी–लेनिनवादी सिद्धान्त (Marxist-Leninist Theory)**–इस सिद्धान्त का आधार मार्क्स और लेनिन के विचार हैं। यह सिद्धान्त इस पूर्व कल्पना पर आधारित है कि सभी राजनीतिक कार्यों के पीछे आर्थिक प्ररेणा कार्य करती है। जब पूँजीवादी समाज यह अनुभव करता है कि उसके अपने देश में बनने वाला तैयार माल देश के बाजारों में बिकने के बाद बचा रहता है और इसकी बिक्री के लिए बाहरी क्षेत्रों की आवश्यकता है तब वे राजनीतिक शक्तियों के माध्यम से नये बाजार खोजने और उन्हें अपने अधीन करके साम्राज्यवाद स्थापित करने के लिए प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार साम्राज्यवाद को पूँजीवाद का प्राकृतिक विस्तार माना जाता है। पूँजीवादी व्यवस्था में एकाधिकार प्राप्त करने की होड़ होती है जिसका अभिप्राय होता है कि राज्य की अर्थव्यवस्था थोड़े–से पूँजीपतियों द्वारा नियन्त्रित और एकाधिकृत कर ली जाती है। उद्योगों के विकास से उत्पादन अधिक मात्रा में किया जाता है। पूँजीवादी लाभ कमाने के लिए अधिक उत्पाद को बेचने के लिए विदेशी बाजारों को प्राप्त करना चाहते हैं। वे अपनी सुदृढ़ आर्थिक स्थिति से राज्य को बाध्य करते हैं कि वह अपनी सीमाओं से बाहर अपनी राज्य शक्ति का विस्तार करने का प्रयत्न करे तथा विदेशी बाजारों और भू–भाग को नियन्त्रित करे। इससे साम्राज्यवाद का जन्म होता है। **लेनिन** के शब्दों में, "साम्राज्यवाद पूँजीवाद की एकाधिकार अवस्था है।"

2. **साम्राज्यवाद का उदारवादी सिद्धान्त (Liberal Theroy of Imperialism)**–इस सिद्धान्त का मुख्य प्रवर्तक **जॉन ए. हॉबसन (John A. Hobson)** है। यह सिद्धान्त इस मत का समर्थक है कि आर्थिक तत्व साम्राज्यवाद को जन्म देते हैं। यह सिद्धान्त यह भी स्वीकार करता है कि लेनिन का यह तर्क सही है कि जिन ाज्यों की अर्थव्यवस्था पूँजीवादी है, वे प्रायः साम्राजयवादी होते हैं और वे युद्ध भी कर सकते हैं, परन्तु यह सिद्धान्त इस मत का समर्थन नहीं करता कि साम्रायवाद पूँजीवाद का प्राकृतिक विस्तार है। जॉन ए. हॉबसन का मानना है कि साम्राज्यवाद पूँजीवाद का परिणाम नहीं बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था में विद्यमान कुछ अव्यवस्थाओं का परिणाम है। मार्क्सवाद के अनुरूप यह सिद्धान्त मानता है कि वस्तुओं का अधिक उत्पादन तथा विदेशी बाजारों में निवेश पूँजी साम्राज्यवाद की जड़ है। हॉब्सन का मत है कि वस्तुओं के अधिक उत्पादन को आर्थिक सुधारों, जैसे–क्रयशक्ति में वृद्धि तथा अति बचत को समाप्त करके तथा देशी बाजारों में समायोजन करके पूँजीवाद को साम्राज्यवाद बनने से रोका जा सकता है।

मॉर्गेन्थों के शब्दों में, "साम्राज्यवाद के प्रति घरेलू विकल्प यह विश्वास ही उदारवाद को मार्क्सवाद से पृथक् करता है।"

3. **साम्राज्यवाद का दानवी सिद्धान्त (The Devil theory of Imperialism)**–यह सिद्धान्त साम्राज्यवाद को दुष्ट पूँजीपतियों के व्यक्तिगत लोगों के लिए बुरे षड्यन्त्र का परिणाम मानता है। पूँजीपति ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कर देते हैं कि उनकी सरकार को साम्राज्यवादी नीतियाँ अपनाने के लिए विवश होना पड़ता है। **नी समिति (Nye Committee)** के अनुसार, "कुछ दुष्ट पूँजीपति अथवा समूह, शस्त्र निर्माता, वाल स्ट्रीट तथा इन जैसे अन्य समूह अपने लाभ के लिए युद्ध चाहते हैं।

इस प्रकार युद्ध का लाभ उठाने वाले युद्ध समर्थक बन जाते हैं अर्थात् उन दानवों में सम्मिलित हो जाते है जो युद्ध की योजना बनाते हैं, ताकि वे धनी बन सकें।

मॉर्गेन्थों ने इन तीनों सिद्धान्तों में अन्तर करते हुए लिखा है कि, "जबकि उग्र–मार्क्सवादी पूँजीवाद तथा साम्राज्यवाद को बराबर मानते हैं और जबकि उदारवादी मार्क्सवादी तथा हॉब्सन के अनुयायी साम्राज्यवाद को पूँजीवादी व्यवस्था के अन्दर अव्यवस्थाओं का परिणाम मानते है। वहाँ साम्राज्यवाद तथा युद्ध के दानवी सिद्धान्त के समर्थक इसे दुष्ट पूँजीपतियों के व्यक्तिगत लाभों के लिए षड्यन्त्र के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानते।

3.5.4 साम्राज्यवाद के साधन

साम्राज्यवाद के तीन साधन है, यह निम्नलिखित है–

1. **सैनिक साम्राज्यवाद (Military Emperialism)**–सैनिक साम्राज्यवाद में प्रत्यक्ष सैनिक आक्रमण करके साम्राज्यवाद स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। बीसवीं शताब्दी में इस साधन को हिटलर, मुसोलिनी ने प्रयोग किया था। इसमें एक नये साम्राज्य का निर्माण होता है तो पुराने साम्राज्य का पतन भी होता है।

2. **आर्थिक साम्राज्यवाद (Economic Emperialism)**–आर्थिक साम्राज्यवाद में एक देश का दूसरे के राजनीतिक दृष्टि से अधीन होना आवश्यक नहीं है। एक देश दूसरे देश की नीतियों को आर्थिक नियन्त्रण से प्रभावित करता है। वर्तमान में एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के अनेक राज्यों की अर्थव्यवस्था पश्चिमी राज्यों द्वारा नियन्त्रित होती है।

3. **सांस्कृतिक साम्राज्यवाद (Cultural Emperialism)**–इसमें व्यक्तियों के मस्तिष्कों पर सांस्कृतिक प्रभाव डालने का प्रयास किया जाता है। ब्रिटिश राज्य ने भारत में यहाँ के धर्म और संस्कृति को विकृत कर ईसाई धर्म और संस्कृति को लादने का प्रयास किया।

3.5.5 साम्राज्यवाद के लाभ एवं हानियाँ

साम्राज्यवाद से अधिकारी देश और अधीन देश दोनों को लाभ–हानि होती हैं, जो इस प्रकार हैं –

(क) अधिकारी देशों को लाभ–ये निम्नलिखित हैं–

1. **आर्थिक लाभ**–अधिकारी देश साम्राज्यवाद के अन्तर्गत अधीन देशों से अनेक प्रकार से आर्थिक लाभ अर्जित करते हैं। कर, भेंट के अतिरिक्त व्यापार, वेतन, पेंशन आदि के माध्यम से आय प्राप्त होती है।

2. **अतिरिक्त जनसंख्या को बसाना**–साम्राज्यवादी देश अपनी जनसंख्या बसाने के लिए उपनिवेश प्राप्त करते हैं जैसे ब्रिटेन ने कनाडा और आस्ट्रेलिया में अपने उपनिवेश बनाकर अपनी अतिरिक्त जनसंख्या को वहाँ बसा दिया।

3. **शक्ति में वृद्धि**–अधीन देश की सैन्य शक्ति और अन्य साधन अधिकारी देश के अधीन हो जाते है। उन्हें सस्ते वेतन पर सैनिक मिल जाते हैं जिससे अधिकारी देशों की शक्ति में वृद्धि होती है। अधीन देशों अपने अपने अधीन बनाये रखने के लिए भी शक्ति में वृद्धि करना आवश्यक हो जाता है।

4. **धर्म, संस्कृति और भाषा का प्रचार**–साम्राज्यवादी देश अधीन देशों में अपने धर्म, संस्कृति और भाषा का प्रचार करते हैं। भारत में अंग्रेजों ने अपने धर्म, संस्कृति और भाषा का बहुत प्रचार किया। चूँकि अंग्रेजों साम्राज्य बहुत देशों में फैल गया, इसलिए अंग्रेजी विश्व के सभी देशों को जोड़ने वाली भाषा बन गयी।

अधिकारी देशों को हानियाँ–साम्राज्यवादी देशों को कुछ हानियाँ भी होती हैं जो निम्नलिखित हैं–

1. **स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता का उदय**–अधिकारी देश के लोग जब अधीन देशों में कार्य करते हैं। उनका व्यवहार स्वेच्छाचारी और निरंकुश होता है। परन्तु जब वे अपने देश में लौटते हैं तो यह प्रवृत्ति स्वभाव बन जाती है जिससे देश में समस्याएँ पैदा होती हैं। **प्रो. हॉकिंग्स (Prof. Hockings)** के शब्द, "किसी भी जाति के लिए एक लम्बी अवधि तक ऐसी जनता के बीच रहना, जिसे वह हेय दृष्टि से देखती हो, रूप से घातक होता है। इससे नैतिकता का स्तर गिर जाता है और अन्तःकरण अशुद्ध हो जाता है।"
2. **नागरिकों में विलासिता की भावना**–अधिकारी देशों के नागरिक अधीन देशों में उचित–अनुचित उपायों से अपार धन एकत्रित कर लेते हैं इससे उनके जीवन में विलासिता आ जाती है। यह भावना अधिकारी देशों को निकम्मा बना देती है।
3. **युद्ध का भय**–साम्राज्यवाद के लिए इतनी उग्र प्रतियोगिता होती है कि युद्ध का भय सदैव बना रहता है। साम्राज्यवादी देश भी प्रतिद्वन्द्विता के कारण युद्ध का सामना करते हैं, जिससे बहुत हानि होती है।
4. **आर्थिक हानि**–साम्राज्यवादी देशों को अपनी रक्षा के लिए बहुत बड़ी संख्या में थल, जल, नभ सेना रखनी पड़ती है जिसका बोझ अधीन देश की जनता उठाती है। अनेक बार आर्थिक रूप से लाभ के स्थान पर अधिकारी देशों को हानि उठानी पड़ती है।

(ख) अधीन देशों को लाभ–ये निम्नलिखित हैं –

1. **राजनीतिक एकता उत्पन्न होना**–अधीन देशों में आपस में फूट होती है परन्तु जब सब लोग एक–दूसरे के अधीन हो जाते हैं और उन पर विदेशी शासन अन्याय और अत्याचार करता है जो समस्त जनता मतभेद भुलाकर एक हो जाती है जैसा कि ब्रिटिश राज्य में भारत में हुआ। **पं. नेहरू** के शब्दों में, "ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थापित भारत की राजनीतिक एकता सामान्य अधीनता की एकता थी, लेकिन उसने सामान्य राष्ट्रीय एकता को जन्म दिया।"

2. **आर्थिक विकास में सहायक**–साम्राज्यवाद के कारण अधीन देशों में रेल, डाक, तार, चिकित्सालय, कारखाने आदि स्थापित किये जाते हैं। यद्यपि इनकी स्थापना अधिकारी देश अपने लाभ के लिए करते हैं परन्तु अधीन देशों को भी इनसे लाभ होता है।

3. **दृष्टिकोण उदार बनाना**–साम्राज्यवाद अधीन देशों की जनता में उदार दृष्टिकोण को जन्म देता है। वे जहाँ पहले अपने जाति, धर्म, क्षेत्र की सोचते थे अब वे समस्त देश के बारे में सोचने लगते हैं। **सी.डी. बर्न्स** के शब्दों में, "साम्राज्यवाद ने संकीर्ण ग्रामीण राजनीति का अन्त करके अन्तर्राष्ट्रवाद तथा विश्व–बन्धुत्व के भाव का प्रसार किया है।"

अधीन देशों को हानियाँ–साम्राज्यवाद से अधीन देशों को निम्नलिखित हानियाँ होती हैं –

1. **आर्थिक शोषण**–साम्राज्यवादी देशों का साम्राज्य बनाने का मुख्य उद्देश्य अपने अधीनस्थ प्रदेशों का शोषण करना तथा आर्थिक लाभ कमाना होता है। अधिकारी देश आर्थिक लाभ कमाने के लिए अधीन देशों के उद्योग–धन्धों को नष्ट कर देते हैं, आयात कर में कमी और निर्यात कर में वृद्धि कर देते हैं जैसा कि भारत में अंग्रेजों ने किया। **पार्कर मून**

के शब्दो में, "अंग्रेजों का भारत में प्रवेश करने और यहाँ बने रहने का प्रधान कारण भारत को लाभ पहुँचाना नहीं, अपितु ग्रेट ब्रिटेन को लाभ पहुँचाना था।"

2. राजनीतिक दासता–अधिकारी देश–अधीन देशों को राजनीतिक रूप से दास बनाये रखने का प्रयास करते हैं। यदि उनमें राष्ट्रवाद की भावना जाग्रत होती है जो अधिकारी देशा विभिन्न दमनात्मक कानून बना देते हैं; जैसे–भारत में अंग्रेजों ने वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट, आर्म्स एक्ट, रौलट एक्ट आदि बनाये।

3. सांस्कृतिक और नैतिक विनाश–अधिकारी देश अधीन देशों की संस्कृति और नैतिक मान्यताओं और भाषा को समाप्त करने का प्रयास करते हैं और अपने धर्म, भाषा, संस्कृति को लादने का प्रयास करते हैं। साम्राज्यवादी विजित प्रदेशों के लोगों मे मानसिक दासता की ऐसी भावना भर देते हैं कि वे अपनी पुरानी संस्कृति को विजेता देशों की संस्कृति से हीन समझने लगते हैं। उनमें स्वाभिमान, उत्तरदायित्व की भावना, स्वतन्त्र चिन्तन की शक्ति, निर्भीकता आदि गुण नष्ट हो जाते हैं।

4. अधीन देशों का बँटवारा–अधीन देशों को अधिकार में रखने के लिए अधिकारी देश अच्छी–बुरी सभी नीतियाँ अपनाते हैं। वे फूट डालकर शासन करना चाहते हैं। इसलिए वे अधीन देशों के नागरिकों में साम्प्रदायिक भावनाएँ भड़काकर विद्वेष फैलाते हैं। अंग्रेजों ने भारत में हिन्दू–मुसलमानों में धार्मिक आधार पर भेदभाव किया और देश का विभाजन कर दिया। इसी प्रकार साम्राज्यवादियों ने जर्मनी, कोरिया, वियतनाम और फिलिस्तीन के विभाजन कराये।

5. प्रतिक्रियावादियों को महत्त्व–साम्राज्यवादी देश अधीन देशों में प्रगतिशील विचारों का विरोध करते हुए साम्राज्यवादी शक्तियों को बढ़ावा देते हैं। अंग्रेजों ने भारत में प्रगतिशील विचारों के स्थान पर उन राजाओं, नवाबों, उच्च सरकारी अधिकारियों और मुस्लिम लीग जैसी प्रतिक्रियाआवादी शक्तियों को बढ़ावा दिया जिससे उनका साम्राज्य बना रहे।

इस प्रकार साम्राज्यवाद एक स्वार्थी और दोषपूर्ण पद्धति है जिसमें अधिकारी राष्ट्र अधीन राष्ट्रों का आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक शोषण करते हैं। **सी.डी. बर्न्स** के शब्दों में, "साम्राज्यवाद का ध्येय प्रतियोगितावाद और शोषण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"

3.6 उपनिवेशवाद

उपनिवेशवाद वर्तमान में आर्थिक साम्राज्यवाद का ही एक विस्तृत रूप है। प्रारम्भ में साम्राज्यवादी शक्तियो ने अपने साम्राज्य स्थापित किये, तत्पश्चात् अधीनस्थ प्रदेशों का शोषण किया। आर्थिक सत्ता स्थापित करने के बाद उन्होंन यहाँ पर अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित कर ली। इसी को 'उपनिवेशवाद' कहा जाता है। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना इसी प्रकार हुई थी, **डॉ. हैनरिक श्नी** के अनुसार कच्चे माल की प्राप्ति और पक्के माल को खपाने के लिए उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के लिए अधिकाधिक प्रयास किये गये थे। तैयार माल को बेचने के लिए बाजारों की स्थापना को ही उपनिवेशवाद की नीति के नाम से पुकारा जाता है।

वैबस्टर शब्दकोष (Webster Dictionary) के अनुसार, "उपनिवेशवाद उन आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक नीतियों के नाम है जिन पर चलकर कोई साम्राज्यवादी शक्ति दूसरे क्षेत्रों अथवा लोगों पर अपना नियन्त्रण बनाये रखना अथवा उसका विस्तार करना चाहती है।"

विन्स्लो (Winslow) के अनुसार, "यह अनाधिकृत भूमि पर आधिपत्य है, जिसमें संघर्ष आकस्मिक रहा हो अथवा अनावश्यक रूप से तथा जो यूरोपवासियों की अपने रहने के लिए नयी भूमि की खोज की आकांक्षा से अनुप्राणित हो।"

उपनिवेशवाद के कारण–उपनिवेशवाद के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं–

3.6. 1 माल की खपत–सम्पन्न राष्ट्रों द्वारा निर्मित माल की खपत करना।

3.6.2 जनसंख्या की समस्या–राष्ट्रों की अतिरिक्त जनसंख्या को निवास करने के लिए स्थान उपलब्ध कराना।

3.6.3 शक्ति–सम्मान और शक्ति की वृद्धि के लिए उपनिवश बनाना।

3.6.4 सैनिक–सेना के लिए सैनिक लेना।

3.6.5 खनिज पदार्थ–खनिज पदार्थों की खोज के लिए सम्पन्न राष्ट्रों द्वारा उपनिवेशों की स्थापना करना।

3.7 साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद में अन्तर

साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद मे निम्नलिखित अन्तर पाये जाते हैं–

3.7.1 साम्राज्यवाद किसी देश द्वारा अपनी सीमाओं के बाहर शक्ति का विस्तार है जबकि उपनिवशेवाद अपनी सीमाओं के बाहर राष्ट्रीयता का विस्तार है। राष्ट्रीयता के विस्तार में राष्ट्रों के विभिन्न वर्गों को अन्य देशों की भूमि पर विशेष रूप से पिछड़े हुए क्षेत्रों में, उन वर्गों की इच्छा से बसने के लिए भेजा जाता है। यह वर्ग वहाँ पर निवास करते हुए अपनी सभ्यता तथा संस्कृति का प्रसार करते हैं। अपनी राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना करते हैं।

3.7.2 साम्राज्यवाद प्राचीन विचारधारा है जबकि उपनिवेशवाद अपेक्षाकृत नवीन विचारधारा है।

3.7.3 साम्राज्यवाद का स्वरूप राजनीतिक होता है जबकि उपनिवेशवाद का स्वरूप आर्थिक होता है।

3.7.4 साम्राज्यवाद में अधीन देशों के नागरिकों पर निरंकुश शासन स्थापित किया जाता है, उन्हें राजनीतिक अधिकार सीमित मात्रा में दिये जाते हैं। वहाँ स्वतन्त्रता और समानता की माँग कुचल दी जाती है जबकि उपनिवेशवाद में राज्य का नियन्त्रण ढीला होता है। देशवासियों को स्वतन्त्रता और अधिकार साम्राज्यवाद की अपेक्षा अधिक मिलते हैं।

3.7.5 साम्राज्यवाद के क्षेत्र निर्धन तथा पिछड़े बने रहते हैं जबकि उपनिवेश के क्षेत्र विकसित हो जाते हैं।

3.8. नव–उपनिवेशवाद

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् साम्राज्यवाद का विघटन हो जाने के कारण विश्व के अधिकांश देश स्वतन्त्र हो गये। एशिया और अफ्रीका के अधिकांश राष्ट्र राजनीतिक दृष्टि से स्वतन्त्र और सम्प्रभु होते हुए भी अप्रत्यक्ष रूप से किस न किसी महाशक्ति के प्रभाव में है इसलिए यह तथाकथित स्वतन्त्र राष्ट्र स्वाधीन न होकर पराधीन है। आधुनिक साम्राज्यवाद ही नव–उपनिवेशवाद हैं।

क्वामे एन्क्रूमा (Kwame Nkrumah) के शब्दों में, "नवीन उपनिवेशवाद का सार यह है कि इसका शिकार बनने वाला राज्य सैद्धान्तिक दृष्टि से स्वतन्त्र होता है। उसे अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से बाहरी तौर पर सम्प्रभुता के समस्त अधिकार प्राप्त होते हैं किन्तु वास्तव में इसकी आर्थिक पद्धति का और राजनीतिक नीति का संचालन बाहर से किया जाता है।"

राष्ट्रपति सुकाणों के शब्दों में, "राष्ट्र के अन्दर छोटे से विदेशी समुदाय द्वारा आर्थिक नियन्त्रण, बौद्धिक नियन्त्रण तथा वास्तविक भौतिक नियन्त्रण के रूप में यह नये आधुनिक लिबास में उपनिवेशवाद है।"

इस प्रकार नव–उपनिवेशवाद नये बने प्रभुत्ता–सम्पन्न राज्यों पर साम्राजयवादी देशों द्वारा आर्थिक नियन्त्रण की व्यवस्था है।

3.9 नव–उपनिवेशवाद के उदय के कारण

उपनिवेशवाद का नव–उपनिवेशवाद में परिवर्तन द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् हुआ है। इसके निम्नलिखित कारण हैं–

3.9.1 यूरोपीय शक्तियों की कमजोर स्थिति–द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर यूरोपीय शक्तियों की स्थिति बहुत कमजोर हो गयी। उपनिवेशों में स्वतन्त्रता आन्दोलनों के कारण साम्राज्यों को बनाये रखना कठिन हो गया। उपनिवेशों की समाप्ति तथा साम्राज्य विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलनों के कारण उपनिवेशीय राज्य समाप्त हो गये प्रभुत्तासम्पन्न राज्य बने। पुरानी औपनिवेशिक शक्तियाँ नये राज्यों के साधनों का प्रयोग करने की आवश्यकता अनुभव करती रहीं इसलिए उन्होंने शीघ्रता से आर्थिक नियन्त्रण का नवीन उपकरण ढूँढ़ लिया। इससे उपनिवेशवाद नवीन उपनिवेशवाद मे बदल गया।

3.9.2 साम्राज्यवाद के विरूद्ध चेतना का उदय–अटलांटिक चार्टर और संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर द्वारा दिये गये आत्म–निर्णय के अधिकार से राजनीतिक चेतना का उदय हुआ जिससे पुराना साम्राज्यवाद उपनिवेशों पर अपना आधिपत्य नहीं रख सका, परन्तु साम्राज्यवादी देश अपने अधीन रह चुके देशों की नीतियों पर नियन्त्रण रखना चाहते थे।

3.9.3 विकसित राज्यों की विकासशील राज्यों के साधनों पर नियन्त्रण की आवश्यकता–साम्राज्यवादी देशों को कच्चा माल खरीदने और तैयार माल बेचने के लिए बाजार की आवश्यकता थी। इसलिए उन्होंने नव–स्वतन्त्र राज्यों पर आर्थिक नियन्त्रण रखना आवश्यक समझा। इसलिए नव–उपनिवेशवाए का उदय हुआ।

3.9.4 नये राज्यों की विकसित राज्यों पर निर्भरता–नये स्वतन्त्र राष्ट्रों को अपना कच्चा माल बेचने और तैयार माल खरीदने के लिए पुराने साम्राज्यवादी राज्यों पर निर्भरता ने नव–उपनिवेशवाद को जन्म दिया। उनकी परम्परागत साम्राज्यवादी राज्यों पर आर्थिक निर्भरता स्वतन्त्रता के पश्चात् भी बनी रही।

3.9.5 शीतयुद्ध का शक्ति–राजनीति का प्रभाव–द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् शीतयुद्ध का जन्म हुआ। परिणामस्वरूप दो विरोधी गुट पूँजीवादी बनाम साम्यवादी गुटों का अस्तित्व बना रहा। नवीन स्वतन्त्र राष्ट्रों को किसी एक गुट से सम्बन्ध रखना विवशता हो गयी जिससे उन्हें आर्थिक सहायता और सैनिक उपकरण मिल सकें।

3.9.6 अमरीका और सोवियत संघ की नीतियाँ–शीतयुद्ध काल में दोनों महाशक्तियों को नये राष्ट्रों की विदेशी सहायता ऋण शस्त्र पूर्ति, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, आर्थिक संस्थाओं तथा बहुराष्ट्रीय निगमों पर नियन्त्रण आदि साधनों से प्रभावित किया। नव–उपनिवेशवाद राज्य राजनीति के रूप से स्वतन्त्र होते हुए भी आर्थिक रूप से धनी तथा शक्तिशाली राज्यों के प्रभाव मे रहते हैं।

3.10 नव–उपनिवेशवाद के साधन

नव–उपनिवेशवाद के प्रमुख साधन निम्नलिखित हैं–

3.10.1 नव–उपनिवेशीय राज्यों की आन्तरिक राजनीति में हस्तक्षेप द्वारा–प्राचीन साम्राज्यवादी देश अनेक प्रकार से नव स्वतन्त्र राज्यों मे हस्तक्षेप करना चाहते हैं जिससे उनका प्रभाव देश की राजनीति पर स्थापित हो सके। उन देशों में सरकार बनाने और गिराने की रणनीति चलती रहती है। अफगानिस्तान मे भूतपूर्व सोवियत संघ का हस्तक्षेप तथा ग्रेनाडा, पनामा, निकारागुआ में अमरीका का हस्तक्षेप इसके उदाहरण हैं।

3.10.2 शस्त्रों की आपूर्ति–नये स्वतन्त्र राज्य अपनी सुरक्षा व्यवस्था में आत्मनिर्भर नहीं हैं इसलिए उन्हें अपनी सुरक्षा के लिए विकसित तथा शक्तिशाली राष्ट्रों से शस्त्रों की आपूर्ति करनी पड़ती है। शक्तिशाली राष्ट्रों ने शस्त्रों की बिक्री को नव–उपनिवेशों पर नियन्त्रण रखने के लिए एक साधन के रूप में प्रयोग किया है।

3.10.3 विदेशी सहायता तथा ऋण का प्रयोग–नये राष्ट्रों की निर्धनता का लाभ उठाकर धनी और विकसित राष्ट्र अपनी शर्तों पर उन्हें आर्थिक सहायता और ऋण उपलब्ध कराते हैं। इन शर्तों के माध्यम से वे नये राष्ट्रों की नीतियों पर नियन्त्रण रखते हैं।

3.10.4 अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं द्वारा नियन्त्रण–द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् अर्थव्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं; जैसे–वर्ल्ड बैंक, IRBD, IFC, IDA द्वारा संचालित तथा नियन्त्रित होती है। इन संस्थाओं पर धनी राष्ट्रों का पर्याप्त नियन्त्रण है। जब नये राष्ट्र इन संस्थाओं ऋण तथा सहायता लेना चाहते हैं तो धनी राष्ट्र अपने नियन्त्रण का प्रयोग उनसे अपने पक्ष में आर्थिक नीति–निर्णय क लिए करते हैं।

3.10.5 बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा नियन्त्रण–ये नव–उपनिवेशवाद क महत्त्वपूर्ण साधन हैं। बहुराष्ट्रीय निगम एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमरीका के बहुत–से राष्ट्रों पर अपना पूर्ण शक्तिशाली प्रभाव रखे हुए हैं। अपनी सुदृढ़ अर्थव्यवस्था तथा नव–उपनिवेशवाद राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था पर नियन्त्रण होने क कारण बहुराष्ट्रीय निगम इन राष्ट्रों की राजनीतिक तथा आर्थिक नीतियों पर पूरा प्रभाव रखते हैं। इनक उदाहरण IBM, GEC, Standard Oil आदि हैं।

3.10.6 आर्थिक निर्भरताएँ बनाकर–आर्थिक निर्भरता वाले राज्य आर्थिक रूप से पिछड़े हुए राज्य होते हैं जिनकी अर्थव्यवस्था तथा मुख्य वित्तीय उद्यम विदेशी शक्ति द्वारा नियन्त्रित होते हैं। अपना कच्चा माल बेचने तथा अनिवार्य आवश्यकताओं के आयात के लिए भी आश्रित राज्य पूर्ण रूप से विदेशी शक्ति पर निर्भर करते हैं।

3.10.7 अनुषंगी राज्य बनाकर–जब निर्धन तथा आर्थिक रूप से पिछड़े हुए राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था पूरी तरह विदेशी शक्ति आश्रित होती है तो उसे अनुषंगी राज्य कहते हैं। एक अनुषंगी राज्य अपनी नीतियों में एक आर्थिक रूप से आश्रित राज्य से कम स्वतन्त्र होता है। अधीन राज्य विदेशी शक्ति की स्वतन्त्र इकाइयों के समान होते हैं जिनकी नीतियों तथा शासन–प्रबन्ध को विदेशी शक्ति की संचालित और नियन्त्रित करती है।

3.11 प्राचीन तथा नवीन उप–निवेशवाद मे अन्तर

प्राचीन और नव–उपनिवेशवाद में निम्नलिखित अन्तर देखे जा सकते हैं–

3.11.1 उत्पत्ति के कारण–प्राचीन उपनिवेशवाद का जन्म राजनीतिक कारणों से हुआ है जबकि नव–उपनिवेशवाद का जन्म आर्थिक कारणों से हुआ है।

3.11.2 सुविधाओं की स्थिति–प्राचीन उपनिवेशों पर साम्राज्यवादी राष्ट्रों का पूर्ण नियन्त्रण था जबकि नव–उपनिवेशवाद मे उपनिवेशों को कुछ सुविधाएँ मिली होती हैं।

3.11.3 आधार–प्राचीन उपनिवेशों की स्थापना का आधार साम्राज्यवादी राष्ट्रों को बाजार प्राप्ति था जबकि नव–उपनिवेशवाद का आधार सबल राष्ट्र की नीति का अनुसरण करना है।

3.11.4 नागरिकों की स्थिति–प्राचीन उपनिवेशवाद मे नागरिक दास होते थे जबकि नव–उपनिवेशवाद में नागरिक स्वतन्त्र होते हैं।

3.11.5 स्वरूप–प्राचीन उपनिवेशों को कोई विशिष्ट स्वरूप नहीं था जबकि नव–उपनिवेशवाद को राजनीतिक, आर्थिक तथा पिछलग्गु आदि स्वरूपों मे विभाजित किया जाता है।

3.11.6 उद्देश्य–प्राचीन उपनिवेशवाद का दृष्टिकोण साम्रज्य विस्तार था जबकि नव–उपनिवेशवाद का दृष्टिकोण राजनीतिक विचारधाराओं का प्रचार करना।

इस प्रकार नव–उपनिवेशवाद भी उपनिवेशवाद ही है और वह भी उपनिवेशवाद क समान ही हानिकारक है।

3.12 प्रभुत्व (वर्चस्व) का सिद्धान्त

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में किसी विशेष क्षेत्र में शक्तिशाली देशों का वर्चस्व देखा जा सकता है। वर्चस्व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की संरचना पर निर्भर करता है। वर्तमान समय में विश्व राजनीति पर अमेरिका का वर्चस्व देखा जा सकता है। वर्चस्व सिद्धान्त क जन्मदाता इटली क मार्क्सवादी विचारक एंटोनियो ग्रामशी को माना जाता है। मुसोलनी क शासन के दिनों में ग्रामशी इटली की साम्यवादी पार्टी का अग्रगण्य नेता था। मुसोलनी की फासिस्ट सरकार ने इस पार्टी को अवैध

घोषित कर दिया। इस पार्टी के अधिकांश नेता बाहर चले गए लेकिन ग्रामशी पकड़ा गया और उस पर राज्य के विरूद्ध षड्यंत्र रचने का आरोप लगाकर उसे बंदीगृह में डाल दिया। बंदीगृह मे ही ग्रामशी ने जो कुछ लिखा वह बाद में 'प्रिजन नोट बुक्स' के नाम से प्रकाशित हुआ। इस कृति में ग्रामशी ने बुर्जुआ राज्य का व्यापक विश्लेषण किया। इसमे ग्रामशी ने विशेष रूप से पूँजीवादी समाज की संस्कृति में आधिपत्य की संरचनाओं (Structures of Domination) का पता लगाया। उसने पूँजीवाद समाज की अधिरचना का दो स्तरों मे भेद किया :

I. यह आधार के अधिक निकट है और वह परिवार, स्कूल, चर्च आदि के रूप में देखने को मिलता है।

II. यह राज्य का बल–प्रयोगमूलक संरचनाओं (Structures of Coercion) में लक्षित होता है।

इसमें पहले स्तर को ग्रामशी ने विशेष महत्त्व दिया। नागरिक समाज की संस्थाएँ, परिवार, पाठशाला एवं धार्मिक संस्थाएँ आदि नागरिकों को समाज मे व्यवहार के नियमों से परिचित करती हैं और उन्हें यह शिक्षा देती हैं कि शासक वर्ग के प्रति सम्मान की भावना रखनी चाहिए। ये संरचनाएँ बुर्जुआ समाज के नियम को वैधता (Legitimacy) प्रदान करती है, ताकि उसमें निहित अन्याय भी न्याय प्रतीत हो। अतः उन्हें वैधता की संरचनाएँ (Structures of Legitimation) कह सकते हैं। ये संरचनाएँ बुर्जुआ समाज को इस तरह कार्य करने में सहायता देती हैं कि कोई उनकी सत्ता को चुनौती न दे पाए। साधारणतः बुर्जुआ समाज अपनी स्थिरता के लिए नागरिक समाज की इन्हीं संरचनाओं की कार्यकुशलता पर आश्रित होता है। जब कभी नागरिक समाज असहमति का नियंत्रण और दमन करने में विफल हो जाता है, तभी राज्य को इसका दमन करने के लिए बल–प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है। इस सारे विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि साम्यवादी आंदोलन की मूल रणनीति पूँजीवादी राज्य को छिन्न–भिन्न करने तक सीमित नहीं रखनी चाहिए, बल्कि उसे मूल्यों और मान्यताओं के क्षेत्र में बुर्जुआ प्रभुत्व (Hegemony) का अंत करने में भी उतनी तत्परता दिखानी चाहिए।

इसी सिद्धान्त को बाद मे रॉबर्ट कॉक्स जैसे अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के विद्वान अन्तर्राष्ट्रीय संबंध मे विकसित किये, विशेषकर भूमण्लीय अवधारणा के सन्दर्भ में। उनके मत में शक्तिशाली देशों ने अपने हितों के अनुरूप विभिन्न समय में विश्व–व्यवस्था को अपनी इच्छानुसार रूप दिया। ऐसा केवल शक्ति के प्रयोग द्वारा नहीं वरन् शोषितों की सहमति से किया गया।

3.13 सारांश

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की सैद्धान्तिक समीक्षा में मार्क्स के योगदान की अपेक्षा उनके विचारों का योगदान है, जिसे विभिन्न विद्वानों ने समय–समय पर विकसित किया। फलतः मार्क्सवाद के अनेक प्रतिस्पर्धी विचारों का जन्म हुआ। यह भी उल्लेखनीय है कि सोवियत संघ एवं पूर्वी यूरोपीय देशों से साम्यवादी शासन खत्म हो जाने के बाद भी विश्व में मार्क्स के सिद्धान्तों व विचारों की प्रासंगिकता आज भी बनी नहीं हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय संबंध में मार्क्सवादी उपागम विश्वव्यापी पूँजीवाद की भूमिगत कार्यविधि का विश्लेषण करता है और यह भूमिगत कार्यविधि उस संबंध की ओर इशारा करती है, जहाँ अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएँ घटती हैं।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. मार्क्सवादी उपागम के प्रमुख तत्वों का विवेचन कीजिए।
2. साम्राज्यवादी उपागम के लाभ एवं दोषों का उल्लेख कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. नव उपनिवेशवाद को समझाईए।
2. प्रभुत्व (वर्चस्व) का सिद्धान्त क्या हैं ?

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. उपनिवेशवाद को परिभाषित कीजिए।
2. नव उननिवेशवाद के दो साधन बताईए।

इकाई–4

नव–विप्लववादी उपागम

(New Radical Approaches)

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में नव–विप्लववादी आन्दोलनों एवं उनके प्रभावों का विवेचन किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :–

- नव–विप्लववादी उपागम के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- विभिन्न नव–विप्लववादी उपागमों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।

4.1 प्रस्तावना

नव–विप्लववादी उपागम अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में मार्क्सवादी सिद्धान्त द्वारा प्रस्तुत आधुनिकीकरण सिद्धान्त का विकल्प माना जाता है। यह सिद्धान्त तृतीय विश्व के संदर्भ में राजनीति का विश्लेषण करने वाले संरचनात्मक प्रकार्यात्मक सिद्धान्त एंवं परम्परागत मार्क्सवादी सिद्धान्त का खण्डन करता है। यह सिद्धान्त यूरो केन्द्रीय सुझाव व साम्राज्यवाद एवं आधुनिकीकरण के संकीर्ण स्वभाव को अस्वीकार करने के साथ ही अल्पविकसित या तीसरे विश्व के राज्यों में विद्यमान छोटे स्तर के विकास की प्रक्रिया का विश्लेषण राजनीति के अध्ययन का एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रतिपादित करता है।

नव–विप्लववादी उपागम एशिया, अफ्रीका, लेटिन अमेरिका के तृतीय विश्व के राष्ट्रों में पूँजीवाद के प्रवेश के सम्बन्ध में अपने महत्त्वपूर्ण विचार के माध्यम से प्रकाश डालता है। साथ ही राष्ट्रीय राज्यों के मध्य असमान सम्बन्धों के आधार की समीक्षा करता है।

नव–विप्लववादी उपागमों में निम्न उपागमों को सम्मिलित किया जा सकता है –

4.2 नारीवादी उपागम–अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो मे नारीवाद एक नवीन विकास है। अन्य अध्ययन विषयो के नारीवादियों की भाँति अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के नारीवादी समर्थक उस ज्ञान संख्या के प्रति संशय व्यक्त करते हैं जो सार्वभौमिक और निष्पक्ष होने का दावा करती है। उनका मत है कि यह ज्ञान प्रमुख रूप से मनुष्य के जीवन के अनुभवो पर आधारित है। अराजकतापूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण में कार्य कर रहे एकात्मक राज्यों पर आधारित सत्ता–मीमांसा उस ज्ञान–मीमांसा पर आधारित नारीवाद सिद्धान्तों को प्रवेश द्वार प्रदान नहीं करती जो सामाजिक सम्बन्धों खासकर लैंगिक सम्बन्धों को विश्लेषण का प्रमुख मुद्दा बनाते हैं। नारीवाद सत्ता–मीमांसा सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित है जिनका संस्थापन ऐतिहासिक रूप से असमान राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संरचना द्वारा हुआ है।

नारीवादी विचारक उदारवादी लक्ष्यों से प्रेरित हैं। वे प्रायः राज्य या अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं अथवा संरचनाओं के भीतर नारी के उपेक्षित जीवन की जाँच करके उनमें परिवर्तन लाना चाहते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों मे नारीवादी महिलाओं के दैनिक जीवन के अनुभवों को राज्य एवं विश्व स्तर की राजनीतिक व आर्थिक शक्ति के निर्माण और क्रियान्वयन से जोड़ते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय समबन्धों के नारीवादी यह दर्शाने का प्रयास कर रहे हैं कि किस प्रकार लैंगिक व्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय जीवन और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की व्यापक विशेषता है और इसके निहितार्थ किस प्रकार महिलाओं को प्रभावित करते हैं।

व्यापक अर्थ में, नारीवाद ने अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व राजनीतिक सिद्धान्तों का विस्तार किया है ताकि यह पुरूषोचित ढंग से निर्मित राजनीतिक अर्थव्यवस्था तथा सम्बन्धित ससंरचनाओं पर से पर्दा उठा सके। नारीवाद विचारकों ने निम्न बातों का स्पष्टीकरण किया है–

1. राज्य और बाजार का संचालन पुरूषों द्वारा हो रहा है।
2. राजनीतिक और आर्थिक संस्थाएँ आर्थिक और राजनीतिक कार्यों में स्त्रियों के योगदान की उपेक्षा कर रही है।
3. लिंग व्यवस्था के विश्लेषक वर्ग के प्रति महत्त्व का अभाव पुरूष और नारी की पहचान और भूमिका की अन्तर्सम्बन्धित सामाजिक रचना को अस्पष्ट कर रहा है।

नारीवादी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों ने पुरूषोचित अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों क सिद्धान्तों को एक ऐसी व्यवस्था माना है जो एक विकृत और पक्षपातपूर्ण विश्व दृष्टिकोण का निर्माण करती है। यह दृष्टिकोण उस अनुपातहीन शक्ति नियन्त्रण और प्रभाव को प्रतिबिम्बित करता है जिस पर स्त्रियों, बच्चों और पुरूषों के जीवन की पूर्ण सामाजिक वास्तविकता की बजाय पुरूषों का वर्चस्व है।

4.2.1 नारीवादी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की उत्पत्ति

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में नारीवादी दृष्टिकोण की उत्पत्ति के संकेत विभिन्न स्त्रोतों मे मिलते हैं। ये निम्नलिखित है –

(1) विकासशील आन्दोलनों का आरम्भ–विकासशील आन्दोलनों मे महिलाओं के उदय और प्रगति का विकास लंग और विकास आन्दोलन के रूप में हुआ जिसने इस दशक के अन्त तक एक शिक्षा और नीतिअनुसन्धान की प्रक्रिया का आरम्भ किया। इस प्रक्रिया ने इस समझ को विकसित किया कि महिलाओं के जीवन को उस लैंगिक दृष्किोण से अलग रख कर नहीं समझा जा सकता जो पुरूष और स्त्री के बीच शक्ति सम्बन्धों का अध्ययन करता है। इसके अतिरिक्त इसने इस नारी जागरूकता का भी निर्माण किया है कि ये लिंगपूर्ण शक्ति सम्बन्ध उन विश्व–व्यापी आर्थिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं से परस्पर प्रभावित होते हैं जो स्वयं लैंगिक प्रकृति के हैं।

(2) शीत–युद्ध का अन्त–शीत–युद्ध के अन्त ने भी नारीवादी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का विकास किया। पूर्व–पश्चिम विभाजन की सैनिक व वैचारिक प्राथमिकताओं और मुद्दों मे परिवर्तन ने एक ऐसा वातावरण खोला जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय समबन्धों से जुड़े अन्य मामलों और दृष्टिकोणों का विवेचन किया जा सकता था। लिंग व्यवस्था इस प्रवृत्ति का एक नया तत्व था जिसके साथ–साथ पर्यावरण, नशीले पदार्थों का व्यापार, आर्थिक भूमण्डलीकरण,जनसांख्यिकी मुद्दे और जातीयता जैसी समस्याओं को भी शामिल किया गया।

(3) युद्धोत्तर काल मे प्रगति–अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों मे नारीवाद की एक सकारात्मकउपलब्धि यह वास्तविकता थी कि जैसे ही युद्धोत्तर काल में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की विषय–वस्तु बदली और मानव अधिकार, पर्यावरण सम्बन्ध, प्रवास और लोकतन्त्रीकरण जैसे मुद्दे सामने आये तो इसके साथ–साथ महिलाओं के मुद्दों को भी अनदेखी नहीं की गई। इन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विकास का एक उदाहरण है–संयुक्त राज्य अप्रवास एवं देशीकरण सेवा (US Immigration and Naturalization Service) द्वारा 1995 में जारी किए गए लिंग से सम्बन्धित नए दिशा–निर्देश जिन्होंने इस बात को मान्यता दी कि महिलाएँ जिन अत्याचारों और मानव अधिकार अतिक्रमण का सामना कर रही हैं वे पुरूषों द्वारा झेले गये उत्पीड़न से भिन्न है। यह निर्देश उन महिलाओं द्वारा शरण–स्थान की प्रार्थना के प्रतिक्रियास्वरूप जारी किए गए जो प्रजनन–विकृति, घरेलू हिंसा और जबरन विवाह जैसे लिंग–सम्बन्धी विभिन्न अत्याचारों से तंग आकर घर से पलायन कर गई थीं। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों ने न केवल नये मुद्दों के साथ समझौता किया है बल्कि इन मुद्दों मे स्त्रियों और लिंग सम्बन्धी समस्याओं को भी शामिल किया।

(4) राजनीतिक कर्त्ता के रूप में नारी की उपस्थिति–अन्तर्राष्ट्रीय जगत में एक राजनीतिक कर्त्ता के रूप में नारी की निरन्तर उपस्थिति अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों मे नारीवादी दृष्टिकोण के विकास का एक और महत्त्वपूर्ण कारण है। सार्वजनिक और राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता बढ़ी है इसलिए स्त्रियों की सामाजिक और लैंगिक भूमिका को पुनर्परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। नवीन शोध दर्शाते हैं कि यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र में पुरूषों का वर्चस्व अभी भी कायम है, परन्तु इस क्षेत्र में महिलाओं की बढ़ती मौजूदगी ने न केवल ऐसे नियमों और आचरण की उत्पत्ति का अवसर दिया है जो नारीवाद के रूप में अभिलक्षित होते हैं बल्कि सामान्य तौर पर ऐसे संवाद को भी जन्म दिया है जो लैंगिक प्रतिबन्धों से मुक्त है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि सरकार और विदेश नीति निर्माण प्रक्रिया में स्त्रियों की संख्या पुरूषों के बराबर हो गई है, पर महिलाओं की संख्या में महत्त्वपूर्ण वृद्धि अवश्य हुई है।

4.3 अल्प विकास का सिद्धान्त–तृतीय विश्व के देशों की अर्थव्यवस्था कमजोर होती है या विकास का स्तर कम होता है, वहाँ औद्योगिक उत्पादन सन्तोषप्रद नहीं होता। इन देशों की अर्थव्यवस्था कृषि प्रधान होती है। इन देशों के विद्वानों ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पारम्परिक सिद्धान्त से अलग होकर अल्पविकास के एक नए सिद्धान्त को विकसित किया। उन्होंने इतिहास की सहायता से यह स्पष्ट किया कि विकसित देशों में विकासशील देशों का पूंजी हस्तान्तरण वास्तविक नहीं था। वे निम्न स्तरीय विकास का पूँजीवादी विस्तार एवं शोषण के संदर्भ में विश्लेषण करते हैं।

4.3.1 अल्पविकास के सिद्धान्त का उदय एवं विकास

अल्पविकास के सिद्धांत के प्रादुर्भाव में मार्क्सवाद के भीतर सैद्धांतिक विवाद एवं लैटिन अमेरिकी आर्थिक आयोग के कार्य–ज्ञान ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। लैटिन अमेरिका आर्थिक आयोग ने लैटिन अमेरिका के निम्न स्तर के विकास का अध्ययन करके उसकी समस्या के समाधान हेतु प्रयास किया, तो यह पाया कि अमेरिकी देशों द्वारा बाहर की ओर केन्द्रित जिस योजना को अपनाया गया था, यह उनके शोषण का साधनबना न कि विकास का यंत्र। इसलिए आयोग ने विद्यमान निम्न स्तरीय विकास के लिए साधारणतः विश्व आर्थिक व्यवस्था एवं मुख्य रूप से अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था को उत्तदायी माना और कहा कि विकसित देशों तथा अल्पविकसित देशों में विश्व का विभाजन ही तीसरी दुनिया के लिए निरंतर बनी हुई निम्नस्तरीय विकास व्यवस्था के लिए उत्तरदायी है। अल्पविकसित देशों की निर्भरता का विकसित देशों द्वारा अपने लाभ के लिए शोषण किया गया।

इस विश्लेषण के प्रभाव में अनेक विचारकों ने यह तर्क देना प्रारंभ किया कि आधुनिक पूंजीवादी संस्थाओं के आगमन ने ही लैटिन अमेरिका एवं दूसरे अल्पविकसित राष्ट्रों में निम्नस्तरीय विकास को उत्पन्न किया। उन्होंने इस बात से इंकार कर दिया कि निम्नस्तरीय विकास की स्थिति विकास की पूर्व स्थिति है। उन्होंने माना कि निम्नस्तरीय विकास की उत्पत्ति तथा यह विकसित समाजों द्वारा नियंत्रित अंतर्राष्ट्रीय श्रम–विभाजन एवं तकनीकी प्रक्रिया का परिणाम था। विकसित तथा अल्पविकसित राज्यों के मध्य संबंधों की प्रकृति व क्षेत्र ने अंतर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था में ऐसे अस्वस्थ श्रम–विभाजन को जन्म दिया, जिसमें अल्पविकसित राज्य निर्यात के लिए मूल वस्तुओं के उत्पादक बन गए और निर्यातों द्वारा बनाई जाने वाली औद्योगिक वस्तुओं के आयातक बन गए। इससे विकसित देशों को भारी लाभ प्राप्त हुआ और अल्पविकसित एवं विकसित देशों में खाई चौड़ी हो गई एवं अंतर स्थायी हो गया। अल्पविकसित देशों की अर्थव्यवस्था को विकसित देशों की अर्थव्यवस्था पर निर्भर होना पड़ा। ये अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के साथ वास्तव में एकीकृत होने में असफल रही व तकनीक पर निर्भर हो गई। विदेशी सहायता के साधन ने अल्पविकसित देशों की निर्भरता और भी बढ़ा दी।

दूसरी ओर मार्क्सवादी विचारकों ने भी मार्क्स से लेकर आधुनिक मार्क्सवादी सिद्धांत की व्याख्या करके अपनी रचनाओं द्वारा पूँजीवाद के प्रति असंतोष व्यक्त करते हुए अल्पविकास के सिद्धांत को एक सैद्धान्तिक मान्यता प्रदान की। फलतः इन दोनों के समन्वय से अल्पविकास के सिद्धांत का जन्म हुआ।

4.4 निर्भरता का सिद्धान्त–निर्भरता का सिद्धांत की उत्पत्ति किसी देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संरचनाओं पर उपनिवेशवाद के प्रभाव के अध्ययन से होती है। यह नई सामाजिक–आर्थिक संरचनाओं का विश्लेषण करके पूँजीवादी व्यवस्था में इनके विकास का अध्ययन आतंरिक परिवर्तनों और घटनाओं के संदर्भ में करता है।

इस प्रकार निर्भरता सिद्धान्त के विकसित देशों के आतंरिक परिवर्तन का विश्लेषण करता है तथा उनके निम्नस्तरीय विकास की उनकी विश्व आर्थिक व्यवस्था में स्थिति के संदर्भ में व्याख्या करता है तथा यह आतंरिक एवं बाह्य संरचनाओं के संबंधों को भी व्याख्या करता है।

इसके विकास में लैटिन अमेरिका के विद्वानों तथा अफ्रीका के समाज वैज्ञानिकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। यह सिद्धांत एक वृहद् ऐतिहासिक एवं संरचनात्मक परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करता है। यह निम्नस्तरीय विकास को पूँजीवादी विस्तार की उपज के रूप में परिभाषित करता है। यह मानता है कि पूँजीवादी विस्तार से असमान विनिमय उत्पन्न होता है, जिसमें विकसित राष्ट्र अपने लाभ के लिए अल्पविकसित राष्ट्रों के श्रम का शोषण करता है। अल्पविकसित राष्ट निर्भरता की स्थिति में रहता है और निम्नस्तरीय विकास इनकी विशेषता बनी रहती है।

4.4.1 निर्भरता के सिद्धांत के मूल तर्क

निर्भरता सिद्धांतवादी तीसरी दुनिया के देशों के निम्नस्तरीय विकास की स्थिति की व्याख्या उस सामाजिक–आर्थिक प्रक्रिया के संबंध में करते हैं, जो उन देशों को विकसित देशों के साथ जोड़ती हैं। ये अल्पविकसित देशों को परिधियां तथा विकसित देशों को केन्द्र कहते हैं। वे यह मानते हैं कि परिधि में सामाजिक प्रक्रिया के स्वरूप का विश्लेषण विश्व पूँजीवादी व्यवस्था जिस पर विकसित देशों का वर्चस्व है, के विश्लेषण के आधार पर किया जाता है। इस सिद्धांत का केन्द्रीय बिन्दु यह है तीसरी दुनिया के राज्यों की सामाजिक प्रक्रियाओं की प्रकृति का निर्धारण निम्नस्तरीय विकास की प्रक्रिया जो अंतर्राष्ट्रीय पूँजीवादी विस्तार का एक परिणाम है। निम्नस्तरीय विकास की प्रक्रिया इन देशों की बाहरी निर्भरता के साथ अभिन्न तथा प्रगाढ़ रूप से संबंध रखती है। निर्भरता सिद्धांतवादी यह स्वीकार करते हैं कि निम्नस्तरीय विकास सदैव बाहरी निर्भरता से उत्पन्न होता है। विकसित देशों के विकास का स्तर एवं निम्नस्तर या कम विकसित देशों के निम्न विकास का स्तर पूँजीवाद के विस्तार के कारण परस्पर संबंधित या उनका परिणाम है।

इस प्रकार निर्भरता से तात्पर्य ऐसी स्थिति से है, जिनमें कुछ देशों की अर्थव्यवस्था उन देशों की अर्थव्यवस्था के विकास तथा विस्तार द्वारा संचालित एवं संकुचित होती है, जिन पर ऐसे देश निर्भर होते हैं। दो या दो से अधिक देशों की अन्तरनिर्भरता तथा इनकी विश्व व्यापार की अन्तरनिर्भरता के संबंध उस समय निर्भरता का स्वरूप ले लेते हैं, जअ कुछ देश स्वयं विस्तार की ओर बढ़ने हैं, जबकि दूसरे देश को वैसा नहीं करने देते हैं। वे विकसित देश के पीछे रहते है जिससे उनके विकास पर सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। आत्मनिर्भरता को विकसित देश की विशेषता माना जाता है तथा यह वह स्थिति होती है जो निर्भर देशों के विकास करने की क्षमता को सीमित करती है। यह पूँजीवाद के विस्तार द्वारा प्रतिबंधित होती है। इसका परम्परागत रूप साम्राज्यवाद या उपनिवेशवाद था, लेकिन इसका वर्तमान स्वरूप नव–उपनिवेशवाद है अर्थात् कम विकसित देश की निर्भरता की स्थिति है। इस सिद्धांत के अधिकतर समर्थक अपने विचारों के समर्थन के लिए अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की वर्तमान व्यवस्था एवं क्षेत्र का विश्लेषण करने के लिए निम्नस्तर के विकसित देशों की राजनीति तथा उसके अविकसित स्वरूप का विश्लेषण तीसरी दुनिया के देशों की राजनीतिक प्रक्रियाओं तथा उनके विकसित देशों के साथ संबंधों का विश्लेषण करने के लिए दृष्टिकोण प्रस्तुत करते है।

लेकिन निर्भरता सिद्धांतकार निर्भरता तथा निम्नस्तरीय विकास की प्रकृति का स्पष्ट विश्लेषण करते समय एकमत नहीं हैं। वे निर्भरता सिद्धांत का विश्लेषण, उसकी समाप्ति के लिए साधनों और इसके विकल्पों के संबंध में अलग–अलग विचार रखते हैं।

निर्भरता सिद्धांतकारों का कोई एक संगठित मंच नहीं है। उनमें कुछ समाजवादी राष्ट्रवादी हैं, जबकि कुछ दूसरे उग्र सुधारवादी हैं। फलतः जहाँ कुछ पूँजीवादी व्यवस्था के पूर्ण परिवर्तन या क्रांति क द्वारा या उग्र सुधारवादी माध्यम से करना चाहते है।

निर्भरता सिद्धांत क लेखकों ने अल्पविकसित देशों में पूँजीवादी व्यवस्था की आवश्यकता पर चोट की है, निर्भरता के स्तर पर नहीं।

जब हम तीसरी दुनिया के राज्यों मे अल्पविकास के स्तर को विश्लेषित करते हैं, तो देखते हैं कि इसके स्तर की प्रकृति एवं क्षेत्र अलग–अलग देशों एवं महाद्वीपों मे भिन्न–भिन्न है। अतः यदि निर्भरता पूँजीवादी व्यवस्था क विकास का परिणाम होती, तो यह प्रकृति लगभग समान होती। एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका में अल्प विकास की प्रकृति एवं क्षेत्र एक दूसरे से भिन्न हैं।

4.5 केन्द्र–परिधि का सिद्धान्त–पारंपरिक अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के सिद्धांत से असहमत होते हुए लैटिन अमेरिकी आर्थिक आयोग क विचारकों ने केन्द्र–परिधि सिद्धांत का अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में निरूपित किया। उनके अनुसार विकसित देशों द्वारा नियंत्रित श्रम–विभाजन एवं तकनीकी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप औद्योगिक साज–सामान एवं ज्ञान की तकनीक विकसित देशों के पास संग्रहीत हो गई। फलतः अल्पविकसित देशों से गरीबी और भी बढ़ गई। उन्होंने माना कि विकसित देशों द्वारा अपने लाभ के लिए ऐसी उत्पादन संरचना अपनाई गई, जो विविधतापूर्ण एवं सजातीय है, जबकि अल्पविकसित राज्य निर्यात की मूल वस्तुओं के प्राथमिक उत्पादक हैं। इनका अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों से कोई ताल्लुक नहीं है, जिससे अंतर्राष्ट्रीस व्यापार से उन्हें कोई लाभ नहीं पहुँचता है। इसलिए लैटिन अमेरिकी आर्थिक आयोग के सिद्धांतकारों का मानना है अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की प्रतिकूल शर्त और अर्थव्यवस्था के उत्पादन के निम्न स्तर की वजी से असमान विकास को प्रोत्साहन मिलता है। उनके अनुसार विकसित देशों द्वारा अपनाई गई संरक्षित व्यापार एवं आर्थिक नीतियों ने परिधियों अर्थात् अल्पविकसित देश को केन्द्र अर्थात् विकसित देशों पर निर्भर बना दिया और इसकी वृद्धि हेतु सकारात्मक कार्यवाही को बढ़ावा दिया फलतः परिधियों क निम्नस्तरीय विकास की संरचना विकसित देशों (केन्द्र) पर निर्भर हो गई। इससे निजात पाने के लिए उन्होंने योजनाबद्ध तीव्र औद्योगीकरण एवं प्रगतिशील अभिजन की अनिवार्यता पर महत्त्व दिया।

4.5.1 आन्द्रे गुंडर फ्रैंक के केन्द्र–परिधि पर विचार

ए.जी. फ्रैंक ने पश्चिम में पूँजीवाद के विकास के संदर्भ में ही निम्नस्तरीय विकास की प्रक्रिया का विश्लेषण किया। उनक अनुसार परिधि की निम्नस्तरीय विकास अवस्था पश्चिम क विकास एवं विस्तार द्वारा प्रतिबंधित है, जिसमें निर्भरता एक परिसीमित करने वाली स्थिति है, जो कि परिधि के राज्यों के विकास की संभावना को संकीर्ण बनाती है।

इसलिए उनका मत है कि निम्नस्तर का विकास वास्तव में वृहद पैमाने पर अल्पविकसित राज्यों तथा विकसित देशों क संबंधों से इतिहास की उपज है। उन्होंने लैटिन अमेरिकी राज्यों की अर्थव्यवस्था का गहन विश्लेषण करके यह प्रतिपादित किया कि पूँजीवाद के तीन विरोधाभास मुख्य रूप से निम्न स्तर के विकास के लिए उत्तरदायी हैं।

इस संबंध में सर्वप्रथम फ्रैंक आर्थिक अतिरेक के विनियोग एवं छीना–झपटी के विरोधाभास को स्पष्ट करते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय पूँजीवादी व्यवस्था की एकाधिकार वाली संरचना इस अतिरेक को हड़प लेती है और एक चेन के समान पूँजीवादी संबंधों को पूँजीवादी विश्व व राष्ट्रीय केन्द्रों और इनसे स्थानीय केन्द्रों के आगे भी स्थापित करती है। यह विरोधाभास अंतर्राष्ट्रीय पूँजीवाद की शोषण प्रकृति और क्षेत्र को प्रदर्शित करता है।

द्वितीय विरोधाभास यह है कि पूँजीवादी व्यवस्था का महानगरीय उपग्रही ध्रुवीकरण है अर्थात् आर्थिक विकास एवं निम्न स्तर का विकास आपस मे संबंधित और गुणात्मक है। संरचनात्मक रूप से एक–दूसरे से भिन्न होते हुए भी प्रत्येक दूसरे के साथ संबंधों के द्वारा उत्पन्न होता है।

तृतीय या अंतिम विरोधाभास जो निम्न स्तर के विकास को उत्पन्न करता है, वह परिवर्तन में निरन्तरता के साथ संबधित है। पूँजीवादी व्यवस्था के विकास एवं विस्तार ने अपनी आवश्यक संरचनाओं को बनाए रखा तथा इस प्रक्रिया में यह निम्नस्तरीय विकास का स्त्रोत रहा।

निम्नस्तरीय विकास का विश्लेषण करते हुए फ्रैंक कहते हैं कि अल्पविकसित देशों क समक्ष उनकी अधीनस्थ राज्यों जैसी स्थिति उनके सीमित विकास का स्त्रोत रही है। समय बीतने के साथ–साथ उनके केन्द्रों के संबंध उनके निरंतर निम्नस्तरीय विकास को बनाए रखते हैं तथा इसमें वृद्धि करते हैं। विकसित देशों का आर्थिक पुनरूत्थान भी उनके अधीनस्थ की विकास प्रक्रिया को सीमित करता है। इतिहास इस बात का प्रमाण है कि जो क्षेत्र अब बहुत निम्नस्तरीय विकास वाले क्षेत्र हैं, वे अतीत में केन्द्र के साथ बहुत घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे।

इस प्रकार ए.जी. फ्रैंक ने अपने केन्द्र–परिधि विचार द्वारा निम्नस्तरीय विकास के कारणों का विश्लेषण किया तथा निम्नस्तरीय विकास चक्र की समाप्ति के लिए घरेलू स्तर पर साम्राज्यवाद या उपनिवेशवाद का विरोध करके आर्थिक सुधारों तथा औद्योगिकरण के साथ समाजवादी क्रांति द्वारा निम्नस्तरीय विकास को विराम देने की सिफारिश की।

4.5.2 केन्द्र–परिधि का सिद्धान्त–अफ्रीका के विद्वान समीर अमीन ने अल्प विकास सिद्धान्त के माध्यम से स्पष्ट किया कि विकसित देश एवं अल्पविकसित देश इस तरह से एक–दूसरे से जुड़े हैं कि पूँजीवाद को ऐसा समय नहीं मिलता कि वह अल्पविकसित देशों क समग्र उत्पादन शक्ति के विकास मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सके। उनका मानना है कि अल्पविकसित देश कभी इस स्थिति मे नहीं रहे कि वे अपना अलग विकास कर सके। यदि वे विकसित देशों से मुकाबला रकते है, तो उनकी संरचना में एवं निर्यात क्रियाविधि में अनेक समस्याएं जन्म लेती हैं, जिससे उनका आर्थिक विकास रूक जाता है।

4.5.3 केन्द्र–परिधि पर इमैन्युअल वार्ल्सटीन के विचार

ए.जी. फ्रैंक की तरह वार्ल्सटीन भी विकास एवं निम्नस्तरीय विकास को एक ही ऐतिहासिक प्रक्रिया–पूँजीवादी विकास एवं विस्तार के दो भिन्न परिणाम स्वीकार करते हैं। विश्व पूँजीवादी व्यवस्था की प्रक्रिया के विश्लेषण के संदर्भ में वे पश्चिम के आर्थिक विकास की व्याख्या करते हैं और उनसे उत्पन्न शोषण के चरित्र की व्याख्या अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में परिवर्तन या विभिन्न राष्ट्रों क मध्य संबंधों के द्वारा करते हैं।

वे सामाजिक संपूर्णताओं को श्रम–विभाजन के संदर्भ में देखते हैं। उनके अनुसार दो प्रकार की विस्तृत सामाजिक व्यवस्थाएं हैं, जिनमें कार्यात्मक आर्थिक विभाजन को साम्राज्यवादी राज्य क अंतर्गत रखा जाता है और विश्व आर्थिक व्यवस्थाएं कई राजनीतिक संप्रभु द्वारा संचालित होती हैं। इसे कोई अकेले संचालित नहीं कर सकता, लेकिन साम्राज्यवाद के पतन के बाद स्वतंत्र प्रभुतासम्पन्न राज्यों की विकसित राज्यों पर निर्भरता उत्पन्न हुई। इस व्यवस्था का निर्माण इस प्रकार हुआ कि इसमें पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और भौगोलिक रूप से विभाजित श्रम–विभाजन की संरचनात्मक स्थितियां हैं–केन्द्र, परिधि और अर्द्धपरिधि। ये व्यापार में एक साथ बंधी हुई हैं। साम्राज्यों के अंत से राजनीतिक प्रभुत्व का अंत हुआ। आर्थिक रूप से एक–दूसरे पर प्रभुत्व बना हुआ है और समकालीन व्यवस्था से विनिमय असमान है तथा कार्यात्मक स्वरूप सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों के द्वारा परिसीमित है। यह विकसित केन्द्रों की सहायता कर रहा है, जिसमें वह परिधियों की अर्थव्यवस्थाओं तथा आर्थिक नीतियों पर अपने नियन्त्रण को न केवल विद्यमान रखे हुए है, अपितु विस्तार एवं दृढ़ीकरण भी कर रहा है और परिधियां केन्द्र पर निर्भर होकर जीवन व्यतीत कर रही है।

अतः उनका कहना है कि केन्द्र का विकास और परिधि के निम्नस्तरीय विकास पूँजीवादी विस्तार की प्रक्रिया और असमान हस्तांतरणों के साथ संबधित हैं। केन्द्र के पास अर्थात् विकसित देशों को अल्पविकसित देशों के स्त्रोतों, साधनों और श्रम के शोषण करने की क्षमता एवं योग्यता है और वह ऐसा कर रहा है। इस प्रकार वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में अल्पविकसित देशों का निम्न–स्तरीय विकास बना हुआ है और इस समस्या का समाधान केवल समाजवाद द्वारा किया जा सकता है। वैसे उनका मानना है कि पूँजीवाद के विरोधाभास 21वीं या 22वीं शताब्दी में स्वयं ही समाप्त हो सकते हैं।

4.6 सारांश

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का नव–विप्लववादी उपागम यूरोपीयनल केन्द्रवाद व साम्राज्यवाद एवं आधुनिकीकरण के संकीर्ण स्वभाव को अस्वीकार करने के साथ ही अल्पविकसित या तीसरी दुनिया के राज्यों में विद्यमान छोटे स्तर के विकास की प्रक्रिया का विश्लेषण करके राजनीति के अध्ययन का एक वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रतिपादित करता है।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. नव–विप्लववादी उपागमों का विवेचन कीजिए।
2. आन्द्रे गुडर फ्रैंक के केन्द्र परिधि सिद्धान का वर्णन कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. नारीवादी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक राजनीतिक संरचना के प्रमुख तत्व बताईए।
2. अल्प विकास का सिद्धान्त क्या हैं ?

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. नव–विप्लववादी उपागम क्या हैं ?
2. नव–विप्लपवादी उपागम की दो विशेषताएँ लिखिए।

इकाई–5

उत्तर–संरचनावादी और उत्तर–आधुनिकतावादी उपागम

(Post – Structuralist and Post - Modernist Approach)

5.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में संरचनावादी और उत्तर–संरचनावादी उपागम के अर्थ, प्रकृति व उत्तर आधुनिकतावादी उपागम की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :–

- उत्तर–संरचनावाद और उत्तर–आधुनिकतावाद का अर्थ जान सकेंगे।
- उत्तर–आधुनिकतावाद के प्रमुख लक्षणों के बारे में जान सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

उत्तर–संरचनावाद, संरचनावाद के बाद की अवस्था है तथा उत्तर–संरचनावाद और उत्तर–आधुनिकतावाद समान रूप से चलने वाली अवधाराणा हैं। उत्तर–संरचनावादी अवधारणा का विकास 1980 के दशक में हुआ।

संक्षेप मे उत्तर–संरचनावाद की व्याख्या की जाये तो यह कहा जा सकता है कि संरचनावाद ने व्यक्तिनिष्ठा उपागम से विदा ले ली है और अब यह वाद वस्तुनिष्ठा की दहलीज पर खड़ा है। उत्तर–संरचनावाद मे यह प्रयत्न किया गया है कि इसका विस्तार इस तरह किया जाये कि इसके अन्तर्गत कई सैद्धान्तिक संदर्शों (Theoretical Perspectives) का समावेश हो सके। वास्तव मे उत्तर–सरंचनावाद का रूपान्तरण सामाजिक दुनिया के साथ हो गया है। जहाँ पिछला संरचनावाद आधुनिक दुनिया से जुड़ा था, वहाँ उत्तर–संरचनावाद उत्तर–आधुनिक (Post-Modern) दुनिया की ओर देखता है।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के सिद्धान्तों में असंतोष के परिणामस्वरूप उत्तर–संरचनावादी एवं उत्तर–आधुनिकवादी उपागम का जन्म अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में हुआ। इसका मानना है कि विश्व राजनीति को समकालीन सिद्धान्त के साथ सम्बद्ध होना चाहिए, क्योंकि सामाजिक आंदोलन एवं बहुराष्ट्रीय निगम जैसे गैर–राजकीय अभिकरण के उत्पन्न होने से यथार्थवाद, उदारवाद एवं नव उदारवाद के सिद्धान्तों को जो चुनौती मिली, उससे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को जो स्वरूप मिला, उससे ज्ञान के क्षेत्र का विस्तार हुआ अर्थात् इसका सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के कुछ नए उभरते हुए उपागमों से हैं और बहुत हद तक उन परिवर्तनों का विश्लेषण करता है, जो शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उभरे हैं।

5.2 उत्तर–संरचनावाद का अर्थ व प्रकृति

उत्तर–सरंचनावाद संरचनावाद का नवीन संस्करण है। एक वैज्ञानिक सिद्धान्त की भाँति इसका उद्देश्य समाज की वास्तविक संरचनाओं का पता लगाना है। उत्तर–संरचनावाद वस्तुनिष्ठतावाद को स्वीकार नहीं करता। इसका आग्रह है कि मनुष्य जो कुछ बोलता है, करता है, और जैसा भी रहता है वह सब विज्ञान का स्वरूप ही है। प्रयोगशाला में जिसे विज्ञान कहते हैं, वही भाषा के माध्यम से–वार्तालाप, भाषण और प्रवचन में दिखाई देता है। यह संसार इस प्रकार मूल पाठ (Texts) की श्रृंखलाओं में बंधा हुआ है। इन मूल पाठों का निर्वचन उनके पारस्परिक सम्बन्धों से किया जा सकता है।

विज्ञान का एक उपागम बहुत स्पष्ट है। इसका यह आग्रह है कि दुनिया भर की भौमिक और प्राकृतिक वस्तुओं में से सम्बद्धता (Cohesion) होती है। सम्पूर्ण प्राकृतिक दुनिया में एकता है। इसी को विज्ञान देखता है। उत्तर–संरचनावाद इस एकता और सम्बद्धज़ा को नहीं देखता। इसका केन्द्रीय अध्ययन तो विभिन्नता (Different) है। जब उत्तर–संरचनावादी आनुभाविक मूल पाठ की तुलना करता है तो उसे अन्तर मिलता है। यह अन्तर ही उत्तर–संरचनावाद की अध्ययन सामग्री है।

लेमर्ट ने मूलपाठ की श्रृंखलाओं (Series of Texts) का उल्लेख किया है। इस सम्बन्ध में वे चार विचारणीय बिन्दु रखते हैं:

1. बातचीत, संवाद, भाषण, प्रवचन आदि सिद्धान्त के स्वरूप हैं और इनसे ही मूल पाठ (Texts) पैदा होते हैं।
2. आनुभाविकता को जानने के लिये हम साक्षात्कार लेते हैं, अवलोकन करते हैं, जनगणना की तथ्य सामग्री प्राप्त करते हैं, यह सब मूल पाठ हैं।
3. जो कुछ हमें आनुभाविक मूल पाठ (Empirical Text) से मिलता है उनकी तुलना हम सैद्धान्तिक मूलपाठ (Theoretical Text) से करते हैं। यदि हम आनुभाविक मूलपाठ को सैद्धान्तिक मूलपाठ के संदर्भ में देखते
4. मूल पाठ की श्रृंखला का पारस्परिक अध्ययन समाज को उसकी सम्पूर्णता (Totality) में देखने का प्रयास है।

यदि हम लेमर्ट द्वारा दी गयी उत्तर–संरचना की परिभाषा को देखें तो स्पष्ट हो जायेगा कि संरचनावादी एकता और सम्बद्धता को न देखकर दुनिया में अन्तर्निहित विभिन्नता को देखते हैं। जहाँ वस्तुनिष्ठावादी इस नियम को मानते हैं कि समाज के कुछ ऐसे कारक हैं जो इसे एक सूत्र में बांधे रखते हैं, वही उत्तर–संरचनावादी इस तथ्य पर जोर देते हैं

कि दुनिया की केन्द्रीयता विभिन्नता में है। अपने अध्ययन के लक्ष्य को अधिक पैना बनाते हुये लेमर्ट कहते हैं कि उत्तर–संरचनावादी एकता की खोज करने की अपेक्षा विभिन्नता को पहचानने की कोशिश करते हैं।

यदि लेमर्ट द्वारा दी गयी उत्तर–संरचनावादी इस व्याख्या को राजनीतिक मुहावरें में देखें तो कहना पड़ेगा कि नव संरचनावाद का रूझान उन अल्पसंख्यक पिछड़े वर्गों की ओर है जो बहुसंख्यक और प्रभावी समूहों से भिन्न हैं। यूरोप में काले लोग जो अल्पसंख्यक, पिछड़े वर्गों में हैं। इसी तरह कमोबेश रूप से पुरूषों की तुलना में स्त्रियां भी पिछड़ी हैं। हमारे देश में दलित, आदिवासी और स्त्रियां ऐसे ही पद्दलित समूहों में आते है। ये सब समूह उत्तर–संरचनावाद के अध्ययन क्षेत्र हैं।

5.3 उत्तर–आधुनिकतावाद

उत्तर–आधुनिकता एक नवीन अवधारणा है। अरनॉल्ड टायनबी ने इस पद का प्रयोग पहली बार किया था। इसके बाद 1979 में ल्योतार ने अपनी पुस्तक 'दि पोस्ट–मॉडर्न कण्डीशन' में सर्वप्रथम इस अवधारणा को प्रयोग में लिया।

ल्योतार, फूको, दरिदा, बोड्रिलाई और जेमेसन आदि उत्तर–आधुनिकतावादी विचारक माने जाते हैं और फिर कुछ उत्तर–आधुनिकतावादी महिलाएं भी हैं जो लिंग के क्षेत्र में अपनी विशेष पहचान रखती हैं। इन महिलाओं में नेन्सी फ्रेशर और लिंडा निकोलसन अग्रणी हैं।

उत्तर–आधुनिकतावाद केन्द्रीय वर्चस्ववाद का विरोध कर स्थानीयता तथा उसकी भिन्नताओं पर बल देता हैं, जबकि आधुनिकता केन्द्रीयता, एकरूपता और सार्वभौमिकता का समर्थन करती हैं। आधुनिकता में पुनर्सजन की पुकार थी, जबकि उत्तर–आधुनिकता में विकेन्द्रीकरण, अलग पहचान, अलग आवाज और विखण्डन (वि–रचना) का बोलबाला प्रमुखता से हैं। जॉन रंडेल उनकी इसी सीमा को इंगित करते हुए कहते हैं कि उत्तर–आधुनिकता में समाज एक ओर विखण्डित और श्रेणीयुक्त बन जाता है, तो दूसरी ओर सूचना निर्भर प्रबंधन में नियुक्त हो जाता है और इस जगत में हर विखण्डित समूह अपने आसपास फिर केन्द्र को बनाता जाता है। अतः उत्तर–आधुनिक दृष्टिकोण से इस पहचान के संकट को किस तरह देखा जाना चाहिए, इस पर विचार की आवश्यकता है।

उत्तर–आधुनिकतावाद अब बहु–संस्कृतिवाद या बहुलतावाद पर आधारित नया विमर्श है। उत्तर–आधुनिकता बहुकेन्द्रीयता की संकल्पना को लेकर चलती हैं और यह बहुकेन्द्रीयता व्यक्ति की अपेक्षा सूमहों की केन्द्रीयता है। भारत में विविधतापूर्ण समाज विद्यमान हैं, जहां पर किसी एक विमर्श को सम्बोधित करना सम्भव नहीं है। इन सबके बावजूद भी हमारा समाज अभी–भी स्त्री, दलितों, आदिवासियों और अल्पसंख्यकों की अभिव्यक्तियों और उनकी सामूहिक अस्मिता के प्रति अत्यन्त अनुदार और असहिष्णु है, जबकि उत्तर–आधुनिक समाज में इन समूहों की आवाज को सहज भाव से स्वीकार किया जाना अपेक्षित है। इसीलिए उत्तर–आधुनिकता पर सोचने की जरूरत है।

असल में उत्तर–आधुनिकतावाद एक ऐसा ग्लोबल खेल है, जिसमें हम सब शरीक हैं। वह हमारी ही भूमंडलीय अवस्था की रामायण है। इस नवीन भूमंडलीय रामायण में हम सबका बोझ बदल रहा है और हमारे सभी सांस्कृतिक–ज्ञानात्मक प्रतीक बाजारवाद में बिकने को खड़े हैं। इस दृष्टि से शक्ति तथा ज्ञान की अवस्था के बदल जाने का यह नया अर्थशास्त्र, नया समाजशास्त्र हैं।

उत्तर–आधुनिकतावाद शक्ति–ज्ञान संबंधों में विश्वास रखता है तथा इसके सिद्धान्तकार अन्तर्राष्ट्रीय संबंध में मूलग्रंथ–रणनीतियों के समर्थक हैं। उनका मानना है कि सत्य सामाजिक व्यवस्था से अलग नहीं हो सकता। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय संबंध के सिद्धान्त में सत्य को जाँचने के लिए इस दृष्टि का उपयोग किया, ताकि अवधारणाएँ और ज्ञान विषय पर अपना प्रभाव किस प्रकार रखती है, यह देखा जा सके। स्मिथ ने सम्प्रभुता की अवधारणा के विषय में शक्ति–ज्ञान संबंधों का विश्लेषण किया और कहा कि ऐतिहासिक–तौर पर सम्प्रभुता की अवधारणा परिवर्तनीय है। चाहे मूल धारा के विद्वानों ने भले ही इसे स्थायी रूप देने की कोशिश की हो।

फोकॉल्ट का योगदान उत्तर–आधुनिकी सिद्धान्त में काफी महत्तव रखता है। इतिहास की जानकारी हेतु इसका उपागम Genealogy महत्त्वपूर्ण है। इनकी मान्यता है कि सत्य जैसी कोई वस्तु है ही नहीं। सत्य की सत्ता समझी जा सकती है तथा यह इस बात को प्रदर्शित करती है कि शक्ति और सत्य का विकास साथ–साथ हुआ। स्मिथ के शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि सामाजिक जगत के संबंध में किसी प्रवचन विशेष के संदर्भ में ही ये सत्य होते हैं, इसलिए उत्तर–आधुनिकतावाद का संबंध इससे है कि कुछ प्रवचन और कुछ सत्य एक–दूसरे पर किस प्रकार प्रभाव बनाते हैं और किसका वर्चस्व रहता है। यहाँ शक्ति संबंधी विचार सामने आता है। फलतः उत्तर–आधुनिकतावादी किसी बड़े सिद्धान्त या मेटा–नैरेटिव के विरोधी हैं अर्थात् उनका तात्पर्य है कि ज्ञान के सत्य या असत्य को स्थापित करने के लिए कुछ स्थितियाँ हैं, जो किसी भी प्रवचन से स्वतंत्र रहती हैं।

उत्तर–आधुनिकतावादी सामाजिक जगत् की तुलना एक ग्रंथ से करते हैं। उनका कहना है कि संसार एक पुस्तक की भाँति है। इसको साधारणतः नहीं समझा जा सकता, लेकिन इसकी व्याख्या करनी पड़ती है और व्याख्या भाषा की अवधारणा एवं संरचना प्रकट करती है। इसी प्रकार संसार की व्याख्या हम दो साधनों से करके उसे समझ सकते हैं। इसमें निर्माण का अंत एवं दोहरा वाचन महत्त्वपूर्ण साधन है। स्मिथ के अनुसार निर्माण अंततः एक ऐसा माध्यम है, जो यह

प्रदर्शित करता है कि सभी सिद्धान्त और प्रवचन कृत्रिम स्थायित्व पर खड़ा है, जिसे भाषा के स्वाभाविक विरोध ने जन्म दिया है। स्थायित्व किस प्रकार ग्रंथ या दोहरे अध्ययन में प्रभावी होता है, यह संगति या मेल से देखा जा सकता है या प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार की तकनीक अन्तर्राष्ट्रीय संबंध के सिद्धान्त में महत्त्वपूर्ण हो गई है। रिचर्ड ऐशले ने दोहरे वाचन की तकनीक का प्रयोग अराजकता के सिद्धान्त के अध्ययन के लिए किया। दोहरे वाचन से यह स्पष्ट हुआ कि प्रथम वाचन में अराजकता एवं सम्प्रभुता में सच्चाई नहीं थी। दोहरे वाचन तकनीक की एक अन्य समीक्षा राव वॉकर ने की। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्त में यथार्थवाद की परम्परा की समीक्षा की और यह दिखाया कि परम्परा का निर्माण इस परम्परा के प्रमुख विचारकों को छोड़कर नहीं किया जा सकता।

अतः यह कहा जा सकता है कि यह सिद्धान्त काफी अधिक सिद्धान्तों पर बल देता है, जो विश्व की वास्तविकता से अलग है, क्योंकि सामाजिक परिदृश्य मे वास्तविकता जैसी कोई चीज नहीं है। वास्तविकता की अनेक व्याख्याएँ भी नहीं हो सकती है।

5.4 उत्तर–आधुनिकतावाद के लक्षण (विशेषताएँ)

डेविड हारवे ने अपनी पुस्तक कण्डीशन ऑफ पोस्ट माडर्निटी (1984) में उत्तर–आधुनिकता से सम्बन्धित कतिपय मुद्दों को रखा है जो उसके लक्षणों को स्पष्ट करते हैं। वे इस प्रकार हैं–

1. उत्तर–आधुनिकता एक सांस्कृतिक पैराडिम या मॉडल है, इसकी अभिव्यक्ति जीवन की विभिन्न शैलियों में अर्थात् कला, साहित्य, दर्शन आदि मे देखने को मिलती है।
2. यह एक ऐसी संस्कृति है जिसमें बहुलता (Plurality) है।
3. उत्तर–आधुनिकता की प्रकृति विखण्डन की है। यह अनिरन्तरता है; यह समानता की अपेक्षा विविधता को स्वीकार करती है।
4. उत्तर–आधुनिकता प्रघटनाओं को स्थानीय स्तर पर देखती है, उनका विश्लेषण भी स्थानीय स्तर के कारकों द्वारा किया जाता है।
5. उत्तर–आधुनिकता महान वृतान्त, महान भाषा और महान सिद्धान्त की विरोधी है।
6. राजनीतिक दृष्टि से उत्तर–आधुनिकता स्थानीय स्वायत्तता पर जोर देती है। इस विचारधारा का आग्रह है कि स्थानीय स्तर पर बहुआयामी कारकों के आधार पर राजनीतिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण किया जाना चाहिए।
7. यह विचारधारा किसी भी मुद्दे या हादसे को सिलसिलेवार नहीं विचारती, इसमें एक रेखीय उद्विकास को समझने की कोई गुंजाइश नहीं होती। जेमेसन के अनुसार उत्तर–आधुनिकतावादी संस्कृति में गहराई नहीं होती, वस्तुतः यह संस्कृति सतही संस्कृति होती है।
8. यूरोप और अमेरिका में जहां उत्तर–आधुनिकता व्यापक है, एक नई संस्कृति का विकास हो रहा है यह नई संस्कृति लोक संस्कृति है। अब उत्तर–आधुनिकता में जिस स्तर की संस्कृति विकसित हो रही है। वह पोप्युलर और उपभोक्तावादी संस्कृति है।
9. उत्तर–आधुनिकता युवा उप–संस्कृति का निर्माण करती है। इस विचारधारा ने युवाओं को बहुत अधिक प्रभावित किया है। वे युवा अपने आपको आधुनिकता के बन्धन से मुक्त समझने लगे हैं। इसके फलस्वरूप एक नई संस्कृति उभर कर आ रही है। इसे प्रतिकूल संस्कृति या उपसंस्कृति कह सकते हैं।

5.5 सारांश

उत्तर–आधुनिकता जैसा कि इसका नाम बताया है, आधुनिकता के बाद का समाज विकास है। यह अवधारणा शीघ्रता के साथ आधुनिकता का स्थान ले नहीं है। आधुनिकतावाद की भी एक भव्यता रही है। यह भव्यता बीसवीं शताब्दी के मध्यतर रही। कला और संगीत में कई नए आयाम आए। साहित्य में कई प्रयोग हुए। उच्च स्तर की प्रौद्योगिकी आयी। मेक्स वेबर, दुर्खीम, पैरेटो, मार्क्स और ऐसे कितने की संस्थापक विचारक आए। इनकी सामान्य सोच ने जमाने की करवट बदल दी। इस सम्पूर्ण दशा को, समाज की दिशा को, उत्तर–आधुनिकता ने झकझोर दिया, आधुनिकता की चूलें हिला दीं। उत्तर–आधुनिकता ने सम्पूर्ण 20वीं शताब्दी की शान–शौकत के सामने कई ज्वलंत प्रश्न खड़े कर दिए। इस अवधारणा ने शहरों की गगनचुम्बी इमारतों को बुल्डोजर की नाके के सामने खड़ा कर दिया। **कोरपोरेट** पूंजीवाद को सांसत में डाल दिया। कला के जगमगाते बाजारों को ध्वस्त कर दिया। अब एक नई संस्कृति का अवतार उत्तर–आधुनिकता के रूप में हो रहा है। यह नई संस्कृति **लोकप्रिय** (Populist) संस्कति है। लोकप्रिय संस्कृति संचार की है। यह लोकप्रिय संस्कृति शुद्धता से मुक्त है, अभिजन से विमुख है और कला के स्वरूप से परे है। इसकी शैली (स्टाईल) रोमांचक है, व्यंग्यात्मक है और गृहणशील है।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. उत्तर–संरचनावादी उपागम का अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र का वर्णन कीजिए।
2. उत्तर–आधुनिकतावादी उपागम की प्रमुख विशेषाओं का विवेचन कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. उत्तर–संरचनावादी उपागम की विशेषताएँ बताईए।
2. उत्तर–आधुनिकतावाद के लक्षण संक्षेप में लिखिए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. उत्तर–आधुनिकतावाद क्या हैं ?
2. उत्तर–संरचनावाद का अर्थ बताईए।

इकाई–6

महिलावादी उपागम

(Feminist Approaches)

6.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत महिलावादी उपागम का अर्थ, नारीवाद के प्रकार, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में नारीवाद का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन के पश्चात् आप :–

- नारीवाद का अर्थ समझ सकेंगे।
- नारीवाद के विभिन्न प्रकारों को समझ सकेंगे।
- तृतीय विश्व के महिला आन्दोलनों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- नारीवाद के प्रमख लक्षणों का विश्लेषण कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में नारीवादी उपागमों का उदय और विकास शीतयुद्धोत्तर काल में हुआ। जिन विषयों पर नारीवादी अध्ययन आरम्भ हुआ वे थे – साहित्य, मनोविज्ञान, इतिहास, इत्यादि। अब (शीतयुद्धोतर वर्षों में) नारीवादी अध्ययनों का तेजी से विकास हो रहा है। नारीवादी अध्ययन के प्रमुख विद्वानों में **जोथुआ एस. गोल्डस्टीन**, **पीटरसन स्पाईक**, **सिसॉन सनयाल**, **ऐन टिक्नर** आदि हैं।

नारीवाद (Feminism) महिलाओं के अधिकारों की वकालत करता है। इनका मानना है कि पुरूषों की अपेक्षा महिलाएँ हानि की स्थिति में रही है इसका कारण है पुरूषवादी व्यवस्था – पुरूषवाद पुरूष की श्रेष्ठता के पूर्वाग्रह और सामन्ती मानसिकता और महिलाओं को हीन समझने वाले सामन्ती संस्कार पर आधारित है। पुरूषवाद ने अपने उग्र रूप में जमीन, मकान और पशु धन की तरह स्त्री को भी अपनी सम्पत्ति माना तथा परिवार की सीमा में तथा उसके बाहर उस पर सभी प्रकार के अत्याचार किए तथा उसे मात्र उपभोग योग्य वस्तु माना। पुरूषवाद शालीनता का आवरण ओढ़े हुए परिष्कृत रूप में भी सामने आया। इस रूप में पुरूषवाद ने पुरूष को सत्ता और शक्ति का प्रतीक मानते हुए नारी को दया, करूणा, ममता और माधुर्य की मूर्ति बताया, जिसका एकमात्र धर्म है पतिव्रता। पतिव्रता के नाते उसे पति की प्रत्येक आज्ञा का पालन करना है तथा घर की चारदीवारी उसकी लक्ष्मण रेखा है। इसके बदले में उस पर गहनों और कपड़ों का बोझ भी लाद दिया गया, जिससे वह अधीनता में ही अपने जीवन को धन्य समझे। पुरूषवाद के ये दो रूप परस्पर भिन्न प्रतीत होते हुए भी मूलतः एक ही है, दोनों का लक्ष्य और हेतु एक ही है–स्त्री के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को अस्वीकार करना, घर–परिवार में तथा समाज में भी उसे पुरूष के अधीन स्थिति प्रदान करना। **नारीवाद पुरूष की इस समान्ती मानसिकता और पुरूषवाद के विरूद्ध एक विद्रोह, एक आन्दोलन है।**

6.2 नारीवाद का अर्थ

नारीवाद सामान्यता यह ऐसी विचारधारा एवं आन्दोलन है जिसका उद्देश्य है जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं को पुरूषों के बराबर स्थान प्राप्त हो। परम्परागत रूप से और समकालीन जीवन में भी महिलाओं को अधीनस्थ और अवपीड़ित स्थिति ही प्राप्त है। नारीवाद का लक्ष्य है इस अधीनस्थ और अवपीड़ित स्थिति को समाप्त कर उन्हें परिवार, समाज, राज्य और समूचे विश्व के स्तर पर पुरूष के समकक्ष स्थान दिलाना। अतः नारीवाद इस बात का आह्वान करता है कि पैतृक संरचना के चलते पुरूष प्रभुत्व से मुक्ति प्राप्त कर समाज में समानता और सम्मान का स्थान प्राप्त करने के लिए समाज के सभी वर्गों की महिलाओं को एकजुट हो जाना चाहिए तथा महिला–सशक्तिकरण के लिए परस्पर सहयोग करना चाहिए। इस प्रकार एक पंक्ति में नारीवाद, नारी समानता (पुरूष से समानता), नारी एकता और नारी सशक्तिकरण का आन्दोलन है।

सिमोन दिबोवा की प्रसिद्ध पुस्तक **'The Second Sex' (1949)** में विस्तार से बताया गया है कि स्त्री पुरूष का भेद सामाजिकरण का परिणाम है। समाजिकरण से उत्पन्न इस स्थिति को दूर कर, समान व्यक्तियों के लिए समान अधिकारों की अधिकार के रूप में मांग नारीवाद है।

इस प्रकार नारीवाद पुरूष विरोधी आन्दोलन नहीं है, यह यथास्थितिवाद विरोधी आन्दोलन है।

6.3 नारीवाद के प्रकार

नारीवाद के तीन प्रकार है। यह अग्रलिखित है :–

6.3.1 उदारवादी नारीवाद (Liberal Feminism)

उदारवादी नारीवाद लिंग समानता में विश्वास करता है और एक सेक्स द्वारा सेक्स को अपने अधीन करने या नारी को समान स्तर का मानव प्राणी न समझते हुए, उसे 'काम सम्बन्धों' (सेक्स रिलेशन्स) का एक साधन मात्र मानने की धारणा का विरोध करता है। उदारवादी नारीवाद के अनुसार, नारी का मुख्य कार्यक्षेत्र तो घर है लेकिन इच्छा, आवश्यकता और परिस्थितियों से प्रेरित होकर स्त्री घर के बाहर कोई भूमिका निभाती है तो परिवार, समाज और समस्त व्यवस्था द्वारा इस स्थिति को पूरे मन से स्वीकार किया जाना चाहिए। नारीवाद का यह रूप पुरूष को धिक्कारता नहीं, पुरूष को समानता के आधार पर स्वीकार करता है। मूल बात यह है कि नारी के व्यक्तित्व को किसी भी प्रकार से पुरूष व्यक्तित्व से कम महत्त्वपूर्ण नहीं, समझा जाता चाहिए।

6.3.2 मार्क्सवादी नारीवाद (Marxist Feminism)

मार्क्सवाद के अनुसार, नारी के शोषण के दो कारण हैं–प्रथम कारण है, पैतृक सत्ता (पुरूष की सत्ता पर आधारित परिवार और समाज व्यवस्था) द्वितीय, निजी सम्पत्ति और उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व। निजी स्वामित्व की इस व्यवस्था के कारण नारी के श्रम (बच्चों का पालन–पोषण और पारिवारिक कार्य) का 'उपयोग मूल्य' जो है, 'विनिमय मूल्य' नहीं है। स्त्री के कार्य का मुद्रा के रूप में कोई भुगतान नहीं होता तथा इस बात ने स्त्री को पुरूष के अधीन बना दिया है। मार्क्सवादी नारीवाद पूंजीवाद व्यवस्था और पैतृकता को परस्पर निर्भर व्यवस्थाएं मानता है। **जिल्ला आइजेनटीन** इसे **'पूंजीवादी पैतृकता'** (Capitalist Patriarchy) मानते हैं। मार्क्सवादी नारीवाद इस बात पर बल देता है कि नारी की मुक्ति के लिए दो दिशाओं में एक साथ कार्य करना होगा, क्योंकि ये दोनों तत्व नारी शोषण के लिए एक–दूसरे के साथ जुड़ गए हैं। पुरूष की सत्ता का अन्त कर समानता पर आधारित समाज व्यवस्था को अपनाना होगा तथा उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व की व्यवस्था का अन्त करना होगा। आर्थिक व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन के बिना, नारी मुक्ति मात्र एक दिवास्वप्न बनी रहेगी।

6.3.3 रेडीकल फेमीनिज्म या उग्रवादी नारीवाद

नारीवाद का यह सर्वाधिक आक्रोशपूर्ण एवं उग्रवादी रूप है। उग्रवादी नारीवाद ने यह प्रतिपादित किया कि नारियों की दयनीय स्थिति का मूल कारण पुरूष की प्रभुता वाला समाज है। यह पुरूष प्रधान समाज अपने को विवाह और परिवार संस्था के माध्यम से सम्पोषित करता रहा है। इस प्रकार पैतृक समाज की जड़ें समाज के आर्थिक कारकों में नही, वरन् जीव विज्ञान में हैं। महिला की प्रजनन क्षमता इसका आधार है।

महिलाओं की मुक्ति तभी सम्भव है, जब **'जैविक परिवार'** (Biological Family) की अवधारणा को समाप्त कर दिया जाए अर्थात् यह सामाजिक संगठन का आधार न रहे। विवाह के आधार पर बच्चों के जन्म और परिवार में बच्चों के पालन–पोषण के स्थान पर उग्रवादी नारीवाद **'स्वतन्त्र सेक्स** और **बच्चों की सामूहिक देखभाल'** (Free Sex and Collective Childcare) की वकालत करता है। यह मार्ग ही मातृक सत्ता को जन्म देगा। **रेडीकल फेमीनिज्म** 'आक्रोशपूर्ण मात्र सैद्धान्तिक अतिरंजना' मात्र है तथा सैद्धान्तिक दृष्टि से भी नारीवादियों के एक छोटे समूह की मानसिक उपज हैं, नारीवादियों ने व्यापक रूप से या सामान्य रूप से इसे कभी भी स्वीकार नहीं किया। नारीवाद के नाम सदियों से जांची–परखी संस्था परिवार को समाप्त करने की बात का कोई औचित्य नहीं है। परिवार का अन्त नारी मुक्ति का मार्ग नहीं है। 'फ्री सेक्स' की स्थिति नारी मुक्ति को नहीं, वरन् घोर अव्यवस्था और 'शक्ति ही सत्य है' की स्थिति को ही जन्म देगी।

इसी प्रकार मार्क्सवादी नारीवाद की इस बात को भी स्वीकार कर पाना सम्भव नहीं है कि 'पैतृक समाज और पूंजीवादी व्यवस्था परस्पर निर्भर स्थितियां या व्यवस्थाएं हैं।' नारी मुक्ति और मार्क्सवादी समाज में कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित कर पाना सम्भव नहीं है। अतः नारीवाद के इन तीन रूपों में **उदारवादी नारीवाद को ही नारीवाद की सामान्य रूप से स्वीकृत स्थिति समझा जा सकता है।**

6.4 अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में नारीवाद

नारीवाद उपागम के विद्वानों ने तर्क दिया कि इतिहास इस बात का साक्षी है कि महिलाओं को आंतरिक और अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक जीवन से वंचित रखा गया। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को पुरूषों का एकाधिकार माना गया, जिसमें महिलाओं पर वर्चस्व स्थापित करके पुरूषत्व पनपता रहा। नारीवादी विद्वानों के अनुसार, महिलाओ की अधीनता और पुरूषों के प्रभुत्व की स्थिति निरंतर अपरिवर्तनीय रही है। यह चाहे समग्रवादी राज्य से लेकर आधुनिक राष्ट्र–राज्य तक हो या सामंतवाद से लेकर पूँजीवाद तक हो या फिर राष्ट्र–राज्य से लेकर वैश्वी शासन तक हो।

कुछ नारीवादी विद्वानों का कहना है कि यथार्थवाद की आधारभूत पूर्व मान्यताएँ–शक्ति, संप्रभुता और अराजकता– इस तथ्य को उजागर करती हैं कि पुरूष किस प्रकार आचरण करते हैं और वे किस प्रकार संसार को अपने विशेष पुरूषत्व के चश्मे से देखते हैं। इस विचार के अनुसार यथार्थवाद विदेश नीति–निर्धारण राज्य की संप्रभुता या सैन्य बल के प्रयोग की समीक्षा करते हुए केवल पुरूषों की भागीदारी को ही ध्यान मे रखता है। **रोजमेरी ग्रांट** (Rosemary Grant) जैसे नारीवादी लेखकों का तर्क है कि यथार्थवादी सिद्धांत पितृप्रधानता (Patriarchy) का अनुमोदन करता है, क्योंकि यह मानता

है कि सामाजिक व्यवस्था और राज्य बनाए रखने के लिए पितृप्रधानता आवश्यक है। यही कारण है कि राज्य की अनेक प्रचलित परिभाषाओं मे नारी का कोई उल्लेख नहीं होता। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का सिद्धांत पुरूषों का पक्ष लेता है और नारी को अलग रखता है, क्योंकि पुरूष को ही राज्य के समकक्ष माना जाता है। नारीवादी विद्धान इस उपागम से सहमत नहीं है। यह भी तर्क दिया जाता हैं कि अंतर्राष्ट्रीय संबंध केवल संघर्ष, अराजकता, भय और प्रतिस्पर्द्धा पर ही बल देता है, क्योंकि महिलाओ के जीवन और अनुभवो पर समुचित शोध कार्य नहीं हुआ है।

नारीवादी विचार इस विश्वास की उपज है कि महिलाओं की विशेषताएँ हैं नम्रता, शांति, कोमलता, करूणा और क्षमाशीलता। महिलाओं को अंतर्राष्ट्रीय संबंध के अध्ययन से इसलिए वंचिज रख गया है, क्योंकि इस विषय के केंद्र में संघर्ष और अराजकता है। महिलाओं की विशेषताओ का अंतर्राष्ट्रीय संबंध के शक्ति संघर्ष के आधार मे कोई तालमेल नहीं बैठता। अतः मोक्ष की राजनीति के तत्व अर्थात् विश्व शांति और न्याय को अंतर्राष्ट्रीय राजनीति से दूर रखा जाता है। इन कमियो को दूर करना होगा, उनसे छुटकारा पाना होगा और अंतर्राष्ट्रीय संबंध के अध्ययन मे शांति और न्याय पर बल देना होगा। अतः नारीवाद पारंपरिक शक्ति और संघर्ष के आधार से अंतर्राष्ट्रीय संबंध को मुक्त करवाना चाहता है।

6.5 राज्य का महिलावादी दृष्टिकोण

नारीवादी विचारकों के मतानुसार राज्य की संरचना पुरूष प्रधान रही है। राज्य का स्वरूप चाहे समाजवादी हो या पूँजीवादी इसमे पुरूष प्रधानता के लक्षण दिखाई देते है।

पुरूषों का समाज के सभी सत्ता प्रतिष्ठानों पर नियन्त्रण रहता है तथा महिलाएँ ऐसी सत्ता तक पहुँचने में सफल नहीं हो पाती। सम्पत्ति का हस्तान्तरण पिता से पुत्र यानी पुरूषों के बीच होता है। स्त्री की उत्पादकता या श्रम शक्ति पर भी पुरूषों का नियन्त्रण रहता है। वह घर के बाहर जाकर काम करेगी या नहीं इसका निर्धारण पुरूष करता है। स्त्रियों के श्रम नियन्त्रण का अर्थ है कि पुरूष स्त्रियों के अधीनीकरण से आर्थिक लाभ प्राप्त करे।

समाज में स्त्रियों पर पुरूषों का वर्चस्व पारिवारिक सम्बन्धों से उत्पन्न होता है जिसमें पिता अपने परिवार के सभी सदस्यों पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है। बदले में उसका दायित्व होता है कि वह उन्हें आर्थिक सहायता मुहैया कराए। इस प्रकार उत्पादक साधनों तक पहुँच का न होता और परिवार के मुखिया पर निर्भरता पुरूष वर्चस्व को बढ़ावा देता है।

लिंग के आधार पर श्रम विभाजन से भी घर के भीतर के सारे कार्य औरतों के जिम्मे माने जाते हैं; जैसे खाना बनाना, साफ–सफाई, बच्चों की देखभाल आदि। इसमें सबसे अहम् बात यह है कि औरत जो भी काम करती है, उस काम की अहमियत कम मानी जाती है। यथा–नर्सिंग और अध्यापन (विशेषकर निचले स्तरों पर) को कुल मिलाकर औरतों का पेशा माना जाता है और इनके लिए उन्हें ज्यादातर मध्यम वर्ग द्वारा हथियार जाने वाले सफेदपोश रोजगारों के मुकाबले कम वेतन दिया जाता है। नारीवादी विचारक संकेत करते हैं कि अध्यापन और नर्सिंग जैसे कार्यों का महिलाकरण इसलिए कर दिया गया क्योंकि इन कार्यों को मोटे तौर उनके द्वारा घर के भीतर किए जाने वाले लालन–पालन जैसे कार्यों के विस्तार के रूप में देखा जाता है।

वैसे महिला आंदोलनों के परिणामस्वरूप सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी है। इसे लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया और चुनावों से प्रभावी गति मिली है। अब महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव उन्मूलन पर भी बल दिया जाता रहा है। महिलाओं के उत्थान के लिए राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक संगठन कार्य कर रहे हैं, जिससे पुरूष प्रधान समाज में भी महिलाओं को एक हद तक उचित स्थान मिल रहा है, भले ही वह अभी पूर्ण विकसित अवस्था में नहीं है। लेकिन वह दिन दूर नहीं है, जब महिलाओं को अपना अधिकार मिलेगा। भारत की स्थिति से विश्व का भी अनुमान लगाया जा सकता है।

6.6 महिलावाद और मानवाधिकार

20वीं शताब्दी में बहुत संघर्ष के बाद नारीवाद आंदोलन ने ही महिलाओं के अधिकार को मानव अधिकार के रूप में स्वीकृति प्रदान करवाई। किन्तु महिलाओं के अधिकारों की अवहेलना काफी विनाशकारी होती है; यथा बलात्कार, यातना का प्रतीक है। यदि कानून की निगाह में देखा जाये तो बलात्कार को शारीरिक अपराध की श्रेणी में समझा जाता है। इसकी बजाए, यह एक इंसान के रूप में महिला के वजूद को मिटाने वाला अपराध होता है। बलात्कार नारीत्व के अपराध की सजा है। यह संपूर्ण नारी समुदाय के लिए एक सबक होता है तथा यह महिलाओं की पुरूषों के प्रति अधीनता को रेखांकित करता है। यह ऐसा आचरण होता है जिसके माध्यम से पुरूष सभी औरतों को लगातार डर की स्थिति में डाले रहता है। यही वजह है कि सन् 2000 में बलात्कार को युद्ध अपराध की श्रेणी में रखा गया। वैसे 1979 में सुयंक्त राष्ट्र संघ ने महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव समाप्त करने का प्रस्ताव दिया था, जो व्यावहारिक धरातल पर बदलाव प्रस्तुत नहीं कर सका। इसलिए नारीवादियों का विचार है कि महिलाओं के विरूद्ध अपराध के लिए एक अलग न्यायाधिकरण का गठन किया जाए।

6.7 तृतीय विश्व और महिलावादी आंदोलन

तृतीय विश्व के राष्ट्रों में महिलावादी आंदोलनों ने विशेष पहचान बनाई है। इस आंदोलन की नींव में दलित, कामकाजी, मजदूर, निम्न, मध्यम एवं उच्च मध्यम वर्ग सभी का योगदान है। उनकी अलग–अलग सामाजिक परिस्थितियां

हैं, लेकिन विभिन्न राष्ट्रों के अनेक महिला संगठनों ने एक–दूसरे की परिस्थितियों, समस्याओं, संघर्षों एवं प्राथमिकताओं को समझने की चुनौती स्वीकार की है। आंदोलन में एक साथ चर्चा और बातचीत से प्रमुख मुद्दों पर संयुक्त मंच बने हैं।

हाल के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि तीसरी दुनिया में भूमंडलीयकरण व ढाँचागत समायोजन नीतियों का बुरा असर महिलाओं पर पड़ा है। माना जाता था कि इन देशों की परम्परा से जकड़े हुए समाजों में एक खुलापन आएगा। पांरपरिक पितृसत्तात्मक व्यवहार से छुटकारा मिल जाएगा, लेकिन अनुभव से यह जाहिर हुआ है कि तीसरी दुनिया के अनेक देशों में जहाँ बहुराष्ट्रय पूँजी आई है, पितृसत्तात्मक ताकतों से मिलीभगत की है, जिससे नई परिस्थितियों में हिंसा के मद्दे की समझ और जटिलताएं दोनों बढ़ी हैं। साथ ही कई और बातें उठी हैं। आँकड़ों से स्पष्ट होता है कि महिलाओं पर हिंसा बढ़ी हैं, लेकिन संचार माध्यमों में यह कहीं परिलक्षित होता नहीं दिखता, बल्कि उसमें जो दिखता है वह है महिला उपभोक्ताओं का वर्चस्व, विज्ञापनों में महिलाएं छाई रहती हैं।

यह भी स्पष्ट होता है कि अनेक टकरावों और संघर्षों में सुरक्षा व सैन्यदल के आक्रमणकारियों को महिलाओं ने भरपूर सहयोग दिया है। कुछ महिलाएं तो लड़ाकू दलो के युवा संगठनों में अपनी मर्जी से शामिल हुई।

अतः यह कहा जा सकता है कि तृतीय विश्व के देशों में महिला आंदोलनों का विस्तार हो रहा है। घरेलू, सामाजिक व सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाएँ अपनी छवी को बदल रही हैं। अपनी भूमिका, क्षमता व प्रदर्शन में सकारात्मक बदलाव ला रही है। महिलावादी आंदोलन का महत्त्व पहले की अपेक्षा बढ़ गया है।

6.8 नारीवाद के लक्षण

नारीवाद स्त्री–पुरूष की समानता का आन्दोलन है। समाज के विविध क्षेत्रों में स्त्री पुरूष समानता की व्याख्या इस प्रकार है :–

6.8.1 नारीवाद और परिवार

नारीवाद मैरिज सिस्टम या विवाह संस्कार (एक स्त्री और एक पुरूष के बीच काम सम्बन्धों को मर्यादित करने की व्यवस्था) और परिवार संस्था का विरोधी नहीं है वरन् इस बात पर बल देता है कि परिवार का मूल आधार पुरूष के प्रति स्त्री का समर्पण नहीं वरन् पुरूष और स्त्री दोनों का एक–दूसरे के प्रति–समर्पण और पति–पत्नी के बीच समानता स्त्री–पुरूष की समानता होनी चाहिए। नारीवाद पुरूष को धिक्कारना नहीं है, पुरूष को अस्वीकार करना नहीं है पुरूष को केवल समानता, पूर्ण समानता के आधार पर स्वीकार करना है। नारीवाद विवाह विरोधी या परिवार विरोधी तो नहीं है, लेकिन इस बात पर अवश्य ही बल देता है कि विवाह और परिवार नारी के लिए केवल उतनी ही सीमा तक आवश्यक है, जितनी सीमा तक यह पुरूष के लिए आवश्यक है।

6.8.2 नारीवाद और सामाजिक कार्यक्षेत्र

खेत–खलिहान, फैक्ट्री, सरकारी और गैर–सरकारी कार्यालय, व्यापार और रोजगार से जुड़े ये सभी क्षेत्र जीवन के विविध क्षेत्र हैं। मध्यम तथा उच्च वर्ग में पुरूषवाद और पुरूषवाद से जुड़े सामन्ती संस्कार सामान्यता इस बात पर बल देते रहे हैं कि नारी घर ही चारदीवारी के बीच रहकर पति की सेवा, परिवार के सभी सदस्यों की सेवा–देखभाल और बच्चों का पालन–पोषण करे घर के बाहर जीवन के विविध क्षेत्रों में पुरूषों के समान कार्य करने की क्षमता उसमें नहीं है। नारीवाद इस बात पर बल देता है कि योग्यता और क्षमता की दृष्टि से, नारी किसी भी रूप मे पुरूष से कम श्रेष्ठ नहीं है तथा उसे आवयश्यक शिक्षा, ज्ञान और प्रशिक्षण प्राप्त कर प्रतियोगी जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरूषों के समान स्तर पर कार्य करने का अधिकार होना चाहिए। वह पुरूष से प्रतियोगिता करने की क्षमता रखती है तथा उसे यह अधिकार प्राप्त है।

6.8.3 नारीवाद और राजनीति

पुरूषवाद सदैव ही इस बात पर बल देता है कि नारी और राजनीति दो बेमेल स्थितियां हैं। राजनीति नारी का कार्यक्षेत्र नहीं हो सकता और प्रकृति ने नारी को राजनीति में भागीदारी निभाने की क्षमता प्रदान नहीं की है। नारीवाद इन मान्यताओं का विरोध करता है और इस बात पर बल देता है कि राजनीति में नारी को लगभग बराबरी की भागीदारी प्राप्त होनी चाहिए। महिलाएं न केवल राजनीति में भाग लेने की योग्यता और क्षमता रखती हैं वरन् वे इस कार्य के लिए पुरूषों की तुलना में अधिक योग्य और सक्षम हैं। पुरूषों की तुलना में महिलाएं अधिक व्यावहारिक होती हैं, अधिक मर्यादित आचरण की प्रवृत्ति रखती है अतः उनकी अधिक भागीदारी राजनीति के खेल और राजनीतिक व्यवस्था को अधिक मर्यादित करेगी, अनुशासित करेगी तथा समस्त राजनीति और व्यवस्था को उद्देश्यपूर्ण बना देंगी।

6.8.4 नारी एकता और नारी–नारी सहयोग

नारीवाद इस बात पर बल देता है कि यदि नारी को उत्थान और विकास की दिशा मे आगे बढ़ना है तो यह कार्य नारी एकता और संगठन तथा स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नारी–नारी सहयोग के आधार पर ही सम्भव हुआ है। मूल बात यह है कि किसी एक जाति, धर्म और वर्ग की नारी का नहीं वरन् समस्त नारी जाति का शोषण हुआ है, सभी देशों में कम अधिक रूप में शोषण की यह स्थिति है अतः नारी को अन्य सभी बातें भूलकर अपने

नारी होने की बात को सर्वोपरि महत्व दिया जाना चाहिए। धर्म, जाति और वर्ग के आधार पर नारी आन्दोलन को बांटने की कोई भी चेष्टा नारीवाद की मूल अवधारणा के विरूद्ध और नारीवाद के लिए घातक है।

6.8.5. नारीवाद और लक्ष्य प्राप्ति हेतु कानूनी व्यवस्था

नारीवाद इस बात पर बल देता है कि परम्परागत रूप में जो कानून चले आ रहे हैं, वे पुरूषवाद सोच के परिणाम हैं और उनका निर्माण पुरूष वर्ग की सत्ता को बनाए रखने के लिए किया गया है, अतः इन कानूनों में भारी बदलाव की आवश्यकता है। परम्परागत रूप में बच्चे या व्यक्ति की पहचान उसके पिता से होती है, नारीवाद इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति की पहचान उसकी माता और पिता, दोनों से होनी चाहिए तथा अकेली माता के नाम से भी व्यक्ति की पहचान को पूर्ण वैधता तथा समाज में सम्मान की स्थिति प्राप्त होनी चाहिए। विवाह, तलाक, जमीन और सम्पत्ति के उत्तराधिकार के प्रसंग में सभी स्तरों पर महिला को पुरूष के समान अधिकार और समान स्थिति प्राप्त होनी चाहिए। दहेज हत्या और कन्या विक्रय, दोनों ही स्थितियों का न केवल कानूनन निषेध होना चाहिए, वरन् इन कानूनों को आवश्यक कठोरता के साथ लागू किया जाना चाहिए। 'स्त्री का किसी भी रूप में यौन शोषण न हो' इसके लिए कानून और प्रशासन द्वारा पूरी व्यवस्था की जानी चाहिए।

6.9 सारांश

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि महिलावादी उपागम का प्रमुख उद्देश्य यह सुनिश्चित करवाना है कि आर्थिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं में महिलाओं को आवश्यक भागीदारी के रूप में मान्यता प्राप्त हो। यदि ऐसा हो जाता है तभी वे सामाजिक नीति–निर्धारण प्रक्रिया में पुरूषों के समान भूमिका निभा सकेंगी। महिलाओं की अब तक होती रही अवहेलना और लैंगिक अन्याय को समाप्त करके ही, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के नारीवादी उपागमों के विद्वान वैश्विक राजनीति की बेहतर समीक्षा कर पायेंगे।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. नारीवाद के प्रमुख प्रकारों का वर्णन कीजिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में नारीवादी उपागम की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. उदारवादी नारीवाद को समझाईए।
2. मार्क्सवादी नारीवाद के दो लक्षण बताईए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. नारीवाद क्या हैं ?
2. सिमोन दिबोवा की पुस्तक का नाम लिखिए।

इकाई–7

पर्यावरणवादी उपागम

(Environmental Approaches)

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में पर्यावरणीय उपागम का अर्थ और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण सुरक्षा के लिए किये गये उपायों का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :–

- पर्यावरण का अर्थ समझ सकेंगे।
- पर्यावरणीय संरक्षण हेतु अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों को जान सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

पर्यावरण का क्षय या ह्रास वर्तमान विश्व की एक गम्भीर समस्या है। जनसंख्या वृद्धि, नगरीकरण, जल प्रदुषण, धुंआ, शोरगुल, रासायनिक प्रवाह, विज्ञान और तकनीक का अप्रत्याशित प्रसार आदि कारणों से पर्यावरण का ह्रास हो रहा है। विश्व के अधिकांश भागों में पर्यावरण की समस्या अभी भी निर्धनता और अज्ञान से सम्बन्धित है। परम्परागत अन्तर्राष्ट्रीय कानून में प्रदूषण और पर्यावरण ह्रास की समस्या पर बहुत ज्यादा चिन्तन नहीं किया गया था फिर भी यह माना जाता था कि किसी राज्य के कार्यकलापों की एक सीमा यह है कि उससे अन्य राज्यों के क्षेत्र पर कोई क्षति नहीं पहुंचनी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य का यह कर्तव्य है कि वह अपने राज्य क्षेत्र में ऐसा कोई कार्य न करे जिससे उस क्षेत्र के बाहर पर्यावरण सम्बन्धी क्षति पहूंचे।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद आबादी में वृद्धि एवं उसकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप सदियों से चला आ रहा पर्यावरणीय संतुलन इस कदर बिगड़ गया है कि एक ओर तो मौसम के मिजाज में कही गर्मी देखने में आ रही है तो दूसरी ओर हिम युग के आने की सम्भावना व्यक्त की जा रही हैं। पर्यावरण से जुड़ी आशंकाओं एवं आकांक्षाओं ने लोगों को इसके संरक्षण के लिए सक्रिय होन पर मजबूर कर दिया है। आज पर्यावरण की सुरक्षा को सभी सभ्य राज्यों की साझी आवश्यकता तथा सोच के रूप में स्वीकृत किया है। इसी कारण आधुनिक समय में विश्वस्तरीय तथा सामूहिक प्रयासों के द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा का कार्य एक प्रमुख क्षेत्र बन गया हैं।

7.2 पर्यावरण का अर्थ

पर्यावरण शब्द (Environment) फ्रेंच भाषा के Environer से बना है, जिसका अभिप्राय समस्त पारिस्थितिकी अथवा परिवृत्ति से होता है। इसमें सभी स्थितियाँ, परिस्थितियाँ दशाएँ तथा प्रभाव जो कि जैव अथवा जैविकीय समूह पर प्रभाव डाल रहा है, सम्मिलित है। मानव के चारों ओर का वह वातावरण जो उसके जीवन व क्रियाओं पर प्रभाव डालता है पर्यावरण है। विभिन्न विद्वानों ने इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार–पर्यावरण जीव, भौतिक तथा जैविक दोनों पर कार्य करते हुए वाह्य प्रभाव का सम्पूर्ण क्षेत्र अर्थात् अन्य जीव व्यक्ति की प्रतिवेषी प्रकृति का बल है।

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 की धारा 2 (क) के अनुसार, "पर्यावरण में जल, वायु तथा भूमि और अन्तर्सम्बन्ध शामिल हैं, जो जल, वायु तथा भूमि और मानव जीव, अन्य जीवित प्राणियों, पौधों, सूक्ष्म जीवों और सम्पत्ति के मध्य विद्यमान है।"

पार्क के शब्दों में–"पर्यावरण का अर्थ उन दशाओं के योग से होता है जो मनुष्य को निश्चित समय में निश्चित स्थान पर आवृत करती है।"

ई.जे. रॉस के अनुसार, "पर्यावरण वह वाह्य शक्ति है जो हमें प्रभावित करती है। पर्यावरणवाद कोई स्वायत्त सिद्धान्त नहीं है, यह अन्तर्विरोधों से घिरा है। यह एक विचारधारात्मक आन्दोलन है जो पश्चिती राजनीति में 1970 के दशक में उभरा और धीरे–धीरे सम्पूर्ण विश्व में फैल गया। वातावरण के विज्ञान से गहरे सरोकार के कारण पर्यावरणवादियों को परिस्थितिविज्ञानवादी भी कहा जाता है। इसलिए इससे प्रेरित राजनीति को हरित राजनीति की संज्ञा दी जाती है।"

पर्यावरणवाद सैद्धान्तिक आधार पर सामाजिक न्याय है। इसके समर्थकों के अनुसार धरती किसी एक की निजी सम्पत्ति नहीं है। यह हमें अपने पूर्वजों से उत्तराधिकर में नहीं मिली बल्कि हमारे पास भावी पीढ़ियों की धरोहर है। अतः हम वर्तमान प्राकृतिक संसाधनों को सुरक्षित रखने के दायित्व से बँधे हैं। वर्तमान पीढ़ियों को यह अधिकार नहीं है कि वे अपने उपभोग के लिए इसके सारे संसाधनों को निचोड़कर भावी पीढ़ियों के जीवन को खतरे में डाल दें। अतः पर्यावरण की रक्षा के लिए सजग होना हमारा परम कर्तव्य है।

अतः पर्यावरणवादी उपागम मे विश्व वातावरण को दूषित किसे जाने से रोकने की सोच तथा संकल्प शामिल है। अन्तर्राष्ट्रीय विधि के स्वीकृत नियमों में से एक नियम यह भी है कि कोई राज्य न तो इस तरह का कार्य करे और न ही अपने भू–क्षेत्र में किसी दूसरे को इस तरह का प्रयोग करने की अनुमति दे, जिससे किसी दूसरे राज्य को हानि पहुँचे। वर्तमान समय में इस नियम का अर्थ यह लिया है कि किसी राष्ट्र को इस प्रकार का व्यवहार नहीं करना चाहिए या इस तरह का कार्य नहीं करना चाहिए, जिससे पर्यावरण दूषित हो एवं इसकी क्षति हो। इस तरह राज्यों द्वारा व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से पर्यावरण की सुरक्षा के उद्देश्य से विश्वस्तरीय प्रयास किये जा रहे है।

7.3 पर्यावरण संरक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास

पर्यावरण संरक्षण के वैश्विक दृष्टि से अनेक प्रयास किये जा रहे है जिनमें प्रमुख निम्न है :–

7.3.1 लेक सेक्स सम्मेलन 1949 – संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा लेक सेक्स मे 1949 मे एक सम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमे इस बात पर जोर दिया गया कि प्रकृति के उपकरण एक नैसर्गिक बपौती है जिसे समाप्त नहीं किया जाना चाहिए।

7.3.2 स्टॉकहोम सम्मेलन 1972 – जून 1972 मे संयुक्त राष्ट्र मानवीय पर्यावरण सम्मेलन स्टॉकहोम मे हुआ। इसमे नदियों के जल, वायुमण्डल, खाद्य सामग्री को प्रदूषित करना, शस्त्रीकरण की होड़, रासायनिक युद्ध प्रणाली, नाभिकीय परीक्षण और औद्योगिक बस्तियो के विकास पर चिन्ता व्यक्त की गयी। इस सम्मेलन मे मानव पर्यावरण की घोषणा की गयी। इस सम्मेलन मे पर्यावरण संरक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को आवश्यक माना गया।

7.3.3 संयुक्त राष्ट्र संघ पर्यावरण कार्यक्रम (United Nations Environment Programme UNEP) – स्टॉकहोम सम्मेलन की सिफारिशों के आधार पर संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा ने पर्यावरण कार्यक्रमों के लिए 58 सदस्यीय अधिशासी परिषद् की स्थापना की। इसका मुख्यालय नैरोबी में है। इसके प्रयास से विश्व पर्यावरण की निगरानी की जा रही है जो प्रदूषण से सम्बन्धित सूचना और उनके उपचार के उपाय सरकारों को बताते हैं। इसके प्रयास से राज्यों द्वारा 1975 में निम्नलिखित सन्धियाँ स्वीकृत की गयी हैं–

(i) संकटग्रस्त जंगली पेड़–पौधों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अभिसमय, 1973

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की नम भूमि तथा विशेषकर पानी में रहने वाले पक्षियों के स्थान पर धसमय, 1971

(iii) विश्व सांस्कृतिक तथा प्राकृतिक विरासत के संरक्षण से सम्बन्धित अधिनियम, 1972

(iv) तेल प्रदूषण के अपघातों के मामलों में खुले समुद्र में हस्तक्षेप से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय, 1969

(v) तेल प्रदूषण के नुकसान के लिए असैनिक दायित्व पर अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय, 1969

(vi) जलयानों तथा हवाई जहाजों द्वारा ढ़ेर लगाने से सामुद्रिक प्रदूषण को बचाने के लिए अभिसमय, 1973

(vii) कूड़ा करकट तथा अन्य सामान ढ़ेर लगाने से सामुद्रिक प्रदूषण को बचाने के लिए अभिसमय, 1972

1973 से संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) की सहायता से समुद्रतटीय प्रदूषण रोकने तथा पर्यावरण विकास के लिए मरूस्थलों का फैलाव रोकने के लिए कार्य किया जा रहा है।

7.3.4 संयुक्त राष्ट्र जल सम्मेलन, अर्जेन्टीना 1977–जल प्रदूषण की समस्या एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या है। इस समस्या के समाधान के लिए अर्जेन्टीना में एक सम्मेलन हुआ जिसमें 1981–1990 तक के दशक के लिए अन्तर्राष्टीय जल आपूर्ति और जल प्रदूषण निवारण दशक के रूप में मनाने का निश्चय किया। इसके अन्तर्गत 2 अरब जनसंख्या को प्रदूषण रहित जल उपलब्ध कराने के लिए एक वृहद् कार्यक्रम बनाया गया।

7.3.5 नैरोबी घोषणा (1982)–10 से 18 मई 1982 तक नैरोबी में मानवीय पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र का सम्मेलन 10वीं वर्षगाँठ मनाने के लिए हुआ। उसमें एक घोषणा द्वारा विश्व समुदाय के राज्यों ने स्टॉकहोम घोषणा के प्रति पुनः आस्था प्रकट की।

पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र विशिष्ट समिति–विश्व की पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं को हल करने के लिए संयुक्त राष्ट्र विशिष्ट समिति की स्थापना मई 1984 में हुई। फरवरी 1987 में इसकी बैठक हुई जिसमें उष्ण देशों के कम होने तथा रेगिस्तानों और तेजाब वर्षा (Acid Rain) रोकने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय निर्देश बनाने के लिए चर्चा हुई।

7.3.6 रिओ पृथ्वी सम्मेलन, जून 1992–3 जून से 14 जून 1992 तक चलने वाले इस सम्मेलन का ब्राजील की पुरानी राजधानी रिओडिजेनेरी में तात्कालीन संयुक्त राष्ट्र महासचित बुतरस धाली ने उद्घाटन किया। यह सम्मेलन पर्यावरण एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन था। इसमें 150 राष्ट्रों ने प्रतिनिधित्व किया जिसमें 135 राज्याध्यक्ष शामिल हुए। इस सम्मेलन के घोषणा पत्र में निम्नलिखित मुद्दों को सम्मिलित किया गया–

1. विकास के साथ–साथ प्रत्येक राष्ट्र को पर्यावरण सुरक्षा का भी पूरा–पूरा ध्यान रखना चाहिए।

2. सभी राष्ट्रीय राज्यों के मानव समूह को प्रकृति के साथ संतुलन बनाए रखते हुए स्वस्थ एवं उत्पादनशील जीवन जीने का अधिकार है।

3. सभी राज्य और सम्पूर्ण जनता विश्व से गरीबी समाप्त करने के आश्य के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए परस्पर सहयोग कर स्थायी विकास के लाभों को पाने के लिए सक्रिय होंगे क्योंकि यह एक अनिवाय आवश्यकता है।

4. पर्यावरण एवं विकास में सन्तुलन बनाए रखने के लिए विकासशील तथा अत्यधिक अविकसित देशों की विशेष स्थिति एवं पर्यावरण की दृष्टि से अधिक संकटग्रस्त देशों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी विशेष प्राथमिकता प्रदान की जायेगी और विकास एवं पर्यावरण संगठन के सभी क्रियाकलाप सभी देशों के हितों और आवश्यकताओं को लक्ष्य करके ही सम्पादित एवं संचालित होंगे।

5. विश्व पर्यावरण की हो चुकी क्षति में विभिन्न देशों के बहुमुखी योगदान को देखते हुए विश्व के समस्त देशों की समान, किन्तु अलग–अलग भूमिकाएँ होगी विकसित देंश अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थायी विकास से सम्बन्धित अपनी उन जिम्मेदारियों को स्वीकारते हैं जो उनके समाजों ने विश्व पर्यावरण को लेकर उन पर रखी है।

6. सभी राष्ट्रों को चाहिए कि पर्यावरण विरोधी उत्पादन एवं उपभोग की सीमाओं को संकुचित करें और ऐसी जनसंख्या नीति अपनायें जिससे आवश्यक सन्तुलन बना रहे।

7. सभी राष्ट्रों को आवश्यक कानून बनाकर पर्यावरणीय मानकों का निर्धारण, तत्सम्बन्धी लक्ष्यों, प्राथमिकताओं तथा उपायों को सुपरिभाषित करना चाहिए।

8. राज्यों को ऐसे कानून भी बनाने चाहिए जिनमें प्रदूषण एवं अन्य प्रकार की पर्यावरण सम्बन्धी क्षतियों से दुष्प्रभावित जनों की क्षतिपूर्ति का प्रावधान हो।

9. राज्यों को परस्पर ऐसे प्रभावकारी उपाय भी करने चाहिए, जिनसे मानव स्वास्थ्य अथवा पर्यावरण के लिए क्षतिकारक पदार्थों व प्रक्रियाओं का पुरावंटन अथवा हस्तान्तरण निरूत्साहित हो।

7.3.7 रिओ सम्मेलन : उत्तर–दक्षिण विवाद–रिओ सम्मेलन में पर्यावरण असन्तुलन को कम करने के लिए अमीर उत्तर और गरीब दक्षिण देशों में मतभेद उभरें। दक्षिण गुट का विचार था कि उत्तर ने अपने विकास के लिए पर्यावरण का असन्तुलित शोषण किया है तथा दुनिया में प्रदूषण बढ़ाया है। इसलिए पर्यावरण को सन्तुलित करने तथा प्रदूषण दूर करने के लिए खर्चा दक्षिण को उठाना चाहिए। परन्तु सम्मेलन में दक्षिण देशों ने प्रदूषण पर चिन्ता तो व्यक्त की परन्तु किसी भी दशा में विभिन्न सन्धियों में वर्णित ऐसे प्रस्तावों को स्वीकार करने का तैयार नहीं हुए जिनसे उनकी जीवन शैली परिवर्तित होने का खतरा था। अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने जैव विविधता तथा जलवायु परिवर्तन सन्धियों पर हस्ताक्षर नहीं किये क्योंकि अमेरिका के उद्योग, व्यवसाय एवं जीवन शैली परिवर्तित होने का खतरा था।

7.3.8 संयुक्त राष्ट्र पृथ्वी शिखर सम्मेलन, न्यूयार्क : जून 1997–यह सम्मेलन1992 में रियो पृथ्वी सम्मेलन में लिए गए निर्णयों की प्रगति मूल्यांकन करने के लिए 23–27 जून, 1997 न्यूयार्क में हुआ था। इसमें 170 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। वनों, प्रजातियों पर विचार किया गया तथा विकसित राष्ट्रों की नीति की विवेचना की गयी। यह सम्मेलन बिना ठोस निष्कर्ष के समाप्त हो गया।

7.3.9 दिसम्बर 1997 का अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन–पृथ्वी को बढ़ते तापमान से बचाने के लिए यह दिसम्बर 1997 में जापान के क्योटो शहर में आयोजित आयोजित किया गया। विश्व पर्यावरण सम्मेलन तथा ग्रीन हाउस गैस सम्मेलन में वातावरण को गर्म करने वाली गैसों के उत्सर्जन को नियन्त्रित करने के लिए विश्व के सभी देश सहमत थे किन्तु इसकी सीमा का निर्धारण निश्चित नहीं हो पाया। यह उल्लेखनीय है कि वायुमण्डल के ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन पृथ्वी की हरयाली के लिए वनों, कृषि तथा सामान्यतया पूरे जीवन के लिए एक भारी खतरा है। सम्मेलन में विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों का मतभेद पुनः उभर कर सामने आया।

विकासशील राष्ट्रों के अनुसार अमेरिका सर्वाधिक जिम्मेदार देश है जो ग्रीन हाउस गैस सबसे ज्यादा उत्सर्जित करता है। विचार विमर्श के उपरान्त यह निश्चित हुआ कि 2008 से 2012 के बीच कटौती इस प्रकार होगी–अमेरिका 7%, यूरोपीय संघ 8%, जापान 6% तथा अन्य 21 औघोगिक देश भी कटौती करेंगे।

7.3.10 जोहान्सबर्ग में सतत विकास से सम्बद्ध विश्व शिख सम्मेलन (अगस्त–सितम्बर, 2002)–26 अगस्त से 6 सितम्बर, 2002 तक दक्षिण अफ्रीका के नगर जोहान्सबर्ग में संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रायोजित पृथ्वी सम्मेलन सम्पन्न हुआ। विश्व के लगभग 104 देशों के शासनाध्यक्षों के अतिरिक्त 21,000 लोगों ने जिसमें 9,101 सरकारी प्रतिनिधियों, 8,227 गैर–सरकारी प्रतिनिधियों तथा 4,012 संचार माध्यमों के प्रतिनिधियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया; लेकिन अमरीकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश सम्मेलन में अनुपस्थित रहे। सम्मेलन का प्रमुख विषय रहा–टिकाऊ विकास (Sustainable Development)। दक्षिण अफ्रीका के राष्ट्रपति थाबोम्बे की पाश्चात्य प्रायोजित विकास की अवधारणा पर प्रहार करते हुए कहा कि यह विकास गरीबी की एक लम्बी छाया का सर्जक है। यह शिखर सम्मेलन जो पृथ्वी से सम्बद्ध शिखर सम्मेलन के दस वर्ष बाद हुआ, से अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय को इस बात का मूल्यांकन करने का अवसर मिला कि क्या कार्यसूची–21 मे उल्लिखित लक्ष्यों को प्राप्त कर लिया गया है।

7.3.11 संयुक्त राष्ट्र जलवायु समझौता सम्मेलन (दिसम्बर 2005)–धरती के बढ़ते तापमान को कम करने के लिए संयुक्त राष्ट्र जलवायु समझौता सम्मेलन कनाडा के माण्ट्रियल शहर में 13 दिन तक चली लम्बी बहस के साथ 10 दिसम्बर, 2005 को सम्पन्न हुआ। यह एक विशाल सम्मेलन था जिसमें 189 राष्ट्रों के लगभग 10,000 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन के अन्तिम दिन 150 से अधिक राष्ट्रों ने ग्रीन हाउस गैसों के क्योटो ताप सन्धि के निर्धारित लक्ष्य पर औपचारिक वार्ताओं में सम्मिलित होने पर सहमति व्यक्त की। इस सन्धि में औद्योगिक राष्ट्रों के लिए वर्ष 2008 से 2012 के मध्य ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी का लक्ष्य है। अमरीका केवल अबाध्यकारी वार्ताओं में स्वैच्छिक रूप से सम्मिलित होने पर सहमत हुआ है। अमरीका के पूर्व राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने इस दिशा में प्रमुख भूमिका निभायी और उनके द्वारा की गई आलोचना से ही अमरीका प्रतिनिधि मण्डल अन्ततः इसके लिए सहमत हुआ। बुश प्रशासन इस समस्या से निपटने के लिए गैसों के उत्सर्जन पर स्वैच्छिक नियन्त्रण करने और पुनर्चक्रीकरण प्रौद्योगिकी में निवेश पर बल देने का समर्थक रहा है।

7.3.12 जलवायु परिवर्तन पर कोपनहेगल सम्मेलन (दिसम्बर 2009)–जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र का सम्मेलन 'कोप–15' डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन में 7–18 दिसमबर, 2009 को सम्पन्न हुआ। 12 दिन चले इस सम्मेलन में प्रदूषणकारी गैसों के उत्सर्जन पर अंकुश के लिए एक सर्वसम्मत समझौते पर पहुंचने का प्रयास किया गया। सम्मेलन के दौरान विकसित एवं विकासशील देशों के बीच सतत रूप से जारी गम्भीर विभाजन देखा गया। सम्मेलन के अन्तिम दिन (18 दिसम्बर) एक गैर बाध्यकारी कोपेनहेगन समझौते को स्वीकार किया गया। अमरिका व बेसिक (BASIC-Brazil, South Africa, India, China) देशों के बीच अन्तिम क्षणों की बातचीत के बाद स्वीकारे गए इस समझौते को सर्वसम्मत नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अनेक राष्ट्रों ने बाद में इसका पुरजोर विरोध किया है।

7.3.13 संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन अभिसमय की रूपरेखा–संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन अभिसमय की रूपरेखा के पक्षकारों के 17वें सम्मेलन तथा क्योटो प्रोटोकोल के पक्षकारों की 7वीं बैठक 28 नवम्बर, 9 दिसम्बर, 2011 तक डरबन में आयोजित की गई। डरबन में कई महत्त्वपूर्ण निर्णय लिए गए। विशेषकर, विकसित देश के लिए क्योटो प्रोटोकोल की दूसरी प्रतिबद्धता अवधि पर सहमति व्यक्त की गई। इसके अतिरिक्त इस सम्मेलन में 2010 में कानकुन में सहमत संस्थाओं के प्रचलन से सम्बन्धित निर्णयों को अपनाया गया।

7.3.14 जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन, 2012–जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन के लिए सदस्य राष्ट्रों (सीओपी–18) का 18वां सम्मेलन 8 दिसम्बर, 2012 को दोहा, कतर में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में क्योटो प्रोटोकॉल के सदस्य राष्ट्रों (सीएमपी–8) की 8वीं बैठक को भी शामिल किया गया।

दोहा सम्मेलन द्वारा पारित किए गए मूलभूत निर्णयों में क्योटो प्रोटोकॉल की दूसरी प्रतिबद्धता अवधि, बाली कार्ययोजना (मन्दी, अनुकूलीकरण, वित्त, प्रौद्योगिकी तथा क्षमता निर्माण पर) के कार्यकरण पर निर्णयों के एक समुच्चय तथा डरबन प्लेटफार्म के अन्तर्गत कार्ययोजना को अन्तिम रूप प्रदान किया जाना शामिल था। दोहा सम्मेलन की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि दूसरी प्रतिबद्धता अवधि जो कि विकासशील देशों की एक प्रमुख मांग थी, को कार्यशील बनाने के लिए क्योटो प्रोटोकॉल मे संशोधन करना था।

7.3.15 जलवायु परिवर्तन लीमा (पेरू) में समझौता–दिसम्बर, 2014–पेरू की राजधानी लीमा में संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (दिसम्बर 2014) में धनी और गरीब देशों के बीच लम्बे समय से कायम गतिरोध आखिर टूट गया। अब नए समझौते पर सहमति बनी है, जिस पर वर्ष 2015 में पेरिस में होने वाले जलवायु सम्मेलन मे हस्ताक्षर होंगे। भारत और अन्य विकासशील देशों की बात मानते हुए मसौदे में अतिरिक्त पैरा जोड़ा गया कि जलवायु सम्बन्धी कदमों का आर्थिक बोझ उठाने की क्षमता के आधार पर देशों का वर्गीकरण किया जाए। इसमें विभिन्न देशों की राष्ट्रीय परिस्थितियों को भी ध्यान में रखने की बात कही गई है। सम्मेलन मे दो सौ देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया।

7.3.16 संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (पेरिस : 30 नवम्बर–12 दिसम्बर, 2015)–संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (COP 21 या CMP 11) पेरिस में 30 नवम्बर से 12 दिसम्बर, 2015 तक सम्पन्न हुआ। यह जलवायु परिवर्तन पर 1992 के संयुक्त राष्ट्र संरचना सम्मेलन (यूएनएफसीसीसी) के लिए दलों की बैठक का 21वां वार्षिक सत्र था और 1997 के क्योटो प्रोटोकॉल के लिए दलों की बैठक का 11वां सत्र था। सम्मेलन के अन्तर्गत 21वीं कांन्फ्रेंस ऑफ पार्टीज (सीओपी 21) में जलवायु परिवर्तन पर ऐतिहासिक समझौते को 196 देशों ने 12 दिसम्बर, 2015 को अपनी स्वीकृति दे दी। इस समझौते के अन्तर्गत धरती के बढ़ते तापमान को दो डिग्री सेल्सियस से नीचे रखने का लक्ष्य रखा गया है। इस दिशा में विकसित देश 2020 से 2025 तक विकासशील देशों को प्रतिवर्ष 100 अरब डॉलर की आर्थिक मदद देंगे। अगर यह कम–से–कम 55 देशों, जो वैश्विक ग्रीनहाउस उत्सर्जन के कम–से–कम 55 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करते हैं को स्वीकृत, अनुमोदित या स्वीकार कर लिया जाता है तो कानूनी रूप से बाध्यकारी हो जाएगा और 2020 तक कार्यान्वित किया जाएगा।

7.4 सारांश

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि पर्यावरणीय समस्याएँ वर्तमान विश्व की गम्भीर एवं ज्वलंत समस्याएँ हैं इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विकास की आवश्यकता आज सबसे अधिक महसूस की जा रही है। स्टॉकहोम सम्मेलन ने

पर्यावरण सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय विधि के विकास की नींव डाली और रिओ पृथ्वी सम्मेलन के निर्णयों के आधार पर पर्यावरण और विकास के साथ सामान्य जीवन भी प्रभावित होने की सम्भावना है। आज की सबसे अच्छी और सकारात्मक बात है : पर्यावरण सुरक्षा के लिए लगातार बढ़ रही मानवीय चेतना।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. रिओ (पृथ्वी) सम्मेलन पर संक्षिप्त लेख लिखिए।
2. विश्व में पर्यावरण संरक्षण हेतु किये गये प्रयासों पर प्रकाश डालिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र संघ पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) क्या हैं ?
2. नैरोबी घोषणा क्या हैं ?

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. पर्यावरण शब्द का अर्थ बताईए।
2. पर्यावरण संरक्षण हेतु कोई दो सुझाव दीजिए।

इकाई – 8

एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका की विश्व दृष्टि

(World views from Asia, Africa and Latin America)

8.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका की विश्व दृष्टि का अर्थ, एशिया, अफ्रीका में जागरण, इनके जागरण का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर प्रभाव का अध्ययन किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :–

- एशिया व अफ्रीका में जागृति के कारणों का अध्ययन कर सकेंगे।
- एशिया और अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के राष्ट्रों की समस्या के बारे में जान सकेंगें।
- एशिया व अफ्रीका के जागरण का विश्व पर प्रभाव जान सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका का विशेष महत्व है। संसार की लगभग दो–तिहाई जनसंख्या से भी अधिक अफ्रो–एशिया एवं लैटिन अमेरिकी देशों में निवास करती है और दुनिया की चार प्रचीनतम सभ्यताओं में तीन का जन्म एशिया में हुआ है। सामरिक दृष्टि से अफ्रीका तथा एशिया का अपना अलग महत्व है। ऐतिहासिक काल में भारत को सोने की चिड़िया क नाम से जाना जाता था और चीन तथा जापान की ओर भी पश्चिमी शक्तियाँ लोलुप दृष्टि से देखती रहती है। चीन, इंडोनेशिया और अफ्रीकी महाद्वीप के उत्तरी छोर के मिस्त्र में हजारो वर्ष पुराने साम्राज्यों की परम्परा आज भी जीवित है।

लातीनी अमरीकी क्षेत्र में बीस देश हैं, जिनक नाम इस प्रकार हैं–ब्राजील, अर्जेन्टीना, उरूग्वे, पेरागुवे, मैक्सिको (सेंट्रल अमरीका), ग्वातेमाला, होंडुरास, अल साल्वाडोर, निकारागुआ, क्रोस्टा रीका, पनामा, चिली, बोलावीया, पेरू, इक्वेडोर, कोलम्बिया, वेनेजुएला, डोमिनिकलन रिपब्लिक, हैती और क्यूबा।

एक बहुत बड़ी सीमा तक लातीनी अमरीका की भौगोलिक स्थिति उसके ऐतिहासिक और राजनीतिक विकास के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। पूर्व में अटलांटिक महासागर और पश्चिम में प्रशान्त महासागर इसे यूरोप और एशिया से अलग करते हैं। हजारों मील दूर फैली यह जलराशि एक ऐसी बाधा प्रस्तुत करती है, जिसे आसानी से लाघा नहीं जा सकता। इसके रहते इस प्रदेश की विपुल प्राकृतिक सम्पदा का दोहन और इसके साथ लाभप्रद व्यापार औरों के लिए आसानी से सम्भव नहीं। इतना ही नहीं स्वयं अमाजोन के घने जंगल, एन्डीज पर्वत श्रृंखला, दलदल, वेगवती नदियाँ और भूतल की दुर्गमता इस महाद्वीप के देशों को एक–दूसरे से अलग–थलग करते हैं। कुल मिलाकर लातीनी अमरीका अपनी भौगोलिक स्थिति एवं प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से विश्व राजनीति में अपना विशेष स्थान रखता है।

8.2 एशिया में जागरण

एशिया विश्व का सगसे बड़ा महाद्वीप है। यह पूर्व में प्रशान्त महासागर, पश्चिम में भूमध्य सागर और उत्तर में आर्कटिक महासागर से हिन्द महासागर तक फैला हुआ है। यह उत्तर से दक्षिण तक 5,000 मील तथा पूर्व से पश्चिम तक 5,500 मील तक फैला हुआ है। एशिया क अधिकांश राष्ट्र लम्बे समय तक साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का शिकार रहे। 20वीं शताब्दी में एशियायी राष्ट्रों मे चेतना जागृत हुई। वे पाश्चात् राष्ट्रों के साम्राज्यवाद से मुक्त हुए और उन्नति क पथ पर अग्रसर हुए।

एशिया में जागृति क कारण निम्नलिखित हैं –

8.2.1 एशिया के राष्ट्रों का पुनर्जागरण आन्दोलन–एशिया के राष्ट्रों की जागृति में उन देशों क सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आन्दोलनों की प्रमुख भूमिका रही है, विशेषकर भारत को अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसायटी आदि व धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आन्दोलनों ने भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों में सुधार के साथ–साथ नागरिकों में नव–जीवन, राष्ट्रीय चेतना, देश–प्रेम तथा स्वशासन और स्वराज्य की भावनायें विकसित कीं।

8.2.2 संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका–द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर सुरक्षा व शान्ति की स्थापना हेतु राष्ट्र संघ के स्थान पर संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई। इस संस्था ने उपनिवेशों में इसके शासकों पर संवैधानिक सुधार के लिए जोर डाला तथा इन्हें स्वतंत्र करने क लिए भी कहा गया। परिणामस्वरूप एशिया व अफ्रीका की जागृति को बल मिला।

8.2.3 रूस और समाजवादी राष्ट्रों का मजबूत होना–द्वितीय विश्व युद्ध के बाद रूस एक बड़ी शक्ति के रूप में उभरा। वह और उसके साथ समस्त पूर्वी यूरोप साम्यवादी व्यवस्था के अन्तर्गत आ गया। इससे साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद

विरोधी शक्तियों को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। रूस ने उन्हें सहायता दी। इस प्रकार रूस और समाजवादी राष्ट्रों के अभ्युदय ने एशिया, अफ्रीका के जागरण में अत्यधिक सहायता पहुंचायी है।

8.2.4 विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र में क्रांतिकारी विकास–विज्ञान एवं तकनीकी क्षेत्र में क्रांतिकारी विकास का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर विशेष प्रभाव पड़ा। आवागमन और संचार के साधनों के विकास के कारण अविकसित एशियाई राष्ट्रों में जागरूकता तथा जनआकांक्षाएँ बढ़ीं। एशिया और अफ्रीका के लोगों को यह आभास हुआ कि वे यूरोपीय राष्ट्रों तथा अमरीका से आर्थिक एवं औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। यह आभास भी एशियाई–अफ्रीकी जागरण का एक कारण है।

8.2.5 जापान की रूस पर विजय–द्वितीय विश्व युद्ध मे जापान की रूस आदि योरोपीय देशों पर लगातार विजय ने भी एशिया के निवासियों में बैठी हुई इस भावना को खत्म किया कि योराप के लोग एशिया के लोगों से कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं, शक्तिशाली हैं। फलस्वरूप इस हीन ग्रन्थि के समाप्त होते ही एशिया के राष्ट्रों मे स्वराज्य की भावना बलवती हुई।

8.2.6 साम्राज्यवादी शक्ति का निर्बल हो जाना–द्वितीय विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड आदि साम्राज्यवादी शक्तियों की आर्थिक दृष्टि से कमर टूट गई। ये अब इन देशों में विकसित राष्ट्रीय आन्दोलन को सफलतापूर्वक दबाने में पूर्णतः सक्षम नहीं रहे।

8.2.7 अमेरिका की दोहरी नीति–द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका सबसे अधिक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभर कर सामने आया। उसने विश्व राजनीति में दोहरी नीति अपनाई। एक तरफ वह एशिया के नये स्वतंत्र राष्ट्रों के स्वाधीनता आन्दोलनों का समर्थक बना, दूसरी तरफ उसने उपनिवेशवादी राष्ट्रों को सहायता दी। इस नीति का परिणाम यह हुआ कि यहाँ के नागरिकों को, आन्दोलनों को नैतिक बल मिला और साम्राज्यवादी शक्तियाँ फिर उसे दबा नहीं सकीं।

8.2.8 पश्चिमी शिक्षा तथा सभ्यता का प्रभाव–एशिया के अधिकांश राष्ट्र पश्चिमी राष्ट्रों, विशेषकर ब्रिटेन तथा फ्रांस के पराधीन थे। साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने अपनी साम्राज्यिक उपनिवेशी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इन राष्ट्रों में पश्चिमी शिक्षा का प्रारंभ किया जिससे यहाँ के निवासी एक सामान्य भाषा जैसे अंग्रेजी के कारण परस्पर सम्पर्क में आये और उनके विचारों का आदान–प्रदान सम्भव हो सका। पश्चिमी शिक्षा के कारण ही यहाँ के निवासी पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क में आए तथा स्वतन्त्रता के महत्त्व को समझा, राष्ट्रीया तथा राष्ट्रीय एकता के विचारों का बीजारोपण हुआ। जैसा **टायनबी** का कथन हैं कि "पश्चिम के प्रभाप ने एशिया के लोगों को विचार, एक आदर्श और एक आशा प्रदान की।" परिणामस्वरूप इन राष्ट्रों के लोगों में जागृति आई।

8.2.9 विदेशी शासकों की शोषण नीति–उपनिवेशी शक्तियों ने एशिया के पराधीन राष्ट्रों के साथ **मुक्त व्यापार और आर्थिक शोषण** की नीति को अपनाया। इस नीति के फलस्वरूप इन देशों के उद्योग–धन्धें नष्ट हो गए और यहाँ की जनता मे बेरोजगारी एवं असन्तोष का विकास हुआ। इस शोषण की नीति के साथ–साथ विदेशी शासकों ने **जातीय अहंकार तथा जाति भेदभाव** की नीति को भी समान्तर चलाये रखा। इस जातीय तथा रंगीय भेदभाव की नीति के परिणामस्वरूप यहाँ के निवासियों में उपनिवेशी विरोधी, जाति भेद विरोधी भाव का संचार हुआ जो आगे चलकर राष्ट्रवाद की भावना में पुष्पित हुआ।

8.2.10 शीत युद्ध का प्रारम्भ–शीत युद्ध क प्रारम्भ ने भी विश्व को दो गुटों में विभाजित कर दिया। पश्चिमी शक्तियाँ साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिए सामने आईं और पूर्व सोवियत संघ उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद के विरोधी तथा आर्थिक समानता का नारा देकर आगे बढ़ा। इस शीत युद्ध में एशिया और अफ्रीका के जागरण आन्दोलनों को नैतिक तथा पर्यावर्णिक लाभ मिला। एक तरफ साम्यवाद क प्रसार को रोकने के लिए इन देशों को स्वतन्त्रता प्रदान की गई; दूसरी तरफ इनको स्थायित्व एवं विकास हेतु सहायता दी गई, जिससे इन देशों में जागृति को बहुत बल मिला।

8.3 विश्व राजनीति में एशिया के जागरण का प्रभाव

विश्व राजनीति में एशिया जागरण का निम्न प्रभाव पड़ा–

8.3.1 एशिया विश्व राजनीति का केन्द्र–बिन्दु बन गया है–एशिया के राष्ट्रों क जागरण तथा उनके स्वतंत्र होते ही कुछ ऐसे तत्वों का विकास हुआ है, जिनक कारण विश्व राजनीति का केन्द्र अब योरोप न रहकर एशिया बन गया है। ये तत्व निम्नांकित हैं–

(i) राजनीतिक विचारधारा–शीतयुद्ध काल मे एक तरफ सोवियत संघ और चीन एशिया मे साम्यवाद का विकास चाहते रहे, दूसरी तरफ से अमेरिका एशिया मे साम्यवाद के विस्तार को रोकने के प्रयास करता रहा। अमेरिका एशिया के राज्यों को साम्यवाद के प्रभाव से बचाकर वहाँ लोकतंत्र की स्थापना करने के प्रयत्न करता रहा। वह एशिया में साम्यवाद के प्रसार को अमेरिकी हित के विरूद्ध मानता रहा।

(ii) बड़ी शक्तियों के परस्पर विरोधी हित–एक तरफ साम्राज्यवादी ताकतें जैसे अमेरिका अपनी आर्थिक, सैनिक एवं तकनीकी सहायता से एशिया में अपना प्रभाव जमाना चाहता है, दूसरी तरफ चीन व जापान तथा अन्य राष्ट्र एशिया में

अपना प्रभाव–क्षेत्र बढ़ाना चाहते हैं। जापान आर्थिक साम्राज्य स्थापित कर रहा है और भारत असंलग्नता के माध्यम से अपना प्रभुत्व बढ़ाना चाह रहा है। ये विविध हित एशिया को संघर्ष केन्द्र बना रहे है।

(iii) आर्थिक प्रलोभन–एशिया में कच्चा माल प्रचुर मात्रा में है। यह कच्चा माल विकसित देशों के आकर्षण का प्रमुख कारण है क्योंकि यदि इन देशों को एशिया का कच्चा माल न मिले तो उनके अनेक उद्योग ठप हो जाएँ। इसलिए ये राष्ट्र कच्चे माल की पूर्ति पर अधिकार करने की दृष्टि से एशिया में अपना प्रभाव जमाने के प्रयास कर रहे हैं। कच्चे माल के अतिरिक्त एशिया के देश उनके निर्मित माल की खपत भी करते हैं। अतः ये यहाँ की व्यापार प्रक्रिया व साधनों पर अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए संघर्षशील हैं।

(iv) हिन्द महासागर का सामरिक महत्त्व–महाशक्तियों के लिए सामरिक दृष्टि से हिन्द महासागर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसक किनारे पर एशिया व अफ्रीका के नव–स्वतंत्र देश है जो सैनिक दृष्टि से कमजोर हैं। प्रत्येक महाशक्ति यहाँ अपना प्रभाव बढ़ाना चाह रही है। इस कारण एशिया आज विश्व राजनीति का केन्द्र बन गया है।

8.3.2 चीन का अभ्युदय–साम्यवादी चीन विश्व में स्वतन्त्रता के कुछ समय पश्चात् ही तीसरी शक्ति क रूप में अभ्युदित हुआ। अपने प्रारम्भिक काल में यह साम्यवादी रूस के अत्यन्त निकट था और पूर्व सोवियत संघ तथा चीन के संयुक्त प्रयासों में एशिया में साम्यवाद के प्रसार का खतरा एकदम महसूस किया जाने लगा, फलस्वरूप एशिया के अन्य राष्ट्रों को दोनों ही पक्ष अपने प्रभाव क्षेत्र में लाने का प्रयास करने लगे। बाद में चीन स्वयं में तीसरी शक्ति के रूप में विकसित हो गया जिससे शक्ति सन्तुलन पर असर दिखाई दिया और अमेरिका ने उसके साथ मित्रता का प्रयास किए जिसमें वह काफी हद तक सफल हुआ। इस प्रकार स्पष्ट है कि चीन के अभ्युदय ने विश्व–राजनीति को अत्यधिक प्रभावित किया है।

8.3.3 असंलग्न विचारधारा का उदय और एशिया के अधिकांश राष्ट्रों का समर्थन–एक अन्य तत्व जो एशिया के जागरण से जुड़ा हुआ है, वह है–गुट निरपेक्षता की अवधारणा का जन्म और उसका विकास। इस अवधारणा का प्रभाव अधिकांश एशिया व अफ्रीका के नव–स्वतंत्र राष्ट्रों पर पड़ा और उन्होंने इसकी सदस्यता स्वीकार कर ली। भारत इसका अग्रणी समर्थक बना। असंलग्न राष्ट्रों ने विश्व राजनीति को अत्यधिक प्रभावित किया है। उसने शीत युद्ध पर परस्पर समझौते के लिए माध्यम का काम किया है और शान्तिवादी नीति तथा सहयोगात्मक नीति को अपना कर तनाव शैथिल्य या देतान्त को बल प्रदान किया। आज विश्व के हर संघर्ष में इन आंदोलनों से शान्ति प्रयासों की अपेक्षा की जाती है।

8.3.4 साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा प्रजातिवाद को घातक चोट–विश्व राजनीति में एशिया, अफ्रीका के पुनरूत्थान ने साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा प्रजातिवाद को गहरा धक्का पहुँचाया। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में उपनिवेशों को समाप्त करने की प्रक्रिया का यह तत्व प्रमुख कारण बना।

8.3.5 प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्र राज्यों की संख्या में भारी वृद्धि–उपनिवेशवाद की समाप्ति की प्रक्रिया की सफलता के कारण विश्व का मानचित्र तेजी से परिवर्तित होने लगा। जहाँ 1945 में संप्रभु राष्ट्र राज्यों की संख्या मात्र 50 के आस–पास थी, वहाँ 1960 तक पहुँचते–पहुँचते यह संख्या दो गुनी हो गई और 1980 तक इनकी संख्या 160 से अधिक हो गई। राष्ट्र राज्यों की संख्या में वृद्धि ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के स्वरूप को ही बदल दिया। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया तथा इनकी प्रकृति काफी जटिल हो गई।

8.3.6 संयुक्त राष्ट्र संघ में एशिया तथा अफ्रीका का प्रभाव–संयुक्त राष्ट्र संघ में भी एशिया का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। वे अब संयुक्त राष्ट्र संघ में महाशक्तियों की मनमानी के विरूद्ध आवाज उठाते हैं और आज उनकी बिल्कुल नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता।

8.4 एशियायी राष्ट्रवाद जागरण की प्रमुख समस्यायें

एशियायी राष्ट्रवाद की प्रमुख समस्यायें निम्नलिखित हैं–

8.4.1 महाशक्तियों की प्रतिद्वन्द्विता–पश्चिमी शक्तियों के साम्राज्य के पतन के साथ एशिया मे तथाकथित राजनीतिक शून्यता पैदा हो गयी थी। उसकी पूर्ति के लिये अमेरिका तथा पूर्व सोवियत संघ जैसी महाशक्तियों ने इसे क्षेत्र में अपने पाँव फैलाने शुरू कर दिये। अमरीका ने सैनिक संगठनों, सुरक्षात्मक सन्धियों या प्रतिक्रियावादी शासकों की सहायता से अपना उल्लू सीधा करने का प्रयास किया और रूस ने साम्यवादी आंदोलनों, साम्यवादी पार्टियों को समर्थन देकर अपने प्रभाव को बढ़ाने का प्रयास किया। दियागो गार्सिया में सैनिक अड्डों की स्थापना करके अमरीका आज हिन्द महासागर में अपना प्रभुत्व जमाने का प्रयास कर रहा है। शस्त्रों की जांच के लिए नियुक्त संयुक्त राष्ट्र संघ जांच दल द्वारा राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन के द्वारा कुछ क्षेत्रों में जांच न कराये जाने के मुद्दे को लेकर संयुक्त राज्य अमेरिका ने ब्रिटेन को साथ लेकर दिसम्बर, 1998 में इराक पर प्रक्षेपास्त्रों से हमला कर दिया। इस हमले की रूस, चीन, फ्रांस तथा भारत ने निन्दा की है। इसके बाद उसने उस पर अनेक आर्थिक प्रतिबन्ध लगवा दिये। अन्त में **अपगेल, 2003** में संयुक्त राष्ट्र संघ की उपेक्षा करते हुए, विश्व जनमत की परवाह न करते हुए, इराक पर ब्रिटेन के साथ मिलकर सैनिक आक्रमण कर दिया और इराक पर अपना अधिकार जमा लिया। वर्तमान में अमेरिका का इराक पर वर्चस्व है और अपने इस वर्चस्व को बनाए रखने के लिए अब सुरक्षा परिषद् के अन्य सदस्यों से सहयोग की अपेक्षा कर रहा है। अतः स्पष्ट है कि महाशक्तियाँ एशिया के

राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों में तथा आपसी विवादों में बराबर हस्तक्षेप करती रहती हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि वर्तमान में एशिया, रूस, अमरीका, चीन और जापान के संघर्ष का केन्द्र बन गया है।

8.4.2 पुनर्निर्माण व आर्थिक विकास की समस्या–एशियाई राष्ट्रों के सामने पुनर्निर्माण और आर्थिक विकास की ज्वलन्त समस्याएँ है।

8.4.3 जनसंख्या विस्फोट–यहाँ के लगभग सभी देश जनसंख्या विस्फोट से पीड़ित हैं। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या फण्ड के अनुसार अगस्त, 1988 तक एशिया को आबादी 3 अरब तक पहुँच चुकी थी जो कि पूरे विश्व की 5 अरब की आबादी क 60 प्रतिशत से अधिक थी। वर्तमान में एशिया की जनसंख्या में वृद्धि की दर 5 करोड़ 45 लाख प्रतिवर्ष है। इस दर से बढ़ रही एशिया की जनसंख्या सन् 2010 में 5 अरब पहुँच गई जो कि विश्व की कुल जनसंख्या 7 अरब की आधी से भी अधिक है तथा निकट भविष्य में विश्व की कुल जनसंख्या की तीन चौथाई से भी अधिक होगी। यह एक बहुत बड़ी समस्या है।

8.4.4 रूस–चीन संघर्ष–1990 तक एशिया में चीन तथा सोवियत संघ के मध्य संघर्ष जारी था। यह संघर्ष केवल सैद्धान्तिक नहीं बल्कि राष्ट्रीय हितों का संघर्ष था। यह केवल सीमावर्ती संघर्ष नहीं, वरन् नेतृत्व के लिये संघर्ष था। **स्थिति यह थी कि चीन रूस का मानमर्दन करने के लिये अमरीका का साथ देने के लिये तैयार था और रूस चीन का मानमर्दन करने के लिये अमरीका का साथ देने के लिये तैयार था।** लेकिन 1991 में सोवियत संघ के बिखराव के बाद इन दोनों देशों की कटुता में कमी आई है।

8.4.5 भारत–पाकिस्तान विवाद–भारत–पाकिस्तान अपने जन्म काल से ही एक–दूसरे के शत्रु रहे हैं। वर्तमान समय मे कश्मीर तप रहा है और पाकिस्तान कश्मीर के अलगाववादी, उग्रवादी एवं आतंकवादी तत्वों को प्रशिक्षण, सैनिक सहायता, निर्देश और शरण देकर भी उसमें घी की आहुति दे रहा है। पाकिस्तान के शासक कश्मीर को **'मुस्मिल समुदाय की चिंता'** एवं **'मुस्लिम उप्पा'** का मुद्दा बताकर एक द्विपक्षीय समस्या का अन्तर्राष्ट्रीय आयाम दे रहे है।

8.4.6 भारत–चीन सीमा विवाद–यह एशिया की दो शक्तियों का विवाद है। यह सीमा विवाद ही नहीं, एशिया के नेतृत्व का विवाद भी है। भारत पर 1962 के चीनी आक्रमण का उद्देश्य भारत को एक कमजोर देश सिद्ध करना था। इस विवाद का हल तब तक नहीं हो सकता जब तक चीन अपनी आक्रामक विस्तारवादी नीति का परित्याग न कर दे और आक्रमण द्वारा हस्तगत की गयी भारत की भूमि को लौटा न दे।

8.4.7 अन्य समस्याएँ–एशिया में वर्तमान में अनेक ऐसे विवाद हैं जो किसी समय उग्र स्थिति पैदा कर सकते हैं, यथा–

(i) दक्षिण चीन सागर में स्थित स्प्रैटली द्वीप समूह पर आधिपत्य का मामला चीन और वियतनाम के बीच समस्या बना हुआ है। यह समस्या पूरे दक्षिण–पूर्व एशिया के देशों को व्यापक रूप से प्रभावित कर सकती है।

(ii) राष्ट्रवादी (फारमोसा) चीन और साम्यवादी चीन में विवाद।

(iii) मलेशिया और इण्डोनेशिया विवाद।

(iv) अफगानिस्तान प्रतिद्वन्द्वी शक्तियों में बंटा हुआ है। खाड़ी क्षेत्र अशांत है। एशिया की उक्त समस्याएँ ही उसे 'टकराव का वास्तविक कड़ाहा' बना रही है।

8.5 एशिया के जागरण प्रवृत्तियाँ

एशिया का नव जागरण 20वीं शताब्दी की महत्त्वपूर्ण घटना है। एशिया के जागरण में मोटे रूप में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है – (1) सकारात्मक (2) नकारात्मक।

8.5.1 सकारात्मक प्रवृत्तियाँ–इसमें निम्न प्रवृत्तियों को सम्मिलित किया जा सकता है–

(i) उदार राष्ट्रवाद की प्रवृत्ति–एशिया के राष्ट्रवाद का स्वरूप उदार है। यह मानवता विश्वबन्धुत्व, शांतितथाअन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावनाओं से भरपूर है। इसमें पश्चिमी राष्ट्रवाद की संकीर्णता नहीं है।

(ii) साम्यवाद के प्रति आकर्षण–एशिया के राष्ट्रों में साम्यवाद के प्रति अधिक रूझान रहा है क्योंकि दोनों जातिभेद, रंगभेद के विरोधी है। दोनों आर्थिक शोषण से मुक्ति चाहते हैं।

(iii) गुटों से अलग रहने की प्रवृत्ति–एशिया के राष्ट्र अपनी स्वतंत्रता को अक्षुण्ण बनाये रखना चाहते हैं, इसलिए इसके अधिकांश राष्ट्र गुट–निरपेक्षता की नीति का अनुसरण करते हैं।

(iv) संयुक्त राष्ट्र का समर्थन–एशिया के राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रबल समर्थक हैं। प्रायः सभी एशियाईराष्ट्र इसके सदस्य हैं। यहाँ ये अफ्रीशियाई गुट के रूप में कार्य करते हैं।

(v) साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद की समाप्ति–एशिया के जागरण की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद के विरोध की रही है। एशिया के साथ–साथ दक्षिणी अफ्रीका में भी एशियाई राष्ट्रों ने नस्लवाद, रंगभेद, साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद के उन्मूलन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

(vi) सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन की प्रवृत्ति–एशिया के राष्ट्रों में सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन की प्रवृत्ति पाई जाती है। क्रान्तिकारी परिवर्तनों के पक्षधर रहे हैं क्योंकि ये राष्ट्र अपनी आर्थिक विषमताओं को दूर करना चाहते हैं तथा दरिद्रता, निरक्षरता, अंधविश्वास आदि बुराइयों का उन्मूलन करना चाहते हैं। इस प्रकार एशियाई जागरण सर्वत्र समाज सुधार की प्रक्रिया है।

8.5.2 नकारात्मक प्रवृत्तियाँ–एशिया के जागरण की प्रमुख नकारात्मक प्रवृत्तियाँ निम्न प्रकार हैं–

(i) उग्र राष्ट्रवाद एवं आपसी टकराव–आज एशिया उस राष्ट्रवाद के कारण मतभेदों, पारस्परिक विवादों और सीमावर्ती झगड़ों से पीड़ित है, जिनका निकट भविष्य में कोई समाधान नजर नहीं आता है। एशिया में विद्यमान प्रमुख तनाव क्षेत्र हैं–चीन–रूस विवाद, चीन–वियतनाम विवाद, भारत–चीन विवाद, भारत–पाक विवाद, अरब–इजरायल विवाद, मलेशिया–इण्डोनेशिया विवाद, फारफोसा चीन और साम्यवादी चीन में विवाद, श्रीलंका की तमिलों की समस्या, अफगानिस्तान समस्या आदि।

(ii)जन आकांक्षाओं की बढ़ती हुई प्रवृत्ति–राजनीतिक चेतना से एशिया के लोगों में इतनी अधिक आकांक्षाएँ और मांगें बढ़ गई हैं कि उन्हें पूरा करना आसान नहीं है। इससे लोगों में निराशा की भावना बढ़ने लगी है।

8.6 अफ्रीका में जागरण

अफ्रीका का जगारण, एशिया के जागरण की तरह 20वीं शताब्दी की एक प्रमुख घटना है। **टॉम मबोया** के अनुसार, "समकालीन विश्व का सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य उपनिवेशीवाद शासन की जेल की कोठरियों और विदेशी प्रमुख द्वारा थोपे गये अन्धकार से अफ्रीका और अफ्रीकी लोगों का पुनरूत्थान है।"

8.7 अफ्रीका में जागरण के कारण

अफ्रीका में जागरण के प्रमुख कारणों को निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सकता है –

8.7.1 अफ्रीकी राष्ट्रवाद–अफ्रीकी राष्ट्रवाद का उदय 'विरोध आन्दोलन' तथा 'विद्रोह आन्दोलन' के रूप मे हुआ था, जिसने समय पाकर उपनिवेशवाद विरोध का रूप धारण कर लिया। जिन अफ्रीकी नेताओं ने पश्चिम में शिक्षा ग्रहण की, वे राष्ट्रवाद की भावना से ओत–प्रोत थे। नये स्वतंत्र अफ्रीकी राज्यों में विविधताओं एवं विवादों के बावजूद राष्ट्रवाद सबसे प्रभावशाली शक्ति है, यह शक्ति ऐसी है जो उन्हें संगठित कर अफ्रीकीवाद की भावनाएँ प्रबल करती हैं व अफ्रीकी व्यक्तियों मे गौरव अनुभव करने की प्रेरणा देती है। यह दासोचित उपनिवेशी मनोवृत्ति से मानसिक मुक्ति हैं।

अफ्रीकी राष्ट्रवाद अफ्रीकी व्यक्तित्व की पहचान है, उसके गौरव और स्तर का आधार है। **कैनेथ रोबिनसन** ने कहा है कि "बराबरी की स्वीकृति के रूप में पहचान की माँग वस्तुतः अधिकांश अफ्रीकी राष्ट्रवाद का आधार है।" अफ्रीकी राष्ट्रवाद अफ्रीकी एकता की भावनाओं में निवास करता है और विवादों क बावजूद यह एकता सुदृढ़ हो रही है। **डेविडसन** के अनुसार "अफ्रीकी महाद्वीप भूतकालीन निराशा की सामान्य स्वीकृति एवं भविष्य की आशा के सामान्य प्रवाह में संगठित नजर आता है।"

8.7.2 एशिया का विद्रोह–अफ्रीका के उदय में एशिया का विद्रोह एक महत्त्वपूर्ण सहायक तत्व रहा है। इसने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पश्चिमी साम्राज्यवाद को समाप्त किया है। वे पश्चिमी सम्राज्यवादियों को 'आक्रमणकारी' की संज्ञा देने लगे। अब एशिया की स्वतन्त्रता अफ्रीकी नेताओं के लिए प्रेरणा का स्त्रोत बन गई। उन्होंने उपनिवेशवाद शब्द को एक 'घृणित' शब्द बना लिया। उन्होंने इन शब्दों का प्रयोग करके अफ्रीकी लोगों को संगठित किया तथा राष्ट्रीय आन्दोलन का सफल संचालन कर स्वतन्त्रता प्राप्त की। आज अफ्रीका में जो पश्चिमी विरोधी भावना दिखाई देती है उसके मूल में यही रहस्य है।

8.7.3 संयुक्त राष्ट्र चार्टर की व्यवस्थायें–संयुक्त राष्ट्र चार्टर की व्यवस्थाएँ भी अफ्रीकी उदय में सहायक रही हैं। चार्टर की ट्रस्टीशिप व्यवस्था एक उपनिवेशी शक्तियों के उपनिवेशों एवं अस्वशासित क्षेत्र के प्रशासन के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायितव की व्यवस्था है। अफ्रीकी समस्याओं के समाधान के लिए संयुक्त राष्ट्र का दबाव उपनिवेशी शक्तियों पर निरन्तर पड़ता रहा है। परिणामतः आज ट्रस्टीशिप के अन्तर्गत सभी प्रदेश स्वतंत्र हैं।

8.7.4 पश्चिमी साम्राज्यवाद शक्तियों का निर्बल होना–द्वितीय महायुद्ध के बाद पश्चिमी साम्राज्यवादी शक्तियाँ विजयी होकर भी इस स्थिति में नहीं थीं कि वे अपने उपनिवेशों के चिरकाल तक अपने अधीन रख सकतीं। राष्ट्रीय शक्तियों का दबाव इतना अधिक था कि वे उनकी उपेक्षा नहीं कर सकती थीं। पश्चिमी साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपने उपनिवेशों में जो थोड़े–बहुत राजनीतिक सुधार किये, उससे अफ्रीका में राजनीतिक दलों का विकास भी हो गया था। इस प्रकार सबने मिलकर राष्ट्रीय स्वतन्त्रताओं की भावनाओं को बल दिया।

8.7.5 साम्यवाद का आकर्षण–द्वितीय महायुद्ध के बाद विश्व में केवल दो महाशक्तियाँ रह गई थीं–अमेरिका और सोवियत संघ। इन दोनों के सिद्धान्तों में उग्र भेद थे। यद्यपि आधुनिक समय में कोई स्वतन्त्र अफ्रीकी देश साम्यवादी नहीं है तथा गुट–निरपेक्षता उनकी विदेश नीति का आधार है, तथापि अफ्रीकी नेता साम्राज्यवाद विरोधी, उपनिवेशवाद विरोधी,

रंगभेद विरोधी, आर्थिक शोषण विरोधी नीति आदि से प्रभावित रहे हैं। तन्जानिया क्रान्तिकारी पार्टी के क्षेत्रीय सचिव **अब्दुल सुलेमान** ने कहा कि "अफ्रीका यह सीख रहा है कि समाजवादी संसार से सहयोग के बिना न तो साम्राज्यवाद का प्रभावशाली प्रतिरोध किया जा सकता है और न ही कोई आर्थिक विकास सम्भव है।"

8.8 अफ्रीकी जागरण का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर प्रभाव

अफ्रीका में नव जागरण के प्रभावों का वर्णन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है –

8.8.1 अफ्रीकी एकता संगठन तथा अफ्रीकी संघ–अफ्रीका क उदय ने अफ्रीकावासियों में अफ्रीकी भावनाओं का संचार किया। इससे अनगिनत विविधताओं, भिन्नताओं, मतभेदों और कबीलावाद के बावजूद अफ्रीकावासियों में एकता की भवनायें पैदा हुई, जिससे 'अफ्रीकी एकता संगठन' का निर्माण हुआ–इससे अफ्रीका क लोगों में सहयोग, भाईचारा आदि भावनाओं का विकास हुआ। अफ्रीकी एकता संगठन (OAU) का चार्टर 25 मई, 1963 को आदिस अबाबा में स्वीकार किया गया। चार्टर पर हस्ताक्षर करने वाले 32 राष्ट्रों में से 30 ने कुछ घण्टों में ही इसका औपचारिक अनुमोदन भी करा दिया। इसी संगठन के तहत आज 25 मई को अफ्रीका दिवस के रूप में जाना जाता है। अफ्रीका एकता संगठन क तहत आज अफ्रीकी राज्यों में आर्थिक निर्माण, आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है। इसके लिए वे पश्चिमी–पूर्वी गुटों से सहायता तो प्राप्त करना चाहते हैं, लेकिन वे उनके पिछलग्गू बनना नहीं चाहते। वे अपने भाग्य के स्वयं निर्माता बने रहना चाहते हैं।

1963 में स्थापित अफ्रीकी एकता संगठन 38 वर्षों तक सफलतापूर्वक चला। 9 सितम्बर, 1999 में लीबीया में सिर्टे में स्वीकार किये गये 'सिर्टे घोषणा–पत्र' में इसके अफ्रीकी संघ में रूपान्तरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई और 26 मई, 2001 को अफ्रीकी राष्ट्रों का 'अफ्रीकी संघ' (African Union-AU) अस्तित्व में आ गया। वर्तमान में अफ्रीका के सभी 52 देश इसके सदस्य हैं। अफ्रीकी संघ ने अपने अस्तित्व क 50 वर्ष पूरे करने के उपलक्ष में 19–27 मई, 2013 को इथोपिया की राजधानी आदिस अबाबा में अपनी स्वर्ण जयन्ती मनाई हैं तथा अपने 21वें शिखर सम्मेलन का आयोजन किया है।

वर्तमान में अफ्रीकी देशों की नीति यह है कि उन्हें अपनी राजनीतिक व आर्थिक समस्याओं का समाधान बाह्य हस्तक्षेप के बजाय स्वतः करने का प्रयत्न करना चाहिए।

8.8.2 जाति एवं रंगभेद जैसे विषय का अन्तर्राष्ट्रीयकरण–जिस विषय को परम्परा से घरेलू क्षेत्राधिकार का विषय समझा जाता था, आज उसकी राजनीतिक व्याख्या की जाती है व उसे अन्तर्राष्ट्रीय विषय समझा जाता है। जैसे–दक्षिण अफ्रीका की रंगभेद की नीति को आज घरेलू मामला नहीं माना जाता, वह राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिए खतरा पैदा करता है। यही कारण है कि दक्षिण अफ्रीका की रंगभेद नीति तथा रोडेशिया की गोरी सरकार के एकपक्षीय निर्णयों पर अफ्रीकी राष्ट्रों ने एकजूट होकर संयुक्त राष्ट्र संघ क मंच पर बार–बार उठाया। इसके साथ की 'मानव अधिकार' के साथ जोड़कर इसको अन्तर्राष्ट्रीय अभिरूचि का विषय बना दिया। परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1973 में रंगभेद की नीति को 'मानवता के प्रति अपराध' घोषित कर दिया।

8.8.3 स्वतन्त्र राज्यों का उदय एवं कूटनीतिक समस्याएँ–अफ्रीका के उदय से स्वतन्त्र राज्यों की बाढ़ ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में जहाँ कूटनीतिक समस्याएँ पैदा की हैं, वहाँ तनाव, संघर्ष, सौदेबाजी, प्रतिद्वन्द्विता को भी जन्म दिया है। इन राज्यों की प्रतिक्रिया कूटनीतिक क्षेत्र में अपरिपक्व व नौसिखये होने के कारण 'दैनिक' या अस्थिर होती है, 'स्थिर' नहीं होती।

8.8.4 गुट–निरपेक्ष आन्दोलन की पुष्टि–गुट–निरपेक्ष आन्दोलन को अफ्रीका के उदय से काफी बल मिला है। इसने गुट–निरपेक्ष आन्दोलन में संख्यात्मक और गुणात्मक परिवर्तन किया है। अफ्रीकी राष्ट्रों की समस्या राष्ट्रवाद, पुनर्निर्माण, आर्थिक विकास व श्वेत अल्पसंख्यकों के शासन को समाप्त कर अश्वेत बहुसंख्यकों के शासन की स्थापना करने की है। वे महाशक्तियों की चालों की गोटियाँ बनना नहीं चाहते तथा अफ्रीकी समस्याओं का अफ्रीकी समाधान चाहते हैं।

8.8.5 साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद पर क्रूर प्रहार–पश्चिमी साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद तथा रंग–भेद, जाति–भेद पर अफ्रीका के उदय ने क्रूर प्रहार किये हैं–कुछ स्थानों पर इनक अवशेष भी हैं जो किसी भी समय विस्फोट स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं–फिर भी अब उनका अन्त सम्भव हैं।

8.8.6 शोषण का सीमित क्षेत्र– अफ्रीका में शोषण और अन्याय का क्षेत्र सीमित होता जा रहा है। आज आधुनिक महाशक्तियाँ इन राज्यों में अपने साम्राज्य को स्थापित करने की स्थिति में नहीं है। इसी प्रकार आज अफ्रीका में स्वतन्त्रता, एकता, व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा, सम्मान की लहर व्याप्त है, जिससे श्वेत जातियाँ भी उनके साथ सम्बन्ध बनाये रख सकती हैं।

8.8.7 अफ्रीकी व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा–अफ्रीका के उदय ने अफ्रीकी व्यक्तित्व को प्रतिष्ठित किया है, उसक वैभव, गौरव का विकास कर उसे सामाजिक व राजनीतिक स्तर पर बराबरी का दर्जा दिया है। अब रंगभेद की नीति भी समाप्त हो गई है। **डेविडसन** ने लिखा है, "अफ्रीका के उदय ने अफ्रीकी विशिष्टता को बल दिया है, अन्य मानव समूहों में उसे बराबरी का दर्जा दिया है और अफ्रीकी जीवन की अगणित विविधताओं के बावजूद उसकी मौलिक एकता को पुष्ट किया है।

8.8.8 संयुक्त राष्ट्र संघ पर प्रभाव–संयुक्त राष्ट्र संघ पर अफ्रीका के उदय ने बहुत गहरा प्रभाव डाला है। अपने प्रथम अधिवेशन से ही संयुक्त राष्ट्र महासभा निरन्तर अफ्रीकी समस्याओं से संघर्ष करती रही है। संयुक्त राज्य के कुल सदस्य राष्ट्रों में लगभग एक–तिहाई अफ्रीकी राज्य हैं। ये नव–स्वतन्त्र राज्य महासभा में अपने अधिकारों, आत्मनिर्णय के प्रश्नों पर निरन्तर बहस कराते और प्रस्ताव पारित कराते रहे हैं। आज ये राज्य संयुक्त राष्ट्र संघ में एक लॉबी के रूप में कार्य करते हैं व उसे साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद, रंगभेद के विरूद्ध कार्यवाही करने के लिए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार अफ्रीका का उदय संकटमय विश्व में कल्याणकारी भावना का प्रतीक है।

8.8.9 राष्ट्रमण्डल पर प्रभाव–अफ्रीका के उदय से राष्ट्रमण्डल पर भी प्रभाव पड़ा है। इस राष्ट्रमण्डल में केवल श्वेत लोगों का ही क्लब नहीं है, बल्कि अश्वेत बहुसंख्या में हैं। यह राष्ट्रमण्डल अफ्रीकी राज्यों को संयुक्त राष्ट्र के अलावा एक अन्तर्राष्ट्रीय मंच भी प्रदान करता है, जिसमें रंगभेद की नीति की भर्त्सना की जाती है।

8.8.10 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का केन्द्र–आज अफ्रीका अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का केन्द्र बनता जा रहा है। अफ्रीका में महाशक्तियों की रूचि बढ़ती जा रही है। अफ्रीकी राष्ट्रों के आपसी विवाद महाशक्तियों को अफ्रीका में हस्तक्षेप करने का अवसर प्रदान कर रहे हैं, जिसके फलस्वरूप आज अफ्रीका विश्व राजनीति का संघर्ष स्थल बन रहा है।

8.9 स्वतन्त्र अफ्रीकी राज्यों की समस्यायें

स्वतन्त्र अफ्रीकी राज्यों की प्रमुख समस्याऐं निम्नलिखित है –

8.9.1 सामूहिक राष्ट्रीय चेतना का अभाव–नव–स्वतन्त्र राज्य की एक मुख्य समस्या सामूहिक राष्ट्रीय चेतना का अभाव भी है। अफ्रीका जातीय समूहों की केवल अपने अन्तर्जातीय समूहों, कबीलों और वर्गों के प्रति भक्ति हैं। समस्त राष्ट्र या जन समूह के प्रति नहीं है। उनकी भक्ति में द्वैतता नहीं है जो कि भारत में विभिन्न जातियों या वर्गों में पायी जाती है और जो राष्ट्र के निर्माण के लिए आवश्यक है। इसलिए यह कहा जाता है कि "अफ्रीका के पास राज्य तो हैं परन्तु कोई राष्ट्र नहीं है।" इसके अतिरिक्त शहरी और ग्रामीण जीवन की भिन्नताओं ने भी समूहों, कबीलों और वर्गों में सामाजिक दूरी पैदा की है। इसी प्रकार कबायली वफादारियाँ एवं शत्रुताएँ राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती हैं। इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि "अफ्रीकी समाजों का राजनीतिकरण स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हुआ है, उससे पहले उनका राजनीतिकरण होना शुरू नहीं हुआ था।"

8.9.2 कुशल राष्ट्रीय नौकरशाही का अभाव–अफ्रीका के नव–स्वतन्त्र राज्यों के पास उपनिवेशी शासनकाले में शिक्षा का विस्तार न होने के कारण स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय कोई कुशल एवं अनुभवी तथा राष्ट्रीय भावनाओं से ओत–प्रोत नौकरशाही नहीं थी। जो कि प्रशासन के कार्यों का सुचारू रूप से सम्भाल सकती। इसका परिणाम यह हुआ कि इन राज्यों को मजबूर होकर प्रवासी स्टाफ को बनाये रखना पड़ा, जिसे राष्ट्र के निर्माण की योजनाओं और उनकी कार्यान्विति में कोई रूचि नहीं थी। कहा जाता है कि किसी नव–स्वतन्त्र अफ्रीकी राज्य में राष्ट्रीय नौकरशाही नहीं थी और आज तक भी अफ्रीका में एक पेशेवर मध्य वर्ग का विकास नहीं हो सका।

8.9.3 राजनीतिक अस्थिरता–राजनीतिक अस्थिरता अफ्रीका के नव–स्वतन्त्र राज्यों की एक प्रमुख समस्या है। राजनीतिक स्थिरता के अभाव में किसी भी देश को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, एकता व अखण्डता को खतरा पैदा हो जाता है। इसी प्रकार अफ्रीका के नव–स्वतन्त्र राज्यों में राजनीतिक हत्याओं, आन्तरिक विद्रोही, राज्य विप्लव एवं जातीय युद्धों की घटनाएँ आये दिन हो रही हैं। उदाहरण के लिए, कांगो जेयरे स्वतंत्रता प्राप्ति के समय (1960) से ही गृहयुद्ध की अग्नि से झुलसने लगा; अंगोला गृहयुद्ध की अग्नि में झुलसता रहा है; चैड़ विद्रोहियों के प्रहार का शिकार रहा है; इथियोपिया अपनी अखण्डता के कारण चिंतित है; सोमालिया और इथियोपिया परस्पर शत्रु रहे हैं और ओगादान क्षेत्र में दोनों युद्ध लड़ चुके हैं। रवांडा 1990 से 'हुतु' और 'तुत्सी' जनजातियों के जातीय युद्ध में झुलस रहा है। ये घटनाएँ वहाँ के असन्तुष्ट नेताओं, कबीले, विदेशी शक्तियों से प्रोत्साहन पाने के कारण होती रही हैं। यहाँ तक कि विद्रोहियों का दमन करने के लिए भी अफ्रीका के स्वतन्त्र राज्यों को विदेशी सहायता लेनी पड़ी। यह सहायता उनकी स्वतन्त्रता को जोखिम में डालती है और आन्तरिक राजनीति में विदेशी हस्तक्षेप को अवसर प्रदान करती है।

8.9.4 व्यापक राजनीतिक संगठनों का अभाव–अफ्रीका के नव–स्वतन्त्र राज्यों की एक अन्य समस्या राजनीतिक संगठनों का अभाव भी है। अफ्रीका में राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने से पूर्व राजनीतिक जन–आन्दोलन को संगठित करने या प्रशासन करने के अनुभव वाला राजनीतिक दल नहीं था। इसका परिणाम यह हुआ कि अफ्रीका में चुनाव सुधारों और मताधिकार के विस्तार के साथ अफ्रीकी पार्टियाँ सत्ता में आ तो गयीं, परन्तु उन्हें राजनीतिक और प्रशासनिक अनुभव प्राप्त नहीं था जो स्वतन्त्र राष्ट्र की सरकार को चलाने के लिए आवश्यक था।

8.9.5 सत्ता के औचित्य की समस्या–सत्ता के औचित्य की समस्याओं का सामना तो सभी राज्यों के शासकों को करना पड़ता है–लेकिन अफ्रीकी स्वतन्त्र राज्यों में यह समस्या प्रबल थीं, क्योंकि इन राज्यों में संवैधानिक परम्परायें या संस्थाएँ विद्यमारन नहीं रहीं और जो संस्थाएँ थीं वे उपनिवेशी नमूने पर आधारित थीं, जो प्रजातान्त्रिक न होकर सर्वसत्तावादी या

पितृसत्तावाद पर आधारित रही हैं। **ए. आर. जोलबर्ग** का मत है कि "अफ्रीका के राजनीतिक जीवन की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि यह लगभग संस्थारहित रंगभूमि है जिसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं संघर्ष और अव्यवस्था।"

8.9.6 प्रबल आकांक्षाओं की समस्या–अफ्रीका निवासियों की स्वतन्त्रता प्राप्ति से ही आकाक्षाएँ बहुत बढ़ गयी थीं। अब जन समूह के सभी वर्गों द्वारा एक ही समय में अच्छे जीवन और अच्छे व्यवहार की माँग बढ़ गई और यह किसी एक जन समूह या वर्ग की माँग दूसरे के लिए असन्तोष का कारण बन जाती है। इसलिए शासकों के समक्ष समस्या यह थी कि सरकार व दल दोनों ही इनकी माँगों को प्रभावित व नियन्त्रित करने में असफल रहे। उनकी उपेक्षा होने लगी और वे साझेदारी की माँग करने लगे। जिस सामाजिक पृष्ठभूमि से वहाँ के नेताओं का उदय हुआ उनका भी समाज के सभी वर्गों से सम्बन्ध नहीं था। वे सभी राज्य वर्गों की आय की भिन्नताओं से भी पीड़ित रहे हैं। ये विभिन्नतायें ही आज समाज में विघटन पैदा करती है।

8.9.7 विदेशी आर्थिक सहायता पर निर्भर–नव–स्वतन्त्र राज्य आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए व अल्पविकसित हैं। उनके पास आर्थिक विकास के राष्ट्रीय स्त्रोतों एवं आधुनिक टैक्नोलॉजी की कमी है, जिनके कारण ये विदेशी आर्थिक सहायता पर निर्भर हैं। उनके अधिकांश क्षेत्रों में इनकी अर्थव्यवस्था जो कि उपनिवेशी थी, विदेशी कम्पनियों का एकाधिकार है। इन देशों में कृषि और उद्योगों में सामंजस्य न होने के कारण ही बेरोजगारी व गरीबी हैं। अफ्रीकी देश कच्चा माल पैदा करते हैं। केवल यही निर्यात इनकी आय का एकमात्र साधन है और ये आय के आन्तरिक साधन को उत्पन्न करने में असमर्थ हैं। यहाँ के कुछ राज्य तो अपने खर्चे चलाने के लिए विदेशी आर्थिक सहायता पर निर्भर हैं।

8.9.8 संस्कृति के मूल्यों में अन्तर–नव–स्वतन्त्र राज्यों की जटिल समस्या प्राचीन व आधुनिक संस्कृति के मूल्यों में अन्तर की है। प्राचीन संस्कृति तो कबीलावाद पर आधारित रही है। यह व्यवस्था लोगों को संगठित व सुरक्षित रखती है, लेकिन अफ्रीका में तीव्र गति से हो रहे परिवर्तनों, नयी प्रजातान्त्रिक संस्थाओं की स्थापना, वफादारियों में परिवर्तन, समाजवादी व्यवस्था, नगरों के निर्माण व विकास ने इस कबीलावाद की एकता और अखण्डता पर प्रहार शुरू कर दिया।

8.9.9 रंगभेद की समस्या–अफ्रीका में रंगभेद की समस्या सबसे मुख्य समस्या है। उपनिवेशी शासकों ने 'श्वेत जाति की श्रेष्ठता' के सिद्धान्त को अपना कर अश्वेत लोगों पर भयंकर अत्याचार व अपमान किये, इसलिए अफ्रीका की इन जातियों में आज भी रंगभेद को लकर अविश्वास व घृणा विघमान है। इस कारण अश्वेत जातियाँ श्वेत जातियों द्वारा किये प्रहारों का बदला लेना चाहती है।

8.9.10 साम्यवाद के प्रसार की समस्या–अफ्रीका महाद्वीप में साम्यवाद के लिए प्रायः सभी आवश्यक परिस्थितियाँ मौजूद है। यहाँ के लोग आर्थिक शोषण तथा साम्राज्यवादी दमन के शिकार है। ये साम्यवादी उपनिवेशवाद विरोधी नीतियों से प्रभावित हो रहे है। फलस्वरूप रूस और चीन दोनों इस महाद्वीप में अपने प्रभाव क्षेत्र बढ़ाने में सक्रिय हैं। इस कारण कहीं–कहीं इन देशों में भी परस्पर संघर्ष हो रहा है।

8.10 लैटिन अमेरिका

लैटिन अमेरिका पश्चिम गोलार्द्ध के उन राज्यों को कहा जाता है, जो लैटिन संस्कृति के समान संस्कृति रखते हैं। लेटिन अमेरिका में वस्तुतः वे राष्ट्र माने जाते हैं जो कभी स्पेन और पुर्तगाल के अधीन थे, जिनमें मुख्य हैं–मैक्सिको, डोमिनीकी गणतन्त्र, कोलम्बिया, वेनेजुएला, एक्वाडोर, पेरू, ब्राजील, बोलिविया, चिली, अर्जेन्टीना, उरूग्वे आदि। इनकी जनसंख्या 1975 में में लगभग 20 करोड़ थी। यह भूखण्ड पृथ्वी का लगभग सातवां भाग है जो तीन सौ वर्षों तक स्पेन व पूर्तगाल के अधीन रहा। इसके राज्यों की प्राकृतिक सीमायें हैं, इसलिए इनमें कोई विशेष सीमा विवाद नहीं है।

लेटिन अमेरिका में गौरे, रेड इण्डियन और नीग्रो मिल–जुलकर रहते हैं तथा इनमें कोई जातीय पवित्रता की दुहाई नहीं देता है। यहाँ के नागरिक बड़ी संख्या में औपचारिक रूप से तो रोमन कैथोलिक हैं लेकिन यहूदी और मुसलमान भी हैं। सामाजिक दृष्टि से ये काफी विकसित हैं। इन राज्यों में तलाक को कानूनी मान्यता प्राप्त है तथा अवैध सन्तानों को सामाजिक प्रतिष्ठा भी प्राप्त ह।

8.11 लेटिन अमेरिका की प्रमुख समस्यायें

लेटिन अमेरिका की प्रमुख समस्यायें निम्नलिखित हैं–

8.11.1 तकनीकी विकास का अभाव–लेटिन अमेरिकी राज्य तकनीकी पिछड़ेपन के कारण भी अपने उपलब्ध साधनों का पूरा इस्तेमाल नहीं कर पाते हैं, इसलिए अधिकांश कच्चा माल निर्यात कर दिया जाता है। **पामर व पारकिन्स** ने लिखा है, "कई विषयों में प्रकृति लेटिन अमेरिका के प्रति कृपालु नहीं है। यह सत्य है कि उसने इसे (लेटिन अमेरिका को) मनमोहक टापू, विश्व के कुछ सर्वश्रेष्ठ दृश्य और बिखरे हुए कुछ अनन्त झरने दिये हैं, किन्तु उसने इसे अजेय पर्वत, भीषण वन, उष्ण कटिबन्ध की गर्मी और बीमारियाँ, कुछ अच्छी नदियाँ और अच्छे बन्दरगाह, मामूली–सी अच्छी भूमि और बहुत कम खनिज पदार्थ दिये हैं। उसने इसे लोगों के संगठन के लिए, राष्ट्रो के शासन के लिए सामान्य व्यक्ति के पेट व मस्तिष्क की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कठोर और बड़ा कठोर बना दिया है।"

8.11.2 विकास का प्रयास–द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से लेटिन अमेरिकी राष्ट्रों में अमेरिका की आर्थिक व तकनीकी सहायता से घरेलू व बड़े उद्योगों का विकास हुआ है। ब्राजील, अर्जेन्टीना और चिली में कपड़ा, खाद्यान्न, औषधि, सीमेंट, इस्पात आदि का उत्पादन आत्मनिर्भरता तक पहुँच गया है। अन्य राज्यों की आर्थिक दशा भी पहले से अच्छी है। उपयुक्त बाजारों की समस्या बनी हुई है क्योंकि अब मुख्य बाजार अमेरिका है जिसका व्यापार पर प्रभुत्व छाया हुआ है। लेटिन अमेरिका में अधिकांश पूँजी अमेरिकी संस्थाओं तथा विश्व बैंक की लगी हुई है, यद्यपि सोवियत संघ, फ्रांस, ब्रिटेन आदि ने भी कुछ देशों को तकनीकी, आर्थिक व सैनिक सहायता दी है। **मेकनमारा** ने न्यूयार्क में विश्व बैंक की बैठक में कहा भी था, "विश्व बैंक को चाहिए कि वह दक्षिण–पूर्वी एशियाई देशों की जगह लेटिन अमेरिकी और अफ्रीकी देशों की ओर अधिक ध्यान दे।"

लेटिन अमेरिका राष्ट्रों के व्यापार को प्रोत्साहन देने के लए 1960 से **लेटिन अमेरिका मुक्त व्यापार संस्था भी** गठित की गई है, जिसके 11 देश सदस्य हैं। लेकिन वर्तमान अध्ययनों के अनुसार इसकी प्रभावशीलता कम होती जा रही है। 1967 में अर्जेन्टीना, ब्राजील, बोलिविया, पैराग्वाय और उरूग्ये आदि ने मिलकर **क्षेत्रीय संगठन** आर्थिक विकास के उद्देश्य से गठित किया है, जो 7 बहुराष्ट्रीय तथा 6 राष्ट्रीय परियोजनाओं पर कार्य कर रहा है और सफल भी हो रहा है।

8.11.3 खनिज अभाव–लेटिन अमेरिकी राष्ट्रों के प्राकृतिक साधन वहाँ की औद्योगिक शक्ति की सक्रियता को बनाये रखने के लिए काफी नहीं हैं। विश्व का केवल 1% कोयला लेटिन अमेरिका में पाया जाता है। केवल ब्राजील की ऐसी खनिज स्थिति है जहां औद्योगिक विकास हो सकता है।

8.11.4 जातिवाद–लेटिन अमेरिका राज्यों में अनेक जातियों एंव वर्णों के लोग रहते है, जिसमें किसी का भी सभी राज्यों या अधिकांश राज्यों मे प्रभुत्व नहीं है। क्षेत्रीय विश्लेषण करने पर वेस्ट इण्डीज और केरेबियन तट पर नीग्रो जाति का बाहुल्य है; जबकि मैक्सिको, मध्य अमेरिका और दक्षिण अमेरिका के भागों में रेड इण्डियन या वर्णसंकर की अधिकता है।

राष्ट्रीय जीवन में रेड इण्डियन और मैकिस्को (वर्णसंकर) जाति कुछ उदासीन रहती हैं, जबकि नीग्रो व गोरे लोग राजनीतिक जीवन में सक्रिय दिखाई देते हैं। सभी जातियाँ मिल–जुलकर रहती हैं और जातीय संघर्ष कम ही होते हैं। रेड इण्डियन यहाँ के मूल निवासी हैं और वे यूरोपीय जातियों में घुल–मिल नहीं पाते हैं, फिर भी वहाँ कोई जातीय असहिष्णुता भी नहीं है।

लेकिन साम्राज्यवादी शक्तियाँ अपने प्रभाव क्षेत्रों की वृद्धि के लिए लेटिन अमेरिका में विभिन्न राष्ट्रों को संहारक अस्त्र–शस्त्र प्रदान कर रही हैं तथा उनमें सैनिकीकरण की भावना को प्रोत्साहित कर रही हैं, जिससे उनमें परस्पर अविश्वास और प्रतिद्वन्द्विता का वातावरण बनता जा रहा है।

8.11.5 आतंकवादी गतिविधियाँ–गुरिल्ला गतिविधियों का आतंक लेटिन अमेरिका में पनप रहा है। सैनिक शासनों के बावजूद भी आतंकवादी गतिविधियाँ बढ़ती ही जा रही हैं। विद्वानों, व्यापारियों, राजनीतिज्ञों आदि का अपहरण करके लाखों डालर प्राप्त कर लिए जाते हैं। आतंकवादियों को मुक्त कराने के लिए भी कूटनीतिज्ञों आदि को गुरिल्ला गतिविधियों का निशाना बनाया जाता है।

8.11.6 लेटिन अमेरिका व संयुक्त राज्य अमेरिका–लेटिन अमेरिकी राष्ट्रों का संयुक्त राज्य अमेरिका से पड़ोसी देशों का सम्बन्ध है। लेटिन अमेरिकी राष्ट्रों ने जब सवतन्त्रता के लिये विदेशियों के विरूद्ध क्रान्ति की तो संयुक्त राज्य अमेरिका ने उनका समर्थन किया, अस्त्र–शस्त्रों की सहायता दी और उनकी आजादी के बाद वित्तीय एवं तकनीकी सहायता दी तथा बाह्य आक्रमणों से सुरक्षा का आश्वासन दिया। संयुक्त राज्य अमेरिका ने 'मुनरो सिद्धान्त' बनाकर भी घोषित किया कि लेटिन अमेरिकी राज्यों के मामले में किसी भी विदेशी हस्तक्षेप को सहन नहीं किया जायेगा और उसका लेटिन अमेरिकी राज्यों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। लेकिन विश्व के लोकतान्त्रिक एवं साम्यवादी देशों ने मुनरो सिद्धान्त की कटु आलोचना की और इसे अमेरिका का साम्राज्यवाद कहा। फलतः अमेरिकी राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने 'अमेरिकी भ्रातृत्व भावना' के विकास को प्रोत्साहन दिया और सुरक्षित अमेरिका साम्राज्यवाद का उदय हुआ। 1927 में संयुक्त राज्य ने राष्ट्रीय हितों के लाभ पर निकारागुआ में सैनिक हस्तक्षेप किया जिसको 'व्यक्तिगत युद्ध' कहकर निरादर किया गया। फलस्वरूप दोनों पक्षों में शान्तिपूर्ण समझौता हो गया।

8.11.7 अमरिकी भ्रातृत्व भावना–1928 में राष्ट्रपति हूवर ने लेटिन अमेरिकी राज्यों की यात्रा के दौरान आश्वासन दिया कि अमेरिका का उद्देश्य किसी राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करना नहीं है तथा किसी भी विवाद को बातचीत द्वारा सुलझा दिया जायेगा। इनके बाद फ्रेंकलिन रूजवेल्ट ने **अखिल अमरीकनवाद या अमरीका भ्रातृत्व भावना** को विकसित करने के लिए कई सम्मेलन भी आयोजित कराये। **ग्राहम स्टुअर्ट** के शब्दों में, "राजनीतिक क्षेत्र में पूर्ति करने के उद्देश्य से अमरीकी भ्रातृत्व सम्मेलनों का इक्कीस गणतन्त्रों के बीच सहयोग के अधिकारों के रूप में प्रयोग किया गया। इस प्रकार 21 देशों ने मुनरो सिद्धान्त में पुनः विश्वास प्रकट किया।"

8.11.8 भ्रष्ट राजनीति–जर्मन आर्सोनिगस ने कहा है, "लेटिन अमेरिका और राजनीतिक अस्थिरता पर्यायवाची है।" लेटिन अमेरिका में प्रारम्भ से ही गैर जनतांत्रिक आचरण, भ्रष्टाचार और राजनीतिक अस्थिरता व्याप्त रही है। राज्यों के

निवासी राजनीतिक दृष्टि से प्रबुद्ध नहीं हैं तथा धूर्त नेताओं द्वारा भड़का लिए जाते हैं। नेताओं की सामन्तवादी मनोवृत्त है और उनमें मतभेद हैं। इससे सेना के अधिकारी मौका देखते ही सत्ता हथिया लेते हैं। सैनिक तानाशाही यहाँ हमेशा पनपती रही है।

आस्टिलन मैकडोनाल्ड ने लिखा है, "अधिकांश लेटिन अमेरिकी राज्य कुछ नागरिकों और कर्नलों की सहायता से सैनिक जनरलों द्वारा शासित होते हैं। प्रत्येक राष्ट्रपति, चाहे वह सैनिक हो या नागरिक, जानता है कि वह उसी समय तक अपने पद पर बना रह सकता है जब तक सेना उसका समर्थन करती है। इस प्रकार लेटिन अमेरिका में सेनाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।"

इस प्रकार अपनी घरेलू परिस्थिति, आन्तरिक संघर्ष, सैनिक हस्तक्षेप तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रभाव के कारण यह क्षेत्र विश्व के मानचित्र पर अस्थिरता का विशाल एवं भयंकर क्षेत्र है। आज अपनी स्वतंत्रता के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए लेटिन अमेरिकी राज्य न केवल आत्मनिर्भर बनने का प्रयास कर रहे हैं, अपितु अफ्रीकी एवं एशियाई राष्ट्रों से निकट संबंध स्थापित करते जा रहे हैं। लेटिन अमेरिकी तीसरी दुनिया के राष्ट्रों के साथ मिलकर एक नई अर्थव्यवस्था लाने का प्रयास कर रहे है। अपनी क्षेत्रीय समस्याओं के समाधान के लिए एवं संयुक्त राष्ट्र संघ की निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने के लिए अपने मतभेदों के बावजूद एकजुटता दिखा रहे हैं और विभिन्न संगठनों की सहायता से लेटिन अमेरिकी देश स्वयं को आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास कर रहे हैं।

8.12 सारांश

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिकी राष्ट्रों का महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। द्वितीय महायुद्ध के बाद पश्चिमी शक्तियों का प्रभाव इन राष्ट्रों पर कम हो गया है। उपनिवेशवाद साम्राज्यवाद का अन्त हो गया है। एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका में नवीन सम्प्रभुता सम्पन्न राष्ट्रों की उत्पत्ति ने विश्व के मानचित्र तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को नई दिशा प्रदान की है। राष्ट्रों का आधिक्य तथा अपनी पहचान और राष्ट्रीय हितों को बनाये रखने की उनकी प्रतिबद्धता ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को नई दिशा प्रदान की है। दूसरे महाद्वीपों पर यूरोपीयन प्रधानता की समाप्ति ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को वास्तव में सर्वव्यापक बना दिया है।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. एशिया में जागरण के प्रमुख कारणों का विवेचन कीजिए।
2. अफ्रीका में जागरण की प्रमुख समस्याओं का उल्लेख कीजिए।
3. अफ्रीका में जागृति के प्रमुख कारकों का वर्णन कीजए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अफ्रीकी जागरण के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर प्रभाव को समझाईए।
2. लैटिन अमेरिका की प्रमुख समस्याओं का वर्णन कीजिए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. लैटिन अमेरिका के किन्हीं पाँच देशों के नाम लिखिए।
2. एशिया में जागरण के कोई दो प्रभावों को बताईए।

इकाई–9

शीत–युद्ध का अन्त

(End of Cold War)

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में शीत युद्ध का अर्थ, साधन, प्रभाव व शीत युद्ध के अन्त के कारणों का विवेचन किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :–

- शीत युद्ध का अर्थ, साधन समझ सकेंगे।
- शीत युद्ध के अन्त के लिए जिम्मेदार कारणों को समझ सकेंगे।
- शीत युद्ध के अन्त के अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर प्रभावों को समझ सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद द्वि ध्रुवीय विश्व व्यवस्था की स्थापना हुई। दुनिया दो गुटों में विभाजित हो गई, एक गुट का नेता संयुक्त राज्य अमेरिका था तो दूसरे गुट का नेता सोवियत संघ। दोनों देशों के बीच आपसी सम्बन्धों को शीत–युद्ध की संज्ञा दी जाती है। शीत–युद्ध एक ऐसी स्थिति थी जिसे 'उष्ण शक्ति' के रूप में जाना जाता है। ऐसी स्थिति में न तो पूर्णरूप से शान्ति रहती है और न ही वास्तविक युद्ध होता है। बल्कि शांति और युद्ध के बीच की अस्थिर स्थिति बनी रहती है।

शीत–युद्ध शब्द का प्रयोग पहली बार अमेरिका के राजनेता **बर्नाड बारूच (Bernald Baruch)** ने किया। **प्रो. लिपमैन (Prof. Lippman)** ने इसे लोकप्रिय बनाया। इसका प्रयोग अमेरिका और सोवियत संघ के बीच तनाव पूर्ण सम्बन्धों का अध्ययन करने के लिए किया गया। शीत–युद्ध वास्तव में कोई सशस्त्र संघर्ष नहीं वरन् प्रचारतंत्र (Propaganda Machine) एवं कूटनीति (Diplomacy) के माध्यम से लड़ा गया। इसमें एक पक्ष युद्ध के उपकरणों के अतिरिक्त अन्य सभी साधनों से दूसरे पक्ष को हतोत्साहित करके अपने राष्ट्रीय हितों की अभिवृद्धि पर बल देता था। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शीत–युद्ध ने दूषित राजनीतिक, आर्थिक व वैचारिक प्रतियोगिता प्रारंभ करके विचारधारा संबंधी मतभेद तथा सामाजिक एवं राजनीतिक नीतियों में भी परस्पर विरोध की जड़ों को गहरा व मजबूत कर दिया। फलतः ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई, जिसमें प्रत्येक देश दूसरे देश को हीन एवं विभाजित करने का प्रयास करने लगा। दोनों देश अपने–अपने खेमों को मजबूत करने के लिए मनोवैज्ञानिक युद्ध व प्रचार द्वारा मित्र बनाने और दूसरे के विरूद्ध सुरक्षा समझौते के माध्यम से अपने मित्र व सहयोगी देशों के साथ सैनिक गठबन्धन बनाने लगे।

इस प्रकार शीत–युद्ध में एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर बिना बमों और बन्दूकों की लड़ाई के केवल प्रचार माध्यमों, कागजी बमों तथा अन्य प्रकार के मनोवैज्ञानिक तरीके अपनाकर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न करता है। इस युद्ध में विचारों की लड़ाई होती है, जो पक्ष अपने विचारों को दूसरे पक्ष से श्रेष्ठ तरीके से प्रस्तुत कर देता है, वही विजयी होता है। एक ओर साम्यवादी देश सोवियत संघ द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् यह प्रचार करने लगा कि अमरीका साम्राज्यवादी देश है और साम्राज्यवादी विचारधारा विश्व के लिए अभिशाप है तो दूसरी ओर पूँजीवादी देश अमरीका यह प्रचार करने लगा कि सोवियत संघ एक साम्यवादी देश है और साम्यवादी विचारधारा विश्व शान्ति तथा राष्ट्रों की शान्ति के लिए खतरा है। इस प्रकार दोनों पक्ष एक–दूसरे पर आरोप लगाकर अपने पक्ष को सही सिद्ध करना चाहते हैं। शीत–युद्ध को पं. नेहरू ने "दिमाग का युद्ध, एक स्नायु युद्ध (Nerves War) तथा एक प्रचार युद्ध" कहा है। शीतयुद्ध वास्तव में युद्ध के नर–संहारक दुष्परिणामों से बचते हुए युद्ध द्वारा प्राप्त होने वाले समस्त उद्देश्यों को प्राप्त करने का नवीन अस्त्र है। यह एक कूटनीतिक युद्ध है जिसमें विपक्षी देश को विश्व राजनीति में अलग–थलग करने का प्रयास किया जाता है।

9.2 शीत–युद्ध के साधन

9.2.1 प्रचार :– शीत–युद्ध का प्रमुख साधन प्रचार है। इसे वाक् युद्ध भी कहा जाता है। प्रचार माध्यमों से शत्रु राष्ट्र के प्रति घृणा फैलाना, अपने राष्ट्रीय आदर्शों के प्रति निष्ठा बनाये रखना आदि।

9.2.2 शक्ति प्रदर्शन :– अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए शत्रु को भयभीत करना।

9.2.3 अपने समर्थक बढ़ाना :– निर्बल और निर्धन राष्ट्रों को आर्थिक और सैन्य सहायता देकर अपने गुट में सम्मिलित करना।

9.2.4 जासूसी करना :– दोनों पक्षों के लोग एक–दूसरे के सैनिक शक्ति का जासूसी द्वारा पता लगाना चाहते है। U-2 विमानकाण्ड इसका प्रमाण है।

9.2.5. कूटनीति :– दोनों पक्ष कूटनीतिक साधनों से एक–दूसरे पक्ष को निर्बल करना चाहते है।

9.3 शीत–युद्ध के प्रभाव

9.3.1 भय एवं सन्देह का वातावरण–महाशक्तियों के आपसी टकराव के कारण विश्व समुदाय के देशों मे एक–दूसरे के प्रति निरन्तर भय एवं सन्देह का वातावरण बना रहा। इस प्रतिकूल वातावरण ने अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में सहयोग एवं विश्वास उत्पन्न करने में अनेक बाधाएँ खड़ी की।

9.3.2 शस्त्रों की होड़ एवं निशस्त्रीकरण की असफलता–शीत–युद्ध के कारण अधिकांश देशों ने अपनी सीमाओं की सुरक्षा के लिए शस्त्राशस्त्रों के भण्डार भरने आरम्भ किये। फलस्वरूप शस्त्रास्त्रों के निर्माण का अपार खर्चा सहन करने के बाद लोक कल्याणकारी कार्यक्रमों के सम्पादन पर प्रतिकूल असर पड़ा। शस्त्रास्त्रों का भण्डार जामा करने की होड़ से निशस्त्रीकरण प्रयास का विफल हो गय।

9.3.3 सैनिक एवं प्रादेशिक संगठनों का गठन–शीत–युद्ध के प्रारम्भिक काल में गरीब मुल्कों ने महाशक्तियों द्वारा प्रवर्तित सैनिक एवं प्रादेशिक संगठनों जैसे नाटो, सेन्टो, सिएटो एवं वारसा पैक्ट में शामिल होकर सुरक्षा चाही।

9.3.4 विश्व का दो गुटों में विभाजन व गुट–निरपेक्ष आन्दोलन का आरम्भ–शीत–युद्ध के कारण अमरीका और रूस के नेतृत्व में अर्न्तराष्ट्रीय समाज अनेक मामलों पर दो गुटों में बँट गया। इन गुटों के नेता देश अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए दूसरों की आड़ में शासन चलाते रहे। आरम्भ में भारत, मिस्त्र और यूगोस्लाविया ने महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा में किसी एक की तरफदारी करने से साफ इन्कार कर गुट निरपेक्ष नीति अपनायी। बाद में इसका तीसरी दुनिया के अनेक देशों में अनुसरण किया।

9.3.5 संयुक्त राष्ट्र संघ का अवमूल्यन–विश्व शान्ति एवं सुरक्षा के दृष्टिकोण से 1945 में स्थापित संयुक्त राष्ट्र संघ में महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा में उसके प्रभावशाली कार्य में अनेक अड़ंगे उत्पन्न हुए। यह संगठन उनकी राजनीति का अखाड़ा बन गया। इस विश्व संगठन में भी अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय गुटबाजी के चंगुल से अछूता न रहा। दोनों महाशक्तियों ने अपनी हठधर्मिता के कारण वीटो का दुरूपयोग किया। अमरीका ने चीन और वियतनाम द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ में सदस्या पाने के सवाल पर वीटो का इस्तेमाल कर उनके प्रवेश को अनेक वर्षों तक रोके रखा।

9.3.6 अनेक देशों में राजनीतिक अस्थिरता–विश्व के अन्य भागों में अपने–अपने राजनीतिक एवं आर्थिक स्वार्थों के कारण महाशक्तिों ने परोक्ष एवं अपरोक्ष हस्तक्षेप द्वारा वहाँ की मौजूदा सरकारों को बदलने का असफल एवं सफल प्रयास किया। इससे अनेक देशों में राजनीति अस्थिरता का वातावरण बना रहा।

9.4 शीत–युद्ध का अन्त

नब्बे के दशक में अमेरिका और सोवियत संघ के बीच शीत–युद्ध में शिथिलता आई। दोनों देशों ने शस्त्रीकरण की प्रतिस्पर्धा को समाप्त करने के लिए अनके सामूहिक प्रयास किये, इस उद्देश्य की पूर्ति कि लिए अमरीकी विदेश मन्त्री **जॉर्ज शुल्ट्ज** और सोवियत विदेश मन्त्री **आन्द्रेई गोमिको** की भेंट जनवरी 1985 में हुई, जिसने गार्बाच्योव–रीगन शिखर बैठक नवम्बर 1985 का आधार तैयार कर दिया। यह औपचारिक शुरूआत थी। इसके बाद दोनों देशों ने 1987 में INF सन्धि तथा 1990 में START सन्धि पर हस्ताक्षर किये। दोनों देशों ने आपसी सम्बन्धों तथा सहयोग को बढ़ाने की दिशा में कार्य आरम्भ किया। जिससे शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व और सहयोग की सम्भावना प्रबल हुई। सोवियत रूस में गोर्बाच्योव द्वारा पेरेस्ट्रोइका (Peredtroika) ग्लासनोस्ट (Glasnost) की शुरू की गयी प्रक्रिया के फलस्वरूप पूर्वी यूरोप के देशों–पोलैण्ड, चैकोस्लोवाकिया, रूमानिया, बुल्गारिया तथा पूर्वी जर्मनी की राजनीतिक व्यवस्थाओं में बहुत परिवर्तन आ गया। इससे ये देश पश्चिमी यूरोप के देशों के निकट आ गये। सभी यूरोपीय देशों में सहयोग का वातावरण बना। पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी मिलकर एक हो गये और दोनों को बाँटने वाली बर्लिन की दीवार गिरा दी गयी। सोवियत संघ अफगानिस्तान से हट गया। सोवियत संघ तथा समाजवादी गुट का विघटन हो गया। शीत–युद्ध गठबन्धन की राजनीति, शस्त्रीकरण, परमाणु शस्त्र निवारण, आतंक के सन्तुलन का स्थान, दितान्त शान्ति, सुरक्षा, विकास, वातावरण की सुरक्षा, निःशस्त्रीकरण ने ले लिया। गोर्बाच्योव के पेरेस्ट्रोइका तथा ग्लासनोस्ट ने शीत–युद्ध को समाप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी।

9.5 शीत–युद्ध का अन्त : प्रमुख समझौते एवं घटनाएँ

शीत–युद्ध की समाप्ति की दिशा में निम्नलिखित समझौते, शिखर वार्ताएं और घटनाक्रम उल्लेखनीय है–

9.5.1 जेनेवा वार्ता (नवम्बर 1985)–जेनेवा में दो महारथी रीगन और गोर्बाच्योव मिले। दो दिन (19 एवं 20 नवम्बर, 1985) तक उनके बीच निजी और गोपनीय बातचीत चली। दोनो महाशक्तियों के बीच छह वर्ष बाद बातचीत हुई। जेनेवा शिखर वार्ता में दोनों महाशक्तियों के नेता जिन मुद्दों पर सहमत हुए, वे इस प्रकार है :

1. परमाणु युद्ध कभी नहीं लड़ा जाना चाहिए। कोई भी एक पक्ष अपना सैनिक वर्चस्व कायम करने की कोशिश नहीं करेगा।
2. हथियारों की होड़ पर काबू पाने के लिए दोनों पक्ष वार्ता की ओर तेजी से आगे बढ़ायें तथा दोनों पक्ष अपने–अपने परमाणु हथियारों के जखीरे में 50 प्रतिशत कमी करें।

3. दोनों पक्ष 1968 की परमाणु अप्रसार सन्धि की पुनः पुष्टि करें और अपील करें कि अधिकाधिक देश इस पर हस्ताक्षर कर दें।
4. रासायनिक हथियारों पर पूर्ण प्रतिबन्ध हो।
5. यूरोप में सेनाओं के मामले पर वियेना वार्ता को महत्त्व किया जाये।
6. बल प्रयोग को वर्जित करने के लिए दस्तावेज तैयार किया जाये।
7. दोनों पक्ष सांस्कृतिक, शैक्षिक, वैज्ञानिक और आर्थिक सम्बन्धों को प्रगाढ़ करें।
8. गोर्बाच्योव अमरीका की और रीगन सोवियत संघ की यात्रा करें।
9. सोवियत संघ न्यूयार्क में और अमरीका कीव में साथ–साथ अपना वाणिज्य दूतावास खोलें।

9.5.2 रीगन–गोर्बाच्योव शिखर वार्ता (11–12 अक्टूबर, 1986)– 11–12 अक्टूबर, 1986 को रिकजाविक (आइसलैण्ड) में अमरीकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन तथा सोवियत नेता मिखाइल गोर्बाच्योव के बीच दो दिन की शिखर वार्ता सम्पन्न हुई। 'स्टारवार्स' पर रीगन के अड़े रहने से शिखर वार्ता विफल हो गयी। रिकजाविक से रवाना होने के पूर्व रीगन ने कहा कि स्टारवार्स कार्यक्रम को प्रायोगिक शोध एवं परीक्षण तक सीमित रखने का सोवियत प्रस्ताव उन्हें मान्य नहीं, जबकि गोर्बाच्योव ने कहा कि यदि वे सोवियत संघ को सामरिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण आणविक अस्त्रों से वंचित कर अमरीका को अन्तरिक्ष मे हथियार तैनात करने की छूट दे देते तो वह 'पागल' ही कहलाते। इस प्रकार आपसी मतभेद के कारण यह वार्ता सफल नहीं हो पायी।

9.5.3 सोवियत संघ–अमरीका शिखर वार्ता तथा आई.एन.एफ. सन्धि पर हस्ताक्षर (8–10 दिसम्बर, 1987)–सोवियत संघ के नेता गोर्बाच्योव अमरीकी राष्ट्रपति रीगन के बीच 8–10 दिसम्बर, 1987 में वार्ता हुई। यह तीसरी शिखर वार्ता थी। दोनों नेताओं ने 9 दिसम्बर, 1987 को एक ऐतिहासिक सन्धि पर हस्ताक्षर किये। इसे **आई.एन.एफ. सन्धि** कहा जाता है। सन्धि का मूल पाठ दो सौ पृष्ठों का है। सन्धि मे दोनों देश मध्यम व कम दूरी के प्रक्षेपास्त्र नष्ट करने को सहमत हो गये। इस सन्धि से कुल मिलाकर 1,139 परमाणु हथियार नष्ट किये जाने की बात तय हुई।

9.5.4 रीगन–गोर्बाच्योव शिखर वार्ता (1 जून, 1988)–1 जून, 1988 को मास्को में रीगन व गोर्बाच्योव के बीच वार्ताओं के चार दौर हुए। दोनों देशों के विदेश मन्त्रियों ने भूमिगत परमाणु विस्फोटों पर पाबन्दी की साझा जांच से सम्बन्धित एक समझौते पर हस्ताक्षर किये। इसके अतिरिक्त, अन्तरमहाद्वीपीय बैलिस्टिक मिसाइलों के प्रक्षेपण पर एक–दूसरे को सूचना देने सम्बन्धी समझौते पर भी हस्ताक्षर हुए। सोवियत सांस्कृतिक मन्त्री **जोखारोफ** और अमरीकी सूचना एजेन्सी के निदेशक **श्री विक** ने 1989–91 के लिए आपसी सहयोग और विनिमय सम्बन्धी कार्यक्रम पर हस्ताक्षर किये। इसके तहत् दोनों देश एक–दूसरे के बीच सांस्कृतिक सम्बन्ध बढ़ाने हेतु कार्यवाही करने के लिए सहमत हुए।

9.5.5 प. जर्मनी के चांसलर की मास्को यात्रा–24–27 अक्टूबर, 1988 को प. जर्मनी के चांसलर **हेलमुट कोल** ने मास्को की यात्रा की। इस यात्रा से यह प्रकट होता है कि पश्चिमर यूरोप के देश सोवियत संघ तथा व्यक्तिशः गोर्बाच्योव से अपना सम्बन्ध स्थापित करने को एक प्रकार की गौरव की भावना से देखने लगे। इसी यात्रा के दौरान प. जर्मनी और सोवियत संघ की सरकारों के मध्य छः समझौते हुए तथा तीस व्यावसायिक ठेके दिये गये। प. जर्मनी की तकनीकी प्रतिभा व साधन सोवियत संघ की आर्थिक 'पेरोस्त्रोइका' की सफलता के लिए क्रियाशील हो सकेंगे।

9.5.6 सोवियत संघ व यूरोपीय आर्थिक समुदाय में समझौता–दिसम्बर, 1989 को सोवियत विदेश मन्त्री शेवर्दनात्से ब्रुसेल्स नाटो मुख्यालय पर गये और राजदूतों की परिषद् से भेंट की। उन्होंने यूरोपीय आर्थिक समुदाय के साथ एक 10–वर्षीय समझौते पर हस्ताक्षर किये। यूरोपीय आर्थिक समुदाय के साथ हुए समझौते के अन्तर्गत सोवियत संघ व समुदाय के देशों के बीच विभिन्न वस्तुओं में व्यापार बढ़ाने पर सहमति हो गयी।

9.5.7 बर्लिन की दीवार का ध्वस्त होना–यूरोप में बर्लिन की दीवार शीत–युद्ध का कलुषित प्रतीक थी। 9 नवम्बर, 1989 को बर्लिन को दो भागों में बांटने वाली दीवार ध्वस्त कर दी गयी। पूर्वी जर्मनी से लोग बिना किसी रोक–टोक के पश्चिमी जर्मनी जाने लगे। इस घटना का सोवियत संघ की ओर से कोई प्रतिरोध नहीं किया गया।

9.5.8 जर्मनी का एकीकरण–1 जुलाई, 1990 को दोनों जर्मनी का आर्थिक एकीकरण हो गया। 15–16 जुलाई, 1990 का पश्चिमी जर्मनी के चांसलर हेल्मुट कोल ने सोवियत राष्ट्रपति गोर्बाच्योव से भेंट की। बाद में एक पत्रकार सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए सोवियत राष्ट्रपति ने कहा कि जर्मनी का एकीकरण निश्चित है, सोवियत संघ जर्मनी से निकट सम्बन्ध चाहता है और यह जर्मनी की इच्छा पर है कि वह नाटो या वारसा पैक्ट में शामिल हो। इस प्रकार सोवियत संघ ने जर्मनी के एकीकरण को हरी झण्डी दिखा दी। 3 अक्टूबर, 1990 को जर्मनी का एकीकरण हो गया जिसके साथ ही यूरोप में शीत–युद्ध की गन्दगी साफ हो गयी।

9.5.9 नाटो द्वारा शीत–युद्ध समाप्ति की घोषणा–5–6 जुलाई, 1990 को लन्दन में दो–दिवसीय नाटो शिखर सम्मेलन में राष्ट्रपति बुश ने ऐतिहासिक घोषणा करते हुए कहा कि नाटो व वारसा पैक्ट देशों के बीच शीत–युद्ध अब समाप्त हो चुका

है। सोवियत संघ की आशंकाओं को दूर करने के लिए नाटो घोषणा में कहा गया कि जर्मनी से सैनिकों की तादाद कम कर दी जाएगी, जैसे–जैसे सोवियत संघ पूर्वी यूरोप से अपनी सेनाएं हटाएगा, नाटो भी पश्चिमी जर्मनी से परमाणु प्रक्षेपास्त्र हटा लेगा। पश्चिम जर्मनी ने सोवियत संघ को आश्वासन दिया कि वह एकीकरण के बाद अपनी सेना आधी कर देगा। नाटो देशों में वारसा पैक्ट के देशों के सामने एक अनाक्रमण घोषणा के साथ परमाणु शस्त्रों को खत्म करने का प्रस्ताव रखा।

9.5.10 हेलसिंकी में गोर्बाच्योव–बुश वार्ता–8–9 सितम्बर, 1990 को हेलसिंकी में राष्ट्रपति बुश व गोर्बाच्योव के बीच बातचीत हुई। दोनों नेताओं ने इराक द्वारा कुवैत पर आक्रमण की निन्दा की और कहा कि वे सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव का पूर्णतः समर्थन करते हैं। दोनों शासनाध्यक्षों ने विश्व समुदाय से संयुक्त राष्ट्र प्रतिबन्धों को कारगर बनाने में सहयोग करने की अपील की। इस शिखर वार्ता में यह तथ्य स्पष्ट हुआ कि दोनों सुपर पॉवर–अमरीका और सोवियत संघ इस बात पर एकमत हैं कि इराक बिना शर्त कुवैत से वापस हो जाये तथा संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के सभी प्रस्तावों का अनुपालन करे। सोवियत संघ ने इराक को शस्त्रों की आपूर्ति बन्द कर दी तथा कुवैत की स्वतन्त्रता एवं सम्प्रभुता को बहाल करने की मांग की।

9.5.11 जर्मनी व सोवियत संघ के बीच मैत्री सन्धि–जर्मनी व सोवियत संघ के बीच 9 नवम्बर, 1990 को बॉन में एक ऐतिहासिक अनाक्रमण व मैत्री सन्धि पर हस्ताक्षर हुए। सोवियत संघ की ओर से इस सन्धि पर राष्ट्रपति गोर्बाच्योव ने व जर्मनी की ओर से चांसलर हेल्मुट कोल ने हस्ताक्षर किये। सन्धि में कहा गया कि दोनों देश आपसी मैत्री को बढ़ावा देंगे और आपस में उत्पन्न किसी भी विवाद को केवल शान्ति से हल करेंगे। आपसी तनाव को कम करने के लिए सन्धि में कहा गया कि कोई भी पक्ष सैनिकवाद को बढ़ावा नहीं देगा। सन्धि पर हस्ताक्षर करने के बाद सोवियत राष्ट्रपति गोर्बाच्योव ने कहा कि इस सन्धि के साथ यूरोप में एक नये युग की श्पाुरूवात होगी। अब यूरोप में शीत–युद्ध समाप्त हो चुका है और सब देशों को शान्ति से रहने का पूरा अवसर प्राप्त है।

9.5.12 वारसा पैक्ट समाप्त–शीत–युद्ध के दिनों में नाटो के प्रत्युत्तर में सोवियत संघ के नेतृत्व में वारसा पैक्ट का 9 मई, 1955 को निर्माण किया गया। इस संगठन के जरिए सोवियत संघ पूर्वी यूरोपीय देशों में एकछत्र प्रभाव–क्षेत्र कायम कर सका था। वारसा सन्धि के अनुच्छेद 5 के अन्तर्गत एक संयुक्त सैनिक कमान बनायी गयी जिसका मुख्यालय मॉस्को में था। शीत–युद्ध की समाप्ति के माहौल में 1 जुलाई, 1991 को वारसा पैक्ट समाप्त कर दिया गया।

9.5.13 अफगान समझौता–12 सितम्बर, 1991 को मॉस्को में सोवियत संघ तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में इस आश्य का समझौता हुआ कि दोनों इस देश को सैन्य सामग्रियों की आपूर्ति बंद कर देंगे। इस प्रकार दोनों महाशक्तियों ने अफगानिस्तान में शान्ति बहाल करने की गारंटी दी।

9.5.14 सोवियत संघ का पतन–26 दिसम्बर, 1991 को सोवियत संघ की सुप्रीम सोवियत ने सोवियत संघ को समाप्त किये जाने का प्रस्ताव पारित कर दिया और स्वयं को भंग होने की घोषणा कर दी। सोवियत संघ के अस्तित्व के समाप्त होने के साथ ही शीत–युद्ध का पूर्णतः अन्त हो गया।

9.6 शीत–युद्ध के कारण

1990 के दशक में उत्पन्न हुए अनेक कारणों ने शीत–युद्ध का अन्त कर दिया हैं। इसकी समाप्ति के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे–

9.6.1 गोर्बाच्योव की नितियाँ–गोर्बाच्योव ने दिसम्बर, 1987 में कम और मध्यम दूरी तक मार करने वाले प्रक्षेपास्त्रों को नष्ट करने वाली **आई.एन.एफ.** संधि पर हस्माक्षर किये। उन्होंने अस्त्रों और सेनाओं की एकतरफा कटौती की घोषणा की। उनकी **'ग्लासनोस्त'** और **'पेरेस्त्रोइका'** की नीतियों ने राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में नयी व्यवस्था का सूत्रपात किया। सोवियत संघ ने गोर्बाच्योव के नेतृत्व में जिस उदार, सौम्य तथा समझौतावादी कूटनीति का आश्रय लिया उसने विश्व राजनीति में आमूल–चूल परिवर्तन ला दिया। इसी के परिणामस्वरूप पूर्वी यूरोप के साम्यवादी खेमे में स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र की हवा बहने लगी, जिसका गोर्बाच्योव ने समर्थन किया। इसी के परिणामस्वरूप सोवियत संघ का विघटन हुआ। सोवियत संघ के विघटन और वारसा पैक्ट की समाप्ति के बाद से शीत–युद्ध समाप्त हो गया।

9.6.2 साम्यवादी देशों में लोकतंत्र और बाजार अर्थव्यवस्था–सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप के देशों ने विकास का साम्यवादी मॉडल अपनाया था। उसकी मुख्य विशेषता सर्वाधिकारवादी दल तथा केन्द्रीकृत आदेशित अर्थव्यवस्था थी। 1989–90 में पूर्वी यूरोप के देशों ने स्वतन्त्र निर्वाचन वाली बहुदलीय लोकतान्त्रिक प्रणाली के साथ–साथ बाजार अर्थव्यवस्था को भी अपना लिया। 1990 में सोवियत संघ ने भी साम्यवादी पार्टी पर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा मुक्त बाजार व्यवस्था को अपना लिया। ऐसे परिवर्तन के दौर में शीत–युद्ध का अन्त एक स्वाभाविक घटना थी।

9.6.3 सोवियत संघ की आर्थिक मजबूरियाँ–1980 के दशक में अन्तरिक्ष अनुसन्धान की प्रतिस्पर्धा और शस्त्र निर्माण पर अत्यधिक धन खर्च होने से सोवियत संघ की अर्थव्यवस्था चरमरा गयी। ऐसी स्थिति में उसकी पश्चिमी देशों से शीत–युद्ध

की प्रतिस्पर्द्धा को जारी रखने की सामर्थ्य जाती रही। इस आर्थिक विवशता ने सोवियत संघ को शीत–युद्ध को समाप्त करने के लिए मजबूर कर दिया।

9.6.4 शिखर वार्ताएँ–सोवियत संघ और अमेरिका के नेताओं की विभिन्न शिखर वार्ताओं तथा अनेक निःशस्त्रीकरण समझौतों व घोषणाओं ने शीत–युद्ध को समाप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

9.6.5 सोवियत संघ का बिखराव–खाड़ी संकट में सोवियत संघ के निष्क्रिय समर्थन से उसकी महाशक्ति की प्रतिष्ठा समाप्त हो गयी। इसकी चरम परिणति तब हुई जब गोर्बाच्योव ग्रुप–7 की लंदन बैठक में जाकर पश्चिमी आर्थिक मदद जुटाने में विफल रहे। फलस्वरूप सोवियत संघ के अनेक गणराज्यों ने अपनी स्वायत्तता की माँगें रखनी प्रारम्भ कर दीं और दिसम्बर, 1991 तक समूचा सोवियत संघ बिखर कर अलग–अलग हो गया।

9.6.6 यूरोप में बदलाव–यूरोप की सोच मे कुछ बदलाव ऐसे आये–जर्मनी की बर्लिन दीवार टूटना, पौलेण्ड में राजनीतिक कट्टरता की कमी, चेकोस्लोवाकिया तथा युगोस्लाविया में बन्धुत्व की भावना का विकास आदि। इन सबसे शीत–युद्ध में कमी आयी।

इसके अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक निर्णयों जैसे जर्मनी का एकीकरण, वारसा पैक्ट की समाप्ति, स्टार्ट संधि तथा अफगान समझौता आदि ने शीत–युद्ध के विरूद्ध वातावरण तैयार कर दिया था।

9.7 शीत–युद्ध क अन्त का अन्तर्राष्टीय राजनीति पर प्रभाव

शीत–युद्ध के अन्त का अन्तर्राष्टीय राजनीति पर निम्नलिखित प्रभाव पड़े –

9.7.1 एक–ध्रुवीय विश्व की स्थापना–शीत–युद्ध के अन्त के साथ ही सोवियत संघ का अस्तित्व भी समाप्त हो गया। **26 दिसम्बर, 1991** को सोवियत संघ की सुप्रीम सोवियत ने अपने अन्तिम अधिवेशन में सोवियत संघ को समाप्त किये जाने का प्रस्ताव पारित कर दिया और स्वयं के भंग होने की घोषण कर दी। अब विश्व में एकमात्र महाशक्ति–संयुक्त रात्य अमेरिका–ही रह गया। वह विश्व का एकमात्र पुलिसमैन, दादा तथा महानायक बन गया है, उसका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। अब उसे कोई चुनौती नहीं दे सकता। खाड़ी युद्ध में अमेरिकी विजय ने इसे स्पष्ट कर दिया है। आज अमेरिका किसी भी देश को आदेश दे सकता है और आदेश न मानने पर उसे दण्डित कर सकता है। वह राष्ट्रों पर दबाब डालकर उन्हें अपनी नीतियां बदलने के लिए मजबूर करने की स्थिति में है। संयुक्त राष्ट्र संघ, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक जैसी वित्तीय संस्थाएं आज उसकी मुट्ठी में हैं।

9.7.2 बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था–शीत–युद्ध काल में सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप के देशों ने पूंजीवाद के विरूद्ध साम्यवादी अर्थव्यवस्था के निर्माण का प्रयास किया था, किन्तु शीत–युद्ध की समाप्ति के वातावरण में उनका यह प्रयास असफल हो गया और पूर्वी यूरोप के साम्यवादी देशों ने तथा स्वयं सोवियत संघ ने लोकतंत्र और बाजारोन्मुखी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की ओर अपने कदम बढ़ा दिये। इस प्रकार शीत युद्ध की समाप्ति के बाद त्वरित आर्थिक विकास के लिए दुनिया के अधिकांश देशों ने बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था का सिद्धान्त अपना लिया है। इसकी विशेषताएँ हैं–मुक्त व्यापार, खुली प्रतियोगिता, स्वतंत्र प्रतियोगिता, स्वतंत्र समझौते, बाजार तथा उपभोक्तावाद तथा आर्थिक क्षेत्र में राज्य का कम से कम नियंत्रण। इसके परिणामस्वरूप विश्व में भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया जारी है। राष्ट्रीय संप्रभुताएं एक तरह से सीमाविहीन होने लगी है।

9.7.3 आर्थिक कारकों की निर्धारक भूमिका–शीतयुद्धकालीन विश्व व्यवस्था के निर्धारक तत्व सैनिक कारक थे, लेकिन शीतयुद्धोत्तर विश्व व्यवस्था मे इनका स्थान आर्थिक कारकों ने ले लिया है। आज दुनिया में अमरीका एवं रूसी हथियारो के टकराव के स्थान पर 'डालर', 'पाउण्ड', 'यूरो' तथा 'येन' आपस में टकरा रहे है। नाटो, वारसा, सीटो, सेन्टो जैसे सैन्य संगठन अब अपनी प्रासंगिकता खो चुके हैं। आज तो आर्थिक गुटबन्दी का बोलबाला है, जहाँ **गैट, आसियान, एपेक** आदि आर्थिक संगठनों को नया रूप दिया जा रहा है, वहीं **नाफ्टा, साफ्टा, बिमस्टेक, जी–15, जी–24, जी–4** जैसे नये आर्थिक गुट उभरकर सामने आ रहे हैं।

9.7.4 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के तनाव केन्द्रों में कमी आई तथा संकटपूर्ण समस्याओ का हल खोजना आसान हुआ–शीत युद्ध की समाप्ति के वर्षों (1985–1991) में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के तनाव केन्द्रों में कमी आयी और कतिपय संकटपूर्ण समस्याओं का हल खोजना आसान हुआ। ईरान–इराक युद्ध की समाप्ति (1988), अफगान समस्या के समाधान (1988), नामीबिया की स्वतंत्रता (1988), कुवैत को मुक्त कराने (1991) में संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवयित संघ ने मिल–जुल कर कार्य किया और संयुक्त राष्ट्र संघ प्रभावी भूमिका अदा कर सका। खाड़ी संकट के दिनों में राष्ट्रपति बुश और गोर्बाच्योव में गजब की सहमति देखी गयी।

पश्चिमी एशिया शान्ति वार्ता का महौल तैयार करने में सोवियत संघ ने अमरीका को पूर्ण सहयोग दिया। शान्ति वार्ता में भाग लेने के लिए सीरिया को राजी करने में सोवियत पहल काफी सहायक सिद्ध हुई।

9.7.5 निःशस्त्रीकरण की दिशा में पहल–शीत युद्ध की समाप्ति वाले परिवेश में ही दोनों महाशक्तियों के मध्य **आई.एन. एफ. संधि** पर हस्ताक्षर संभव हो सके। यह संधि टकराव को शांति में, विरोध को सहयोग में तथा सन्देह को विश्वास में बदलने का प्रयास रहा। इसी के परिणामस्वरूप 1990 में वारसा व नाटो के देशों ने शीत युद्ध की समाप्ति की संधि पर हस्ताक्षर कर दिये तथा जुलाई, 1991 में नाटो को छोड़कर वारसा व अन्य सैन्य संधियां समाप्त कर दी गई। जुलाई, 1991 में ही दोनों महाशक्तियों ने **स्टार्ट–1** संधि पर हस्ताक्षर कर दिये। जनवरी, 1993 में अमरीका तथा रूस के शासनाध्यक्षों ने **स्टार्ट–2** संधि पर हस्ताक्षर कर दोनों देशों ने परमाणु हथियारों में दो–तिहाई कटौती को स्वीकार कर लिया। 13 जनवरी, 1993 को रासायनिक हथियार निषेध संधि पर 160 देशों ने हस्ताक्षर किये जिसे 29 अप्रेल, 1997 से लागू किया गया।

9.7.6 सोवियत संघ को आर्थिक संकट से उबारने पश्चिमी देश आगे आए–शीत युद्ध समाप्ति के बाद सोवियत संघ को आर्थिक संकट से उबवारने के लिए पश्चिमी देश आगे आये। सोवियत संघ की मदद के लिए 1991 में उसे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक का सदस्य बना दिया गया। इसके अलावा जी–7 ने सोवियत संघ में यातायात, कानूनी एवं बैंकिंग प्रणाली स्थापित करने तथा ऊर्जा एवं खाद्य उत्पादन बढ़ाने में पूरी–पूरी सहायता देने का वचन दिया।

9.8 सारांश

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शीत युद्ध की समाप्ति एक युगान्तरकारी घटना मानी जाती है। सोवियत संघ के विघटन साथ ही शीत युद्ध का प्रभाव भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कम हो गया। लोकतन्त्र और उदारीकरण का प्रभाव बढ़ गया क्षेत्रीय झगड़ों में महाशक्तियों का हस्तक्षेप कम हो गया। विकास एवं सुरक्षा की धारणा ने शांतिपूर्ण ढ़ंग से झगड़ें वाले मुद्दों को सुलझाने के लिए दोनों महाशक्तियों को बहुत समीप ला दिया। सोवियत संघ में गोर्बाच्योव के नेतृत्व में हुए विशेष परिवर्तनों ने उदारवाद, विकेन्द्रीकरण एवं अन्य माध्यमों से एक विशेष खुलापन ला दिया। इसने अमेरिका तथा पश्चिमी देशों के साथ सम्बन्धों को मित्रतापूर्ण एवं सहयोगात्मक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए महत्त्वपूर्ण वातावरण बना दिया और दूसरी तरफ दिसम्बर, 1991 में सोवियत संघ के विघटन का रास्ता प्रशस्त किया।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. शीत युद्ध से क्या अभिप्राय है ? शीत युद्ध के अन्त के प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।
2. शीत युद्ध के अन्त का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ा, समझाईए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. शीत युद्ध के प्रमुख साधनों का वर्णन कीजिए।
2. शीत युद्ध के प्रभावों को संक्षेप में बताईए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. शीत युद्ध को परिभाषित कीजिए।
2. शीत युद्ध के अन्त से क्या अभिप्राय हैं ?
3. ग्लास्नोस्त एवं पेरेस्त्रोइका का क्या अर्थ हैं ?

इकाई–10

शीत युद्धोत्तर मुद्दे

(Post Coldwar Issues)

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में शीतयुद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रमुख मुद्दों एवं नवीन प्रवृत्तियों का विवेचन किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :–

- शीत युद्ध के अन्त का प्रभाव समझ सकेंगे।
- शीत युद्ध के अन्त के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में आये परिवर्तनों को जान सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था निरन्तर परिवर्तनशील है। इसमें 20वीं शताब्दी में प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर 1919 में, द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर 1945 में और सोवियत संघ के विघटन पर 1991 में मौलिक परिवर्तन आये हैं। खाड़ी युद्ध की समाप्ति पर अमरीकी राष्ट्रपति बुश ने नयी विश्व व्यवस्था (New world order) की स्थापना का स्पष्ट संकेत दिया था। 1991 से 2001 में ऐसी घटनाएँ घटीं की द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की विश्व व्यवस्था पुरानी लगने लगी। शीतयुद्ध की समाप्ति और पूर्वी यूरोप में सोवियत संघ का प्रभावहीन होना, इराक द्वारा कुवैत पर कब्जा (1990) जिसे अमरीका द्वारा मुक्त कराया गया, सोवियत संघ का विघटन होना, अरब–इजराइल संवाद होना, जर्मनी का एकीकरण, यूगोस्लाविया का विघटन, वारसा पैक्ट की समाप्ति, मध्य एशिया के मुस्लिम गणतन्त्रों का स्वतन्त्र होना, अफगानिस्तान में तालिबान की पराजय, कम्बोडिया में शान्ति की स्थापना, निर्गुट आन्दोलन और तृतीय विश्व का मुहावरा कालातीत लगना, अमरीका का एकमात्र महाशक्ति के रूप में बने रहना आदि अनेक ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जिन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित किया है।

10.2 शीतयुद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की नवीन प्रवृत्तियाँ या मुद्दे :– अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की नई प्रवृत्तियाँ संक्षेप में निम्नलिखित हैं–

10.2.1 शीत युद्ध का अन्त–द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् की विश्व राजनीति की एक प्रमुख विशेषता संयुक्त राज्य अमरीका तथा सोवियत संघ के बीच शीतयुद्ध की राजनीति का प्रचलन था। शीतयुद्ध विचारों का संघर्ष था, जिसमें दो विरोधी जीवन पद्धतियाँ निरन्तर संघर्षरत थीं। पहली पद्धति उदारवादी लोकतंत्र की थी तथा दूसरी पद्धति सर्वाधिकारवादी साम्यवाद की थी।

यह दोनों पद्धतियाँ सर्वोच्चता प्राप्त करने के लिए संघर्षरत रहीं। 1990 के पश्चात् पूर्वी यूरोप और सोवियत संघ से साम्यवादी शासनों को विदाई दे दी गयी। साम्यवादी दलों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। सोवियत संघ एवं पूर्वी यूरोप मे साम्यवाद का संकट मुख्य रूप से आर्थिक मोर्चे पर असफल रहने से पैदा हुआ। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, खुलापन एवं निजी सम्पत्ति अचानक महत्त्वपूर्ण बन गये।

10.2.2 एक ध्रुवीय विश्व–द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विश्व का दो शक्ति गुटो में विभाजन हो गया था। इसमें एक गुट का नेतृत्व संयुक्त राज्य अमरीका कर रहा था तथा दूसरे गुट का नेतृत्व सोवियत संघ के हाथों में था। किन्तु 20वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में मात्र संयुक्त राज्य अमरीका ही विश्व की एकमात्र महाशक्ति रह गया। अब विश्व की राजनीति दो विशालकाय शक्ति पुंजों का संघर्ष नहीं रही। साम्यवाद के पराभव के साथ ही दूसरे विशालकाय शक्ति पुंज का अवसान हो गया।

खाड़ी युद्ध मे अमरीका की विजय ने उसकी शक्ति, प्रभाव एवं वर्चस्व में अभूतपूर्व वृद्धि कर दी। यही कारण है कि आज संयुक्त राज्य अमरीका, रूस, चीन, भारत और जापान जैसे राष्ट्रों को धमकी देने लगा है।

10.2.3 राष्ट्र–राज्यों की भूमिका मे परिवर्तन–बदलती विश्व व्यापी व्यवस्था में राष्ट्र राज्यों की भूमिका में भी व्यापक परिवर्तन आया है। आज के इस सार्वभौमिक अन्तर्निर्भरता के युग में राष्ट्र–राज्य को, चाहे कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो अपने उद्देश्यों तथा शक्ति को सीमित रखना पड़ता है। परमाणु अस्त्रों तथा अन्य विध्वंसक शस्त्रों के निर्माण के कारण राष्ट्र–राज्य अपनी जनता के जीवन तथा सम्पत्ति की रक्षा करने में असमर्थ हैं, जिसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों मे उनकी भूमिका पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

इसके अतिरिक्त समकालीन राज्यों की प्रभुसत्ता को विश्व जनमत, अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता, अन्तर्राष्ट्रीय कानून, बढ़ती हुई व्यापक अन्तर्निर्भरता, विश्व शान्ति के प्रति वचनबद्धता, युद्ध की व्यर्थता, सुरक्षा तथा शांति प्राप्त करने के साधन के रूप में सैनिक अस्त्रों का घटा हुआ सामर्थ्य, एकल ध्रुवीकरण की उत्पत्ति तथा विभिन्न अराज्यकीय कर्ताओं के प्रादुर्भाव तथा वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने सीमित कर दिया है।

10.2.4 साम्यवाद का अवसान–वर्ष 1990–91 में विश्व में एक महान् क्रान्ति हुई। पूर्वी यूरोप मे साम्यवाद का अन्त हो गया। 7 नवम्बर, 1989 को हंगरी में, 29 जनवरी, 1990 को पौलेण्ड में, 18 मार्च, 1990 को पूर्वी जर्मनी में, 23 मई, 1990 को रोमानिया में, 11 जून 1990 को चैकोस्लोवाकिया में साम्यवादी शासन समाप्त हो गया। सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति ने फरवरी, 1990 में लेनिनवाद को समाप्त करने का क्रान्तिकारी रास्ता चुना। उसने सोवियत संविधान के उस अनुच्छेद 6 के हटाने का संकल्प किया, जिसमें सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी के सत्ता पर एकाधिकार को गारंटी दी गयी थी।

इसके साथ ही प्रशासन की कार्यकारी सत्ता महासचिव के स्थान पर वहाँ के राष्ट्रपति को सौंपकर सरकार पर पार्टी के नियन्त्रण को प्रभावहीन कर दिया। फरवरी, 1990 में सोवियत संसद के मार्क्सवाद के एक मूल सिद्धान्त को पूर्ण रूप से अस्वीकार कर दिया। उसने घोषणा की कि, "पार्टी का विचार है कि उत्पादन के साधनों के स्वामित्व सहित निजी सम्पत्ति का अस्तित्व देश (राष्ट्र) के आर्थिक विकास की वर्तमान अवस्था के प्रतिकूल नहीं है।" साम्यवादी दलों के पतन के पश्चात् बहुदलीय, स्वतन्त्र निर्वाचन, बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था आदि को अपनाने से पूर्व यूरोप एवं सावियत गणराज्यों में स्वतन्त्रता की लहर आ गयी। अब पूँजीवादी उदार अर्थव्यवस्था में प्रतियोगिता करने वाली विचारधारा युक्त शक्ति गुट की कमी दृष्टिगत होती है। वर्तमान समय में सभी राष्ट्र पूँजीवादी के रास्ते पर अग्रसर है।

10.2.5 जर्मनी का एकीकरण–जर्मनी का एकीकरण शीतयुद्धोत्तर काल की महत्त्वपूर्ण घटना है। 3 अक्टूबर, 1990 के दोनों जर्मनियों का एकीकरण हुआ। बिना किसी युद्ध, खून–खराबे, संघर्ष एवं झगड़े के 45 वर्षों के पश्चात् दो राष्ट्रो का उल्लासपूर्ण वातावरण में एकीकरण आधुनिक इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय घटना है। अगस्त, 1961 में 'बर्लिन की दीवार' बनाने के पश्चात् तो वहाँ पर माइन्स बिछाकर तारों की बाड़ लगा दी गई थी, जिससे की कोई सीमा को पार न कर सके। परन्तु 9 नवम्बर, 1989 को बर्लिन की दीवार को तोड़ने से पूर्व इस बीच के लगभग 29 वर्षों में 1,78,182 व्यक्ति इसको लांघकर अथवा इसके नीचे से दूसरी ओर भाग गये, 40,101 व्यक्तियों ने अपनी जान जोखिम में डाली तथा इस प्रयत्न में 192 लोगों की मृत्यु भी हो गयी थी।

जर्मनी राष्ट्र के एकीकरण में सबसे पहली सफलता उस समय मिली जब 9 नवम्बर, 1989 को बर्लिन को दो हिस्सों में विभाजित करने वाली 'बर्लिन की दीवार' को तोड़ने का कार्य प्रारम्भ हुआ। इसके पश्चात् 18 मार्च, 1990 को पूर्वी जर्मनी में प्रथम बार स्वतन्त्र रूप से चुनाव हुए। जुलाई, 1990 को दोनों जर्मनियों का आर्थिक एकीकरण हुआ तथा दोनों राष्ट्रो की मुद्रा एक हो गयी। 4 अक्टूबर, 1990 को चांसलर हेल्मुट कोल के नेतृत्व में एकीकृत जर्मनी की नई सरकार सत्ता में आयी। क्षेत्रफल में फ्रांस से छोटा तथा आबादी की दृष्टि से लगभग 8 करोड़ की जनसंख्या का राष्ट्र एकीकृत जर्मनी यूरोप में वर्तमान में सबसे शक्तिशाली केन्द्र बन कर उभरा है।

10.2.6 संयुक्त राष्ट्र संघ की बढ़ती सदस्यता–1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य राष्ट्रों की संख्या 51 थी। यह संख्या वर्तमान में 193 है। आज संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता में ही वृद्धि नहीं हुई है, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उसकी सक्रियता भी बढ़ी है। संयुक्त राष्ट्र संघ, उसके 18 विशेष अभिकरण तथा 14 मुख्य कार्यक्रम एवं निधियाँ दुनिया के किसी भी कोने के लोगों से सम्बद्ध है। ईरान–इराक युद्ध की समाप्ति में, नामीबीया की स्वाधीनता में, कुवैत को इराक से मुक्त करवाने में, कम्बोडिया की शान्ति बहाली में एवं अफगान संकट के हल में संयुक्त राष्ट्र संघ की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ एवं भूमिका रही है।

आज यह महसूस किया जा रहा है कि द्वि–ध्रुवीय विश्व व्यवस्था क समाप्त होने के बाद से अमरीका के एकमात्र महाशक्ति रह जाने के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ के सबसे महत्त्वपूर्ण अंग सुरक्षा परिषद् का अमरीका एक कूटनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग कर रहा है। इस कारण से सुरक्षा परिषद् का आधार व्यापक बनाने और इसे और अधिक लोकतांत्रिक बनाने की दृष्टि से इसमें सुधार की तत्काल आवश्यकता है। इसीलिए सुरक्षा परिषद् के पुनर्गठन की माँग जोर पकड़ रही है। संयुक्त राष्ट्र सेघ की सुरक्षा परिषद् की सदस्य संख्या 15 से बढ़का 24 करने का सुझाव है। नये 9 सदस्यों में 5 स्थायी और 4 अस्थायी होने चाहिए। 5 नये स्थायी सदस्यों में से 2 जर्मनी एवं जापान में हों तथा शेष 3 का चुनाव अफ्रीका, एशिया तथा लेटिन अमरीका से किया जाये। एशिया से भारत की दावेदारी का अधिकांश राष्ट्र समर्थन कर रहे हैं।

10.2.7 नाटो का पूर्व की ओर विस्तार–रूस ने 1991 में नाटो मे सम्मिलित होने की इच्छा जाहिर की थी, परन्तु उस पर अमल नहीं हो सका। हेलसिंकी शिखर सम्मेलन मे बिल क्लिटन तथा येल्तसिन के बीच जिन पाँच समझौतों की घोषणा हुई उनमें नाटो तथा रूस के बारे में समझौता भी था। इसमें यह कहा गया कि मध्य यूरोप और पूर्वी यूरोप के राष्ट्रों को जो पहले वारसा पैक्ट में सम्मिलित थे, उनको नाटो का सदस्य बनाया जायेगा। राष्ट्रपति बिल क्लिटन की पहल पर पूर्वी यूरोप के तीन राष्ट्रों–पौलेण्ड, हंगरी तथा चैक गणराज्य को जुलाई 1997 में नाटो का सदस्य बना दिया गया। सोवियत राष्ट्रपति गोर्बाच्योव के अनुसार नाटो के पूर्व की ओर फैलाव के बड़े गम्भीर परिणाम निकल सकते हैं तथा उनके अनुसार द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् पश्चिमी राष्ट्रों की यह पहली बड़ी भूल होगी।

10.2.8 गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की प्रासंगिकता– अन्तर्राष्टीय राजनीति में आये परिवर्तनों के परिणामस्वरूप गुटनिरपेक्ष आन्दोलन (Non-Alignment Movement-NAM) की प्रासंगिकता का प्रश्न एक महत्त्वपूर्ण विचारणीय मुद्दा बन गया है। शीत युद्ध के अन्त, द्वि–ध्रुवीय विश्व व्यवस्था के स्थान पर एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था क उदय, सोवियत संघ के पराभव आदि मुद्दों के कारण स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न किया जाने लगा है कि क्या वर्तमान समय में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन प्रासंगिक हैं ? खाड़ी संकट तथा अफगान संकट में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की कोई विशिष्ट भूमिका नहीं रही थी।

फरवरी, 1992 में गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के विदेश मंत्रियों के सम्मेलन ने स्पष्ट तौर पर अपील की थी कि अब इस आन्दोलन को समाप्त कर देना चाहिए। मित्र का तर्क यह था कि पूर्व सोवियत संघ के विघटन एवं सोवियत ब्लॉक और शीत युद्ध की समाप्ति के पश्चात् इस आन्दोलन की प्रासंगिकता नहीं रही है।

कतिपय विशेषज्ञों की राय है कि बदली हुई विश्व की राजनीति में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की राजनीतिक भूमिका के स्थान पर अब आर्थिक क्षेत्रों में इसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है। नयी अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना तथा दक्षिण–दक्षिण सहयोगा के लिए यह आन्दोलन महत्त्वपूर्ण मंच बन सकता है।

10.2.9 बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था–सोवियत संघ से अलग हुए गणराज्यों एवं पूर्वी यूरोप क राष्ट्रों ने लोकतंत्र तथा मुक्त अर्थव्यवस्था की ओर जाने का निर्णय किया है। सोवियत नागरिकों ने पिछले 73 वर्षों की लम्बी अवधि तक एक कड़वा फल चखा था। उन्होंने पूँजीवाद के विरोध में एक बेहतर तंत्र बनाने हेतु साम्यवाद मे आस्था रखी थी, किन्तु उनका यह प्रयत्न निराशाजनक रहा तथा इसमें उनको सफलता नहीं मिली। 1989–91 के बीच अनेक राष्ट्रों से साम्यवादी शासन ताश के महल की भाँति बिखर गया। सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप के नागरिकों के सामने अब इसके अलावा कोई उपचार नहीं था कि साम्यवाद को अपने राष्ट्रों में से गन्दगी की तरह साफ कर दें तथा अपने राष्ट्र की प्रगति के लिए नये उपायो की खोज की करें।

मुक्त अर्थव्यवस्था या पूँजीतंत्र अपनी क्षमता पिछली दो शक्तियों से सिद्ध करता आ रहा है। प्राचीन काल तथा वर्तमान काल में अनेक प्रतिस्पर्द्धात्मक प्रणालियों ने पूँजीवाद की प्रणाली को समाप्त कर इसका स्थान लेने का प्रयत्न किया परन्तु कोई भी प्रणाली इसका स्थान नहीं ले सकी। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में नयी स्थितियों एवं वातावरण को बदलने की क्षमता एवं लचीलापन है। आज जिस पूँजीवाद को हम अमरीका या पश्चिमी यूरोप में देख रहे हैं, वह पहले जैसा पुरातनपंथी न होकर उन्नत, प्रगतिशील तथा मानवीय आर्थिक प्रणाली के रूप में है।

वर्तमान में त्वरित आर्थिक विकास के लिए विश्व के अधिकांश राष्ट्रों ने पूँजीवादी मॉडल या बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था का सिद्धान्त अपना लिया है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत् हैं–

1. मुक्त बाजार,
2. प्रतियोगिता,
3. स्वतन्त्र समझौत,
4. बाजार तथा बाजारू समाज,
5. आर्थिक क्षेत्र में राज्य का कम से कम नियन्त्रण,
6. निजी सम्पत्ति एवं
7. आर्थिक स्वतन्त्रता।

10.2.10 नव उपनिवेशवाद तथा उत्तर बनाम दक्षिण संघर्ष–वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विकसित और समृद्ध राष्ट्र ऐसी आर्थिक नीतियों का अनुसरण करने लगे हैं ताकि इन नीतियों के सहारे वे एशिया और अफ्रीका के विकासशील राष्ट्रों का अनवरत आर्थिक शोषण कर सकें। शोषण के इस नये स्वरूप को ही नव–उपनिवेशवाद की संज्ञा दी जा रही है।

दूसरे, आज विश्व में उत्तर बनाम दक्षिण का संघर्ष प्रारम्भ हो गया है। उत्तर से अभिप्राय उत्तरी ध्रुव के निकट धनी, औद्योगिक राष्ट्रों से है और दक्षिण से अभिप्रास तीसरे विश्व के देशों से है। धनी राष्ट्र तीसरे विश्व के राष्ट्रों का निरन्तर शोषण कर रहे हैं। इसके विरोध में इन पिछड़े राष्ट्रों के विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर संगठित होकर इनके शोषण के विरूद्ध आवाज उठायी है। इसे ही उत्तर बनाम दक्षिण के संघर्ष के नाम से जाना जाता है।

10.2.11 सैनिक गुटबन्दियों का घटता महत्त्व लेकिन नाटो का पूर्वी यूरोप में विस्तार–द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् नाटो, सीटो, सेण्टो, वारसा पैक्ट जैसी सैनिक संधियाँ अस्तित्व में आयीं। अब इनका ह्रास आरम्भ हो गया है। जर्मनी के एकीकरण के बाद 31 मार्च, 1991 को वारसा समझौते के सैन्य संगठन को समाप्त कर दिया गया और नाटो भी नाममात्र का संगठन बना हुआ है। नाटो के स्वरूप में बुनियादी परिवर्तन कर दिया गया है। नाटो द्वारा 1999 में पूर्वी यूरोपीय देशों पौलेण्ड, हंगरी व चैक गणराज्य आदि अपने संगठन में सम्मिलित कर उसका पहली बार विस्तार किया गया। **29 मार्च, 2004** को नाटो में यूरोप के **सात** नये देशों को सम्मिलित कर उसका दूसरी बार विस्तार किया गया। ये राज्य हैं– **बुल्गारिया, लेटविया, एस्थोनिया, रूमानिया, लिथूनिया, स्लोवाकिया और स्लोवेनिया।**

वर्तमान में नाटो की सदस्य संख्या **29** है तथा आतंकवाद विरोधी अभियान, शांति स्थापना, संयुक्त सैन्य अभ्यास, सुरक्षा नियोजन एवं मानवतावादी कार्य आदि को प्राथमिकता दे रहा है।

10.2.12 यूरोप के एकिकरण की दिशा में बढ़ते कदम–द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् यूरोप एक विभाजित यूरोप का परिचायक था। पिछले एक दशक से यूरोप के एकीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई है। 11 दिसम्बर, 1991 को यूरोपीय एकीकरण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम **मास्ट्रिच संधि** को माना जा सकता है। संधि के अनुसार यूरोपीय समुदाय के देशों में **1 जनवरी, 1999** से समान मुद्रा **'यूरो'** का चलन हो गया तथा एक यूरोपीय केन्द्रीय बैंक की स्थापना की गई। अब तक यूरोपीय संघ के **28** राष्ट्रों में से 19 सदस्य राष्ट्रों ने यूरो को अपना लिया है। यूरोप की साझी मुद्रा 'यूरो' के उदय से यूरोप का केवल व्यापार भी सुदृढ़ नहीं हुआ, बल्कि यूरोप विश्व का एक बड़ा पूँजी बाजार बनकर अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर एक नयी शक्ति के रूप में सामने आया है।

10.2.13 अफ्रीकी एकता संगठन का अफ्रीकी संघ में रूपान्तरण–द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एशिया और अफ्रीका महाद्वीपों में हुए राष्ट्रवादी जागरण के पश्चात् एशिया तथा अफ्रीका महाद्वीप के राष्ट्र स्वतंत्र होते गये। अफ्रीका के राष्ट्रों ने अपनी एकता को बनाए रखने की दृष्टि से **आदिस अबाबा सम्मेलन** में 25 मई, 1963 का **'अफ्रीकी एकता संगठन'** के चार्टर को स्वीकार किया। इसी परिप्रेक्ष्य में 25 मई को **'अफ्रीका दिवस'** मानाया जाता है। 1963 में स्थापित 'अफ्रीकी एकता संगठन' 25 मई, 2001 तक सफलतापूर्वक चला। 26 मई, 2001 से इसका रूपान्तरण 'अफ्रीकी संघ' में हो गया है। विश्व में हो रहे सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में महाद्वीपीय एकता को और अधिक सुदृढ़ करने के उद्देश्य से इसका गठन किया गया है। इसकी अपनी संसद, अपना न्यायालय तथा एक शांति सेना भी है। वर्तमान में इसके 54 अफ्रीकी देश सदस्य हैं। इसका मुख्यालय आदिस अबाबा (इथोपिया) में है।

10.2.14 आर्थिक मुद्दों की बढ़ती अहमियत–वर्तमान युग में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में आर्थिक लाभ के केन्द्रीय तत्व बन गया है। राष्ट्रों के बीच सम्बन्ध व्यापार, आर्थिक लाभ और लेन–देन पर आधारित हो गये हैं, इन सम्बन्धों में राजनीति, मूल्यों, सिद्धान्तों या विचारधारा का कोई मतलब नहीं रह गया है। मोरक्को की राजधानी मराकेश में 15 अप्रेल, 1994 को राष्ट्रों के बीच सम्पन्न हुई गैट संधि इन सम्बन्धों की बाइबिल बन गई है प्रस्तावित विश्व व्यापार संगठन (WTO) इसका चर्च, मस्जिद या मन्दिर है। आज व्यापार और अधिकाधिक निर्यात की आवश्यकता ने प्रत्येक राष्ट्र के आर्थिक जीवन के समक्ष प्रश्न खड़ा कर दिया है। इससे निपटने के लिए अमेरिका ने अपने राजनैतिक मूल्यों–लोकतंत्र और मानवाधिकार की बलि देना शुरू कर दिया है। आज उसके लिए लोकतंत्र और मानवाधिकार कुटनीति अर्थहीन होती जा रही है, इसके स्थान पर व्यापार और अधिकाधिक निर्यात उसकी प्राथमिकता बन गई है।

10.2.15 परमाणु सुरक्षा का मुद्दा–वर्तमान परिवेश मे परमाणु सुरक्षा का मुद्दा वैश्विक महत्त्व का मुद्दा बन गया है। वर्तमान में परमाणु हथियारों पर रोक लगाने के कई वैश्विक प्रयासों के बावजूद हथियारों का नए–नए देशों में विस्तार हुआ है। परमाणु तकनीक व सामग्री ऐसे देशों में भी पहुंच गयी है जो उसकी सुरक्षा में सक्षम नहीं हैं। ऐसे परमाणु हथियार व तकनीक संगठित अपराधी समूहों अथवा आतंकवादियों के हाथ में भी पहुंच सकते हैं। अतः घातक परमाणु हथियारों को अवैध हाथों में जाने से रोकना परमाणु सुरक्षा की सबसे महत्त्वपूर्ण प्राथमिकता है। यह एक वैश्विक समस्या भी है क्योंकि आतंकवादियों का नेटवर्क अब वैश्विक आकार ले चुका है। इस सम्बन्ध में **वांशिगटन** तथा **सियोल** में दो वैश्विक सम्मेलन भी बुलाए जा चुके हैं।

परमाणु सुरक्षा का दूसरा सरोकार है–परमाणु बिजली संचालन के संबंध में होने वाली दुर्घटनाओं की रोकथाम। जब किसी षड्यंत्र के अन्तर्गत आपराधिक तत्वों द्वारा इस तरह की दुर्घटनाओं को अंजाम दिया जाता है तो इसे परमाणु सुरक्षा के अन्तर्गत शामिल किया जाता है। परमाणु सुरक्षा से संबंधित चार सम्मेलन सम्पन्न हो चुके हैं। पहला सम्मेलन 2010 मे वाशिंगटन मे, दूसरा सम्मेलन 2012 मे दक्षिण कोरिया की राजधानी सियोल में, तीसरा सम्मेलन 2014 मे नीदरलैण्ड की राजधानी हेग में तथा चौथा सम्मेलन 2016 मे वाशिंगटन मे सम्पन्न हुआ।

इन 6 वर्षों में विभिन्न देशों ने परमाणु सुरक्षा को मजबूत बनाने के लिए 260 वचन बद्धताएँ की हैं तथा विभिन्न देशों ने परमाणु सुरक्षा से संबंधित संधियों को स्वीकार कर लागू किया गया है। 15 देशों में परमाणु सुरक्षा प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की गई हैं।

10.2.16 क्षेत्रीय आयोग के आर्थिक समूह–बदलती अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था व क्षेत्रीय संगठनों का महत्त्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। राष्ट्र–राज्य अपनी भलाई के लिए इनके निर्देशों का पालन भी करते हैं। वे अपने राष्ट्रीय हितों का निर्धारण करते समय भी इनके निर्देशों का पालन करते हैं। वर्तमान समय मे निम्नलिखित क्षेत्रीय एवं आर्थिक संगठनों का विशेष महत्त्व है। यथा–

(i) नाफ्टा (The North American Free Trade Area)– उत्तरी अमेरिका मुक्त व्यापार करार (नाफ्टा) पर 1994 मे हस्ताक्षर किये गये थे। यह संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा और मैक्सिको के बीच एक मुक्त व्यापार क्षेत्र है। यह विश्व का सबसे बड़ा एवं सबसे महत्त्वपूर्ण ब्लाक है।

(ii) यूरोपियन आर्थिक समुदाय–इस आर्थिक समुदाय ने लेटिन अमेरीकी देशों, आसीयान, अरब देशों तथा रूस से व्यापारिक संधियां की है।

(iii) एपेक (Asia Pasific Economic Corporation)–इसमे कनाडा, चिली, चीन, हांगकांग, इण्डोनेशिया, दक्षिण कोरिया, मलेशिया, फिलीपीन्स, अमरीका, सिंगापुर, थाइलैण्ड आदि देश शामिल हैं। यह एशिया प्रशान्त क्षेत्र के 21 देशों का समूह है।

(iv) आसियान–इसमें दक्षिण–पूर्व एशिया के 10 देश शामिल है।

(v) पूर्वी एशियाई सम्मेलन–15 जनवरी, 2007 को 16 राष्ट्रों (दस आसियान के सदस्य राष्ट्र तथा इनके अतिरक्ति 6 अन्य राष्ट्र हैं–भारत, आस्ट्रेलिया, चीन, जापान, द. कोरिया व न्यूजीलैण्ड) का पूर्वी ऐशियाई देशों का दूसरा शिखर सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इसमें ये देश असैन्य परमाणु ऊर्जा सहयोग, आसियान गैस पाइप लाइनव पॉवर ग्रिड परियोजनाओं की स्थापना के लिए सहमत हुए हैं।

(vi) सार्क–इसमें दक्षिण एशिया के आठ देश (भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, मालदीव, अफगानिस्तान) शामिल हैं।

(vii) हिमतक्षेस (हिन्द महासागर तट क्षेत्रीय सहयोग संगठन)–इसमें हिन्द महासागर के तटीय क्षेत्र के एशिया, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के 19 देश हैं। इस संगठन में शामिल देश हैं–आस्ट्रेलिया, श्रीलंका, सिंगापुर, इंडोनेशिया, द अफ्रीका, यमन, तंजानिया, कीनिया, मोजांबिक, मेडागास्कर, मॉरीशस, ओमान, यू.ए.ई., सशेल्स, थाइलैंड, बांग्लादेश, ईरान व कोमोरास।

(viii) एम–8–यह आठ विकासशील इस्लामी राष्ट्रों का नया संगठन है। इसका निर्माण जी–7 की तर्ज पर 15 जून, 1997 को इस्ताम्बुल में किया गया। इसके सदस्य देश हैं–टर्की, बांग्लादेश, पाकिस्तान, मिस्र, ईरान, इण्डोनेशिया, मलेशिया व नाइजीरिया।

(ix) बिस्टेक व बिम्सटेक (BISTEC & BIMSTEC)–इसका निर्माण 6 जून, 1997 को एशिया के पांच देशों–**बांग्लादेश**, **श्रीलंका**, **म्यांमार**, **भारत** और **थाइलैंड** ने बैंकाक में किया है। ये वे देश हैं जिनकी सीमा बंगाल की खाड़ी से मिलती हैं। सन् 2004 में बिस्टेक में भूटान और नेपाल को भी शामिल किया गया तथा इसका नाम बिम्सटेक अर्थात् 'वे ऑफ बंगाल इनेसियेटिव फॉर मल्टी सेक्टरल टेक्नोलॉजी एण्ड इकोनॉमिक कोऑपरेशन' है। यह दक्षिण एशिया तथा दक्षिण–पूर्व एशिया क सात देशों का एक क्षेत्रीय सहयोग संगठन है। इसके देशों की सीमाएं बंगाल की खाड़ी को छूती हैं। यह संगठन इन देशों के मध्य विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग के लिए तत्पर है। इसका 17वाँ शिखर सम्मेलन **7 फरवरी, 2017** को काठमांडू (नेपाल) में आयोजित किया गया।

(x)शंघाई–(5) तथा शंघाई सहयोग संगठन–सीमा सम्बन्धी समस्याओं के मामले में विश्वास सृजित करने के लिए 'शंघाई–5' नामक पांच राष्ट्रों के एक समूह का गठन 1996 में किया गया था। 15 जून, 2001 को इसका रूपान्तरण शंघाई सहयोग संगठन (SCO) के रूप मे कर दिया गया। इसमें 6 सदस्यों को सम्मिलित किया गया। ये हैं–चीन, रूस, कजाखस्तान, किर्गिस्तान, उजबेकिस्तान तथा तजाकिस्तान। शंघाई सहयोग संगठन (SCO) के 2017 शिखर सम्मेलन मे भारत और पाकिस्तान को पूर्ण सदस्यता प्रदान की गई है। वर्तमान मे इसकी सदस्य संख्या बढ़कर 8 हो गई है।

(xi) खाड़ी सहयोग परिषद्–खाड़ी के 6 राष्ट्रों–संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब, कुवैत, ओमान बहरीन व कतर की परिषद् ने किसी भी बाहरी आक्रमण का सामना मिल–जुल कर करने का निर्णय लेने के लिए बहरीन की राजधानी मनामा मे 31 दिसम्बर, 2000 को अपने शिखर सम्मेलन मे एक संधि की। इस संधि पर सभी सदस्य देशों ने हस्ताक्षर किये। इस संधि के तहत किसी भी सदस्य देश पर हमला या खतरा होने की स्थिति मे सदस्य देश कर रक्षा का दायित्व परिषद् पर सौंपा गया है। सभी छः सदस्य राष्ट्रों के अनुमोदन के पश्चात् यह संधि प्रभावी होगी। खाड़ी सहयोग परिषद् का 36वाँ सम्मेलन 2015 में रियाद (Riyadh) (सऊदी अरब) मे आयोजित किया गया।

10.2.17 बहुध्रुवीय विश्व की ओर बढ़ते कदम–(i) शंघाई सहयोग संगठन–15 जून, 2001 को स्थापित 'शंघाई सहयोग संगठन' तथा उसके जून, 2006 मे सम्पन्न हुए सम्मेलन ने बहुध्रुवीय विश्व का संकेत दे दिया है। जैसे–जैसे इस संगठन का विस्तार होगा, वह विश्व राजनीति पर अमरीकी वर्चस्व को कमजोर बनाएगा।

यह संगठन अमरीका को मध्य–एशिया के क्षेत्र मे से निकाल बाहर कर रहा है। सैनिक दृष्टि से अमरीका तथा उसके पश्चिमी मित्र इसको 'नाटो' के जवाब के रूप मे देखने लगे हैं। इस संगठन की मौजूदगी इस क्षेत्र मे अमरीका के सैनिक हस्तक्षेप के अवसरों को सीमित कर देगी। तेल के क्षेत्र मे इस संगठन की प्रभावी भूमिका भी अमरीका के आर्थिक हितों के विरूद्ध है। रूस–चीन के मध्य घनिष्ठता का भी शंघाई संगठन एक मंच है और यह मित्रता अमरीका के लिए सिरदर्द है।

10.2.18. आतंकवाद की समस्या–आतंकवाद आज विश्वव्यापी समस्या के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है। विश्व मे एक ओर जहाँ सुरक्षा व शांति के प्रयास किए जा रहे हैं, वहीं दूसरी ओर विश्व सुरक्षा को जिस समस्या से सबसे अधिक भयभीत होना पड़ रहा है, वह समस्या आतंकवाद की समस्या है। 20वीं शताब्दी के पश्चात् जहाँ इस बात को स्वीकार किया जा रहा था कि विश्व मे मानवता, शांति और सृजनात्मक की स्थापना होगी, वहीं इसके स्थान पर हमें आतंकवाद के रूप मे दृश्य–अदृश्य युद्धों का एक अन्तहीन सिलसिला दिखाई दे रहा हैं, फिर चाहे वह विकासशील देश हो या वह विकसित राष्ट्र हो। अमेरिका जैसी महाशक्ति भी आज आतंकवाद से अछूती नहीं रह गई है। भारत सहित दक्षिण एशिया के अधिकतर राष्ट्र इसमें निरन्तर झुलस रहे हैं। आतंकवाद की समस्या धीरे–धीरे विश्वव्यापी होती जा रही है और यह एक परम्परा के रूप में कार्य करने लगा है।

10.2.19.पर्यावरण की समस्या–पर्यावरण की सुरक्षा भी विश्व के देशों के लिए चिन्ता का विषय है। विश्व बैंक की रिपोर्ट मे कहा गया है कि विभिन्न देशों मे औद्योगीकरण के कारण बढ़ते हुए प्रदूषण तथा पर्यावरण के गिरते स्तर के कारण आज पर्यावरण की सुरक्षा का मुद्दा एक ज्वलंत प्रश्न बन चुका है। पर्यावरण के क्षय को आज एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या क रूप मे देखा जा रहा है। वायुमंडल की रक्षा, जंगलों को बचाना, वायु प्रदूषण एवं जल प्रदूषण को नियंत्रित करना मनुष्य का कर्त्तव्य हो गया है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि शीतयुद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था मे व्यापक परिवर्तन हुआ है। विश्व राजनीति बहुध्रुवीयता की ओर बढ़ रही है। व्यापारिक उदारवाद के दौर मे जहाँ पश्चिमी राष्ट्र व अमरीका विकासशील राष्ट्रों के मार्ग मे बाधा डाल रहे हैं, वहीं उसकी प्रतिक्रिया मे नवीन क्षेत्रीय व्यापारिक सहयोग संगठनों का निर्माण हो रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ की और कार्य क्षेत्र का विस्तार भी हुआ इसलिए उसके विस्तार की मांगे भी उठ रही है।

इस प्रकार शीतयुद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में जहाँ वैश्वीकरण और उदारीकरण से राष्ट्रों की आपसी दूरियां सीमित हुई है तथा व्यापार का विस्तार हुआ है वहीं आतंकवाद व पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्याएँ एक बड़ी चुनौति बन कर उभर रही हैं।

10.3 सारांश

इस प्रकार आतंकवाद एक वैश्विक समस्या है। इस समस्या का सामना करने के लिए यह आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसी नीतियों या नियमों का निर्धारण किया जाये जिसका अनुकरण सभी देश ईमानदारी से करे तथा विश्व के शक्तिशाली व विकसित देश इस समस्या के समाधान हेतु विशेष भूमिका निभाये।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. शीतयुद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे आये परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए।
2. शीतयुद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय संगठनों का उल्लेख कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था को समझाईए।
2. नव उपनिवेशवाद क्या हैं ?

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. दक्षिण अफ्रीका दिवस कब मनाया जाता हैं ?
2. APEC (ऐपेक) क्या हैं ?
3. बहुध्रुवीय विश्व से क्या अभिप्राय हैं ?

इकाई–11

उभरती शक्तियाँ

(Emerging Powers)

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उभरती हुई शक्तियों के व्यवहार की विशेषताओं एवं कुछ उभरती हुई शक्तियों जैसे भारत, जापान, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, ओपेक आदि के बारे में उल्लेख किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :–

- अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की उभरती हुई शक्तियों की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- वर्तमान समय में विश्व में उभरती हुई शक्तियों या राष्ट्रों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

शीतयुद्धोत्तर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अनेक उभरती हुई शक्तियाँ हैं, जिनमें भारत, चीन, जापान, कनाड़ा, आस्ट्रेलिया, ब्राजील व दक्षिण अफ्रीका आदि देशों को उभरती हुई शक्तियों के रूप में देखा जा रहा है। विश्व की आबादी की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या इन देशों में निवास करती है। भारत और चीन की विकास दर क्रमशः 7 प्रतिशत और 9 प्रतिशत से भी ज्यादा बनी हुई है जो अनेक विकसित राष्ट्रों से बहुत अधिक हैं। आने वाले दशक में भारत, चीन व जापान उद्यीमान शक्तियाँ हैं। सूचना एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारत और चीन के दबदबे को अब विशेषज्ञ ही नहीं बल्कि अन्य विकसित राष्ट्र भी मान रहे है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उभरती हुई इन शक्तियों को मध्यस्तरीय शक्ति भी कहा जाता है। विभिन्न विचारकों एवं लेखकों ने इसको अलग–अलग दृष्टिकोण से परिभाषित किया है। क्योंकि विभिन्न मध्यस्तरीय शक्तियों की कार्यशैली एवं आचरण एक समान नहीं है इनके संसाधन एवं स्थिति भी अलग–अलग है, लेकिन इनकी प्राथमिकता एवं व्यवहार को समझने का ढ़ाँचा एक समान है।

11.2 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उभरती हुई शक्तियों या मध्यस्तरीय शक्तियों के व्यवहार की विशेषताएँ

11.2.1 परिवर्तनशील–सामान्यतः मध्यस्तरीय शक्ति का व्यवहार एक जैसा नहीं होता है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था मे परिवर्तन के साथ इनके व्यवहार में भी परिवर्तन हुए हैं तथा विभिन्न राष्ट्र मध्य शक्ति की विशेषताओं को प्राप्त करते या छोड़ते रहते हैं। किन्तु विदेश नीति एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार सम्बन्धी आचरण में इनकी कुछ स्थायी विशेषताएँ होती हैं।

11.2.2 स्वतन्त्रता की इच्छा–अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कुछ देश अपने–आप को मध्य शक्ति मानकर इस प्रकार का व्यवहार करते हैं कि वे कुछ अलग और अधिक स्वतंत्र प्रतीत हो। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को बड़ी शक्तियों के स्वैच्छिक आचरण पर न छोड़कर अपनी उपस्थिति का ध्यान दिलाते हैं।

11.2.3 बहुपक्षीय–मध्य शक्तियाँ बहुपक्षीय सिद्धांत में विश्वास करके सहयोग आधारित विश्व–व्यवस्था को मान्यता देते हैं। वे बहुपक्षीय संस्थाओं के माध्यम से या एक छोटे समूह के रूप में कार्य करने के लिए विशेष मुद्दों के आधार पर लोचशीलता के रूप में विश्वास करते हैं। इस प्रकार मध्य शक्तियों की विशेष कार्यशैली में शक्ति का आधार स्वेच्छा से आम सहमति या दूसरे के साथ समझौता करने में है, ताकि बड़ी शक्तियों की स्वेछाचारिता एवं एकपक्षीय प्रवृत्तियों पर रोक लगाई जा सके।

11.2.4 कार्यात्मक–अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में मध्य शक्तियों की कुछ निश्चित विषय में कार्यात्मक शक्ति होती है। विस्तृत संसाधन एवं कौशल के बल पर मध्य शक्ति वाले देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को प्रभावित करके अधिक लाभ प्राप्त करते हैं, लेकिन संसाधन एवं कौशल सभी मध्य–शक्ति देशों के पास एक समान नहीं हैं। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं मध्यस्थता आदि में उन्हें विशेष स्थिति प्राप्त है।

इस प्रकार मध्य स्तरीय शक्तियाँ अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विशेष भूमिका का सम्पादन करती हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में उनकी विशेष पहचान व साख है। वे विशेष प्रकार की कूटनीति के द्वारा बड़ी शक्तियों की एकपक्षीय प्रवृत्तियों एवं बल प्रयोग पर आधारित व्यवहार पर नियंत्रण के उपाय सोचते हैं। ये अपने सहयोगियों के हितों को अपने हित में बलिदान नहीं करते हैं और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विधि के शासन, वार्ता एवं आम सहमति के निर्माण में विशेष भूमिका का सम्पादन करते हैं।

11.3 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उभरती हुई शक्तियाँ

11.3.1 भारत–दक्षिण एशियायी देशों में भारत एक प्रमुख मध्य स्तरीय शक्ति है। इसने गुट–निरपेक्ष आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान करके इसे एक नई दिशा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति का समर्थक बनकर विश्व में न्यायपूर्ण आर्थिक व्यवस्था एवं संयुक्त राष्ट्र संघ के लोकतन्त्रीकरण का प्रबल समर्थक हैं।

एक उभरती हुई वैश्विक शक्ति के रूप में भारत के संदर्भ में निम्नलिखित तथ्यों का उल्लेख किया जा सकता हैं –

(i) भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतन्त्र है।

(ii) जनसंख्या की दृष्टि से भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है।

(iii) भारत विश्व की छठी अणु आयुध शक्ति है।

(iv) सामरिक दृष्टि से भारत विश्व का चौथा बड़ा राष्ट्र है।

(v) आर्थिक दृष्टि से भारत विश्व का चौथा बड़ा राष्ट्र है।

(vi) वैज्ञानिक शोध, अन्तरिक्ष कार्यक्रम तथा औद्योगिक विकास साथ–साथ सूचना तकनीक में इसने अभूतपूर्व प्रगति की है।

(vii) भारत जी–20, ब्रिक्स, इब्सा जैसे महत्त्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का सदस्य है।

(viii) भारत विकासशील देशों का सशक्त प्रतिनिधि है तथा दक्षिण विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

(ix) गुट–निरपेक्ष आन्दोलन में भारत का विशिष्ट स्थान है।

(x) संयुक्त राष्ट्र के लक्ष्य, उपनिवेशवाद तथा रंग–भेद की समाप्ति, मानवाधिकारों का क्रियान्वयन और निःशस्त्रीकरण में भारत का विशेष योगदान रहा है।

11.3.2 चीन–चीन भी एक मध्यस्तरीय शक्ति है। चीन एक महाशक्ति के रूप में उभर रहा है जो भविष्य में एशिया प्रशांत क्षेत्र को महत्त्वपूर्ण दिशा प्रदान करेगा। प्रायः यह कहा जाता है कि 21वीं सदी पर चीन का प्रभुत्व रहेगा ठीक वैसे ही जैसे 20वीं सदी को प्रायः अमरीकी शताब्दी और 19वीं सदी को ब्रिटिश शताब्दी कहा जाता है। चीन आर्थिक दृष्टि से एक बड़ी ताकत के रूप में उभर रहा है कुछ दशकों में अमेरिकी अर्थव्यवस्था को पछाड़ कर विश्व की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन जायेगा।

पिछले 30 वर्षों से चीन की अर्थव्यवस्था 10 प्रतिशत से अधिक विकास दर पर तेजी से आगे बढ़ रही है। क्रय शक्ति के आधार पर चीन का सकल घरेलू उत्पाद, अमेरिका के बाद दूसरे स्थान पर है। 2007 में चीन ने जर्मनी अर्थव्यवस्था को पीछे छोड़ा और 2010 में जापान की अर्थव्यवस्था भी चीन से पीछे रह गई और अन्ततः 2027 तक अमरीकी अर्थव्यवस्था के भी चीनी अर्थव्यवस्था से छोटा होने का अनुमान है। चीन जर्मनी को पछाड़ते हुए आज विश्व का सबसे बड़ा निर्यातक है और संयुक्त राज्य अमेरिका को पछाड़ते हुए विश्व का सबसे बड़ा वाहन बाजार है। इसका विदेशी मुद्रा भण्डारण विश्व में सर्वाधिक 2200 अरब डॉलर है।

चीन के पास विश्व की सबसे बड़ी सक्रिय सेना है और रक्षा बजट पर सर्वाधिक धन खर्च करने वाला दूसरा बड़ा राष्ट्र है। यह संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् का स्थाई सदस्य और मान्यता प्राप्त परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र है। चीन सैन्य प्रौद्योगिकी और नवोन्मेष के मामले में भी एक उभरती हुई महाशक्ति है।

11.3.3 ब्राजील–लैटिन अमेरिकी देशों में ब्राजील ऐसी मध्यस्तरीय शक्ति है जो क्षेत्रीय शक्ति के रूप में अपनी आर्थिक विकास प्रक्रिया को गति प्रदान कर रहा है। यह दक्षिण अफ्रीका के साझे बाजार एवं पड़ौसी देशों के साथ आर्थिक सहयोग बढ़ाने का प्रयास कर रहरा है। यह आम सहमति पर आधारित राजनीतिक स्थिति अपनाकर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में हित–आधारित तटस्थतावाद की नीति का समर्थन करता है। यह आर्थिक एवं व्यापारिक हितों को प्रोत्साहित करने के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है।

ब्राजील दक्षिण अमरीका का सबसे विशाल एवं महत्त्वपूर्ण देश है। दक्षिण अमरीका के मध्य से लेकर अटलांटिक महासागर तक फैले हुए इस संघीय गणराज्य की तट रेखा 7491 किलोमीटर की है। यहाँ की अमेजन नदी विश्व की सबसे बड़ी नदियों में से एक है। इस क्षेत्र में जन्तुओं और वनस्पतियों की अतिविविध प्रजातियाँ वास करती हैं, ब्राजील का पठार विश्व के प्राचीनतम स्थ्लाखण्ड का अंग है। अतः यहाँ के विभिन्न अवैज्ञानिक कालों में अनेक प्रकार के भूवैज्ञानिक संरचना सम्बन्धी परिवर्तन दिखाई देते हैं।

ब्राजील प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टिकोण से समृद्ध राष्ट्र है। ब्राजील में नदियों की धनी और जटिल प्रणाली स्थित है, जो दुनिया के सबसे व्यापक में से एक है। जिसमें आठ प्रमुख जल निकासी घाटी है जो सभी अटलांटिक महासागर में जाकर मिलती है। प्रमुख नदियों में अमेजन, पराना और इसकी प्रमुख सहायक इगुआक़, निग्रो साओ फ्रांसिस्को, जिंगू, मदीरा और तपजोस नदियाँ आदि शामिल है।

2017 के अनुमानों के अनुसार ब्राजील लेटिन अमेरिका की सबसे बड़ी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था है। यह दुनिया की आठवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था और क्रय शक्ति समता (पी.पी.पी.) में आठवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है।

ब्राजील विविध अर्थव्यवस्था में कृषि उद्योग और सेवाओं की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। ब्राजील संतरे, काफी, चीनी, गन्ना, कपास, सिसाल, सोयाबीन और पपीता के सबसे बड़े उत्पादकों में से है।

ब्राजील दुनिया का चौथा सबसे बड़ा कार बाजार है। आटोमोबाईल, स्टील और पेट्रोकैमिकल्स, कम्प्यूटर, विमान और उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं के उद्योग का सकल घरेलू उत्पाद में 30.8 प्रतिशत हिस्सा है। ब्राजील में पर्यटन एक बढ़ता हुआ क्षेत्र है और देश के कई क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था का प्रमुख उद्योग है।

11.3.4 जापान–एशिया में आर्थिक महाशक्ति के रूप में जापान अपना अलग स्थान रखता है। यह भी एक मध्यस्तरीय शक्ति है। यह अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के हित में अपनी सक्रिय भूमिका निभा रहा है।

जापान विश्व की दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। परन्तु जापान की अर्थव्यवस्था स्थिर नहीं है। यहाँ के लोगों की औसत वार्षिक आय लगभग 5000 अमरीकी डॉलर है जो काफी अधिक है।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में जापान अग्रणी राष्ट्र है। जापान के वैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र में प्रौद्योगिकी, मशीनरी और जैव चिकित्सा अनुसंधान प्रमुख है। इसके अतिरिक्त आटोमोबाईल, भूकम्प इंजीनियरिंग, औद्योगिक रोबोटिक्स, प्रकाशिकी, रसायन आदि क्षेत्रों में जापान ने महत्त्वपूर्ण प्रगति की है।

जापान एयरोस्पेस एक्सप्लोरेशन ऐजेन्सी (जाक्सा) जापान की अंतरिक्ष ऐजेन्सी है। नये रोकेट व उपगृहों को विकसित करने में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

11.3.5 कनाडा–मध्य शक्ति के देशो में कनाडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे उदार अन्तर्राष्ट्रीय शांति–व्यवस्था में मध्यस्थता एवं शातं राजनय इसकी विशेषता है। इसने अपने कौशल का सफलतापूर्वक प्रयोग करते हुए कर्मचारियों के विरूद्ध बिछाई गई भूमिगत सुरंग का निषेध किया है और अन्तर्राष्ट्रीय फौजदारी न्यायालय की स्थापना की है।

11.3.6 आस्ट्रेलिया–मध्यम आकार की सैनिक क्षमता और अर्थव्यवस्था वाला मध्यस्तरीय देश आस्ट्रेलिया भी उदार अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का समर्थक है। इसने बहुपक्षीय उपागम का निमार्ण करके उसे व्यावहारिक रूप प्रदान किया है, राजनीतिक सुरक्षा और आर्थिक सहयोग हेतु आस्ट्रेलिया ने न केवल एशिया प्रशांत आर्थिक सहयोग संगठन की स्थापना की, वरन् उसमें आम सहमति बनाने के लिय भी अपना सकारात्मक योगदान दिया। यह भेदभाव रहित कृषि व्यापार के लिये अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में प्रयासरत है।

11.3.7 तेल उत्पादक देश–पश्चिमी एशिया तेल के लिए विख्यात क्षेत्र विश्व के अधिकांश तेल भण्डार पश्चिमी एशिया तथा खाड़ी क्षेत्र में हैं। सबसे ज्यादा तेल भण्डार खाड़ी देशों में हैं। जिनमें पहला स्थान साऊदी अरब, कुवैत, ईरान, ईराक तथा संयुक्त अरब अमीरात का हैं।

तेल के कारण पश्चिमी एशिया तथा खाडी क्षेत्र महाशक्तियों की प्रतिस्पर्द्धा का केन्द्र बना। तेल उत्पादक राज्यों को अकूत धन मिला और शस्त्रीकरण की प्रतिस्पर्द्धा में वे अग्रणी हो गये। अरब इजराइल संघर्ष तथा खाड़ी युद्ध का प्रमुखतम कारण तेल राजनीति रही हैं। 1973 के इजराइल युद्ध के समय पश्चिमी एशिया के तेल उत्पादक देशों ने इजराईल पर दबाब डालने के लिए तेल को कुटनीतिक हथियार के रूप में प्रयुक्त किया। ओपेक (तेल उत्पादक देशों का संगठन) की सुनियोजित कार्यप्रणाली और सदस्यों मे एकता के कारण इजराईल समर्थक देशों को अपनी विदेश नीति बदलनी पडी।

11.3.8 ओपेक (OPEC) का जन्म–तेल निर्यात देशों के संगठन का निर्माण 1960 में हुआ। तत्कालीन आकडों के अनुसार इसके संस्थापक पांच राष्ट्रो (इराक, कुवैत, साऊदी अरब, ईरान, वेनेजुल्ला) के पास कुल सुरक्षित तेल का 87 प्रतिशत, कुल उत्पादन का 38 प्रतिशत एवं कुल व्यापार का 90 प्रतिशत हिस्सा था ओपेक के नियमों के अनुसार किसी भी राष्ट्र को संगठन का सदस्य बनने के लिए कुछ आवश्यक अर्हताओं को पूरा करना होगा। राष्ट्र को शुद्ध तेल निर्यातक राष्ट्र होना चाहिए तथा राष्ट्र के तेल हित और अन्य सदस्यों के हितो में समानता होनी चाहिए।

वर्तमान में तेल उत्पादक देशों की संख्या बढ़कर 12 हो गई हैं इनमे पांच संस्थापक देशों के अतिरिक्त 7 अन्य सदस्य देश है– कतर, लीबिया इएडोनेशिया, अल्जीरिया, नाईजीरिया, युनाईटेड अरब अमीरात तथा गैबन। आपेक के प्रमुख अंग है– कान्फ्रेस बोर्ड, बोर्ड ऑफ गवर्नर तथा सचिवालय विकासशील देशों की मदद के लिए आपेक फण्ड ऑफ इन्टरनेशनल डबलपमेन्ट की स्थापना की गई हैं।

11.4 सारांश

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शीतयुद्धोत्तर काल मे अनेक परिवर्तन आये है जहाँ सामृाज्यवाद, उपनिवेशवाद व युद्ध का अन्त हुआ वही एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था का वर्चस्व भी धीरे–धीरे समाप्त होता जा रहा है और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में नवीन शक्तियों का उदय हुआ हैं जिनका केन्द्र एशिया, अफ्रीका एंव लैटिन अमेरिका में देखा जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे उभरती हुई शक्तियों का उल्लेख कीजिएं
2. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे उभरती हुई शक्तियों के लक्षणों का विवेचन कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. एक उभरती हुई शक्ति के रूप में भारत के संदर्भ में अपने तर्क दीजिए।
2. जापान को विश्व की उभरती हुई शक्ति क्यों माना जाता हैं ?

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. ओपेक (OPEC) का जन्म कब हुआ ?
2. पश्चिमी एशिया की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विशेष पहचान के संदर्भ में दो तर्क दीजिए।

इकाई–12

क्षेत्रीय समूह

(Regional Grouping)

12.0 उद्देश्य

इस अध्याय में क्षेत्रीय समूह के संगठन, प्रकार व उनकी भूमिका के बारे में उल्लेख किया गया है। इस अध्याय का अध्ययन करने के बाद आप :–

- क्षेत्रीय समूहों का अर्थ समझ सकेंगे।
- क्षेत्रीय संगठनों की विशेषाताओं को जान सकेंगें।
- विभिन्न क्षेत्रीय संगठनों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय राष्ट्रीय सम्बन्धो क्षेत्रवाद को विचार का उदय द्वितीय विश्व युद्ध के बाद माना जाता हैं। इसमें किसी क्षेत्र विशेष के देश मिलकर अपना एक संगठन बना लेते हैं। इसे क्षेत्रीय संगठन इसलिए कहते हैं क्योकि इसका क्षेत्राधिकार किसी क्षेत्र विशेष तक सीमित होता हैं। इन संगठनों का उद्देश्य क्षेत्रीय स्तर पर आर्थिक, सामाजिक और प्रतिरक्षा सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करना होता है।

डॉ. ई. एन. वान क्लेफेन्श (E.N. Van Kleffens) के शब्दों में क्षेत्रीय व्यवस्था एक निश्चित क्षेत्र के अन्दर सम्प्रभु राज्यों की स्वेच्छा से बनाया गया एक संघ हैं जो सामान्य हितों की पूर्ति के लिए बनाया गया है और वह उस क्षेत्र के सम्बन्ध में आक्रामक प्रकृति का नहीं होना चाहिए।

श्लीचर के अनुसार, "क्षेत्रवाद राज्य पर निर्भर क्षेत्रों को क्षेत्रीय आधार पर संगठित करने की कला हैं।"

हांस तथा हाइटिंग के शब्दों में "एक क्षेत्रीय व्यवस्था दो या दो से अधिक राज्यों के मध्य एक दीर्घकालीन समझौता होता है जो विशिष्ट परिस्थितियों में राजनीतिक सैनिक तथा आर्थिक क्रिया करने में सहायक होता है, बशर्ते कि वचनबद्धता, परिभाषित क्षेत्र तथा विशिष्ट राज्यों तक फैली हो।"

12.2 क्षेत्रवाद के लिए उत्तरदायीकारण

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद क्षेत्रवाद के उदय के लिए अनेक कारण उत्तरदायी रहे हैं; जैसे–

(i) साम्यवाद का प्रसार

(ii) महाशक्तियों का पारस्परिक अविश्वास

(iii) शीतयुद्ध और

(iv) संयुक्त राष्ट्र संघ से उत्पन्न होने वाली अड़चने आदि।

12.3 क्षेत्रीय समूहो (संगठनो) की विशेषताएँ

क्षेत्रीय संगठन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

12.3.1 ये संगठन भौगौलिक भी हो सकते है और नहीं भी–इस प्रकार के संगठनो के लिए यह आवश्यक है कि राज्य भौगौलिक निकटता रखते हों तथा एक ही महाद्वीप में स्थित हों। इनमें अन्य भौगौलिक क्षेत्र या महाद्वीप भी सम्मिलित हो सकते हैं; जैसे–उत्तरी अटलांटिक सन्धि संगठन (NATO) और राष्ट्र मंडल संगठन। इस प्रकार एक क्षेत्र या महाद्वीप में अनेक प्रादेशिक या क्षेत्रीय संगठन हो सकते हैं और एक राज्य अनेक संगठनों का सदस्य हो सकता हैं।

12.3.2 क्षेत्रीय संगठनो का निर्माण द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात्–द्वितीय विश्व युद्ध के उपरन्त क्षेत्रीय संगठन बनाने की प्रवृत्ति बनी हैं। वर्तमान मे भी ASEAN और SAARC जैसे क्षेत्रीय संगठनों का निर्माण इसका उदाहरण हैं।

12.3.3 क्षेत्रीय संगठन अनेक राज्यों का समुह–पामर और पार्किन्स का मत है कि इस प्रकार के संगठन में दो से अधिक सम्प्रभु राज्यों को सम्मिलित होना चाहिए तथा वे एक महत्त्वपूर्ण साझे उद्यम में व्यस्त होने चाहिए।

12.3.4 क्षेत्रीय संगठन असैनिक भी हो सकते हैं–क्षेत्रीय संगठनो का सैनिक संगठन होना आवश्यक नही हैं। यह सुरक्षा मामलों अथवा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के दूसरे क्षेत्रो में सहयोग के लिए स्थापित किया जा सकता हैं; जैसे–आसियान और सार्क संगठन।

12.3.5 क्षेत्रीय संगठन क्षेत्रीय समझौते से भिन्न होता है–क्षेत्रीय संगठन क्षेत्रीय समझौते (सन्धियों) से भिन्न होता हैं। समझौते के द्वारा ही संगठन का निर्माण किया जाता है। यह क्षेत्रीय संगठन से अधिक शिथिल तथा अधिक सामान्य होता

है। समझौते का सम्बन्ध अधिक साधारण विषय से होता है जिसमें प्रबन्धकीय मशीनरी की आवश्यकता बहुत कम होती हैं। इसके विपरीत क्षेत्रीय संगठन व्यापक उद्देश्य वाले हित संगठन होते हैं जिनमे लम्बे समय तक के दो या अधिक राज्यों को सम्मिलित करने का प्रयास किया जाता है। **पामर और पर्किन्स** के शब्दों में, "एक वास्तविक क्षेत्रीय प्रबन्ध विस्तृत संगठन के बिना नही रह सकता हैं।"

12.4 प्रमुख क्षेत्रीय संगठन

प्रमुख क्षेत्रीय संगठन निम्नलिखित है–

12.4.1 अरब लीग–अरब लीग पश्चिम एशिया (मध्य पूर्व) के देशों का संगठन है। इसकी स्थापना 22 मार्च, 1945 में मिस्त्र, जोर्डन, इराक, सीरिया, लेबानान, जर्मन तथा सऊदी अरब ने अरब राज्यों का संघ (League of Arab States) के नाम से की थी। बाद में लीबिया, सूडान, ट्यूनीसिया, मोरक्को, अल्जीरिया, कुवैत, बहरीन, मारीतानिया, ओमान, कतार, सोमालिया, दक्षिण यमन,संयुक्त राज्य अमीरात इसमें सम्मिलित हो गये।

12.4.2 अरब लीग के उद्देश्य (Objectives of Arab League)–अरब संघ के चार्टर में निम्नलिखित उद्देश्य गिनाये गये हैं–

(i) अरब देशों की समप्रभुता कर रक्षा,

(ii) फिलिस्तान में यहूदी राज्य की स्थापना का विरोध,

(iii) सदस्य राष्ट्रों में आर्थिक, वित्तीय, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में सहयोग की स्थापना करना,

(iv) पश्चिमी एशिया में यूरोपीय उपनिवेशवाद की समाप्ति आदि।

12.4.3 संगठन (Organisation)–इसका संगठन निम्न प्रकार है–

(क) परिषद्–लीग का मुख्य अगं परिषद् है जिसे मजलिस (Majlis) भी कहा जाता है। इसमें समान प्रतिनिधित्व द्वारा सभी सदस्य देश सम्मिलित होते हैं। इसकी बैठक साल में दो बार होती हैं। कम से कम दो सदस्यों के अनुरोध पर इसकी विशेष सभा भी बुलायी जा सकती है। इसमें निर्णय सर्वसम्मति से लिए जाने का प्रयास किया जाता हैं। लेकिन कोई भी सदस्य राष्ट्र इसके निर्णय को मानने को बाध्य नही हैं।

(ख) समितियाँ–अरब संघ में कुछ समितियों की व्यवस्था भी हैं। इनमें राजनीतिक समिति अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इस समिति में सदस्य राज्यों के विदेश मन्त्री होते हैं। समय–समय पर उठे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक संकटो पर यह विचार करती है। समिति के निर्णय जब तक सर्वसम्मत नहीं होते तब तक किसी सदस्य के लिए अनिवार्य नहीं होते।

(ग) सचिवालय–अरब लीग का सचिवालय पहले काहिरा (मिस्त्र) में था, लेकिन अब यह ट्यूनिस (ट्यूनिसिया) में हैं। इसका मुखिया महासचिव (Secertary General) होता हैं जिसका कार्य अरब संघ के विभिन्न कार्यो में तालमेल बिठाना होता हैं।

अरब राज्यों ने मिस्त्र के नेतृत्व में 1967 और 1973 में इस्त्राइल के विरुद्ध युद्ध में भाग लिया, परन्तु पराजित हुए। अरब लीग अरब राज्यों में स्थायी एकता स्थापित करने में असफल रही हैं। अरब एकता को 1978 में मिस्त्र और इजराईल में हुए कैम्प डेविड समझोते से गहरा आघात लगा। 1990 में इराक के द्वारा कुवैत पर अधिकार करने पर भी मिस्त्र और साउदी अरब ने ईराक के विरुद्ध अमरीका के नेतृत्व में युद्ध में भाग लिया और कुवैत को स्वतन्त्र राज्य बनाया।

12.5 अफ्रीका एकता संगठन (OAU)–15 से 25 मई, 1963 तक इथियोपिया की राजधानी आदिस अबाबा में आयोजित एक सम्मेलन में 31 अफ्रीकी देशों के प्रतिनिधि एकत्र हुए। उन्होने 25 मई, 1963 को चार्टर पर हस्ताक्षर करके अफ्रीकी एकता संगठन (OAU) का निर्माण किया। आज इसमें 51 देश सम्मिलित हैं।

12.5.1 संगठन के उद्देश्य (Objectives)–संगठन के उद्देश्य निमनलिखित हैं–

(i) सामान्यतया विश्व तथा विशेषतया अफ्रिकी राज्यों में उपनिवेशवाद एवं नस्लवाद को समाप्त करना।

(ii) गुटनिरपेक्ष नीति से शीतयुद्ध को समाप्त या टालना।

(iii) अफ्रीकी देंशो में मधुर सम्बन्ध बनाना।

(iv) सदस्य देंशो की प्रादेशिक अखण्डता तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता को बनाये रखना तथा इसकी रक्षा करना।

(v) अफ्रीकावासियों की आर्थिक,सामाजिक और बोद्धिक प्रगति के लिय मदद करना।

(vi) संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर और मानवाधिकारों की सार्वलौकिक घोषणा के अनुरूप अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में वृद्धि करना।

12.5.2 संगठन के अंग (Organs of the Organisation)–संगठन के अंग निम्नलिखित हैं–

(क) सभा–सभा अफ्रिकी एकता संगठन का सर्वोच्य अंग है। इसमें संगठन के सदस्य देशों के राज्याध्यक्ष/शासनाध्यक्ष भाग लेते है। इसकी बैठक वर्ष में एक बार होती है, वैसे आवश्यकता पडने पर बैठक

कभी भी बुलायी जा सकती है। इसकी गणपूर्ति 2/3 है। सभी प्रस्ताव उपस्थित सदस्यों के 2/3 बहुमत से पारित किये जा सकते हैं।

(ख) मन्त्रिपरिषद्–यह संगठन सदस्य देशों के विदेश मन्त्रियों की परिषद् है। इसकी वर्ष में दो बार बैठक होती है। आवश्यकता पडने पर विशेष बैठक हो सकती है। परिषद् अपने कार्यों के लिय सभा के प्रति उत्तरदायी होती है।

(ग) सचिवालय–सचिवालय अफ्रीकी एकता संगठन के कार्यों में सहायता और उसकी गतिविधियों में तालमेल बैठाने का काम करता है। इसका प्रधान महासचिव कहलाता है।

(घ) मध्यस्थता, समझौता एंव निर्णय आयोग–इस आयोग के 21 सदस्य हैं जिनकी नियुक्ति सभा करती है। यह आयोग ओ.ए.यु. के सदस्यों के बीच के झगडों को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाने का प्रयत्न करता है।

(ङ) विशिष्ट आयोग– सभा ने अन्य आयोगों की स्थापना की है जो इस प्रकार हैं–आर्थिक और सामाजिक आयोग, शैक्षणिक और सांस्कृतिक आयोग, स्वास्थ्य, सफाई और पोषण आयोग, प्रतिरक्षा आयोग, वैज्ञानिक, तकनीकी, और अनुसंधान आयोग, परिवहन आयोग, विधिवेत्ता आयोग। ये आयोग सदस्य देशों में पारस्परिक सहयोग स्थापित करने का कार्य करते हैं।

यद्यपि इसे अफ्रीकी राष्ट्रों का पूरा समर्थन प्राप्त है, परन्तु व्यवहार में संस्था एक सुदृढ़, एकीकृत तथा प्रभावशाली क्षेत्रीय व्यवस्था बनाने में असफल रही है। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि OAU ने अफ्रीकी राष्ट्रों को उपनिवेशवाद के विरूद्ध अफ्रीकी एकता में स्थिरता तथा परस्पर विकास की आवश्यकता के प्रति सजग कर दिया है।

12.6 उत्तरी अटलांटिक सन्धि संगठन (नाटो)–नाटो का निर्माण 4 अप्रैल, 1949 को हुआ। इस सन्धि पर 12 देशों–अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, कनाडा, बेल्जियम, डेनमार्क, लग्जमबर्ग, नार्वे, पुर्तगाल, आइसलैण्ड तथा नीदरलैण्ड ने हस्ताक्षर किये। बाद में युनान, टर्की, पश्चिमी जर्मनी, पोलैण्ड, हंगरी, चैक गणराज्य को इसमे सम्मिलित कर लिया गया। वर्तमान में नाटो में कुल 30 सदस्य सम्मिलित है– अल्बानीया, बेल्जियम, बुल्गारिया, कनाड़ा, कुरेशिया, चेक गणराज्य, डेनमार्क, इथोलिया, फ्रांस, जर्मनी, ग्रीस, हंगरी, आइसलैण्ड, इटली, लुथवानीया, लग्जमबग, नीदरलैण्ड, नार्वे, पोलैण्ड, पुर्तगाल, रूमानिया, स्लोवाकिया, स्लोवेनिया, स्पेन, तुर्की, युनाईटेड किगंडम अमेरीका, लाटविया, एस्टोनिया।

12.6.1 उद्देश्य (Objectives)–नाटो का निर्माण निम्न उद्देश्यों के लिये किया गया था–

1. सोवियत साम्यवाद को रोकना।
2. सैन्य तथा आर्थिक विकास के लिए, अपने कार्यक्रम को आगे बढ़ाने के लिए यूरोपीय राष्ट्रों के लिए सुरक्षा छतरी प्रदान करना।
3. सोवियत संघ के साथ सम्भावित युद्ध के लिए लोगो को विशेषतया अमरीका के लोगों को मानसिक रूप से तैयार करना।

नोटों का उद्देश्य सन्धि की धारा 5 में निम्न प्रकार वर्णित है, "सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाले पक्ष स्वीकार करते है कि यूरोप अथवा उत्तरी अमरीका में उनमें से किसी एक या एक से अधिक पर आक्रमण उन सबके लिए आक्रमण समझा जायेगा और इसलिए वे स्वीकार करते हैं कि यदि इस प्रकार का सशस्त्र आक्रमण होता हैं तब उनमें से प्रत्येक संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर की 51वीं धारा द्वारा प्रदत्त व्यक्तिगत अथवा सामूहिक आत्मरक्षा के अधिकार के अनुसार कार्य करना शीघ्र ही व्यक्तिगत रूप से या अन्य पक्षों के साथ इस प्रकार के आक्रान्त दल अथवा दलों की सहायता करने के लिए कार्यवाही करेगा, जैसा वह आवश्यक समझेगा जिसमें उत्तरी अटलांटिक क्षेत्रों में सुरक्षा की पुनः स्थापना के लिए सशस्त्र शक्ति का प्रयोग भी सम्मिलित है।" इसका मुख्यालय मोन्स (बेल्जियम) में है।

12.6.2 संगठन (Organisation)–नाटों के निम्न अंग हैं–

(क) परिषद्– यह नाटो का सर्वोच्च अंग हैं। इसका निर्माण सदस्य राज्यों के मन्त्रियों से होता है। इसकी बैठक वर्ष में एक या दो बार होती हैं। नाटों का महासचिव परिषद् का अध्यक्ष होता है।

(ख) उपपरिषद्– यह नाटों के सदस्य देशों द्वारा नियुक्त कूटनीतिक प्रतिनिधियों की परिषद् है। यह नाटो संगठन से सम्बद्ध सामान्य हितों वाले विषयों का अनुसंधान करती है एवं मूल संस्था द्वारा सौंपे गये कार्यों को पूरा करती है।

(ग) प्रतिरक्षा समिति– इसमें नाटो के समस्त देशों के मन्त्री प्रतिनिधित्व करते हैं। इसका प्रमुख कार्य प्रतिरक्षा व्युह–रचना तथा नाटो में सैनिक मन्त्रणा (Military negotiations) करना है। यह नाटो की परिषद् द्वारा स्वीकृत सैनिक निर्णयों पर विचार करती है।

(घ) सैनिक समिति– इसका मुख्य कार्य नाटो परिषद् तथा उसकी समिति प्रतिरक्षा समिति को सालाह देना, के प्रमुख कमाण्डरों की भूमिका में तालमेल बिठाना, नाटो की योजनाओं तथा नीतियों के क्रियान्वयन की देखभाल करना।

12.6.3 नाटो के आधारभूत कार्य–

नई सामरिक धारणा में अपने उद्देश्यों व चुनौतियों के आलोक में नाटो के तीन आधारभूत कार्य बताये गये हैं– (1) सामुहिक प्रतिरक्षा (2) संकट प्रबन्धन (3) सहयोगमूलक सुरक्षा।

नई प्रतिबद्धताएँ–नाटो ने अपनी नई सामरिक धारणा में अपनी नई प्रतिबद्धताओं पर प्रकाश डाला है। इस दस्तावेज के अनुसार नाटो की निम्नलिखित नई प्रतिबद्धताएँ महत्वपूर्ण हैं–

1. इस धारणा के अन्तर्गत नाटो अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगियों तथा यूरोपीय संघ, संयुक्त राष्ट्र संघ आदि के साथ सहयोग करते हुए सुरक्षा के प्रत्येक चरण का प्रभावी प्रबन्धन करने हेतु प्रतिबद्ध है।
2. विश्व में शान्ति व सुरक्षा की स्थापना के लिए नाटो अन्य यूरोपीय राज्यों के लिए अपने दरवाजे खुले रखेगा। अर्थात् नाटो का क्षेत्रीय विस्तार भविष्य में और हो सकता है।
3. नाटो अपने राजनीतिक सहयोगियों के समर्थन से अपने वर्तमान सैनिक मिशनों (कार्यवाहियों) को प्रभावी बनाऐगा।
4. नाटो आण्विक शस्त्रविहिन विश्व की स्थापना हेतु कृत संकल्प है, लेकिन जब तक विश्व में कहीं भी आण्विक हथियारों का अस्तित्व रहता है, नाटो अपने पास आण्विक हथियार रखेगा।
5. नई सुरक्षा चुनौतियों के सामना करने के लिये तथा अपने को प्रभावी व लोचशील बनाए रखने हेतु नाटो अपने सैन्य संसाधनों व अन्य का आधुनिकीकरण व सुधार जारी रखेगा। इससे स्पष्ट है कि नाटो समकालीन विश्व में अपने को प्रभावी बनाने हेतु अपने संसाधानों को अत्याधुनिक बनाने का प्रयासकरेगा।

12.7 दक्षिण–पूर्व एशियाई सन्धि संगठन (सीटो)–दक्षिणी–पूर्वी एशिया को साम्यवाद से बचने के उद्देश्य से ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने अमरीका के राष्ट्रपति के समक्ष यह प्रस्ताव रखा, दक्षिणी–पुर्वी एशिया के लिये भी नाटो जैसा कोई संगठन होना चाहिए। अतः साम्यवाद से भयभीत समस्त पूर्वी एशिया के देश फ्रांस, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, फिलीपीन्स, थाईलैण्ड और पाकिस्तान के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन 6 से 8 सितम्बर,1954 तक फिलीपीन्स की राजधानी मनीला में हुआ। अमरीका और ब्रिटेन ने भी इसमें भाग लिया। सम्मेलन में लम्बे विचार–विमर्श के पश्चात् दक्षिण–पूर्वी एशियाई सन्धि संगठन का प्रस्ताव पारित हुआ, जिसे 19 फरवरी,1955 से कार्यान्वित किया गया। इसे मनीला समझौता या सीटो कहा जाता है।

12.7.1 उद्देश्य (Objectives)–इसके उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(i) दक्षिण–पूर्व एशिया तथा दक्षिण–पश्चिमी प्रशान्त महासागर में साम्यवाद का प्रसार रोकना।

(ii) दक्षिण–पूर्व एशिया तथा दक्षिण–पश्चिमी प्रशान्त महासागर में पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा अपने हितों की रक्षा करना।

(iii) सदस्य देशों में चहुँमुखी क्षेत्रो में आपसी सहयोग स्थापित करना।

12.7.2 प्रमुख व्यवस्थाएँ (Main Provisions)–सीटो की मुख्य व्यस्थाएँ निम्नलिखित हैं–

(i) अन्य किसी राष्ट्र को सदस्य देशों की सर्वसम्मति से इस सन्धि में सम्मिलित किया जा सकता है।

(ii) यह सन्धि अनिश्चित काल के लिए की गयी है परन्तु कोई सदस्य देश एक वर्ष की पुर्व सूचना देकर इससे अलग हो सकता है।

(iii) इस सन्धि में सशस्त्र आक्रमण को रोकने तथा आन्तरिक विध्वंस के बारे में जवाबी उपायों के अतिरिक्त स्वतन्त्र संस्थाओं के विकास, आर्थिक विकास तथा सामाजिक कल्याण के सम्बन्ध में व्यवस्थाएँ दी हैं।

12.7.3 संगठन (Organisation)– सीटो का संगठन निम्न प्रकार है–

(क) परिषद्–परिषद् एक मन्त्रिमण्डलीय संस्था है। इसकी बैठक वर्ष में एक बार होती है वैसे आवश्यकता पड़ने पर कभी भी बुलायी जा सकती है।

(ख) सचिवालय–परिषद् की बैठक न होने पर इसका कार्य परिषद् के प्रतिनिधि करते हैं। इन प्रतिनिधियों की सहायता के लिए एक सचिवालय की व्यवस्था है।

(ग) निरीक्षण समितियाँ (Watch Dog Committees)–सीटो के अन्तर्गत कुछ निरीक्षण समितियों की व्यवस्था की गयी है जो सदस्य देशों में विध्वंसक गतिविधियों पर निगरानी रखती हैं।

(घ) इसका मुख्यालय थाईलैण्ड की राजधानी बैंकाक में हैं।

अन्त–यह संगठन अपने उद्देश्य में असफल रहा। वियतनाम में यह साम्यवाद के प्रसार को रोकने में यह सफल नहीं हुआ। 30 जून 1977 को इसका विधिवत विघटन हो गया।

12.8 बगदाद समझौता या केन्द्रीय सन्धि संगठन (सेन्टो)–अमरीकी प्रयासों से 24 फरवरी,1955 को इराक और टर्की के मध्य सुरक्षा के सम्बन्ध में एक–दूसरे की सहायता करने के लिए इराक की राजधानी बगदाद में जो समझौता हुआ, वह आगे चलकर बगदाद समझौता कहलाया। इसके सदस्य देश टर्की, इरान, ब्रिटेन और पाकिस्तान थे।

12.8.1 बगदाद समझौते का अन्त और सेन्टो का निर्माण–14 जुलाई,1958 को हरारे में क्रान्ति हो गयी और नये शासनाध्यक्ष जनरल अब्दुल करीम कासिम ने 21 अगस्त,1959 को इसकी सदस्यता त्याग दी। तदुपरान्त टर्की, ईरान, ब्रिटेन और पाकिस्तान ने मिलकर इसे नया नाम–केन्द्रीय संगठन (सेन्टो) दिया।

12.8.2 व्यवस्थाएँ–

1. इसके सदस्य देश एक–दूसरे के लिये सुरक्षा और प्रतिरक्षा के लिए वचनबद्ध हैं किन्तु वे एक–दुसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे।
2. अरब संघ का कोई भी सदस्य देश अन्य देश जो पश्चिमी एशिया में शान्ति और सुरक्षा के लिये चिन्तित है, इसका सदस्य बन सकता है। इसी आधार पर ब्रिटेन को सदस्य बनाया गया।
3. इस समझौते को 5 वर्ष के लिये किया गया था। पाचँ–पाचँ वर्ष के बाद इसके नवीनीकरण की व्यवस्था है।

12.8.3 उद्देश्य (Objectives)–इस संगठन का मूल उद्देश्य सदस्यों के मध्य प्रतिरक्षा के मामले में सहयोग देना और साम्यवादी विस्तार को रोकना है।

12.8.4 संगठन (Organisation)–इसका संगठन इस प्रकार है–

(क) परिषद्– इसमें सदस्य देशों के विदेशमन्त्री सम्मिलित होते हैं। इसकी सहायता के लिये सैनिक एवं आर्थिक समिति की भी स्थापना की गयी है।

(ख) मुख्यालय– सेण्टो का मुख्यालय तेहरान में है।

वर्तमान स्थिति (Present Position)–वर्तमान में ब्रिटेन के अतिरिक्त सभी सदस्य देशों ने इससे अपने आप को अलग कर लिया। इसलिए सेन्टो एकदम निष्क्रिय हो गया।

12.9 वारसा पैक्ट–नाटो के प्रत्युत्तर में रूस ने वारसा पैक्ट का गठन किया। इसकी स्थापना 14 मई,1955 को पोलैण्ड की राजधानी वारसा में की गयी। इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने वाले देश थे– अल्बानिया, बुल्गारिया, चैकोस्लोवाकिया, पुवी जर्मनी, पोलैण्ड, रूमानिया तथा सोवियत संघ।

12.9.1 उद्देश्य (Objectives)–इसके दो उद्देश्य थे–

(i) साम्यवादी प्रसार– द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सोवियत संघ महाशक्ति के रूप में उभरा था। वह चाहता था कि उसके नेतृत्व में विश्व में साम्यवाद का प्रसार हो। सैनिक सन्धि के द्वारा यह कार्य आसान था।

(ii) नाटो का विरोध– जब अमरीका ने साम्यवादी प्रसार रोकने तथा सम्भावित सोवियत हमले के खतरे के मुकाबले के लिए पश्चिमी यूरोप के देशों को नाटो में रख लिया तो रूस में उसके प्रतिरक्षा के लिए वारसा पैक्ट किया।

12.9.2 व्यवस्थाएँ–वारसा पैक्ट की प्रस्तावना में कहा गया कि यूरोप में सामूहिक सुरक्षा की पद्धति स्थापित की जाये। इसमें सदस्य देशों में पारस्परिक आर्थिक,सामाजिक और सांस्कृतिक सहयोग की बात कही गयी। सन्धि के अनुच्छेद 3 में कहा गया कि किसी सदस्य देश पर आक्रमण होता है तो उसे अन्य देशों पर भी आक्रमण माना जायेगा और सभी देश आक्रमणकारी देश के विरूद्ध उसे सैनिक सहायता देंगे।

12.9.3 संगठन (Organisation)–इसके प्रमुख अंग निम्नलिखित हैं–

(क) संयुक्त सैनिक कमान– सन्धि के अनुच्छेद 5 के अनुसार संयुक्त सैनिक कमान (United Military Command) बनायी गयी जिसका मुख्यालय सोवियत संघ की राजधानी मास्को में था। इसके अधीन समस्त सदस्य देशों की सेनाएँ रखी गयीं। इनका सर्वोच्च सेनापति, महामन्त्री और सोवियत जनरल स्टाफ के साथ परामर्श करके सेनाओं का संगठन तथा इनका विभिन्न प्रदेशों में वितरण करता था।

(ख) राजनीतिक सलाहकार समिति– सन्धि के अनुच्छेद 6 के अनुसार इस सन्धि में प्रत्येक राज्य से सदस्य या विशेष रूप से नियुक्त प्रतिनिधि को इसमें प्रतिनिधित्व दिया जाना था। समिति की शक्ति परामर्श तक सीमित थी जो सन्धि के क्रियान्वयन के बारे में उठने वाले मुद्दों पर होनी थी।

मूल्यांकन–वारसा समझौता 1955 से1990 तक सोवियत गुट की मुख्य एकीकृत सन्धि बना रहा। रूस में प्रेरेस्ट्रोइका तथा ग्लैसनोस्त के आ जाने तथा पूर्वी यूरोपीय साम्यवादी राज्यों पर इसका प्रभाव पड़ा। परिणामस्वरूप 25 फरवरी, 1991 को औपचारिक रूप से वारसा सन्धि करने का निर्णय लिया गया, जो 1 अप्रैल, 1991 से लागू हो गया।

12.10 दक्षिण–पूर्वी एशियाई राष्ट्रों का संगठन (आसियान)–दक्षिण–पूर्वी एशियाई राष्ट्र का संघ अर्थात् आसियान या एसियान के संस्थापक देश इण्डोनेशिया, फिलीपीन्स, मलेशिया, सिंगापुर तथा थाईलैण्ड हैं। इन्होंने 8 अगस्त,1947 को

प्रादेशिक संगठन के रूप में इसका औपचारिक गठन बैंकाक घोषणा के दौरान किया। इसमें ब्रूनेई, वियतनाम, लाओस, म्यांमार एवं कम्बोडिया बाद में सम्मिलित हो गये। इस प्रकार इसके सदस्य देशों की संख्या 10 हो गयी। 24 जुलाई,1996 को भारत को आसियान का पूर्ण संवाद सहभागी बना लिया गया है। पाकिस्तान को आसियान क्षेत्र मंच (ARF) का 24वाँ सदस्य बनाया गया। पाकिस्तान 2 जुलाई, 2005 को इसका सदस्य इस शर्त पर बना कि वह उसकी बैठकों में द्विपक्षीय मुद्दा नही उठायेगा।

आसियान का केन्द्रीय सचिवालय जकार्ता (इण्डोनेशिया) में है और उसका अध्यक्ष महासचिव जो कि पदेन प्रत्येक दो वर्ष के लिए प्रत्येक देश को जाता है। देश के चुनाव का आधार अकारादि क्रम है। सचिवालय के ब्यूरो निदेशकों तथा अन्य पदों कि भर्ती तीन वर्ष बाद होती है। आसियान का पहला शिखर सम्मेलन 1976 में आयोजित किया गया। आसियान के अब तक 34 शिखर सम्मेलन हो चुके है 34वाँ शिखर सम्मेलन 22 जून 2019 में थाईलैण्ड में आयोजित किया गया।

1210.1 उद्देश्य (Objectives)–आसियान के उद्देश्य निम्नलिखत हैं–

1. क्षेत्र में आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक विकास को बढ़ावा देना।
2. क्षेत्रीय शान्ति तथा सुरक्षा स्थापित करना।
3. विभिन्न क्षेत्रों में साझे हितों के मामले में परस्पर सहयोग तथा सहायता देना।
4. अपने लोगों को प्रशिक्षण तथा शोध सुविधाएँ देने में परस्पर तथा सहायता देना।
5. दक्षिण–पूर्वी एशियाई अध्ययन को प्रोत्साहन देना।
6. कृषि व्यापार तथा उद्योग के विकास में सहयोग देना।
7. समान उद्देश्यों तथा लक्ष्यों वाले दूसरे क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के साथ लाभप्रद तथा निकटतम सहयोग स्थापित करना।

12.10.2 संगठन (Organisation)–एसियान के ढाँचे में परामर्श न्यायालय, स्थायी समिति, सचिवालय तथा कई स्थाई तथा अन्तरिम समितियाँ सम्मिलित हैं। परामर्श मन्त्रालय में सदस्य राज्यों के विदेश मन्त्री सम्मिलित होते हैं। यह मन्त्रालय समय–समय पर परस्पर हितों के विभिन्न मामलों से सम्बन्धित विषयों पर विचार–विमर्श करता रहता है। स्थाई समिति की बैठक आवश्यकतानुसार बुलाई जाती हैं तथा मन्त्रालयों की बैठकों में यह सदस्यों के मध्य विचार विमर्श करती हैं। यह बैठके बारी–बारी सभी दशों में होती हैं। 1976 में इसमे सचिवालय भी जुड़ गया। इसका मुख्यालय जकार्ता में है। तथा यही आसियान के प्राशासकीय मामलों की देखभाल भी करता हैं।

12.10.3 आसियान के कार्य–आसियान के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

1. सामाजिक समस्याओं (जनसंख्या नियन्त्रण, शिक्षा विकाश, समाज कल्याण, खेल) में सहयोग।
2. सांस्कृतिक गतिविधियों को बढ़ावा देना।
3. कृषि क्षेत्र में सहयोग बढ़ाना।
4. दक्षिण–पूर्वी एशिया को परमाणु मुक्त क्षेत्र बनाना।
5. आतंकवाद की समस्या के समाधान हेतु प्रयास करना।
6. आसियान कम्युनिटी की स्थापना की दिशा में प्रयत्न करना।
7. एशियायी देशों के राजनीतिक आर्थिक क्षेत्र के विकास हेतु रोड़ मैप तैयार करना।

12.11 दक्षिण एशियाई क्षैत्रीय सहयोग संगठन (सार्क)–दक्षिणी एशिया के राष्ट्रों के मध्य सहयोग को बढ़ावा देने से उद्देश्य से क्षेत्रीय संगठन की स्थापना की गयी जिसे दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ–'दक्षेस' या सार्क कहा जाता है। सार्क का जन्म 7–8 दिसम्बर 1985 को ढ़ाका में हुआ इसमें भारत, पाकिस्तान, नेपाल, भुटान, बांग्लादेश, श्रीलंका और मालदीव सम्मिलित हैं। 13 नवम्बर, 2005 को अफगानिस्तान को दक्षेस के आठवें सदस्य के रूप में मान्यता दी गयी। असका मुख्यालय काठमाण्डू (नेपाल) में है।

12.11.1 उद्देश्य (Objectives)–इसके उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. दक्षिण एशियाई देशों के लोगों के कल्याण एवं उनके जीवन स्तर में सुधार करना।
2. दक्षिण एशिया के देशों की सामूहिक आत्मनिर्भरता में वृद्धि।
3. क्षेत्र के आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिकक विकास में तेजी लाना।
4. आपसी विश्वास तथा सूझ–बूझ तथा एक–दूसरे की समस्याओं का मूल्यांकन करना।
5. आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, तकनीकी और वैज्ञानिक क्षेत्र में सक्रिय सहयोग एवं पारस्परिक सहायता में वृद्धि करना।

6. अन्य विकासशील देशों के सहयोग में वृद्धि करना।
7. सामान्य हित के मामलों पर अन्तर्राष्ट्रीय मंचो पर आपसी सहयोग मजबूत करना।

12.11.2 सिद्धान्त (Principles)–अनुच्छेद 2 के अनुसार सार्क के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

1. संगठन के ढाँचे के अन्तर्गत सहयोग, समानता, क्षेत्रीय अखण्डता, राजनीतिक स्वतंत्रता, अहस्तेक्षप तथा परस्पर लाभ के सिद्धान्तों का सम्मान करना।
2. यह सहयोग द्विपक्षीय और बहुपक्षीय न होकर पूरक होगा।
3. इस प्रकार का सहयोग द्विपक्षीय और बहुपक्षीय उत्तरदायित्वों का विरोधी नहीं होगा।

12.11.3 संगठन (Organisation)–सार्क में निम्नलिखित संस्थाएँ हैं–

(i) शिखर सम्मेलन– अनुच्छेद 3 के अनुसार प्रतिवर्ष एक शिखर सम्मेलन का आयोजन किया जाता है। शिखर सम्मेलन में सदस्य देशों के शासध्यक्ष भाग लेते हैं। पहला शिखर सम्मेलन बांग्लादेश की राजधानी ढाका में (7–8 दिसम्बर, 1985), तथा 18 वां शिखर सम्मेलन 26–27 नवम्बर 2014 को काठमाण्डू (नेपाल) में संपन्न हुआ। 19 वां सार्क सम्मेंलन 9–10 दिसम्बर 2016 को पाकिस्तान में आयोजित होना था लेकिन अपरिहार्य कारणों से स्थगित कर दिया गया।

(ii) मन्त्रीपरिषद्–अनुच्छेद 4 के अनुसार यह सदस्य देशों के विदेश मन्त्रियों की परिषद् है। इसकी विशेष बैठक आवश्यकतानुसार कभी भी हो सकती है परन्तु छह माह में एक बैठक होना आवश्यक है। इसके कार्य हैं–संघ की नीति निर्धारित करना, सामान्य हित के मुद्दों के बारे में निर्णय करना, सहयोग के नए क्षेत्र खोजना, आदि।

(iii) स्थायी समिति–अनुच्छेद 5 के अनुसार यह सदस्य देशों के सचिवों की समिति है। इसकी बैठकें आवश्यकतानुसार कभी भी हो सकती हैं परन्तु वर्ष में एक बैठक का होना अनिवार्य है। इसके प्रमुख कार्य हैं–सहयोग के कार्यक्रमों को मॉनिटर करना, अन्तर–क्षेत्रीय प्राथमिकताएं निर्धारित करना, अध्ययन के आधार पर सहयोग के नए क्षेत्रों की पहचान करना।

सार्क वार्षिक शिखर सम्मेलन

प्रथम	1985 (7–8 दिसम्बर)	ढाका (बांग्लादेश)
द्वितीय	1986 (16–17 नवम्बर)	बंगलौर (भारत)
तृतीय	1987 (2–4 नवम्बर)	काठमाण्डू (नेपाल)
चतुर्थ	1988 (दिसम्बर)	इस्लामाबाद (पाकिस्तान)
पंचम	1990 (22–23 नवम्बर)	माले (मालदीव)
षष्ठ	1991 (21 दिसम्बर)	कोलम्बो (श्रीलंका)
सप्तम्	1993 (10–11 अप्रैल)	ढाका (बांग्लादेश)
अष्टम्	1995 (2–4 मई)	नई दिल्ली (भारत)
नवम्	1997 (12–14 मई)	माले (मालदीव)
दसवां	1998 (29–31 जुलाई)	कोलम्बो (श्रीलंका)
ग्यारहवां	2002 (5–6 जनवरी)	काठमाण्डू (नेपाल)
बारहवां	2004 (5–6 जनवरी)	इस्लामाबाद (पाकिस्तान)
तेरहवां	2005 (12–13 नवम्बर)	ढाका (बांग्लादेश)
चौदहवां	2007 (4–4 अप्रैल)	नई दिल्ली (भारत)
पन्द्रहवां	2008 (2–3 अगस्त)	कोलम्बो (श्रीलंका)
सोलहवां	2010 (28–29 अप्रैल)	थिम्पू (भूटान)
सत्रहवां	2010 (10–11 नवम्बर)	अतोलद्वीप (मालद्वीव)
अठारहवां	2014 (26–27 नवम्बर)	काठमाण्डू (नेपाल)

(iv) तकनीकी समितियां–इनकी व्यवस्था अनुच्छेद 6 में की गयी है। इनमें सभी सदस्य देशों के प्रतिनिधि होते हैं। ये अपने–अपने क्षेत्रो में कार्यक्रम को लागू करने, उनमें समन्वय पैदा करने और उन्हें मॉनिटर करने के लिये उत्तरदायी हैं। ये स्वीकृत क्षेत्रों में क्षेत्रीय सहयोग के क्षेत्र ओर सम्भावनाओं का पता लगाती हैं।

(v) कार्यकारी समिति–अनुच्छेद 7 में कार्यकारी समिति की व्यवस्था की गयी है। इसकी स्थापना स्थायी समिति द्वारा की जा सकती है।

(vi) सचिवालय–अनुच्छेद 8 में सचिवालय का प्रावधान है। इसकी स्थापना दूसरे सार्क सम्मेलन (बंगलौर) के बाद 16 जनवरी 1987 को की गयी। 17 जनवरी 1987 में काठमाण्डू सचिवालय ने कार्य करना शुरू कर दिया है। महासचिव का कार्यकाल 2 वर्ष रखा गया है तथा महासचिव का पद सदस्यों में बारी–बारी से घूमता रहता है। प्रत्येक सदस्य अपनी बारी आने पर किसी व्यक्ति को नामजद करता है जिसे सार्क मन्त्रिपरिषद् नियुक्त कर देती है। सार्क सचिवालय को सात भागों में विभक्त किया है ओर प्रत्येक भाग के अध्यक्ष को निदेशक कहते हैं।

काठमाण्डु स्थित सार्क सचिवालय ने वर्ष 2003 में श्रीलंका में एक सांस्कृतिक केन्द्र और मालदीव में तटीय प्रबन्धन केन्द्र की स्थापना की। दक्षिण एशिया के देशों के बीच विकास एवं सहयोग गतिविधियों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से अब तक सार्क के पांच केन्द्र खोले जा चुके हैं। ढाका में कृषि व मौसम विज्ञान पर शोध के लिये दो अलग–अलग केन्द्रों की स्थापना की गई है जबकि दिल्ली में सार्क का एक शोध केन्द्र स्थापित है।

(vii) वित्तीय प्रावधान–सार्क के कार्यों के लिए प्रत्येक सदस्य के अंशदान को ऐच्छिक रखा गया है। कार्यक्रमों के व्यय को सदस्य देशों में बांटने के लिये तकनीकी समिति की सिफारिशों का सहारा लिया जाता है।

सचिवालय के व्यय को पूरा करने के लिए सदस्य देशों के अंशदान को निम्न प्रकार निर्धारित किया गया है–भारत 32%, पाकिस्तान 25%; नेपाल, बांग्लादेश एवं श्रीलंका प्रत्येक का 11% और भूटान एवं मालदीव प्रत्येक का 5%।

12.12 यूरोपीयन आर्थिक समुदाय (ECC)–इसकी स्थापना फ्रांस, बेल्जियम, नीदरलैण्ड, लक्जमबर्ग, पश्चिमी जर्मनी व इटली के द्वारा 1957 की रोम की सन्धि के अनुसार की गयी। इसकी सदस्यता बाद में ब्रिटेन, डेनमार्क, आयरलैण्ड, ग्रीस, स्पेन, पूर्तगाल, आस्ट्रिया, फिनलैण्ड और स्वीडन ने ग्रहण कर ली। अतः इसकी सदस्य संख्या 15 हो गयी। इसका मुख्यालय ब्रुसेल्स (बेल्जियम) में है।

12.12.1 उद्देश्य (Objectives)–सन्धि के अनुच्छेद 2 में पाँच उद्देश्य गिनाये गये हैं–

1. यूरोप को विभाजित करने वाले विवादों को सदैव के लिए समाप्त करना।
2. यूरोप की प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करना तथा आर्थिक शक्ति और सांस्कृतिक परम्परा के अनुकूल भूमिका निभाना।
3. संयुक्त कार्यवाही द्वारा यूरोपीय जनता की कार्यशैली एवं जीवनयापन के स्तर मे सुधार करना।
4. यूरोप के छोटे–छोटे बाजारों में बाँटने वाले व्यवधानां का अन्त करना।
5. बड़े पैमाने पर लाभप्रद औद्योगिक उत्पादन को प्रोत्साहन तथा भविष्य में यूरोप के संयुक्त राष्ट्र के एकीकरण के आधार प्रस्तुत करने के प्रयत्न करना।

अनुच्छेद 3 और 4 में इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रस्तावित क्रियाकलाप तथा संगठन, महासभा, परिषद्, आयोग तथा न्याय सभा आदि का ब्यौरा दिया है।

12.12.2 उपलब्धियाँ (Achievements)–संगठन आन्तरित व्यापार कर भार से मुक्त है। श्रम, पुँजी और सेवाओं की गतिशीलता में वृद्धि हुई है। ई. ई. सी. की अलग पहचान बन गयी है। क्षेत्रीय सहकार के लाभ के अलावा ई. ई सी. ने यूरोपीय राष्ट्रों की समप्रभुता को क्षीण कर आपसी संघर्ष की सम्भावना को कम किया है। यूरोपीय परिषद् हो या न्याय सभा, विवादों के निपटारे के विषय में ई. ई. सी. की सफलता संयुक्त राष्ट्र संघ से कही अधिक है।

12.13 यूरोपीयन साझा बाजार (ECM)–1 जनवरी 1958 को यूरोप के छः देशों–बेल्जियम, फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, इटली, नीदरलैण्ड तथा लक्जमबर्ग ने यूरोप के आर्थिक तथा राजनीतिक एकीकरण की दृष्टि से यूरोपीयन साझा बाजार की स्थापना की। बाद में इसमें ब्रिटेन, आयरलैण्ड, डेनमार्क, ग्रीस, स्पेन व पुर्तगाल, आस्ट्रिया, फिनलैण्ड तथा स्वीडन भी इसमें सम्मिलित हो गये। इसका मुख्यालय ब्रुसेल्स (बेल्जियम) में है।

12.13.1 उद्देश्य (Objectives)–इसके उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. रूढ़िवादी आर्थिक परम्परा को समाप्त करके नयी व्यवस्था लाना। राज्यों के मध्य कर चुंगी को समाप्त करना।
2. सदस्य राज्यों में एक जैसी कृषक तथा कृषि नीति तैयार करना।
3. ऐसी नीति न बनाना जिससे किसी उद्योग को विशेष संरक्षण प्राप्त हो।

4. श्रमिकों को अपने आन्दोलनों को प्रतिबन्धों से मुक्त रखना।
5. सभी राज्यों की समान आर्थिक उन्नति की नीति बनाना।
6. सदस्य राज्यों में आयात–निर्यात की समान नीतियाँ बनाना।

12.13.2 संगठन (Organisation)– इसका संगठन निम्न प्रकार है–

1. सामान्य सभा (General Assembly)–इसमें सभी सदस्य देशों के प्रतिनिधि होते हैं। इसमे सदस्य अपने पदाधिकारियों का चयन करते हैं, उद्योग, कृषि तथा अन्य व्यापार से सम्बन्धित नीति बनाते हैं।

2. आयोग (Commission)–सामान्य सभा में विभिन्न आयोगों के अध्यक्षों का निर्वाचन होता है।

3. मन्त्रिपरिषद् (Council of Ministers)–साझा बाजार की नीतियों का निर्धारण मन्त्रिपरिषद् करती है। प्रत्येक सदस्य राज्य का एक मन्त्रि स्तर का व्यक्ति इसका सदस्य हो सकता है। महासभा के नियमों को यह लागू कराती हैं।

4. न्यायालय–इस न्यायालय में न्यायधीशों की नियुक्ति 6 वर्ष के लिए की जाती है। इसका कार्य राष्ट्रों के मध्य की गयी सन्धियों की व्याख्या करना, सामान्य विवादों कर निपटारा करना है।

5. सामाजिक तथा आर्थिक समिति (Social and Economic Committee)–यह विशेषज्ञों की समिति है जो वृद्धि, व्यापार,श्रम अथवा उद्योग के बारे में प्रगति करने के लिए निश्चित सूचनाएँ प्राप्त करना, उसकी प्रमाणिकता सिद्ध करना है।

महत्त्व–इस संस्था के माध्यम से यूरोपीय राष्ट्रों को एकता के सूत्र में बाँधा जा सकता है। इससे अमरीका और ब्रिटेन पर इन देशों की निर्भरता कम हुई है। ब्रिटेन ने अपने आर्थिक हित प्रभावित होने के कारण 1969 में इसकी सदस्यता प्राप्त की। यूरोपीय साझा बाजार ने एशियाई तथा अफ्रीकी राष्ट्रों के व्यापार पर भी विपरित प्रभाव डाला है।

12.14 सारांश

इस प्रकार क्षेत्रीय संगठन प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्यों का संगठन होता है। अतः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में इनका महत्वपूर्ण प्रभाव होता है इन संगठनो में सुरक्षा आर्थिक एवं सांस्कृतिक सहयोग के विकास को प्रोत्साहन मिलता है तथा क्षेत्रीय तनाव को दूर करने में सहायता मिलती है। यही कारण है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति क्षेत्रीय संगठनो की व्याख्या दिनो–दिन बढती जा रही है।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. क्षेत्रीय समूह एवं संगठनों का अर्थ एवं विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. उत्तर अटलांटिक संधि संगठन (NATO) के संगठन एवं कार्यों का उल्लेख कीजिए।
3. सार्क (SAAC) का संगठन एवं कार्यों का वर्णन कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. यूरोपीय साझा बाजार के उद्देश्य बताईए।
2. आसियान के प्रमुख कार्यों का वर्णन कीजिए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. सार्क (SAAC) का पूरा नाम बताईए। वर्तमान में इसमें कुल कितने राष्ट्र हैं ?
2. अफ्रीकी एकता संगठन के दो उद्देश्य बताईए।

इकाई – 13

भूमण्डलीकरण (वैश्वीकरण)

(Globalisation)

13.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में भूमण्डलीकरण का अर्थ, विशेषताएं, कारण, गुण एवं दोषों पर प्रकाश डाला गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :–

- वैश्वीकरण का अर्थ एवं परिभाषाओं को जान सकेंगे।
- वैश्वीकरण के गुण एवं दोषों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- वैश्वीकरण के अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर प्रभावों को जान सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

भूमण्डलीकरण या वैश्वीकरण वर्तमान समय मे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार मे सर्वाधिक प्रचलित शब्द है। यह शब्द व्यापार अवसरों की जीवन्तता एवं इसके विस्तार का घोतक है। भूमण्डलीकरण व्यापारिक क्रियाकलापों विशेषकर विपणन सम्बन्धी क्रियाओं का अन्तर्राष्ट्रीयकरण करना है, जिसमें सम्पूर्ण विश्व बाजार को एक ही क्षेत्र के रूप में देखा जाता है।

भूमण्डलीकरण शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1950 के दशक में फ्रांस में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के साहित्य में किया गया था। विश्व के देशों में भूमण्डलीकरण का महत्त्व विगत दशक के वर्षों में उस समय हुआ जब अचानक सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में तथाकथित क्रांतिकारी ढ़ंग से परिवर्तन दृष्टिगोचार हुआ। भूमण्डलीकरण शब्द का प्रयोग समय में व्यापक पैमाने पर हो रहा है फिर भी इसकी विषयवस्तु के संदर्भ में विश्व में आम सहमति नहीं बन पायी है।

13.2 भूमण्डलीकरण का अर्थ

वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण का अर्थ है–पूरे विश्व में एक केन्द्रीय व्यवस्था का होना। भूमण्डलीकरण में प्रत्येक राष्ट्र अपनी सीमाओं के बाहर जाकर अन्य देशों के साथ अपने सम्बन्धों को स्थापित करता है। घरेलू बाजार में जो बाजार शक्तियाँ क्रिया करती हैं उनका राष्ट्रीय सीमाओं से बाहर आकर अपनी क्रिया विधि को करना ही वैश्वीकरण है। इस प्रक्रिया में किसी भी राष्ट्र के पूँजीपतियों द्वारा अपने विस्तार के लिए सस्ते श्रम और सस्ते कच्चे माल की तलाश रहती है। वैश्वीकरण सिर्फ आर्थिक गतिविधियों के माध्यम से ही सम्पादित नहीं हो रहा बल्कि यह सांस्कृतिक और राजनीतिक परिदृश्य से भी बढ़ रहा है। भूमण्डलीकरण के कारण ही दुनिया छोटी होती जा रही है और विश्व बाजार की परिकल्पना साकार हो रही है। इसने सम्पूर्ण राष्ट्रो को एक करके 'ग्लोबल विलेज की व्यवस्था' प्रस्तुत की है। वैश्वीकरण की व्यवस्था में एक आदर्श पूँजीवाद की नव उदारवादी व्यवस्था को प्रोत्साहन व संरक्षण प्राप्त होता है।

13.3 भूमण्डलीकरण/वैश्वीकरण की परिभाषाएँ : वैश्वीकरण की प्रमुख परिभाषाएँ निम्न हैं –

13.3.1 एडवर्ड एस. हरमन (Adverd S. Herman) ने विश्वीकरण के शाब्दिक अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है कि, विश्वीकरण विभिन्न राष्ट्रों की सीमाओं के आर–पार प्रबन्धकीय विस्तार एवं क्रियाशील प्रक्रिया भी है एवं साथ ही राष्ट्रीय सीमाओं के पास सुविधाओं तथा आर्थिक सम्बन्धों की एक सेरचना भी है जिसका लगातार विकास हो रहा है और साथ–साथ इसमें परिवर्तन भी हो रहा है।"

13.3.2 वैयलिस एवं **स्मिथ** ने वैश्वीकरण को स्पष्ट करते हुए कहा है कि, "वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सामाजिक सम्बन्ध अपेक्षाकृत दूरी रहित एवं सीमा रहित बन जाते हैं।"

13.3.3 रिचर्ड फॉक ने वैश्वीकरण के अर्थ में इसकी प्रकृति और कारण को बताते हुए कहा है कि, "यह नयी विश्व संरचना, जिसे हम वैश्वीकरण कहते हैं, ऊपर से आयी है। यह एक ऐसी अवधारणा है जिसे विकसित देशों द्वारा थोपा गया है। इस वैश्वीकरण के कारण विश्व एक वैश्विक गाँव में परिवर्तित हो गया है। यह सूचना तकनीक के कारण सम्भव हुआ है।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण एक ऐसी विस्तृत प्रक्रिया है जिसमें राष्ट्रों के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध इतने औपचारिक हो गये हैं कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों की नीतियों, विचारों, कार्यक्रमों को अपनाने में कोई संकोच नहीं करता तथा सभी राष्ट्र सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विषयों के सन्दर्भ में विचारों को अपनाने के मार्ग पर आगे बढ़ते हैं।

सामान्यतः वैश्वीकरण के अन्तर्गत निम्न तत्वों को सम्मिलित किया जा सकता है :–

1. संसार के विभिन्न देशों मे बिना किसी अवरोध के विभिन्न वस्तुओं का आदान–प्रदान सम्भव बनाने के लिए व्यापार अवरोध को कम करना।
2. आधुनिक प्रौद्योगिकी का निर्बाध प्रवाह सम्भव बनाने हेतु उपयुक्त वातावरण बनाना।
3. विभिन्न राष्ट्रो मे पूंजी का स्वतन्त्र प्रवाह सम्भव बनाने हेतु आवश्यक परिस्थितियाँ पैदा करना।

4. संसार के विभिन्न देशों मे श्रम का निर्बाध प्रवाह सम्भव बनाना।

संक्षेप मे वैश्वीकरण राष्ट्रों की राजनीतिक सीमाओं के आर–पार आर्थिक लेन–देन की प्रक्रियाओं और उनके प्रबन्धन का प्रवाह है। विश्व अर्थव्यवस्था मे आया खुलापन, आपसी जुड़ाव और परस्पर निर्भरता के फैलाव को वैश्वीकरण कहा जाता है।

वैश्वीकरण से अभिप्राय है उन्मुक्त बाजार एवं प्रतिस्पर्द्धा (Open market and competition); राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ समायोजन (Adjustment of national economy with that of the

13.4 वैश्वीकरण के कारण

वैश्वीकरण के उदय के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :–

13.4.1 शीत युद्ध का अवसान–द्वितीय महायुद्ध के बाद विश्व की दो महाशक्तियों के मध्य शीत युद्ध आरम्भ हुआ। शीत युद्ध का उद्देश्य विश्व की दोनों महाशक्तियों द्वारा अपनी–अपनी विचारधारा तथा प्रभाव को स्थापित करना था। सन् 1990 के बाद साम्यवाद की विचारधारा का पतन हो गया और इस प्रकार से शीत युद्ध का भी अन्त हो गया है। द्वि–ध्रुवीयता के स्थान पर एक–ध्रुवीयता की स्थापना हुई। विश्व के अधिकांश राष्ट्रों ने लोकतन्त्र के मूल्यों को अन्तिम मानकर स्वीकार कर लिया और विश्वीकरण की प्रक्रिया का आरम्भ हुआ।

13.4.2 तत्कालीन सोवियत संघ का पतन–तत्कालीन सोवियत संघ के विघटन ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अनेक नयी प्रवृत्तियों को जन्म दिया और अनेक प्रचलित प्रवृत्तियों का अन्त हो गया। विश्वीकरण की प्रवृत्ति का कारण भी पूर्व सोवियत संघ का विघटन रहा है। इसके अन्तर्गत तत्कालीन सोवियत संघ सहित पूर्वी यूरोप के अनेक देशों ने पाश्चात्य आर्थिक संरचना के प्रतिभावों को स्वीकार करके वैश्वीकरण की प्रवृत्ति को जन्म दिया।

13.4.3 पूर्वी यूरोप मे साम्यवाद का समापन–सन् 1990 के बाद पूर्वी यूरोप के सभी देशों मे जिनमें पौलेण्ड, रोमानिया, चैकोस्लोवाकिया, यूगोस्लोवाकिया, पूर्वी जर्मनी आदि प्रमुख थे, में साम्यवाद का अन्त हो गया। इसने यूरोप के आर्थिक एकीकरण को जन्म दिया। यूरोप की सामान्य मुद्रा यूरो का भी विकास हुआ। यूरोप के इस आर्थिक एकीकरण ने अनेक देशों को प्रभावित किया और उन्होंने यूरोपीय व्यवस्था के आर्थिक नियमों को अपनाना भी आरम्भ कर दिया, इसने विश्वीकरण की प्रवृत्ति को जन्म दिया।

13.4.4 पूँजीवाद का प्रभाव–द्वितीय महायुद्व के पश्चात् पूँजीवाद ने जिस प्रकार से साम्यवाद को परास्त करके अपना वर्चस्व स्थापित किया है, उससे यह स्पष्ट हो गया है कि उच्च आर्थिक विकास के लिये और शासन व्यवस्था मे स्थायित्व के लिये लोकतन्त्रीय उदारवाद पर आधारित पूँजीवाद की सर्वमान्य अवधारणा है। पूँजीवाद के प्रभाव के राष्ट्रों को पूँजीवाद पर आधारित व्यवस्था को अपनाने के लिये प्रेरित किया। इसने ही वैश्वीकरण को जन्म दिया।

13.4.5 सूचना क्रान्ति–सन् 1990 के बाद संचार क्षेत्र मे सूचना क्रान्ति ने उपग्रह टेलीविजन, इंटरनेट आदि के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति को सम्पूर्ण विश्व के साथ सम्बद्ध कर दिया। सूचना ने लोगों के चिन्तन को प्रभावित किया और चिन्तन मे यह परिवर्तन लोगों के व्यवहार मे स्पष्ट रूप से दिखाई दिया। इसने लोगों की संकीर्ण राष्ट्रीय भावनाओं को कमजोर किया तथा वैश्वीकरण चिन्तन का एक स्वाभाविक लक्षण बन गया।

13.4.6 नवीन विश्व संरचना के प्रारूप की आवश्यकता–शीत युद्ध की समाप्ति के पश्चात् पुरानी विश्व संरचना तो नष्ट हो गयी, लेकिन वे समस्याएँ बनी रहीं जिनके लिये द्वितीय महायुद्ध के बाद इस संरचना का जन्म हुआ था। अतः इन समस्याओं के समाधान के लिये एक ऐसी विश्व संरचना के प्रारूप की आवश्यकता थी। इन समस्याओं मे निम्नलिखित प्रमुख थीं–

(i) भावी युद्ध की सम्भावनाओं को कम करना और युद्ध को रोकना।

(ii) शान्ति की स्थापना करना और राष्ट्रों को परस्पर विवादों के शान्तिपूर्ण समाधान के लिये प्रेरित करना।

(iii) एक ऐसी आर्थिक व्यवस्था की संरचना करना जिसमें विशेषकर गरीबी को समाप्त करना।

(iv) पर्यावरण सन्तुलन को बनाये रखना।

(v) राष्ट्रों में अलाववाद को समाप्त करके उन्हें विश्व राजनीति मे क्रियाशीलता प्रदान करना।

13.5 वैश्वीकरण का विशेषताएँ

भूमण्डलीकरण की कुछ ऐसी विशेषताएं जिसमें ऐसा लगता है कि एक नए प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की तरफ हम प्रवृत्त हो रहे हैं। ये विशेषताएं इस प्रकार हैं :

1. यातायात और संचार साधनों में हुए क्रान्तिकारी विकास के चलते भौगोलिक दूरियां सिमट गई हैं। अब न केवल व्यापार, तकनीकी एवं सेवा क्षेत्र, बल्कि लोगों का भी सीमा पार आवागमन सस्ता एवं सुगम हो गया है। कम्प्यूटर और इण्टरनेट भी तेजी से विश्व को जोड़ रहा है।

2. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की दूर दराज पहुंच ने एक ग्लोबल संस्कृति की स्थापना कर दी है। जीन्स, टीशर्ट, फास्ट–फूड, पाप संगीत, हॉलीवुड फिल्म एवं सैटेलाइट टेलीविजन की संस्कृति आज के हर नवयुवक की संस्कृति है, चाहे वह दुनिया के किसी भी कोने से हो। उपभोक्तावाद भी आज एक तरह से समूचे विश्व की संस्कृति बन गया है। इतना ही नहीं, भ्रष्टाचार एवं अपराध करने के तरीके भी अब सारे विश्व में एक से हो गए हैं
3. श्रम बाजार विश्वव्यापी हो गया है। वर्ष 1965 में लगभग 7 करोड़ 50 लाख लोग एक देश से दूसरे देश में रोजगार की दृष्टि से प्रवासित हुए थे जिनकी संख्या वर्ष 1999 तक बढ़कर 12 करोड़ हो गई।
4. श्रम बाजार की मांगों को पूरा करने के कई व्यवस्थित माध्यम तैयार हो गए हैं। श्रम निर्यातक देशों मे एकऐसे कई ब्रोकर एवं एजेण्ट सक्रिय हैं, जो वैध एवं अवैध दोनों तरीकों से लोगों को विदेशों में काम दिलवाते हैं। श्रम आयातक देशों में पुराने प्रवासियों के ऐसे नेटवर्क हैं, जो नए प्रवासियों का दिशा निर्देश तथा इनकी हर सम्भव सहायता करते हैं।
5. शिक्षा का भूमण्डलीकरण हो गया है। अमरीका जैसे औद्योगिक देशों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने तो विदेशी विद्यार्थी जाते हैं, उनमें से अधिकांश वहीं रह जाते हैं। दूसरी तरफ आज अनेक विकासशील देशों के शिक्षा संस्थानों के पाठ्यक्रम भी विश्वस्तरीय हो गए हैं जिससे यहां शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थी विश्व में कहीं भी रोजगार पा सकते हैं।
6. ब्रेनडेन से शुरू हुई पेशेवरों की आवाजाही ने काफी जोर पकड़ लिया है। आज वैज्ञानिक, डॉक्टर, इन्जीनियर और शिक्षाविद् तो विदेशों की तरफ खींच रहे हैं, साथ ही वकील, वास्तुविद, एकाउण्टैण्ट, प्रबन्धक, बैंकर एवं कम्प्यूटर विशेषज्ञ आदि विदेश आवागमन भी पूंजी प्रवाह की तरह लचीला हो गया है।
7. बहुराष्ट्रीय कम्पनियां, जिनके द्वारा पहले उत्पादित वस्तुएँ, सेवा, तकनीक, पूंजी आदि की आवाजाही होती थी, आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रोजगार प्रदायक की भूमिका निभा रहे हैं। भिन्न–भिन्न देशों से विशेषज्ञों, प्रबन्धकों, कुशल–अर्द्धकुशल श्रमिकों आदि की नियुक्ति इन निगमों द्वारा की जाती है। इन नियुक्त कर्मचारियों को विश्व भर में फैले निगम की विभिन्न शाखाओं में नियुक्त किया जाता है। इस तरह यह प्रक्रिया भी श्रम प्रवाह को बढ़ावा देती है।
8. वैश्वीकरण की मान्यता है कि विश्व में न तो साम्यवादी विचारधारा और न ही पूंजीवादी विचारधारा स्थापित हो सकती है। बल्कि वैश्वीकरण ने पूँजीवाद और साम्यवाद के अवगुणों को त्यागकर इनके अनिवार्य गुणों को ग्रहण कर लिया है और इस प्रकार से कोई वैचारिक संघर्ष नहीं हैं।
9. वैश्वीकरण में यह स्वीकार किया गया है कि सभी राष्ट्रों की समस्याएँ और इन समस्याओं के समाधान सार्वभौमिक हैं। प्रत्येक राष्ट्र को मानव अधिकार, पर्यावरण सुरक्षा, नारीवाद, बाल–कल्याण, उदारीकरण, मुक्त व्यापार, प्रौद्योगिकी, उच्च तकनीक जैसे सार्वभौमिक मूल्यों को स्वीकार करना चाहिए।
10. विश्वीकरण व्यक्ति को किसी एक वर्ग, समाज, राष्ट्र से ही सम्बन्धित नहीं मानता बल्कि इसे विश्व नागरिक मानता है। व्यक्ति के लिये राष्ट्र एक कालोनी से अधिक नहीं है। व्यक्ति का राष्ट्रों में उसी प्रकार से विचरण करना चाहिए जिस प्रकार से वह किसी शहर के विभिन्न भागों में विचरण करता है।

    मानव विकास रिपोर्ट, 2000 ने वैश्वीकरण की निम्नांकित चार विशेषताएँ बताई हैं :–

1.नये बाजार (New Market)–विदेशी विनिमय और पूंजी बाजार वैश्वीय स्तर पर जुड़े हुए हैं और ये बाजार चौबीसों घण्टे काम करते हैं। इनके लिए भौतिक दूरियां कोई अर्थ नही रखतीं।

2.नये उपकरण (New Tools)–आज के विश्व में लोगों के लिए कई नए उपकरण (Tools) आ गए हैं। इनमें इन्टरनेट लिंक्स, सेल्यूलर फोन्स और मीडिया तन्त्र सम्मिलित है।

3.नये एक्टर या कर्ता (New Actors)–वैश्वीकरण की प्रक्रिया ऐसी है जिसमें कार्यों का सम्पादन करने के लिए कई कर्ता हैं। इन कर्ताओं में **विश्व व्यापार संगठन** (WTO), **गैर सरकारी संगठन, रेडक्रॉस** आदि सम्मिलित हैं।

4.नये नियम (New Rules)–अब सारे काम **संविदा** (Contract) के माध्यम से होते हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां विश्व भर के राष्ट्र–राज्यों के साथ सीधा व्यापार समझौता करते हैं। हमारे देश में अमेरिकी बहुराष्ट्रीय एनरोन कम्पनी ने महाराष्ट्र सरकार के साथ बिजली की आपूर्ति के लिए समझौता किया था। इसी तरह के समझौते अन्य देशों के साथ भी होने हैं। ये कतिपय नये नियम है, जो वैश्वीकरण के आर्थिक और सांस्कृतिक, कार्यक्रमों को लागू करने में सहायता देते हैं।

13.6वैश्वीकरण के लाभ

वैश्वीकरण के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं :–

1. वैश्वीकरण के कारण बाजार क्षेत्र में विस्तार हुआ है अतः उपभोक्ताओं को बहुत सस्ती कीमतों पर सामान उपलब्ध होने लगा है। उत्पादन में संख्यात्मक ही नहीं अपितु गुणात्मक परिवर्तन भी हुआ है।

2. अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक प्रतिस्पर्द्धा के कारण उत्पादन में वृद्धि हुई है।
3. वैश्वीकरण से सामाजिक व राजनीतिक समस्याओं व मुद्दों ने विश्वव्यापी रूप ले लिया है। अब किसी क्षेत्र की समस्याओं पर सारा विश्व विचार करता है क्योंकि सबके हित आपस में जुड़े हुए हैं।
4. वैश्वीकरण में संचार तकनीक तथा सूचना के क्षेत्र में जबर्दस्त आँधी ला दी है। कोई भी घटना अब कुछ ही पलों में सारे विश्व तक पहुँचाई जा सकती है।
5. वैश्वीकरण के कारण पूँजी का प्रवाह बढ़ जाता है। वैश्वीकरण के पूर्व किसी नये निवेश में केवल उसी राष्ट्र के निवासी ही निवेश कर सकते थे तथा ऐसा वे उस सीमा तक कर सकते थे, जिस सीमा तक उनके पास निवेश करने के लिए मुद्रा थी। परन्तु वैश्वीकरण की स्थिति में दूसरे देशों के व्यक्ति भी उस परियोजना में निवेश कर सकते हैं। इससे उन्हें तो लाभ अवश्य होगा परन्तु साथ–ही–साथ उन राष्ट्रों के निवासियों को भी बड़े पैमाने पर उत्पादन का लाभ प्राप्त हो सकेगा। इससे राष्ट्र का आर्थिक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी क्षेत्र में विकास होगा तथा विकास के नये आयाम जनता के समक्ष आयेंगे।
6. वैश्वीकरण से विश्व में कहीं भी निवेश के अवसरों के सृजन से लाभ प्राप्त होगा। यही बात व्यापार के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। परन्तु वैश्वीकरण से सम्पूर्ण जनसंख्या को लाभ प्राप्त नहीं हो सकता, कुछ को हानि भी हो सकती है।

13.7 वैश्वीकरण के दोष

1. विकासशील राष्ट्रों का यह विचार है कि आधुनिक स्वचालित मशीनों के प्रयोग करने से कम श्रमिकों की आवश्यकता होती है। अतः रोजगार के अवसर कम हो जायेंगे तथा श्रमिकों में बेरोजगारी फैल जायेगी।
2. विदेशी कम्पनियाँ विकासशील राष्ट्रों की प्राकृतिक सम्पदा का दोहन करती हैं जिसके परिणामस्वरूप वहाँ के नागरिकों का सामाजिक तथा आर्थिक शोषण किया जाता है।
3. वैश्वीकरण की प्रक्रिया देश की आत्म–निर्भरता की स्थिति को भी प्रभावित करती है।
4. विदेशी कम्पनियाँ क्षेत्रीय असन्तुलन को तीव्र कर देती हैं। भारत में विदेशी कम्पनियों को जो अधिकांश नवीन स्वीकृतियाँ प्रदान की गयी हैं, उनका 51 प्रतिशत निवेश महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल व दिल्ली राज्यों में उद्योग स्थापित करने के लिए है। इससे क्षेत्रीय असन्तुलन को बढ़ावा मिलता है जो राष्ट्र के हित में नहीं है।
5. वैश्वीकरण प्रजातन्त्र के लिए विपरीत परिस्थितियां उत्पन्न करता है। प्राचीन समय में दूसरे देशों में हस्तक्षेप करने के लिए सेना भेजने की आवश्यकता पड़ती थी परन्तु आज वैश्वीकरण के कारण दूसरे राष्ट्रों में हस्तक्षेप करने के लिए सेना भेजने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इतना ही पर्याप्त होता है कि वित्तीय प्रवाह को रोक दिया जाये, व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाये अथवा अनेक प्रकार से दूसरे देश मे जीवीकोपार्जन को प्रभावित किया जा सकता है।
6. विकासशील राष्ट्रों की औद्योगिक प्रक्रिया पर इसका बुरा प्रभाव पड़ सकता है। विदेशी कम्पनियों द्वारा निर्मित वस्तुओं की गुणवत्ता के समक्ष ये विकासशील उनसे प्रतिस्पर्द्धा करने में पीछे रह जायेंगे जिससे उनके उद्योग बन्द होने की स्थिति में आ सकते हैं।
7. देशी–अर्थव्यवस्था विश्व बाजार के लिए चलायी जाती है जिससे लघु उद्योग नष्ट होते हैं।
8. विदेशी पूँजी विकासशील देशों के नागरिकों की मूलभूत आवश्यकताओं को छोड़कर उन उत्पादों में लगती है जो व्यवसायियों के लिए अधिक लाभप्रद हैं।
9. गरीबी, बेकारी और सामाजिक असन्तुलन जैसी समस्याएँ अर्थव्यवस्था के निर्धारण में प्राथमिकता से हट जाती हैं और एक लक्ष्यीय कार्यक्रम के रूप में निर्यात स्वीकार कर लिया जाता है।
10. विकासशील देशों की आर्थिक बदहाली के लिए सरकार की जवाबदेही घटती जाती है।

13.8वैश्वीकरण का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर प्रभाव

वैश्वीकरण एक व्यापक अवधारणा है इसका अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर बहुपक्षीय प्रभाव पड़तरा है। यह निम्नांकित हैं :–

1. भूमण्डलीय विश्व में नए अभिकर्ताओं की भूमिका निरंतर बढ़ी है। शायद इसलिए कि आर्थिक, राजनीतिऔर संचार अवसंरचनाओं की संख्या में वृद्धि हुई है। इन संरचनाओं या जालों (networks) में राष्ट्र–राज्यों की सीमाओं को खुला कर दिया है तथा उनके आर–पार लोगों, वस्तुओं, सेवाओं, विचारों तथा सूचनाओं का आवागमन अत्यन्त सरल हो गया है।
2. वैश्वीकरण की प्रक्रिया में न केवल अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को विस्तृत बना दिया है, वे अधिक सघन भी हो गई हैं, क्योंकि अब न केवल अभिकर्ताओं की संख्या बढ़ी है तथा विस्तृत व्यवस्था (जाल) एक–दूसरे को प्रभावित कर रहे

हैं बल्कि अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि इनमें से प्रत्येक जो दूसरों पर प्रभाव डालता है वह गुणवत्ता में पहले से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। विश्वव्यापी संचार व्यवस्था, बहुराष्ट्रीय निगमों के उत्पाद तथा बड़ी संख्या में लोगों का संसार के एक भाग से दूसरे में आवागमन, इन सबने विश्वस्तर पर लोगों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूझानों को भी प्रभावित किया है।

3. बढ़ते हुए आर्थिक भूमण्डलीकरण ने घरेलू अर्थव्यवस्थाओं को न केवल एक–दूसरे पर निर्भर बना दिया है, बल्कि वे काफी हद तक बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा किए जाने वाले पूंजी निवेश पर भी निर्भर हो गई हैं।
4. राष्ट्र–राज्य की सम्प्रभुता के लिए भूमण्डलीकरण को इसलिए खतरा माना जाता है, क्योंकि राष्ट्रों की सरकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय संधियों तथा समझौतों को लागू करने के लिए दबाव डाला जाता है जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय को प्रसन्नता होती है। इसके कारण राष्ट्रीय सरकारों को बहुराष्ट्रीय संधियों द्वारा विभिन्न मुद्दों पर निर्धारित मानदण्डों तथा उनकी माँगों के सामने झुकना पड़ता है।
5. संयुक्त राष्ट्र संघ और उससे सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय और व्यापारिक संस्थाओं की भूमिका और महत्त्व में वृद्धि हुई है।
6. 'विश्व व्यापार संगठन' जैसे ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना हुई जो विश्व व्यापार के क्षेत्र में पुलिसमैन की भूमिका का निर्वाह करने लगा है। कहने के लिए तो विश्व व्यापार संगठन की स्थापना बहुपक्षीय सिद्धान्त के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहित करने के लिए की गई है, लेकिन हकीकत यह है कि यह संगठन सामूहिक और अलग–अलग तौर पर विकासशील देशों के अर्थतन्त्र, समाज और राजनीति पर प्रभुत्व जमाने का माध्यम है।
7. भूमण्डलीकरण से बहुराष्ट्रीय निगमों को खुली छूट मिल गई है और बहुराष्ट्रीय निगम निर्धन राष्ट्रों पर धनी राष्ट्रों के नव उपनिवेशीय नियन्त्रण के वाहक हैं।
8. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी निवेश के लिए देश के दरवाजे खोलने का मतलब गरीब देशों और अमीर देशों को बकरी और बाघ की तरह एक ही घाट का पानी पीने की व्यवस्था करना है। और ऐसी दोस्ती में अमीर देश गरीब देशों से मुनाफा लेंगे ही। राजनीतिक अर्थ में विश्व व्यापार में भागीदारी बढ़ाने का मतलब अमीर देशों पर निर्भरता बढ़ाना है जो अन्ततः राजनीतिक निर्भरता और सामाजिक–राजनीतिककीमत चुकाने तक जाता है।
9. वैश्वीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप जिन संस्थाओं का उदय हुआ है, वे सभी राष्ट्र–राज्य की शक्ति और सत्ता से बाहर हैं। यहां तक कि भूमण्डलीकरण होते अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में, राष्ट्र–राज्य एक मात्र अभिकर्ता (actors) नहीं रह गए हैं, अब अनेक अभिकर्ता भी हैं जो नई उभरती व्यवस्था में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। गैर सरकारी संगठन, पर्यावरण सम्बन्धी आन्दोलन, बहुराष्ट्रीय निगम, जातीय राष्ट्रीयताएं तथा बहुराज्यीय अथवा क्षेत्रीय संगठन शामिल हैं।

13.9 सारांश

इस प्रकार वैश्वीकरण वर्तमान समय के व्यापारिक महौल की ऐसी अवधारणा है जो सम्पूर्ण विश्व को एक केन्द्र बनाने की बात करती है। आज वैश्वीकरण प्रत्येक क्षेत्र का मुख्य विषय बन गया है क्योंकि इसने समाज के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। विशेष रूप से सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन ने यह सम्भव बना दिया है कि जिससे पूँजी का प्रवाह राष्ट्रीय सीमाओं के आर–पार हो सके।

इसके अतिरिक्त बढ़ते हुए आर्थिक वैश्वीकरण ने घरेलू अर्थव्यवस्थाओं को न केवल एक–दूसरे पर निर्भर बना दिया है, बल्कि वे काफी हद तक पार–राष्ट्रीय निगमों द्वारा किए जाने वाले पूँजी निवेश पर भी निर्भर हो गई हैं। आर्थिक पारस्परिक निर्भरता से केवल देशों के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय में ही वृद्धि नहीं हुई है बल्कि इस प्रक्रिया से एक या अनेक देशों ने पूँजी जुटाकर अन्य देशों में उत्पादन कार्य में सहायता की है। लेकिन इतना कुछ होने के बावजूद वैश्वीकरण के कारण विकासशील व अल्पविकसित देशों में नव उपनिवेशवाद का खतरा बना हुआ हैं।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1.वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण की विशेषताएं और इसके उदय के कारणों का विवेचन कीजिए।

2.वैश्वीकरण के अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर इसके प्रभावों का वर्णन कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1.वैश्वीकरण के लाभ बताईए।

2.वैश्वीकरण के दोष बताईए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1.वैश्वीकरण से क्या अभिप्राय हैं?

2.वैश्वीकरण की कोई दो प्रवृत्तियाँ बताईए।

3.वैश्वीकरण के कोई दो प्रभाव लिखिए।

इकाई–14

अन्तर्राष्ट्रीय असाम्यताएँ
(International Inequalities)

14.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय असाम्यता का अर्थ, असाम्यता के कारण व इसके निवारण के उपयों का वर्णन किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप–

- अन्तर्राष्ट्रीय असाम्यता का अर्थ समझ सकेंगे
- विकसित और विकासशील देशों के मध्य असम्यता के आर्थिक कारणों का अध्ययन कर सकेंगे।
- विकसित और विकासशील देशों के बीच पारस्परिक निर्भरता के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों की दृष्टि से वैश्विक समुदाय में राष्ट्रों को उत्तर एवं दक्षिण दो वर्गों में विभाजित किया गया है। और इनके बीच असमानता को अन्तर्राष्ट्रीय असाम्यता कहा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय असाम्यता का अध्ययन करने से पूर्व उत्तर एवं दक्षिण के अर्थ को समझना आवश्यक है।

14.2 (i) उत्तर–विकसित देश

उत्तर या विकसित देशों से अभिप्राय उन सभी राज्यों से है ''जिनकी अर्थव्यवस्थाएं विकसित है, जिनमें उच्च स्तरीय उद्योगीकरण, विकसित तकनीकी विकास तथा उच्च सकल राष्ट्रीय उत्पादन (G.N.P.) तथा कुल राष्ट्रीय उत्पाद प्रति व्यक्ति अधिक है। इन देशों में प्रति–व्यक्ति के हिसाब से सड़कों तथा संचार के विस्तार का स्तर ऊंचा है। विद्युत् तथा मशीनों के कलपुर्जो तथा उपकरणों का उत्पादन अधिक है, व्यवस्था उन्नतिशील शहरों में संकेन्द्रित है तथा अधिक पूंजी वाले गहन उत्पादन केन्द्र है, तथा जहां सामान्य रूप से लोगों का जीवन–स्तर उच्च है। अमरीका, कनाड़ा, जापान, यूरोप के देश विकसित विश्व के क्षेत्र में आते है। चूंकि, विश्व के प्रायः सभी विकसित देश उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है इसलिए 'उत्तर' शब्द का प्रयोग सामूहिक रूप से इन्ही के लिए किया जाता है। ये सभी देश मिलकर दो विकसित विश्वों का निर्माण करते है। (i) **पहला विकसित विश्व** : उन देशों का है जिनका आर्थिक ढ़ांचा स्पर्द्धाशील है। ये देश है – अमरीका, ब्रिटेन, कनाड़ा, जापान, पश्चिमी यूरोपीय देशः तथा (ii) **दूसरा विकसित विश्व** : उन विकसित देशों का है जिनका आर्थिक ढ़ॉचा पहले संकेन्द्रित था परन्तु अब विकेन्द्रित तथा खुला आर्थिक ढांचा बन रहा है। अब दूसरा विकसित देश भी लोकतंत्रीय, उदारवादी तथा सीमित बाजार अर्थव्यवस्था अपना रहा है। यह प्रथम विकसित विश्व के अधिक पास आ गया है। यह प्रथम विश्व से तो कम विकसित है परन्तु तीसरे विश्व से अधिक विकसित है।

इस प्रकार विकसित राष्ट्रों में उच्च–स्तरीय उद्योगीकरण, तकनीकी रूप से विकसित स्तर, अतिरिक्त आय, सकल राष्ट्रीय उत्पाद (G.N.P.) का उच्च स्तर तथा प्रति व्यक्ति सकल राष्ट्रीय उत्पाद (G.N.P. Per Capita) अधिक होता है। ये देश जो आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक रूप से स्थिर तथा विकसित व्यवस्था वाले होते है। इन्हें हम आम भाषा में उत्तर (The North) अथवा दो विकसित विश्व या विकसित विश्व के नाम से पुकारते है। 27.1% जनसंख्या वाले ये विकसित देश विश्व–उत्पादन तथा आय के 77.7% प्रतिशत भाग पर अपना नियन्त्रण रखते है।

14.3 दक्षिण–कम विकसित/विकासशील देश

दक्षिण से तात्पर्य कम–विकसित एवं निर्धन देशों से होता है, यह औद्योगिक रूप से कम–विकसित तथा तकनीकी रूप से कम–विकसित देश होते है इसमें कुल राष्ट्रीय उत्पाद तथा प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय उत्पाद का स्तर कम होता है। कम–विकसित देश वह देश है जिसमें जनसंख्या औसतन अधिक होती है तथा वस्तुओं तथा सेवाओं का उत्पादन स्तर कम होता है, तथा जिसकी आय अधिकतम वस्तुओं के विक्रय/निर्यात पर आधारित होती है। इनकी आय का मुख्य साधन कृषि होता है। यह आवश्यक वस्तुओं के क्रय के लिए तथा उत्पादित वस्तुओं के विक्रय के लिए विकसित देशों पर निर्भर होते है।

इस तरह कम–विकसित तथा विकासशील देशों में वे सब अल्प–विकसित अथवा निम्न–स्तरीय विकासशील देश शामिल होते है जिनकी अर्थव्यवस्थाएं कमजोर होती है, आर्थिक विकास दर तथा विकास का स्तर कम होता है तथा औद्योगिक उत्पादन अपर्याप्त होता है। ये देश अधिकतर वस्तुओं के उत्पादन तथा आय के मुख्य साधन के रूप में कृषि पर निर्भर होते है। चूंकि प्रायः सभी निर्धन तथा विकासशील देश दक्षिणी गोलार्द्ध में स्थित है इसलिए इन्हें सामूहिक रूप से 'दक्षिण' (The South) का नाम दिया गया है। इनके लिए 'तृतीय विश्व' शब्द का प्रयोग भी किया जाता है।

14.4 अन्तर्राष्ट्रीय असाम्यता के कारण

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विकसित और विकासशील देश के बीच बढ़ता अन्तर ने अन्तर्राष्ट्रीय असाम्यता को जन्म दिया। अन्तर्राष्ट्रीय साम्यता को बढ़ाने वाले प्रमुख घटक निम्न है।

14.4.1 विकसित और विकासशील देशों के मध्य आर्थिक असमानता – विश्व के देशों के बीच जो खाई नजर आती है, वह आर्थिक शक्ति के आधार पर होती है। विकसित देशों की जनसंख्या विश्व की कुल जनसंख्या की केवल 30 प्रतिशत पायी जाती है, जबकि वे दुनिया की कुल सम्पत्ति के लगभग 80 प्रतिशत भाग पर अपना अधिकार बनाए हुए है। वहीं विकासशील एवं अविकसित देशों में संसार की जनसंख्या के 70 प्रतिशत लोग 30 प्रतिशत से कम आय पर अपना जीवन व्यतीत कर रहे है। जब तक इस भीषण समस्या का समय रहते हल निकालने का प्रयास विकासशील देशों द्वारा नहीं किया गया तब तक दुनिया एक तरफा और अस्थिर बनती रहेगी। एशिया महाद्वीप में 39 देश शामिल है, जो विश्व का सबसे बड़ा महाद्वीप है। इसका क्षेत्रफल 44,413,000 वर्ग कि.मी. हैं। विश्व के भौगोलिक क्षेत्रफल का 29.72 प्रतिशत भू–क्षेत्र एशिया में है। विश्व की लगभग आधी जनसंख्या एशिया महाद्वीप में निवास करती है। इसके कुछ प्रमुख देशों की प्रति व्यक्ति आय इस प्रकार है।– अफगानिस्तान 800 डॉलर, बहरीन 16,060 डॉलर, बांग्लादेश, 1,610 डॉलर, भूटान 1,833 डॉलर, दारस्लाम 16,779 डॉलर, कम्बोडिया 1,860 डॉलर, चीन 4,020 डॉलर, हांगकांग 22,570 डॉलर, ताइवान 14,200 डॉलर, मकाओ 17,475 डॉलर, साइप्रस 21,190 डॉलर, भारत 2,840 डॉलर, इण्डोनेशिया 2,940 डॉलर, ईरान 6,000 डॉलर, इराक 3,197 डॉलर, इजराइल 19,790 डॉलर, जापान 25,130 डॉलर, जॉर्डन 3,870 डॉलर, कुवैत 18,700 डॉलर, लाओस 1,620 डॉलर।

इसी तरह यूरोप महाद्वीप में 51 देश शामिल है, जो दुनिया का दूसरा सबसे छोटा महाद्वीप है। इसका भौगोलिक क्षेत्रफल 10,527,000 वर्ग किलोमीटर है, जो कुल विश्व का केवल 7.04 प्रतिशत है। भौगोलिक दृष्टिकोण से यूरोप को एक पृथक् महाद्वीप नहीं माना जा सकता, लेकिन प्रमुख ऐतिहासिक कारणें विशेषतः यहाँ के निवासियों की उच्च आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति के कारण इसे एक पृथक महाद्वीप मान लिया गया है। यह क्षेत्र विश्व का सबसे प्रमुख क्षेत्र है तथा इसे औद्योगिक क्रांति का जन्मदात माना जाता है। यूरोपीय महाद्वीप के कुछ देशों की प्रति व्यक्ति आय इस प्रकार है – अल्बानिया 3,680 डॉलर, ऑस्ट्रिया 26,730 डॉलर, बोस्निया–हर्जेगोविना 5,970 डॉलर, बेल्जियम 25,520 डॉलर, बुल्गारिया 6,890 डॉलर, रूस 7,100 डॉलर, उक्रेन 4,350 डॉलर, बेलारूस 7,620 डॉलर, अर्मीनिया 2,650 डॉलर, अजरबेजान 3,090 डॉलर, माल्डोवा 21,508 डॉलर, जार्जिया 2,560 डॉलर, क्रोशिया 9,170 डॉलर, डेनमार्क 29,000 डॉलर, फिनलैण्ड 24,430 डॉलर, फ्रांस 23,990 डॉलर, जर्मनी 25,350 डॉलर, ग्रीस 17,440 डॉलर, हंगरी 12,340 डॉलर, इटली 24,670 डॉलर, नीदरलैण्ड 27,170 डॉलर, नार्वे 29,620 डॉलर, पोलैण्ड 9,450 डॉलर, स्पेन 20,150 डॉलर, स्वीडन 24,180 डॉलर, स्विट्जरलैण्ड 28,110 डॉलर।

अफ्रीका महाद्वीप में 52 देश शामिल है, जिनके कुछ देशों की प्रति व्यक्ति आय इस प्रकार है– अल्जीरिया 6,090 डॉलर, अंगोला 2,040 डॉलर, बेनिन 980 डॉलर, बोत्सवान 7,820 डॉलर, बुरूण्डी 690 डॉलर, कैमरून 1,680 डॉलर, सेन्ट्रल अफ्रीकन रिपब्लिक 1,300 डॉलर, चाड 1,070 डॉलर, मिस्र 3,520 डॉलर, इक्वेटोरियल गिनी 15,073 डॉलर, इरीट्रिया 1030 डॉलर, इथोपिया 810 डॉलर, गैबन 5,990 डॉलर इत्यादि।

इसी तरह उत्तरी अमेरिका महाद्वीप में केवल 22 देश शामिल है, जिनमें कुछ देशों की प्रति व्यक्ति आय इस प्रकार है –बहमास 17,012 डॉलर, बरबाडोस 15,560 डॉलर, बेलिज 5,690 डॉलर, कनाडा 27,130 डॉलर, कोस्टारिका 9,460 डॉलर,क्यूबा 5,259 डॉलर, डोमिनिका 5,520 डॉलर है तो 1,467 डॉलर, होण्डुरस 2,830 डॉलर, जमैका 3,720 डॉलर, पनामा 6,000 डॉलर, संयुक्त राज्य अमेरिका 34,320 डॉलर। वहीं दक्षिणी अमेरिका महाद्वीप में केवल 13 देश शामिल है। इसका क्षेत्रफल 17,834,000 वर्ग किलोमीटर है। यह विश्व के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 11.93 यानी 12 प्रतिशत भू–भाग का प्रतिनिधित्व करता है। इस महाद्वीप के देशों की प्रति व्यक्ति आया इस प्रकार है– अर्जेन्टीना 12,377 डॉलर, बोलीविया, 2,300 डॉलर, ब्राजील 7,360 डॉलर, चिली 9,190 डॉलर, कोलम्बिया 7,040 डॉलर, गुयाना 4,690 डॉलर, पराग्वे 5,210 डॉलर, पेरू 4,570 डॉलर, सूरीनाम 4,599 डॉलर, उरूग्वे 8,400 डॉलर तथा वेनेजुएला की प्रति व्यक्ति आय 5,670 डॉलर है। वहीं आस्ट्रेलिया महाद्वीप में केवल 14 देश शामिल है। आस्ट्रेलिया विश्व का क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे छोटा महाद्वीप है। इसका कुल क्षेत्रफल 8,511,000 वर्ग किलोमीटर है। आस्ट्रेलिया 25,370 डॉलर, फिजी 4,850 डॉलर, नौरू 10,000 डॉलर, अतः यह कहा जा सकता है कि दुनिया के देशों में प्रति व्यक्ति आय एवं राष्ट्रीय आय में भार असन्तुलन व्याप्त है। तथा दिनों–दिन तेजी से बढ़ता जा रहा है।

14.4.2 विकासशील देशों पर विकसित देशों का नव–औपनिवेशिक नियंत्रण – दुनिया में उपनिवेशवादी अभियान की शुरूआत यूरोपीय विस्तार के सिलसिले से शुरू हुई और यूरोप की नवोदित सर्वग्राही संस्कृति ने दुनियाभर की सांस्कृतियों की विविधता को नष्ट करके वहाँ के जीवन और संसाधनों को एक व्यापारिक उपभोक्तावादी सभ्यता का ग्रास बना दिया। 18वीं शताब्दी का अंत होते–होते संसार के अधिकांश भाग पर यूरोपीय आक्रमणकारियों के पाँव पहूँच चुके थे। आज दुनिया में भूमंडलीय पारस्परिक निर्भरता और अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के सभी सदस्य देशों के समान संप्रभु स्तर के बावजूद, विकासशील एवं अविकसित देश आज भी नव–उपनिवेशवाद से पीड़ित है। ध्यान रहे, ये विकासशील एवं अविकसित देश पूर्व में भी लम्बे समय तक उपनिवेशवादी व्यवस्था के अधीन जिए है, आज भी आर्थिक एवं सामाजिक रूप सजोये विकसित देशों पर निर्भर है। विशेषकर प्रौद्योगिकी एंव विदेशी सहायता के लिए आज भी विकासशील देश विकसित देशों पर निर्भर है। उनकी यह वर्तमान दशा कई शताब्दियों तक पाश्चात्य साम्राज्यवादी–उपनिवेशवादी शोषण के अधीन रहने का फल है। आज

के विकसित देशों के विकास का मुख्य कारण यह है कि उन्होंने अपने उपनिवेशों के कच्चे माल एवं उनके सभी संसाधनों को सफलतापूर्वक शोषण किया है। डेढ़ सौ सालों के युगान्तकारी उतार–चढ़ाव के बावजूद इसका मूल चरित्र यथावत् बना हुआ है। आज दुनिया में जब कभी भी स्वतंत्र व्यापार की बात होती है, तो उसका एकमात्र अर्थ होता है, सबसे सशक्त व्यापारिक प्रतिष्ठानों के लिए सारे क्षेत्रों को खोल देना, जो अब तक इनकी पहुँच के दूर रहे है। यद्यपि पूर्व में औपनिवेशिक व्यवस्था में जी रहे देशों ने अब स्वतंत्र संप्रभु का दर्जा प्राप्त कर लिया है, और उन पर विकासशील होने का बिल्ला लगा हुआ है। दुनिया में साम्राज्वादी व्यवस्था समाप्त होने के बाद भी विकसित देश, विकासशील देशों पर अपना नव–औपनिवेशिक आर्थिक नियंत्रण बनाए हुए है। रूस एवं चीन में समाजवादी कही जाने वाली व्यवस्थाओं के ध्वस्त हो जाने के बाद दुनिया में आर्थिक एवं राजनीतिक प्रभुता का एक ही मुख्य केन्द्र अमेरिका रह गया है।

वस्तुतः विकासशील देशों का नव–औपनिवेशिक नियंत्रण, समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का वास्तविक सत्य है। विकसित देश अनेक माध्यमों से, जैसे कि विदेशी सहायता, सैनिक संधियों, बहुराष्ट्रीय निगमों, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक संगठनों के द्वारा विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की नीतियों पर मजबूत पकड़ बनाए हुए है। विकासशील देश नव–उपनिवेशवाद से उभरने का प्रयास तो भरसक कर रहे है, लेकिन उत्पादित वस्तुओं और तकनीकी ज्ञान को प्राप्त करने के लिए विकसित देशों पर उनकी निर्भरता के कारण उनके प्रयास आज तक सफल नही हो पा रहे है। अतः कहा जा सकता है कि आज दुनिया में विकसित देश अपने नव–औपनिवेशिक नियंत्रण को मजबूती के साथ बढ़ाने का प्रयास कर रहे है, जबकि विकासशील देश उससे मुक्ति पाने का प्रयास कर रहे है।

14.4.3 विकसित राष्ट्रों की शोषणकारी प्रवृति – विकसित एवं विकासशील देशों के संबंधों का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष है संसार के संसाधनों का अनुपात से विकसित देशों द्वारा दोहन। दुनिया के गैर–औद्योगिक देशों को आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था में परिवर्तित करने की प्रक्रिया से संसार के संसाधनों का तेजी से दोहन होता है तथा उसके साथ ही औद्योगिक उत्सर्जन से पर्यावरण का संकट पैदा होता है। विकसित देशों के क्रियाकलापों से स्पष्ट है कि अपनी समृद्धि को कायम रखने के लिए वे दुनिया को नष्ट करने का जोखिम भी उठाने को तैयार है।

औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों का कच्चे माल के बाजार पर तथा उत्पादित वस्तुओं एवं पूँजी संयंत्रों पर लगभग एकाधिकार कायम है। वहीं विकसित देश विश्व अर्थव्यवस्था तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं पर नियंत्रण के द्वारा विकासशील देशों पर अपनी मजबूत पकड़ के साथ ही साथ दुनिया के संसाधनों का स्वेच्छा से बँटवारा करते है। प्राकृतिक संसाधन अब समाप्ति के कगार पर है। इसके साथ ही आज हम यह देख पा रहे है कि विकसित औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं के अुनरूप विकास करने के प्रत्यनों से समृद्धि के छोटे–छोटे टापू तो भले ही पैदा हो जाएं, परन्तु बहुसंख्यक जनता के जीवन–धारण की व्यवस्था तहस–नहस हो जाएगी, तथा उसका अस्तित्व ही संकट में पड़ जाएगा।

14.4.4 विकसित और विकासशील देशों में पारस्परिक निर्भरता में वृद्धि – विकसित तथा विकासशील देशों के बीच भारी अंतर के बावजूद दुनिया के देशों में पारस्परिक निर्भरता में वृद्धि होती जा रही है। आज भी विकसित देश कच्चे माल की आपूर्ति के लिए तथा अपने उत्पादों की बिक्री के लिए विकासशील देशों पर निर्भर हैं, वहीं विकासशील देश आर्थिक एवं प्रौद्योगिक सहायता प्राप्त करने के लिए विकसित देशों पर निर्भर बने हुए है। हालांकि यह निर्भरता विकासशील देशों को मजबूर करती है कि वह विकसित देशों के पीछे–पीछे चलता रहे। दुनिया में इन दोनों श्रेणियों के देशों के अंतर के चलते विकसित देश पारस्परिक निर्भरता से लाभ उठाने और अपनी आर्थिक स्थिति को और भी मजबूत बनाने में व्यस्त है। इसका एक कारण यह भी है कि ऐसे लोग भयानक गरीबी के महासमुद्र में मौजूदा सभ्यता से लाभ उठाते है और वास्तविकता को न देखने में ही उनका अपना हित है। प्रौद्योगिकी, राजनीतिक शक्ति एवं सैनिक सामर्थ्य तीन शक्तिशाली अस्त्रों के कारण विकसित देशों ने सफलतापूर्वक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर अपना नियंत्रण बना रखा है। हालांकि आरंभ में पारस्परिक निर्भरता की अवधारणा ने विकासशील देशों को आशावान बनाया था कि अब अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर निर्णय–प्रक्रिया में उनकी भागीदारी में वृद्धि होगी। ऐसी स्थिति में एक वैकल्पिक व्यवस्था के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खड़ा होने के वास्ते विकासशील एवं अविकसित देशों को बहुत धीरज रखना होगा। दीर्घकाल तक लोगों को समझा–बुझाकर ही स्थापित सत्ता के अभेद्य दुर्ग में दरार डाली जा सकती है।

14.4.5 विकासशील देशों पर विकसित देशों द्वारा नियंत्रण के साधन के रूप में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका – वर्तमान समय में यह स्वीकार किया जाने लगा है कि विकासशील एवं अविकसित देशों के आर्थिक विकास में बहुराष्ट्रीय निगमों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। हालांकि इनकी उपयोगिता सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों तरह की रही है। बहुराष्ट्रीय निगम एक ऐसी कम्पनी है, जिसका विस्तार अनेक देशों में रहता है तथा उसका उत्पादन और सेवायें उस देश से बाहर भी होती है, जिस देश में यह जन्म लेती है। इस प्रकार बहुराष्ट्रीय निगम अनेक देशों में अनुसंधान, विकास व निर्माण कार्य करता है। इसका प्रबन्ध बहुराष्ट्रीय होता है। और इसका स्वामित्व भी बहुराष्ट्रीय होता है। विभिन्न देशों में फैली इन सहायक कम्पनियों में प्रमुख बहुराष्ट्रीय निगमों का 51 प्रतिशत या इससे भी अधिक का हिस्सा होता है। इसी आधार पर बहुराष्ट्रीय निगम विश्वभर में फैली अपनी शाखाओं पर नियंत्रण रखता है।

विकसित देश बहुराष्ट्रीय निगमों के माध्यम से विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं और उनकी आर्थिक नीतियों पर अंकुश रखते है। यहाँ तक कि विकासशील देशों की औद्योगिक सम्भावना को नष्ट करने के लिए संपन्न विकसित देश

विश्व व्यापार संगठन एवं अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष आदि के माध्यम से लगातार यह दबाव बनाए रखते है कि प्रतिस्पर्धा को पूरी तरह निर्बाध कर दिया जाए, जबकि विश्व का औद्योगिक इतिहास इस बात की पुष्टि करता है कि उद्योग–धंधों के क्षेत्र में प्रवेश ढूँढने वाले देशों ने सदा अपने उद्योगों को सरंक्षण देकर ही आगे बढ़ाया है। लेकिन बहुराष्ट्रीय निगमों का स्वामित्व विकसित देशों के पूँजीपतियों के पास है, वहीं ये पूँजीपति सरकार से अतिरिक्त व्यवस्था के रूप में विकासशील देशों के बाजारों एवं आर्थिक नीतियों को संचालन करते है बहुराष्ट्रीय निगमों के बढ़ते प्रभाव के चलते ही विकसित एवं विकासशील देशों के बीच की खाई चौड़ी हुई है और दुनिया में दरिद्र देशों की संख्या बढ़ती गई है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ उन थोड़े–से बड़े उद्योगपतियों के दबाव में नीतियाँ बनती है, जिससे विकासशील देशों को नहीं के बराबर ही लाभ होता है। चाहे उन्मुक्त बाजार के नाम पर, चाहे गैट या विश्व व्यापार संगठन के नाम पर, आज विकसित देशों तथा शेष दुनिया के बीच सारा विवाद संसाधनों पर नियंत्रण के लिए ही है। इस विस्तार में संलग्न शक्तियों के लिए, विशेषकर वैसे समूहों की हस्ती के लिए कोई स्थान नही है, जो उनके विस्तार में बाधा उत्पन्न करते है या बनते है। संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट के अनुसार संपूर्ण दुनिया में इस समय लगभग 37,000 बहुराष्ट्रीय निगम कार्यरत है। ये निगम विश्व की कुल निजी सम्पत्ति के 1/3 हिस्से के स्वामी है। इन निगमों की बिक्री लगभग 55,000 करोड़ डॉलर है। वहीं दुनिया के केवल सात विकसित देशों अर्थात् संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान और कनाडा में करीब 800 विशाल पंजीकृत बहुराष्ट्रीय निगम है। वे संसार के कुल उत्पादन के आधे भाग को नियंत्रित करते है। ये बहुराष्ट्रीय निगम, विकासशील एवं अविकसित देशों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करते है। प्रौद्योगिकी पर एकाधिकार होने तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पेटेंट के माध्यम से बहुराष्ट्रीय निगम विकासशील देशों में स्थित अपने निगमों के द्वारा लाभ कमाते है। ये निगम विश्व व्यापार संगठन के माध्यम से प्राकृतिक संपदा के मूल स्रोत गरीब देशों में एक लुभावनी संभावना की आशा जगाने का प्रयास करते रहे है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, जो निश्चित ही दुनिया के अन्य विकासशील देशों से अधिक विकसित है, वह भी बहुराष्ट्रीय निगमों के द्वारा शोषण से पीड़ित है।

वस्तुतः इन बहुराष्ट्रीय निगमों के पास यह सामर्थ्य है कि विकासशील देशों के आर्थिक विकास एवं सामाजिक, राजनीतिक प्रगति की गति को अवरूद्ध कर दें तथा अपने हित के अनुसार औद्योगिक विकास की दिशा को अपनी ओर मोड़ लें। विकासशील देशों को सदैव अपने उत्पादों का निर्यात करने तथा उचित मूल्य प्राप्त करने में अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है।

लेकिन वर्तमान राजनीतिक संबंधों में भ्रष्टाचार का सबसे बड़ा मूल कारण दुनिया के देशों में एक तरफ बहुराष्ट्रीय निगमों के द्वारा बड़े औद्योगिक क्षेत्रों का फैलाव और दूसरी और संसारभर में राष्ट्रीय सरकारों के हाथों में अत्यधिक शक्ति का केंन्द्रित होना रहा है। आश्चर्य की बात यह है कि दुनिया भर के वैज्ञानिकों, अर्थशास्त्रियों और तकनीकी विशेषज्ञों की सेवाओं से युक्त आज के बहुराष्ट्रीय प्रतिष्ठान समानता एवं मानवीय मूल्यों के सिद्धांत को नजरअंदाज करके विश्व बाजार का ढ़ांचा खड़ा करने में लगे हुए है। इन्हीं सब कारणों से आज बहुराष्ट्रीय निगमों पर विकासशील देशों में क्षेत्रीय आर्थिक असमानता बढ़ाने का गंभीर आरोप लगता है।

14.4.6 विकासशील देशों की नीतियों पर विकसित देशों का नियंत्रण – विकसित देश अपनी मजबूत आर्थिक, राजनीतिक एवं सैनिक शक्ति के द्वारा विकासशील देशों की नीतियों को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से प्रभावित करते है। विकसित देश विकासशील देशों में अस्त्रों की होड़ को बढ़ावा देने में लगे रहते है, जिसके कारण उन्हें रक्षा व्यय में वृद्धि करनी पड़ती है। विकसित देश अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक संगठनों द्वारा विकासशील देशों को प्रभावित करके अस्थिर कर सकते है। वहीं अब वे नवोदित देशों की घरेलू राजनीति में भी हस्तक्षेप करते आ रहे है। हालांकि उनके द्वारा दुनिया में पंद्रहवी शताब्दी से अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से लूट–खसोट का जो सिलसिला चला और 18वीं शताब्दी में जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक क्रांति हुई, उसने मूल रूप से प्रकृति और इतर मनुष्यों के खिलाफ एक निर्बाध आक्रामकता को जन्म दिया, और वह आज तक जारी है। आज अपनी श्रेष्ठ संचार व्यवस्था एवं अन्य राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक रणनीतियों के द्वारा विकसित देश विकासशील देशों में जनमत के विरूद्ध सरकारी नीतियों को प्रभावित करते है। दरअसल सूचना तकनीकी का प्रयोग करके एक बिचौलिया क्रांति को जन्म दे रहा है, जिसमें औद्योगिक क्षेत्र का अधिकतम विस्तार बिचौलिया कारोबार एवं एक बिचौलिया वर्ग के रूप में हो रहा है। इस व्यवस्था से दुनिया के अल्पसंख्यक अति संपन्न समूह को घर बैठे जरूरत की सभी वस्तुएँ उपलब्ध होंगी और बाकी लोगों का जीवन अत्यंत कठिन हो जाएगा, क्योंकि उनकी आवश्यकता की वस्तु बिचौलिया के कारण अधिक महँगी होती जाएँगी।

14.4.7 नवीन गैट तथा विश्व व्यापार संगठन की अपर्याप्तता – यह बात सत्य है कि नवीन गैट एवं विश्व व्यापार संगठन के नए समझौतों की अपर्याप्तता ने दुनिया में विकसित और विकासशील व अविकसित देशों के बीच आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक आधार पर खाई को और अधिक भयाहव बना दिया है। इस नवीन व्यवस्था से विकासशील देशों की सीमित निर्यात क्षमता पर अधिक अंकुश लगाये जाने का प्रयास किया जा रहा है। आज दुनिया के विकासशील देशों में औद्योगिक उत्पादन और निर्यात, दोनों में गिरावट जारी है। वहीं बाल श्रम के बहाने विकसित देश बहुत–सी चीजों का निर्यात कम करना चाहते है। लेकिन यह संकट न तो अजनबी है, और न ही देवी प्रकोप। इस समस्या का वास्तविक कारण आज की अर्थव्यवस्था में सारे संसार पर हावी हो जाने की बड़े उद्योगपतियों की महत्त्वाकांक्षा है। आज दुनिया के

देशों में यह भुमिका मूलतः विशाल बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ निभा रही है, लेकिन औद्योगिक फैलाव के साथ कुछ समय के अंतराल पर मंदी का यह सिलसिला 19वीं शताब्दी से चला आ रहा है।

14.4.8 पूर्वी यूरोप तथा पूर्व सोवियत संघ के गणराज्यों के घटनाक्रम से यौगिक आर्थिक समस्याएँ– पूर्वी यूरोप के देशों में घटित घटनाओं एवं उनकी आर्थिक आवश्यकताओं तथा रूस एवं पूर्व सोवियत संघ के अन्य गणराज्यों की आर्थिक आवश्यकताओं ने विकासशील व अविकसित देशों के लिए समस्याएँ उत्पन्न कर दी है। दुनिया से समाजवादी व्यवस्था के लुप्त हो जाने से, विशेषकर विकासशील देश पाश्चात्य विकसित देशों पर पहले की अपेक्षा वर्तमान में अधिक निर्भर हो गए है। अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के समकालीन इस युग में विकासशील एवं विकसित देशों की आर्थिक शोषण की समस्या बढ़ गई है। दुनिया में युरोपीय विस्तार का जो सिलसिला शुरू हुआ तथा इसकी सर्वग्रासी संस्कृति ने दुनियाभर की संस्कृतियों की विविधता को नष्ट करके वहाँ के जीवन और संसाधनों को एक व्यापारी उपभोक्तावादी सभ्यता का ग्रास बना दिया। विशेष महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्राकृतिक परिवेश के सरल जीव–प्राणियों को नष्ट करके पश्चिमी सभ्यता उस प्रतिमान को भी नष्ट करने में जुटी हुई थी, जो प्रतिमान ही इसे आगे चलकर अपेन अस्तित्व के संकट से उबरने में सक्षम बना सकता था। आज के शोषित वर्गों को समता और बंधुत्व की भावना में पुनः प्रशिक्षित करना होगा, नहीं तो शोषण के और अधिक केन्द्र विकसित होते जायेगे।

14.4.9 विश्व आर्थिक संबंधों की पुर्नरचना – वर्तमान वैश्वीय आर्थिक संबंधों का चिंतनीय पहलू यह है कि औद्योगिक एवं उपभोक्तावादी संस्कृति ने अपनी गिरफ्त में सम्पूर्ण दुनिया को ले लिया है और जो अब तक विकासशील देशों एवं अविकसित देशों में जीवित है, वह इसके चक्र के प्रभाव में तेजी की रफ्तार से इसके मूल्यों को स्वीकार कर रही है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की प्रकृति उचित एवं न्यायसंगत नहीं है। दुनिया में विकासशील देश एक ऐसी वैकल्पिक नई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की माँग कर रहे है, जो मूलतः समानता, पारस्परिक सहयोग, पारस्परिक लाभ तथा प्रगति सुनिश्चित करने के लिए सभी राष्ट्रों के समान अधिकार तथा विश्व की सम्पत्ति एवं आय में समान भागीदारी पर आधारित हो। इसलिए इसका एक उपाय विकास की दिशा को बदलना हो सकता है, जिसकी प्रेरणा एक वैकल्पिक जीवन के प्रतिमान से प्राप्त की जा सकती है। इस प्रतिमान के लिए हमें आपस में मिलकर एक लोक–कल्याणकारी समाज का प्रतिमान उपस्थित करना होगा जो केवल एक उच्च आदर्श की अभिव्यक्ति ही नहीं हो, बल्कि आधुनिक ज्ञान और विज्ञान के आलोक में सर्वाधिक व्यावहारिक भी हो। उल्लेखनीय है कि विकासशील देश नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की माँग तीन दशक पूर्व से कर रहा है।

14.4.10 अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था तथा व्यापार में संरक्षणवाद की अवधारणा को समाप्त करने की प्रक्रिया– आधुनिक समय में संस्कृति, धर्म एवं राष्ट्र की अवधारणाएँ जिस तरह एक–दूसरे से उलझकर जटिल और त्रासद स्थितियाँ उत्पन्न करती रही है, उन्हें देखते हुए उनके पारस्परिक संबंधों पर विचार करना काफी प्रासंगिक बन गया है। वर्तमान समय में विकासशील देश अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों से यह अपेक्षा करते है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापार एवं उनकी नीतियों के संबंध में वर्तमान संरक्षणवाद की नीति को समाप्त किया जाए। वर्तमान नीति से विकासशील देशों की निर्यात प्रक्रिया अवरूद्ध हो रही है। वहीं वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा विकासशील देशों के हितों के बिल्कुल विरूद्ध है। विकसित देश भेदभाव के आधार पर आयात एवं निर्यात की सीमाएँ तय करते है। विकसित देशों ने कोटा व्यवस्था के साथ–साथ तथाकथित व्यवस्थित बाजार नियमन भी लागू कर रखा है। विकसित देशों द्वारा इन प्रतिबंधात्मक उपायों का परिणाम यह हुआ कि विकासशील देशों की प्रगति अवरूद्ध हो गई। विशेष रूप से यूरोपीय समुदाय तथा संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा इस्पात के संबंध में विशेष संरक्षात्मक उपाय किए गये है, जिससे उन विकासशील देशों को कठिनाई हो रही है, जो निर्यातक के रूप में उभरकर सामने आ रहे है। ये संरक्षणवादी नीतियाँ विकासशील देशों के लिए घातक है। इन्हीं कारणों से विकासशील देशों के आयात व्यय में वृद्धि हो रही है, जबकि निर्यात का स्तर पूर्ववत् है विकसित और विकासशील देशों में संघर्ष न हो, इसके लिए यह आवश्यक रूप से प्रतीत होता है कि सरंक्षणवाद की नीति को समाप्त किया जाए। वहीं संयुक्त राष्ट्र, मुद्राकोष, विश्व बैक तथा अन्तर्राष्ट्रीय विश्व व्यापार संगठन जैसी संस्थाओं को नया स्वरूप देने के लिए ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है।

14.4.11 पूँजीगत संसाधनों तथा प्रौद्योगिकी के अहस्तांतरण से उत्पन्न संघर्ष – विकसित और विकासशील देशों के मध्य उत्पन्न तनाव के कारणों में निम्न मुख्य भूमिका अदा करता है। जैसे–उपभोक्ता के हितों की उपेक्षा, तकनीक हस्तान्तरण में नकारात्मक भेदभाव, अपनी तकनीक को प्रधानता, क्षेत्रीय असमानताओं में वृद्धि, दीर्घकालीन औद्योगिक विकास संभव नहीं एवं व्यवसाय में अनैतिकता का होना। विकसित देश, अपनी उन्तन प्रौद्योगिकी के उपयोग के एवज में विकासशील देशों से शुल्क या रॉयल्टी के रूप में बड़ी धनराशि प्राप्त करते है। चुँकि तकनीकी विशेषज्ञों को भुगतान की जाने वाली धनराशि विदेशी मुद्रा में करनी पड़ती है, जिसका विकासशील देशों के विदेशी मुद्रा कोष पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण दो प्रकार से हो सकता है –पहला निजी निवेशकों द्वारा, दूसरा सरकारी निकायों द्वारा आर्थिक सहायता के रूप में, जो द्विपक्षीय और बहुपक्षीय भी हो सकती है। विकासशील देशों को ऋण माफी के द्वारा सहायता देकर उनकी पूँजीगत समस्याओं का निदान किया जा सकता है।

आर्थिक विकास में प्रौद्योगिकी की अहम् भूमिका होती है। विकसित देशों ने जिस किसी भी विकासशील देश का अपना सहयोग दिया है, उन सभी में उन्होंने अपनी तकनीक को ही प्रधानता दी है। विकसित देशों की तकनीक विकासशील देशों के संदर्भ में किसी भी रूप में समायोजित नही हो पाती, जिससे उनके सामने संकट उत्पन्न हो जाता है। विकासशील देशों को अपनी तकनीकों का विकास करना चाहिए। ध्यान रहे बहुमुखी विकास के लिए अन्य संसाधनों के साथ–साथ प्रगतिशील प्रौद्योगिकी भी नितांत आवश्यक है। विकसित देशों ने प्रौद्योगिकी पर लगभग एकाधिकार प्राप्त किया है। विकसित देश बिना वांछनीय लाभ प्राप्त किए, प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण में आनाकानी करते है।

14.4.12 बहुराष्ट्रीय निगमों का मय – वर्तमान समय में बहुराष्ट्रीय निगम, अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था, व्यापार, प्रौद्योगिकी तथा औद्योगिक क्षेत्र उत्पादन के क्षेत्र में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। इनके महत्त्व को आज अस्वीकार नहीं किया जा सकता। विकसित देशों की तुलना में विकासशील देश उसी वस्तु का उत्पादन करने का साहस नहीं जुटा पाते, जिससे किसी विशेष वस्तु का उत्पादन में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों एवं विकसित देशों का एकाधिकार हो जाता है। ये निगम प्रायः सभी व्यापक प्रौद्योगिकी पेटेंट के सहारे अपने नियंत्रण में रखते है। ये निगम विकासशील देशों को अपने नियंत्रण में रखने के लिए नव–औपनिवेशिक हथकड़ों का सहारा लेते है। यहाँ तक कि विकसित देश बहुधा दक्षिण के विकासशील देशों को इन निगमों के माध्यम से ही प्रौद्योगिकी प्राप्त करने के लिए बाध्य करते है, जिससे विकासशील देशों पर आर्थिक बोझ बढ़ता है। वहीं अपनी गरीबी और पूँजी की कमी तथा संसाधनों के अभाव के कारण विकासशील देश इस महँगी प्रौद्योगिकी को खरीदने में स्वयं को असमर्थ पाते है। विकासशील देशों को यह चिन्ता बनी रहती है कि बहुराष्ट्रीय निगम उनके घरेलू बाजारों, अर्थव्यवस्थाओं, सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों और उनकी राजनीतिक निर्णय–प्रक्रिया में हस्तक्षेप करेंगे। बहुराष्ट्रीय प्रतिष्ठानों की भूमिका अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में नकारात्मक बनी रहती है और इनके कारण धनी व गरीब देशों के मध्य खाई बनी हुई है। विकसित देश उनका उपयोग, कई बार विकासशील देशों की निर्वाचित सरकारों को अपदस्थ करवाने का भी सहारा तक लेते है। इसलिए उनकी भूमिका दुनिया के देशों में निंदनीय है। डोमिनो प्रभाव से बचने के लिए दुनिया के विकासशील देशों का एकमात्र उपाय ऐसे व्यापार तंत्र के ताने–बाने से कटकर अलग रहना ही हो सकता है।

14.4.13 वस्तु उत्पादकों का उनके हितों को मान्यता और संरक्षण न देने के विरूद्ध रोष – बहुराष्ट्रीय निगमों पर सर्वप्रथम यह आरोप लगाया जाता है कि ये विकासशील देशों के उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादन नही कर पाते, इससे उनकी घोर उपेक्षा होती है। इनके उत्पाद इतने अधिक महंगे होते है कि सामान्य व्यक्ति या तो उनका उपयोग ही नहीं कर पाता और अधिक उपयोग करता भी है तो वह उस वस्तु के उपभोग में निरंतरता नहीं बनाए रख सकता। आधुनिक भूमंडलीय पारस्परिक निर्भरता के इस युग में विकसित उत्पादक विकासशील देश के उत्पादन को उतना महत्त्व नहीं देते, जितना कि वह अपेक्षा रखता है। विकासशील देशों के हितो की रक्षा के लिए कोई ठोस साधन न उपलब्ध होने के कारण, ये देश सदैव विकसित देशों के ऊपर निर्भर रहते है। निर्यात के लिए निर्भरता, अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अधिक प्रतिस्पर्धा, विकसित देशों की व्यापार संबंधी संरक्षणात्मक नीतियाँ मिलकर विकासशील देशों को गरीबी की ओर धकेल रहे है।

14.5 अन्तर्राष्ट्रीय असाम्यतां को कम करने हेतु प्रयासः

विश्व के विकसित एवं विकासशील देशों के बीच समन्वय स्थापित करने के लिए वर्तमान समय में कई प्रक्रियाएँ चल रही है, ताकि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों का न्यायोचित विधि के आधार पर विकास किया जा सके। इन प्रक्रियाओं में प्रमुख रूप से महत्त्वपूर्ण है, नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की माँग, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक तथा विश्व व्यापार संगठन के दृष्टिकोणों में परिवर्तन, गुट–निरपेक्ष आंदोलन के मंच का उपयोग, दक्षिण–क्षेत्रीय व्यापार सहयोग को प्रोत्साहन प्रदान करना, G-15 का प्रभावी उपयोग आदि। अन्तर्राष्ट्रीय असाम्यता को समाप्त करने हेतु निम्न प्रयास किये जा रहे है –

14.5.1 नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना – अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था वर्तमान में भी पाश्चात्य देशों की शोषणकारी नीति पर आधारित है जिसमें विकसित और विकासशील अमानता बढ़ रही है। इस यांत्रिक युग में भी विकसित देशों की संरक्षणवादी तथा नव–उपनिवेशवादी नीतियों ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अर्थव्यवस्था एवं व्यापार में असमानता एवं असंतुलन की दशा को बढ़ावा दिया है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बनी सभी व्यवस्था पहले की अपेक्षा आज अधिक पक्षपातपूर्ण तथा शोषणकारी हो गई है। विश्व के देशों में पूँजीवाद की इस अविवेकपूर्ण व्यवस्था को सतत चालू रखने के लिए दुनिया के विभिन्न भागों में स्थानीय मुद्दों को उकसाने तथा युद्ध की स्थायी अर्थव्यवस्था कायम करने का प्रयास जारी है। इसी क्रम में विकसित देशों द्वारा मलाया, कोरिया, स्वेज, कांगों, वियतनाम, अफगानिस्तान, भारत, पाकिस्तान, अरब, इस्त्राइल, इराक, ईरान आदि देशों में युद्ध कराये जाते रहे, जिससे हाथियारों की होड़ और युद्ध आयुधों के उत्पादन का सिलसिला चारों ओर जारी है। पश्चिमी देश और सोवियत संघ दुनियाभर में हथियारों की आपूर्ति के लिए उत्पादन करते रहे। वस्तुतः दुनिया के देशों में विकसित देशों को 1970 के दशक के ऊर्जा संकट तथा कुछेक अन्य घटनाओं ने विकासशील देशों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था से पूरी तरह असंतुष्ट कर दिया है। इन्हीं सब कारणों को ध्यान में रखते हुए अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की पुनर्रचना की व्यवस्था की माँग की जा रही है। विकासशील देशों के पास न तो अरब देशों की तरह पेट्रोलियम का

विशाल भंडार है और न ही G-15 के देशों की तरह संसारभर के संसाधनों को मनमाने ढंग से प्राप्त करने की आर्थिक क्षमता। इसलिए विकासशील देश अपना विकास इन विकसित देशों को पंरपरागत रूप से उपलब्ध अपने संसाधनों को ध्यान पर रखकर संरचनात्मक पुनर्गठन की नीति बनानी होगी। अतः कहा जा सकता है कि दुनिया में शीत–युद्ध की समाप्ति तथा समाजवादी गुट के विखंडन और सोवियत संघ के विघटन तथा उदारीकरण एवं भूमंडलीकरण के सिद्धांत की लोकप्रियता ने जिस परिवेश को जन्म दिया है या भविष्य में जन्म लेने की जिसकी आंशका व्यक्त की जाती है, उस स्थिति में नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की माँग सकारात्मक मुद्दे के रूप में सामने आई है। विकासशील देशों द्वारा इसकी अपेक्षा नही, बल्कि उम्मीद की जा सकती है कि विकसित आधुनिक समाज की स्थापना में विकसित देश शीघ्र ही विकासशील व अविकसित देशों को सहयोग प्रदान करने में सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाकर नई अर्थव्यवस्था का मार्ग प्रशस्त करेंगे।

14.5.2 दक्षिण–दक्षिण सहयोग – विकासशील देशों ने आपस में संगठित होने के लिए तथा अन्तर्राष्ट्रीय असमानता को कम करने के लिए जेनेवा में विकासशील देशों के मध्य पारस्परिक सहयोग हेतु समूह–77 की स्थापना वर्ष 1964 में की थी। ये देश वर्ष 1980 के दशक से विकास कार्य के लिए आपस में आर्थिक सहयोग को प्रोत्साहित कर रहे है। इसी समूह को लोकप्रिय भाषा में दक्षिण–दक्षिण सहयोग के नाम से जाना जाता है। इस संगठन के संस्थापक सदस्यों की संख्या 77 थी वर्तमान में इसके सदस्यों की संख्या 134 है। इस संगठन में एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका के देश शामिल है, जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह समूह मानवीयता का सबसे बड़ा हितरक्षक है।

14.5.3 विश्व व्यापार संगठन की भूमिका – 1 जनवरी, 1995 को व्यापार एवं सीमा शुल्क के सामान्य समझौते के उत्तराधिकारी के रूप में हुई थी। विश्व व्यापार संगठन एक स्थायी संगठन है। इसका प्रधान मुख्यालय जेनेवा में है। इसकी स्थापना सदस्य देशों की संसद द्वारा अनुमोदित एक अन्तर्राष्ट्रीय संधि के आधार पर हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक जगत में उसकी स्थिति वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक के बराबर है, परन्तु मुद्राकोष व विश्व बैंक की तरह यह संयुक्त राष्ट्र संघ की एजेन्सी के रूप में कार्य नहीं करता है। जहाँ गैट मूलतः वस्तुओं के व्यापार पर ध्यान देता था, वहीं विश्व व्यापार संगठन के विस्तृत क्षेत्राधिकार में वस्तुओं के अलावा सीमा पर होने वाले व्यापार, जिनका संबंध सेवाओं से विचारों से तथा व्यक्तियों के आवागमन से है, शामिल है। विश्व व्यापार संगठन का मूल उद्देश्य यह है कि ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश की स्थापना की जाए जिसमें वस्तुओं, सेवाओं तथा मानवीय विचारों का निर्बाध रूप से आना–जाना हो सके। विश्व व्यापार संगठन चार प्रमुख दिशा निर्देशों के आधार पर कार्य करता है –बिना किसी भेदभाव के व्यापार, बाजारों में सभी सदस्य देशों की मुक्त और प्रगतिशील पहुँच, उचित प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहन तथा उत्साहवर्द्धक विकास और आर्थिक सुधार। विश्व व्यापार संगठन में सभी सदस्य देशों के स्थायी प्रतिनिधि होते है। विश्व व्यापार संगठन की कार्यवाही संचालन में प्रत्येक सदस्य देश का एक ही मत होता है।

14.6 सारांश

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि दुनिया में विकसित एवं विकासशील देशों के बीच विभिन्न क्षेत्रों में असमानता की स्थिति व्यापक रूप से यथावत है। वहीं अनेक मुद्दों पर अभी भी दोनों समूहों के बीच मतभेद कायम है। फिर भी विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की प्रक्रियाओं के माध्यम से खाई को भरने का प्रयास किया जा रहा है। विकसित देश वर्तमान में भी, विशेष रूप से आर्थिक एवं व्यापार के क्षेत्र में अपना एकाधिकारी नियंत्रण कायम किए हुए है। उन्हीं के माध्यम से वे आज विकासशील एवं अविकसित देशों को अपने शोषण का ग्रास बनाते है। हालांकि इसके अनेक कारण विद्यमान है। वर्तमान दुनिया में ऊर्जा संकट, अस्त्रों की होड़, गैट तथा अंकटाड की विफलता–नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में उत्तर–दक्षिण के बीच भेदभाव पूर्ण दोष का होना, संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका में अपारदर्शित का अभाव इत्यादि, ने विकासशील देशों को विकसित देशों पर निर्भर रहने के लिए बाध्य कर दिया है। अतः विकासशील देशों के लिए पूरी निष्ठा के साथ एक जुट होकर अपने अधिकारों तथा राष्ट्रीय सांस्कृतिक पहचान के लिए तथा समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में अपनी सुनिश्चित भागीदारी तय करने के लिए एक जुट प्रयास करने की आवश्यकता है। ऐसा करने से विकसित देशों के एकाधिकारी वर्चस्व को समाप्त किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. विकसित और विकासशील देशों के बीच असमानता के प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में विकसित और विकासशील देशों के मध्य पारस्परिक निर्भरता में वृद्धि के प्रमुख अवयवों का उल्लेख कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. विकसित और विकासशील देशों में क्या–क्या अन्तर है संक्षेप में बताईए।
2. उत्तर–दक्षिण संवाद से क्या समझते है।
3. विकसित देशों की कोइ चार विशेषताए लिखिए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय असाम्यता से क्या अभिप्राय है।
2. अन्तर्राष्ट्रीय असाम्यता के दो कारण बताईए।
3. अन्तर्राष्ट्रीय असाम्यता को दूर करने हेतु दो सुझाव दीजिए।
4. दक्षिण–दक्षिण सहयोग क्या है।

इकाई – 15

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों के तत्व

(Elements of International Economic Relations)

15.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों के प्रमुख तत्वों का विश्लेषण किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों के स्वरूप के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रमुख आर्थिक तत्वों का मुल्यांकन कर सकेंगे।
- अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों के महत्त्व को समझ सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्ध दुनिया के देशों में कोई नवीन घटना नहीं है। पूर्व के तथा वर्तमान के अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों में एक परिवर्तन महत्त्वपूर्ण रूप से दिखाई देता है कि 19वीं सदी औद्योगिक क्रांति तथा बीसवीं एवं 21वीं शताब्दी की सूचना और संचार क्रांति ने इस संबंधों की और अधिक ऊँचाईयों तक पहुँचा दिया है। क्योंकि सूचनाएं जीवन और समाज दोनों को आकार और दिशा देती है। शुरू से ही सूचनाओं का संप्रेषण और संचार मानव विकास के साथ जुड़े रहे है। फिलहाल अति चर्चित सूचना क्रांति के संदर्भ में सूचनाओं की विविधता और भारी मात्रा में इनके संचार पर ही लोगों का ध्यान केन्द्रित है। संचार क्रांति की कई विशेषताएँ है। एक तो इसमें संवाद बहुतरफा हो सकता है और दूर–दराज में रहने वाले लोग बिना कहीं आए जाए विस्तार से किसी प्रश्न पर संवाद कर सकते है। दूसरा इससे संक्षिप्त बातचीत ही नही, बल्कि विस्तृत जानकारियों का आदान–प्रदान किया जा सकता है। अतः कहा जा सकता है कि आज संचार दुनिया में उपलब्ध सभी माध्यमों से अधिक लोकप्रिय है।

आधुनिक समय में दुनिया के समस्त देशों में विदेशी व्यापार का चलन दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप आज देशों की पारस्परिक निर्भरता बढ़ी है। आपसी निर्भरता बढ़ने से शांति स्थापना की दिशा में मजबूती आती है तथा देशों के बीच युद्ध की संभावना क्षीण होती है। हालांकि यह सब उच्चस्तरीय व्यापार, पूँजी एवं मानवीय गतिशीलता एवं पारस्परिक वित्तीय सहायता के द्वारा संभव हुआ है।

आर्थिक साधन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में शक्ति को बनाए रखने तथा उसकी अभिवृद्धि के लिए राष्ट्रों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले साधन या उपकरण है। उनका अन्तिम उद्देश्य राष्ट्र की राजनीतिक शक्ति–ऐसी शक्ति जो दूसरे राष्ट्रों के निर्णयों, नीतियों तथा व्यवहार को अनुकूल प्रभावित कर सकें– को बढ़ावा देना होता है। ये ऐसे साधन है, जो विदेश नीति द्वारा परिभाषित राष्ट्रीय हितों के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त किए जाते है।

आर्थिक साधन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में प्रभावपूर्ण तथा उपकरणीय दोनों तरह की भूमिका निभाते है ये न केवल विदेश नीति के निर्धारक होते है, बल्कि विदेश नीति के उपकरण भी होते है। एक राष्ट्र राष्ट्रीय हितों को प्राप्त करने के लिए तथा दूसरे राष्ट्रों पर प्रभाव तथा शक्ति प्रदर्शन के लिए इसका प्रयोग करता है। ये इनका प्रयोग राजनीतिक तथा गैर–राजनीतिक दोनों तरह के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए करते है। पैडलफोर्ड तथा लिंकन लिखते है, ''आर्थिक उपकरण शक्ति प्रयोग के साधन है। इस प्रकार वे विदेश नीति के साधन है।''

इनका प्रयोग अच्छे तथा बुरे दोनों तरह के उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है। अत्यावश्यक बाजारों को प्राप्त करने या चारों तरफ फैली बेकारी को दूर करने के लिए या दूसरी तरफ विदेशी नियन्त्रण के लिए या नव–उपनिवेशवाद को बनाए रखने या यहां तक कि आक्रमणकारी की शक्ति की अभिवृद्धि के लिए भी इनका प्रयोग किया जा सकता है तथापि यह समझ लेना चाहिए कि आर्थिक उपकरण न केवल राज्य सरकार बल्कि राज्य के लोगों के व्यक्तिगत संगठनों तथा एजेन्सियों द्वारा भी प्रयोग किए जाते है। ये संगठन राज्य सरकार की नीतियों के प्रति प्रतिबद्ध तथा निर्देशित होते है तथा इसलिए वे आर्थिक उपकरणों का प्रयोग राष्ट्रीय नीति द्वारा प्रतिपादित ढ़ॉचे के अन्दर ही करते है।

15.2 अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों के तत्व

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्ध को विकसित करने के लिए विभिन्न आर्थिक उपकरणों का उपयोग करते है। आज राष्ट्रीय नीति को प्रोत्साहित करने के लिए आर्थिक उपकरणें का प्रयोग एक विश्व व्यापक प्रक्रिया है। परिणाम स्वरूप विदेशी व्यापार, निवेश, विनिमय, सीमा शुल्क कोटे, मजदूर पलायन आदि विषयों का अध्ययन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में महत्त्वपूर्ण हो गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। यह विदेश नीति का तत्व एवं साधन होते है। राज्य दूसरे राज्यों को प्रभावित करने के लिए तथा अपने राष्ट्रीय हितों को पूरा करने के लिए इसका प्रयोग करते है।

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों के प्रमुख तत्व निम्न लिखित है –

15.2.1 सीमा शुल्क (The Tariff): सीमा शुल्क (कस्टम) वह कर शुल्क है, जो आयातित या निर्यातित वस्तुओं पर लगाया जाता है। यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक उपकरण है। आयात वस्तुओं पर राजस्व प्राप्त करने के उद्देश्य से लगाया गया शुल्क 'राजस्व शुल्क' (Revenue Tariff) के नाम से जाना जाता है। देशीय उद्योग को विदेशी प्रतिद्धन्द्धिता से बचाने के लिए लगाया शुल्क 'संरक्षात्मक शुल्क' (Protective Tariff) के नाम से भी जाना जाता है राज्य ऐसे दोनों शुल्क लगा सकता है। सीमा शुल्क का प्रयोग आयात निर्यात का संचालन करने के लिए राज्यों द्वारा किया जाता है। इसका प्रयोग दूसरे राष्ट्रों से वस्तुओं का देशीय मण्डियों में जमकर आने को नियन्त्रित करने के लिए तथा देशीय उद्योगों की सुरक्षा के लिए किया जाता है। देशीय उद्योगों की सुरक्षा के लिए अस्वस्थ तथा हानिकारक विदेशी प्रतिस्पर्धा से इन्हें बचाने के लिए इनका प्रयोग किया जाता है। इसका प्रयोग राष्ट्रीय प्रयोग राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को दृढ़ करने तथा आर्थिक कमजोरी पर काबू पाने के लिए किया जाता है। राष्ट्र के विदेशी सम्बन्धों में सीमा शुल्क की भूमिका का विश्लेषण करते समय पामर तथा पर्किन्स लिखते है।

(1) सीमा शुल्क का प्रयोग राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को दृढ़ बनाने के लिए किया जा सकता है। इसके लिए विलासी वस्तुओं के आयात को हतोत्साहित करना तथा अनिवार्य सैनिक वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित करना चाहिए।

(2) युद्ध के समय काम आने वाली वस्तुओं पर लाभ की दर को बढ़ा कर सैनिक तैयारी को विकसित किया जा सकता है।

(3) इनका प्रयोग आयात को निरूत्साहित करने के लिए तथा इस तरह विदेशी मुद्रा संचय को बनाए रखने तथा अदायगी घाटे में सन्तुलन को बनाए रखने के लिए किया जाता है।

(4) इनका प्रयोग और अधिक सकारात्मक विदेश नीति के उपकरण के रूप में किया जा सकता है। इसके लिए उच्च सीमा शुल्क सूची का निर्माण करना होता है, जिससे राष्ट्र इस स्थिति में पहुँच जाए कि वह सौदेबाजी कर सके तथा प्रतिकार के उपकरण के रूप में इसका प्रयोग कर सके। उत्पादन के क्षेत्र में निरन्तर सरकार के हस्तक्षेप के कारण अब दूसरे राष्ट्रों के साथ सम्बन्धों को संचालित करने हेतु निरन्तर साधन के रूप में प्रयोग होता रहता है।

आर्थिक उपकरण के रूप में शुल्क का प्रयोग राज्यों द्वारा विदेशी व्यापार को संचालित करने के लिए किया जाता है कि यह राज्य की आर्थिक शक्ति में अभिवृद्धि करे। कभी–कभी राज्य अपने देशीय बाजार को बचाने के लिए बहुत अधिक सीमा शुल्क लगा देते है, तथापि उच्च सीमा शुल्क से सदैव अधिक सीमा शुल्क नहीं मिलता क्योंकि दूसरे राष्ट्रों द्वारा भी इसका बदला या वैसा ही मिलता–जुलता काम कर दिया जाता है। इसको दूसरे राष्ट्रों, पड़ोसी राज्यों की समृद्धि के मूल्य पर अपनी समृद्धि हासिल करने के प्रयत्न मानते है। परिणामस्वरूप, उच्च सीमा शुल्क सीमित रूप से ही सफल होते है परन्तु इसके साथ ही विभिन्न सीमा शुल्क देशीय मण्डियों के लिए प्रतिकूल भी सिद्ध होते है। दोनों तरह के उच्च तथा निम्न शुल्क लाभदायक तथा प्रतिस्पर्धात्मक सीमा शुल्क राज्य की आर्थिक प्रगति के लिए उच्च सीमा शुल्क से अधिक सहायक होते है क्योंकि उच्च सीमा शुल्क राज्य से दूसरे राष्ट्र भी बदले के रूप में उच्च शुल्क लगा देते है। पैडलफोर्ड तथा लिंकन ने लिखा है, ''यद्यपि एक राष्ट्र अपने सीमा शुल्क के कम करता है और दूसरे राष्ट्र उसका अनुसरण करते हैं तो इससे उसे लाभ होता है और अगर वे ऐसा न भी करें तो भी फायदा हो सकता है, प्रतिकूलता का कोई फर्क नहीं पड़ता, किसी भी राष्ट्र द्वारा सीमा शुल्क बढ़ा देने से यदि बदले का चक्र चल पड़े तो कोई आर्थिक लाभ प्राप्त नहीं कर सकता।''

15.2.2 अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेल्स (International Cartels): चार्ल्स और ह्विटलेसी (Whittlesey) ने कोर्टेल्स की परिभाषा देते हुए लिखा कि कार्टेल्स, 'एक या एक–जैसे स्वतन्त्र उद्योगों की संस्था है जिसे प्रतियोगिता पर किसी प्रकार का नियन्त्रण रखने के लिए स्थापित किया जाता है। (An association of independent enterprises in the same or similar linese of business which exists for the purpose of exercising some sort of control over competition. - Whittlesey) यदि सदस्य विभिन्न देशों के है या राष्ट्रीय सीमाओं के पार व्यापार करते है तो इसे अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेल कहते है। 'कार्टेल' का शाब्दिक अर्थ है समझौता। यह मूल रूप से स्वतन्त्र व्यापारियों के बीच विद्यमान समझौतापूर्ण व्यवस्था होती है। इसका उद्देश्य एकाधिकारिक प्रभाव का प्रयोग करने के लिए बाजारों का संचालन करना होता है।

कार्टेल्स प्रायः विक्रेताओं के बाजार पर प्रभुत्व जमाने के शौकीन होते है प्रायः इनकी स्थापना कार्टेल्स के सदस्यों के हितो की रक्षा करने वाली समझौता व्यवस्था के द्वारा व्यापारिक संस्थानों से प्रतिस्पर्धा करके होती है। यह कार्टेल्स अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कई साधनों का प्रयोग करते है। इसके आधार पर पामर तथा पर्किन्स (Palmer and Perkins) ने कार्टेल्स का त्रिपक्षीय सामान्य वर्गीकरण किया है : (1) वे जो मूल्य निर्धारित करते है जैसे OPEC, OJEC आदि। (2) वे जो उत्पादन सीमित करते है तथा (3) वे जो बिक्री तथा भू–क्षेत्र को बांटते हे। इन तीनों सामान्य किस्मों के अतिरिक्त सभी तरह के सम्मिश्रण क्रियाशील है जैसे वे जो सम्पूर्ण स्थायी उत्पादन के कुछ भागों को विनियोजित करते है, वे जो केन्द्रीय बिक्री एजेन्सी या सिंडीकेट तथा वे जो सारे लाभ को इकट्ठा करते है तथा विभाजित करते है।

15.2.3 व्यापार तथा भुगतान समझौते (Trade and Payment Agreements): अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रत्यक्ष रूप से सरकारी हस्तक्षेप की प्रक्रिया के कारण व्यापार तथा भुगतान समझौतों के साधनों के प्रयोग में वृद्धि हो गई है। जब कोई

सरकार बेचने वाली सरकार को भुगतान करने या वसतुओं को खरीदने में कठिनाई महसूस करती है तो व्यापार तथा भुगतान समझौता कर लेती है। इस समझौते में भुगतान की शर्तें तथा विधि लिखि जाती है। यही यह निर्णय करता है कि भुगतान नकद किया जाएगा या वस्तुओं के रूप में या सोने के रूप में या किसी विशेष विदेशी मुद्रा में। इससे खरीदने वाले राष्ट्र ऋण का समझौता भी कर लेते हैं ताकि बकाया राशि का भुगतान किया जा सके। इस तरह के समझौते द्विपक्षीय तथा बहुपक्षीय दोनों हो सकते है। ये आर्थिक उपकरण बन जाते हैं, क्योंकि इससे राष्ट्र के तथा खरीदने वाले राष्ट्र के साथ या बेचने वाले राष्ट्र या अन्य राष्ट्रों के सम्बन्धों पर भी प्रभाव पड़ता है।

15.2.4 शत्रु सम्पत्ति पर नियन्त्रण (Control over Enemy Assets): विदेशी राष्ट्रीयता के लोगो के बहुत से आर्थिक हित किसी विशेष राज्य में उनके व्यक्तिगत होते है, न कि विदेशी राज्य के। युद्ध के समय में या प्रतिकार के साधन के रूप में इस तरह की विदेशी सम्पत्ति राज्य द्वारा जब्त कर ली जाती है। इस तरह के कार्य को शत्रु सम्पत्ति पर नियन्त्रण (control over enemy assets) कहा जाता है। यह सम्पत्ति प्रायः साख, ऋण, फंड, जमा पूंजी, बीमा पालिसी, संचय (Stock) तथा बांड, धन सम्बन्धी दावे तथा एकस्व अधिकार (Patent Right), समुद्री जहाज, वास्तविक सम्पत्ति, कला खजाने तथा शत्रु नागरिकों की प्रत्येक वस्तु के रूप में होती है। तेरहवीं शताब्दी तक यह एक आम प्रक्रिया थी, जबकि सम्पत्ति ने प्रतिरक्षा का दर्जा हासिल कर लिया, जो 'पारस्परिकता के सिद्धांत' (Principle of Reciprocality) पर आधारित थी। एडविन एम० बोरकार्ड (Edwin M.Borchard) के शब्दों में, "1914 तक प्रतिरक्षा का यह अटल नियम माना जाता था। शत्रु के स्वभाव तथा स्तर के बारे में अन्तर्राष्ट्रीय कानून का विकास, व्यक्तिगत तथा सरकारी सम्पत्ति ने शत्रु की व्यक्तिगत सम्पत्ति को जब्त करने की प्रथा को समाप्त कर दिया किन्तु आजकल इसका प्रयोग तभी किया जाता है जब दोनों युद्धरत देशों में विदेशी नागरिकों की व्यक्तिगत जायदाद को पारस्परिक सुरक्षा उनकी सरकारों द्वारा नहीं दी जाती।"

15.2.5 ऋण तथा अनुदान (Loans and Grants): प्राचीन काल से ही ऋण तथा उपहार या अनुदान राष्ट्रीय नीति के आर्थिक उपकरण रहे है। तथापि अब बीसवीं शताब्दी में ही राष्ट्रीय नीति के आर्थिक उपकरण के रूप में इनका महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया है। गरीब तथा पिछड़े हुए राष्ट्रों के अस्तित्व–तीसरे विश्व के राज्य के कारण अमीर तथा विकसित राष्ट्र, अपने राष्ट्रीय हितों को प्राप्त करने के लिए ऋण तथा अनुदान का बहुत अधिक प्रयोग करने लगे है। अमरीका और भू० पू० सोवियत संघ (1917-91) ने तो इन उपकरणों को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में शीत युद्ध के समय में अपने हितों की सुरक्षा के लिए प्रयोग करने के प्रयत्न किए। ऋण देने वाले के उद्देश्य विशिष्ट तथा सामान्य दोनों प्रकार के हो सकते हैं तथा इन्हें प्राप्त करने के साधन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के हो सकते है। ऋण अनुदान प्राप्त करने वाले राज्य की कोई विशेष वस्तु खरीदने के लिए ही दिए जाते है। अनुदान उपहार वैसे तो मानवीय आधार पर दिए जाते है परन्तु वास्तव में इनके पीछे भी देने वाले राष्ट्र के कोई विशेष हित या हितों की प्राप्ति होती है। ऋण लेने वाले को ऋण देने वाले पर निर्भर रखने के लिए भी ऋण साधन के रूप में प्रयोग किए जाते है।

1945 के बाद के समय में अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं गरीब राष्ट्रों को ऋण देने की प्रक्रिया को अच्छी प्रकार से संचालित तथा संयोजित (Co-ordination) करने के लिए आगे आई है। धनी तथा विकसित राष्ट्र इन जैसी अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियों को फंड देते है तथा इस प्रक्रिया में वे उनकी कार्य प्रणाली पर नियन्त्रण रख लेते है। ऋण देने वालों ने सहायता संघों का गठन किया है, जैसे Aid India Consortium ताकि किसी विशिष्ट विकासशील राष्ट्र को सहायता देने तथा ऋण देने की आवश्यकता को अच्छी प्रकार से पूर्ण किया जा सके। लेकिन सदैव ही ऋण देने वाले अनुदान को, ऋण लेने की नीतियों में वांछित परिवर्तन लाने के लिए साधन के रूप में प्रयोग करते है।

15.2.6 वस्तु–विनिमय समझौते (Barter Agreements): राजनीतिक तथा आर्थिक कारणों से कभी–कभी राज्य विनिमय समझौते भी करते है, जबकि वे अपने बीच ही कुछ वस्तुओं का अनुबद्ध परिमापन में या अनुबद्ध मूल्य में आदान–प्रदान करते है। धनी तथा शक्तिशाली राष्ट्र अपने आर्थिक आश्रितों के साथ आवश्यक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए कम या अधिक मूल्य की वस्तुओं का आदान–प्रदान करते है। विनिमय समझौते दोनों दलों के हितों को पूरा करते हैं तथापि वास्तव में ये धनी तथा शक्तिशाली राष्ट्रों के हितों को अधिक अच्छी तरह पूरा करते है। विकासशील राष्ट्र प्रायः विनियम समस्झौते करने का प्रयत्न करते है। वे विकसित राष्ट्रों से आवश्यक निर्मित वस्तुओं या मशीनरी लेने के लिए आवश्यक वस्तुएं कम कीमतों पर पेश करते है। यह व्यवस्था गरीब राष्ट्रों के हितों से अधिक धनी तथा विकसित राष्ट्रों के लिए सहायक है।

15.2.7 विनिमय–नियन्त्रण (Exchange Control): विनिमय नियन्त्रण राशन व्यवस्था की तरह है, जो विदेशी मुद्रा का संरक्षण करने के लिए विदेशी मुद्रा को व्यय करने के बड़े कड़े तथा निश्चित नियम बनाते है। विदेशी मुद्रा की मांग विशेषतया विकासशील राष्ट्रों में हमेशा विदेशी मुद्रा की उपलब्धि तथा पूर्ति से अधिक होती है। इसलिए विदेशी मुद्रा को व्यय करने के नियम बनाने पड़ते है। इस उद्देश्य के लिए राज्य की सरकार या इसकी कोई एजेन्सी या कोई सहायक या वैधानिक सत्ता (जैसे भारत में रिजर्व बैंक) विदेशी मुद्रा पर पूर्ण तथा एकाधिकारिक नियन्त्रण रखते है। इसका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में लाभ प्राप्त करना तथा पूंजी को विदेश जाने से रोकना तथा बहुत अधिक मूल्य वाली मुद्राओं को रखना होता है। यह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को पृथक् करके घरेलू योजनाओं को सुरक्षित रखने के लिए किया जात है।

क्रऊस के शब्दों में, "इस पृथ्थकरण के प्रभाव के कारण ही विनिमय नियन्त्रण भारत जैसे उन देशों के आर्थिक शास्त्रागार का महत्त्वपूर्ण शस्त्र है, जो राष्ट्रीय योजनाओं के लिए प्रतिबद्ध है।"

15.2.8 विदेशी सहायता (Foreign Aid): विदेशी आर्थिक सहायता द्वारा राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा तथा इन्हें प्रोत्साहन देने के लिए आर्थिक सहायता युद्धोत्तर काल के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में एक लोकप्रिय उदाहरण है। विशेष कर इस काल के प्राथमिक वर्षो में अमरीका ने यूरोप में अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए आर्थिक सहायता को एक उपकरण के रूप में प्रयोग किया। अमेरिका की आर्थिक सहायता तीन रूपों में दी जाती है। (अ) युद्ध से प्रभावित राष्ट्रों को सहायता तथा आर्थिक पुनर्निर्माण के रूप में आर्थिक सहायता, (ब) नए राज्यों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आधुनिकीकरण तथा स्थिरता के लिए आर्थिक सहायता तथा (स) 'साम्यवाद के बढ़ते हुए संकट' से लड़ने के लिए आर्थिक सहायता। भूतपूर्व सोवियत संघ ने भी 1945 के बाद के वर्षो में साम्यवादी देशों को 'सामाजिक व्यवस्था को पूंजीवादियों के खतरे" के विरूद्ध उनके दृढ़ीकरण के लिए आर्थिक सहायता दी थी। आर्थिक सहायता लेने वाले राष्ट्रों की नीतियों को प्रभावित करने के लिए यह एक साधन के रूप में प्रयोग की जाती है। इसका उद्देश्य प्रायः राजनीतिक होता है।

इन सभी प्रयुक्त आर्थिक उपकरणों की श्रेणी में हम एक और साधन को शामिल करना चाहेंगे और वह है विकसित देशों की विकासशील देशों में से प्रशिक्षित तथा योग्यतम मानव–शक्ति को अपने पास खींचने की योग्यता। विकासशील देशों के योग्य एवं प्रशिक्षित डाक्टर, इंजीनियर तथा अन्य ऐसे व्यक्ति विकसित देशों को भाग जाते है विकसित देशों द्वारा ऐसे व्यक्तियों को आयात करने की योग्यता तथा तकनीक भी एक आर्थिक उपकरण ही बन गई है।

15.2.9 अन्तः सरकारी वस्तु–समझौते (Inter-Government Commodity Agreements): अन्तः सरकारी वस्तु–समझौता एक ऐसा साधन है, जो किसी राज्य विशेष को विश्व बाजार में निश्चित भाग का आश्वासन देता है। विभिन्न वस्तुओं के सामान्य अति–उत्पादन के इस युग में इस साधन का प्रयोग तबाह करने वाली प्रतिस्पर्धा से बचने के लिए किया जाता है जो खरीदारों के बाजार तक भी जा सकती है। प्रतिरोधक स्टॉफ एजेन्सी (Buffer Stock Agency) जो निर्यात कोटे (Export Quota) तथा उत्पादन कोटे (Production Quota) को निर्धारित करता है, इस तरह के समझौते का उदाहरण है। ये समझौते प्रायः आवश्यक उत्पादित वस्तुओं पर नियंत्रण से सम्बन्धित होते है, न कि निर्मित वस्तुओं से। इस समय विभिन्न राज्यों की सरकारें गेहूं, चीनी, चाय, कॉफी, गाय का मांस (Beef), इमारती लकड़ी, कलई, रबड़, ऊन, कपास, जूट आदि के लिए आवश्यक वस्तु समझौते (Commodity Agreements), कर चुकी है।

अन्तर्राष्ट्रीय समझौते, उत्पादन तथा वितरण कार्यक्रम का नियमन करने तथा लाभ अनुपात को निश्चित करने में सरकारों की सहायता करते है। इन्होंने कभी–कभी राज्यों के हितों की रक्षा करने के लाभदायक उद्देश्य को पूरा किया है विशेषतया उन राज्यों के, जिनके पास वस्तुएं अतिरिक्त मात्रा में होती है। यही कारण है कि इन अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु समझौता की बहुत आलोचना नहीं हुई जैसे कि अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेल्स की हुई है। पामर और पर्किन्स के विचार में, "कुछ संभावनाओं (Contigencies) में तो ये प्रशंसनीय उद्देश्य पूरा करते है। परन्तु इनका ध्यानपूर्वक निरीक्षण होना चाहिए, तथा यह ध्यान रखना चाहिए कि ये स्थायी न बन जाएं।" एक अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु–समझौता (International Commodity Agreement) उत्पादकों के मध्य तबाह करने वाली प्रतिस्पर्धा को रोकने के लिए बहुपक्षीय विवेक के रूप में तथा विश्व–बाजार तथा लाभों का उचित हिस्सा प्राप्त करने के लिए कोटा प्रणाली (Quota System) की अपेक्षा अर्थव्यवस्था का सुदढ़ करने का अधिक अच्छा तरीका पेश करता है।

15.2.10 कोटे तथा लाइसेंस (Quota and Licences): जब कोई सरकार आयात पर प्रत्यक्ष नियंत्रण करना चाहती है तो यह कोटा प्रणाली का प्रयोग करती है। इसके द्वारा वह प्रत्येक देश का अलग–अलग कोटा निर्धारित कर देती है यह फिर विश्वस्तरीय कोटा निर्धारित कर देती है। इसका उद्देश्य देशीय उत्पादकों की सुरक्षा करना होता है या यह निश्चित करना होता है कि आयात निर्यात से अधिक न हो अर्थात् व्यापार का सन्तुलन बनाए रखना आवश्यक होता है। आयात को इच्छित तथा पूर्व निर्धारित सीमाओं के अन्दर रखने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है, जो राष्ट्र की स्वस्थ अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक होता है। युद्ध काल में इसका प्रयोग वस्तुओं के निर्यात को नियमित करने के लिए प्रकट रूप से वस्तुओं को सुरक्षित रखने के लिए किया जाता है।

आयात को नियन्त्रित करने का एक और कठोर साधन लाइसेंस व्यवस्था है। इस व्यवस्था के अधीन प्रत्येक नए आयात को अलग लाइसेंस की आवश्यकता होती है तथा इसे देते समय सरकार देश की अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखते है तथा दूसरे राष्ट्र के साथ आयात–निर्यात सम्बन्धों की ऊंच–नीच को परखती है।

15.2.11 कम मूल्य पर निर्यात करना (Dumping): जब कोई देश घरेलू बाजार में प्रचलित मूल्यों से भी कम मूल्यों पर किसी वस्तु का निर्यात करता है तो उसे कम मूल्य पर निर्यात (Dumping) कहते है। जेकब वाइनर (Jacob Viner) इसका वर्णन इस प्रकार करते है। "विदेशी–व्यापार, अन्दरूनी व्यापार में स्थानीय मूल्य कटौती के समानान्तर है।" (The foreign trade is parallel of local price cutting in internal trade. –Jacob Viner) 1890 से कम मूल्य पर निर्यात करना धनी तथा अतिरेक माल वाले देशों की लोकप्रिय प्रक्रिया होती थी। कम मूल्य पर निर्यात करना (डम्पिग) कई तरह की हो सकती है। छिट–पुट डम्पिग तथा लम्बी अवधि की डम्पिग (Dumping)। छिट पुट डम्पिग का प्रयोग अस्थायी आधिक्य को हटाने तथा निराश बाजार में सदभावना पैदा करने या नई वस्तु बाजार में लाने या प्रतिद्धन्द्धी को कमजोर करने के

लिए किया जाता है या फिर उत्पादकों की घरेलू बाजार में डम्पिग के विरूद्ध प्रतिकार के लिए किया जाता है। शत्रु के हितों को हानि पहुंचाने के लिए आर्थिक युद्ध के साधन के रूप में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। लम्बी अवधि के डम्पिग का प्रयोग बड़े पैमाने पर उत्पादन करने वाली कम्पनियों की अर्थव्यवस्था पर ही निर्भर होता है।

इन दोनों प्रकार की डम्पिग के सम्भावित प्रभावों का विश्लेषण करते समय पामर तथा पर्किन्स (Palmer and Perkins) लिखते है, "यह निर्यात करने वाले राष्ट्रों के लिए उत्पादन को स्थिर रखने तथा रोजगार को बनाए रखने का एक साधन है। यह उत्पादन सुविधाओं में विस्तार पैदा कर सकता है पर ये देशीय बाजार में मूल्य को कम कर भी सकता है, नहीं भी। आयात करने वाले राष्ट्र के लिए छिट–पुट डम्पिग घरेलू प्रतिस्पर्द्धक उद्योगों को बर्बाद कर सकती है। इसमें कोई संदेह नहीं होता कि इससे उपभोक्ता थोड़े–से लाभ तथा कुछ समय के लाभ प्राप्त करते है। इसी तरह लम्बी अवधि वाली डम्पिग उद्योगीकरण की प्रगति में तथा इसलिए राष्ट्रीय आर्थिक शक्ति को हासिल करने में रूकावट बन जाती है।"

15.2.12 राज्य व्यापार (State Trading): जब कोई सरकार स्वयं भी व्यापार में भागीदार बन जाती है तो इसे राज्य–व्यापार कहा जाता है। इस स्थिति में सरकार अपनी शक्ति प्रयोग द्वारा व्यापार की मात्रा, स्वरूप, दिशा तथा विदेश व्यापार के समय आदि पर नियन्त्रण तथा घरेलू तथा विदेशी उत्पादकों तथा आपूर्तिकर्त्ता (Suppliers) पर अपना राजनीतिक दबाव तथा शक्तिशाली आर्थिक प्रभाव डालती है। ऐसी प्रथा विशेष महत्त्वपूर्ण सीमित वस्तुओं की संख्या के बारे में सरकार द्वारा प्रयुक्त बड़ी प्रतिबंधक प्रथा होती है।

15.2.13 आर्थिक सहायता भुगतान (Subsidies): आर्थिक सहायता भुगतान ऐसे भुगतान है, जो घरेलू उत्पादन या विदेश में विक्रय को प्रोत्साहित करने के लिए दिए जाते है। "यह अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक शत्रुता तथा आर्थिक युद्ध में एक आक्रामक शस्त्र है, (It is a weapon of offence in international economic rivalry or warfare, whereas protective traffic is a defensive weapon) जबकि सुरक्षात्मक सीमा–शुल्क एक रक्षात्मक शस्त्र है।" इससे आवश्यक वस्तुओं को संचित कर लेना सम्भव होता है। निस्सन्देह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर इसका शुद्ध प्रभाव सीमा शुल्क के समान ही होता है। ये अक्सर विशेष शुल्क छूट की प्रारम्भिक तैयारी के रूप में तथा कभी–कभी खजाने से अतिरेक पूँजी को निकालने के लिए प्रयोग किए जाते है।

15.2.14 वर्ज्य सूची (Black List): कभी–कभी राज्य कुछ विदेशी फर्मों को वर्ज्य सूची में शामिल कर लेते है तथा उन्हें बाजार में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं देते। इसका उद्देश्य या तो आर्थिक होता है या राजनीतिक या दोनों ही। अरब लीग (Arab League) तथा OPEC ने कुछ विदेशी फर्मों की एक वर्ज्य सूची बना रखी है, जिनका इज़राइल के साथ कोई आर्थिक लेन–देन नहीं है। प्रजाति–पार्थक्य के विरूद्ध (Antiapartheid) बहुत–से देशों ने ऐसी कई विदेशी फर्मों को वर्ज्य सूची बना रखी थी, जो दक्षिण अफ्रीका के साथ आर्थिक व्यापार में संलग्न थीं।

15.2.15. मूल्य स्थिरीकरण (Valorization): यह शब्द किसी सरकार द्वारा किसी आवश्यक वस्तु या वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हेतु उठाए गए कदमों के लिए प्रयोग किया जाता है। घटी हुई मांग या बहुत अधिक उत्पादन के मूल्यों को कम समय में स्थिर करने का यह एक साधन है। इसे प्रायः बाजार में चीजें खरीद कर या खरीद रोक कर ही उत्पादन को सीमित करके पूरा किया जाता है। पामर तथा पर्किन्स (Palmer and Perkins) लिखते है "मूल्य स्थिरीकरण हाल ही के वर्षों में काफी कम हो गया है, क्योंकि अब इसकी जगह बहुपक्षीय अन्तर–सरकारी आवश्यक वस्तु समझौतों ने, जो कि अधिक प्रभावशाली है, ले ली है।

15.2.16 घाटबन्दी तथा बहिष्कार (Embargoes and Boycotts): घाटबन्दी किसी विशेष राज्य या राज्य समूह को सभी वस्तुओं या कुछ विशेष वस्तुओं के निर्यात पर पाबन्दी के लिए प्रयोग की जा सकती है तथा बहिष्कार, जो कि घाटबन्दी के विपरीत है, का प्रयोग आयात रोकने के लिए किया जाता है। घाटबन्दियां तथा बहिष्कार, सरकारी तथा गैर–सरकारी दोनों हो सकते है। इसका अर्थ है कि इसे सरकार या व्यक्तिगत समूह दोनों में से कोई भी लागू कर सकता है। 1950 से 1970 तक के समय में अमरीका ने चीनी वस्तुओं पर घाटबन्दी का प्रयोग किया था। भारत तथा बहुत से दूसरे देशों ने दक्षिण अफ्रीका में बनी वस्तुओं के व्यापार काफी समय तक पूर्ण घाटबन्दी लगाए रखी थी।

15.2.17 आर्थिक प्रतिबन्ध (Economic Sanctions): वर्तमान समय में अमीर तथा विकसित राष्ट्र कम विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगा कर उनकी नीतियों को अपनी इच्छा अनुसार प्रभावित करने अथवा उन्हें दण्डित करने के लिए कर रहे है। ईराक तथा लीबिया पर आर्थिक प्रतिबन्ध काफी वर्षों से चलाये जा रहे है। इसी प्रकार 1998 के परमाणु बम परीक्षण के बाद अमरीका तथा कुछ अन्य विकसित देशों ने भारत तथा पाकिस्तान पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिया था।

15.3 सारांश

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के ये सभी आर्थिक तत्व राज्यों द्वारा अपनी राष्ट्रीय नीतियों के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त किये जाते है। आजकल धारणा यह है कि दूसरे राष्ट्र के हितों को हानि पहुँचाने के लिए इन उपकरणों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। आज राष्ट्र व्यापार तथा अर्थ के अवरोधों को कम करने की आवश्यकता को पूरी तरह अनुभव करते है तथा इसके साथ–साथ उन साधनों को भी सीमित कर देना चाहते है जिनका प्रयोग राष्ट्र एकपक्षीय कार्यों तथा

अपनी इच्छाएं दूसरों पर लादने के लिए प्रयोग करते है आदर्श यह है कि 'यूरोपीय संघ' की धारणा पर पश्चिमी यूरोप की एकता की तरह अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक एकीकरण को प्राप्त करना। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक एकीकरण की तरफ झुकाव है परन्तु इस आदर्श को प्राप्त करने में प्रगति बड़ी धीमी तथा उतार–चढ़ाव से भरपूर है। धनी तथा गरीब राष्ट्रों के बीच निरन्तर बढ़ती खाई नए आर्थिक क्रम के लिए किसी सहमति पर पहुंचने में असफलता तथा राष्ट्रीयता की दृढ़ भावना, मुख्य बाधाएं है। इसी दौरान राष्ट्रीय उद्देश्यों के लिए आर्थिक साधनों का प्रयोग सभी राष्ट्रों के लिए बड़ा लोकप्रिय बन रहा है। अमरीका सुपर 301 (super 301) जैसे कानूनों के अधीन आर्थिक उपकरणों का प्रयोग करके अपने हितों (विशेषकर आर्थिक हितों) की पूर्ति करने का प्रयत्न करता रहा है। बहुराष्ट्रीय निगम भी आर्थिक उपकरणों की सहायता से विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं और नीतियों को अपने पक्ष में प्रभावित करने का यत्न कर रहे है। संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् भी आक्रमण की स्थिति में आक्रमणकारी राज्य के विरूद्ध आर्थिक प्रतिबन्ध लगाकर आक्रमण को असफल बनाने का यत्न करती है।

अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रमुख आर्थिक तत्वों का वर्णन कीजिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बन्धों का महत्त्व बताईए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के आर्थिक तत्वों का वर्गीकरण कीजिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को विकसित करने में आर्थिक तत्वों की क्या भूमिका है।
3. आर्थिक प्रतिबन्ध से क्या अभिप्राय है।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेल्स क्या है?
2. मूल्य स्थिरीकरण से क्या अभिप्राय है?
3. वस्तु विनिमय क्या है?

इकाई–16

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का प्रबन्धन

(Management of International Relations)

16.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रबन्धन, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र व अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रबन्धन के तत्वों का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र का अध्ययन कर सकेंगे।
- अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रबन्धन के प्रमुख तत्वों का अध्ययन कर सकेंगे।
- अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रबन्धन में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका का उल्लेख कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

सामान्यतः स्वतन्त्र तथा सम्प्रभु राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध कहा जाता है। इन सम्बन्धों में राष्ट्रों के आपसी सम्बन्धों के सभी पहलुओं जैसे– राजनीतिक, गैर राजनीतिक, आर्थिक, भौगोलिक, सरकारी, गैर सरकारी सांस्कृतिक, धार्मिक, शैक्षिक, तकनीकी, वैज्ञानिक, सामरिक और शान्तिपूर्ण आदि पर विचार किया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के संचालन हेतु अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का प्रबन्ध अति आवश्यक है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद स्थापित संयुक्त–राष्ट्र संघ का सर्वाधिक प्रमुख उद्देश्य है – अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का प्रबन्ध, ताकि अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा को बनाए रख कर राष्ट्रों के बीच मित्रता पूर्ण सम्बन्धों का विकास किया जा सके। संयुक्त राष्ट्र संघ के गठन के बाद कई दशकों तक शीत युद्ध का दौर चलता रहा, फिर भी संयुक्त राष्ट्र संघ ने अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के निपटारे में उल्लेखनीय भूमिका निभाई तथा विश्व व्यवस्था को नया रूप देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रबन्धन का अध्ययन करने में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र का अध्ययन करना आवश्यक है।

16.2 अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के क्षेत्र को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है।

1. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध वे सम्बन्ध होते है। जो एक देश अपनी सीमाओं के बाहर जाकर अन्य देशों के साथ विकसित करता है।
2. ज्ञान की विशेष शाखा के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में विषय वस्तु एवं विभिन्न प्रश्नों पर विचार करने के लिए विश्लेषण के तरीके तथा तकनीक को सम्मिलित किया जाता है। इनकी विषय–वस्तु में किसी भी स्त्रोत से प्राप्त होने वाले ज्ञान का संग्रह होता है जो पुरानी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने में सहायक हो सके। इस विषय–वस्तु में राजनीतिक समूहों या व्यक्तियों के व्यवहार से सम्बन्धित सामान्य ज्ञान आता है साथ ही नीति सम्बन्धी प्रश्नों या घटनाओं से सम्बन्धित विशेष सूचना भी सम्मिलित रहती है। जहाँ तक सामान्य ज्ञान के प्रश्नों का सम्बन्ध है इनकी जाँच के लिए तार्किक प्रयास भी रहते है। जहाँ तक व्यावहारिक प्रश्नों का सम्बन्ध है इनमें संलग्न प्रश्नों पर विचार के प्रयासों, मूल्य से सम्बन्धित लक्ष्यों के वर्गीकरण प्राप्त कार्यों के विकल्पों का उल्लेख एवं उनके सम्भावित परिणामों को सम्मिलित किया जाता है।
3. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध ज्ञान की एक पृथक् शाखा के रूप में विश्व–व्यवस्था में स्वायत्त राजनीतिक समूहों के पारस्परिक सम्बन्धों से प्रकट होने वाले प्रश्नों पर विचार करता है।
4. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का विश्लेषक वह होता है जो राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार करने की विशेष योग्यता रखता है।
5. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का तकनीकी ज्ञान एक राष्ट्रीय समुदाय के अन्तर्गत सामाजिक सम्बन्धों के ज्ञान के व्यापक भौगोलिक स्तर का केवल प्रसार मात्र न होकर इसके अपने कुछ विशेष तत्त्व होते है। उदाहरणार्थ – अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का सम्बन्ध विशेष प्रकार के शक्ति सम्बन्धों से होता है जिसका अस्तित्व एक केन्द्रीकृत सत्ताविहीन समाज में पाया जाता है।
6. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध द्वारा जिन प्रश्नों पर विचार किया जाता है वे मुख्यता सामाजिक संघर्षों एवं समायोजनों से उत्पन्न होते है। अतः इनके दृष्टिकोण की प्रकृति साधनयुक्त एवं मूल्यांकन करने वाली होती है।
7. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के मूल्यांकन करने की प्रकृति उन प्रश्नों से सम्बन्धित होती है जो इसके विचारणीय विषय है। उदाहरणार्थ–अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के प्रारम्भिक अध्ययनकर्त्ता उस सामाजिक व्यवस्था को आदर्श मानते थे जिसमें कि युद्ध नहीं होते। वे स्थित व्यवहारों का मूल्यांकन इन आदर्श मान्यताओं के प्रकाश में ही करते थे परन्तु वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का अध्ययनकर्त्ता का मुख्य ध्यान अन्तर्राष्ट्रीय जीवन के जानने योग्य तथ्यों एवं उन शक्तियों तथा परिस्थितियों पर रहता है जो राष्ट्रों के पारस्परिक व्यवहारों को प्रभावित करते है।

8. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में विभिन्न देशों की विदेश नीतियों को जानने का प्रयास किया जाता है परन्तु ये विदेश नीतियाँ सम्बन्धित राज्यों की आन्तरिक दशाओं के ज्ञान के आधार ही समझी जा सकती है। ऐसी स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के अध्ययन के लिए राष्ट्रीय राजनीति के विभिन्न पहलुओं को समझना आवश्यक है।
9. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में मानवीय व्यवहार भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में निर्णय लेने की प्रक्रिया का बहुत महत्त्व है। ये निर्णय ऐसे व्यक्तियों अथवा व्यक्ति समूहों द्वारा लिये जाते है, जो पहचाने जा सकें।

16.3 अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रबन्धन के तत्व –

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रबन्धन के प्रमुख तत्व निम्नलिखित है।

16.3.1 राष्ट्रीय हित – अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रबन्धन में राष्ट्रीय हित वह केन्द्र–बिन्दु है जिसके चारों ओर सम्पूर्ण राजनीति घूमती है। इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विभिन्न राष्ट्रों के राष्ट्रीय हितों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है। प्रत्येक राज्य अपने राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर ही अपनी विदेश नीतियों का संचालन करते है। इसी के आधार पर शत्रु राष्ट्रों और मित्र राष्ट्रों का चयन किया जाता है। इसीलिए कहा जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शत्रु और मित्र स्थायी नहीं होते बल्कि राष्ट्रीय हित ही स्थायी होते है। ये राष्ट्रीय हित ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का आधार होते हैं क्योंकि इन्हीं के कारण संघर्ष और मैत्री की जाती है। **हार्टमैन** (Hartman) ने कहा कि, ''अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति उन प्रक्रियाओं का अध्ययन करती है जिनके माध्यम से एक राज्य अन्य राज्यों के साथ अपने राष्ट्रीय हितों का तालमेल करता है।''

16.3.2 शक्ति – अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रबन्धन में जितना अधिक जोर शक्ति पर दिया जाता है, उतना कदाचित् किसी और विषय पर नहीं दिया जाता। अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में सभी राज्य शक्ति के उपार्जन के लिए प्रत्यत्नशील होते हैं और शक्ति का दृष्टिकोण ही उनकी विदेश नीति की रचना में सबसे अधिक निर्णायक भूमिका निभाता है। मॉर्गेन्थो के शब्दों में ''अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति प्रत्येक राजनीति की भाँति शक्ति संघर्ष है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अन्तिम लक्ष्य चाहे जो कुछ भी हो, शक्ति सदैव तात्कालिक लक्ष्य रहती है। ''आज विश्व के देशों के साथ शक्ति शब्द जुड़ गया है जैसे– विश्व–शक्ति, महाशक्ति, बड़ी शक्ति, छोटी शक्ति, कमजोर शक्ति। इससे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्रीय शक्ति के महत्त्व का ज्ञान होता है।

16.3.3 विदेश नीति – फैलिक्स ग्रॉस का मत है कि, ''अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अध्ययन वास्तव में विदेश नीतियों का अध्ययन है।'' किसी भी राज्य का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यवहार सदैव उसकी विदेश नीति द्वारा नियन्त्रित तथा निर्देशित होता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अन्तर्गत उन तत्वों का अध्ययन होता है जिनसे किसी देश की विदेश नीति बनती है। इनमें दो तत्व है – (1) राष्ट्रीय हित और (2) राष्ट्रीय शक्ति प्रमुख है। विदेश नीति में विभिन्न देशों के मध्य राजनीतिक आर्थिक, व्यापारिक, सैनिक, सांस्कृतिक कूटनीतिक आदि सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। सरकारे अपने–अपने राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखकर विदेश नीति का संचालन करती है। देखने में आता है कि देश में सरकार के बदले जाने पर भी राष्ट्रों की विदेश नीति नही बदलती। उसमें सामान्यतया निरन्तरता बनी रहती है। इसलिए यह कहा जाता है कि किसी भी देश का स्थायी मित्र या शत्रु नहीं होते केवल स्थायी है तो राष्ट्रीय हित इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रबन्धन में विदेश नीति की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

16.3.4 अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के आर्थिक उपकरण – अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में बढ़ते हुए आर्थिक तथा व्यापारिक सम्बन्धों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। आज राज्यों के बीच विदेशी सहायता, ऋण, व्यापार, अनुदान आदि राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इसलिए आर्थिक उपकरणों का अध्ययन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अभिन्न अंग है।

16.3.5 अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं एवं क्षेत्रीय संगठन – वर्तमान में राज्यों के सम्बन्धों को बनाने के लिए संस्थागत साधनों के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का तीव्र गति से विकास एक मुख्य विशेषता है। राज्यों के मध्य आर्थिक, सैनिक, तकनीकी और सांस्कृतिक सहयोग की वृद्धि करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनाये जाते है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना ने अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के महत्त्व को बहुत बढ़ा दिया है। वर्तमान में यू. एन. ओ. के अतिरिक्त अन्य संस्थाएँ भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

आर्थिक – यूरोपियन साझा बाजार, विश्व बैंक, कोलम्बो योजना, विश्व व्यापार संगठन आदि।

सैनिक – नाटो (NATO), सीटा (SEATO), सेण्टो (CENTO), वार्साय सन्धि (Warsaw Pact), आदि

राजनीतिक – राष्ट्रसंघ, संयुक्त राष्ट्रसंघ।

प्रादेशिक – अरब लीग, अमरीकी राज्यों का संगठन, अफ्रीकी एकता संगठन, सार्क (SAARC), आसियान (ASEAN), आदि।

सांस्कृतिक और अन्य – यूनेस्को (UNESCO), अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO), विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO), आदि।

16.3.6 गैर–राजकीय कार्यकर्त्ता (बहुराष्ट्रीय निगम) – वर्तमान में राज्यों के साथ–साथ असंख्य पार–राष्ट्रीय तथा बहु–राष्ट्रीय संगठन (Trans-national and Multi-national organisation), गैर–सरकारी तथा अर्द्ध सरकारी संगठन भी

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रबन्धन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है। जैसे–द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् साम्यवादी गुट, पूँजीवादी गुट, स्वतन्त्र समाज, तीसरी दुनिया, अरब समुदाय, अफ्रीकी देश, जी–7, जी–15 आदि।

16.3.7 शक्ति सन्तुलन (Balance of Power) – शक्ति सन्तुलन का अर्थ है कि कुछ देश मिलकर दूसरे शक्ति–सम्पन्न देश या देशों के समक्ष संगठित होते है। ये प्रमुख कर्त्ता (देश) अपने शक्ति सम्बन्धों में एक विशेष सन्तुलन बनाये रखते हैं जिससे युद्ध से बचा जा सकता है। सिडनी फे (Sidney Fay) के शब्दों में, 'शक्ति–सन्तुलन राष्ट्रों के परिवार के बीच शक्ति का ऐसा सन्तुलन है जो किसी एक राष्ट्र को इतना अधिक शक्तिशाली होने से रोकता है जिससे वह अन्य राज्यों के ऊपर अपनी इच्छा बलपूर्वक थोप सके।' साथ ही शक्ति–सन्तुलन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सम्प्रभु राज्य अपने बाह्य सम्बन्धों के परिचालन में शक्ति का बँटवारा करते है तथा वह पद्धति है जिसमें राज्य बिगड़ते सन्तुलन को ठीक करने का प्रयास करता है। शक्ति–सन्तुलन की स्थापना करने के लिए राजनीतिक उपायों तथा अन्य तिकड़मों की आवश्यकता होती है। किसेंजर और गूलिक ने इस पद्धति की तुलना शतरंज के खेल से की है, जिसमें खिलाड़ी चौकन्ना रहकर अपनी स्थिति मजबूत करता है तथा दूसरों की स्थिति मजबूत होने से रोकता है। यह कार्य शक्ति–संचय, सन्धि–समझौते, भेदनीति, हस्तक्षेप, बफर राज्यों की स्थापना, प्रदेशों पर अधिकार आदि उपयों से चलता रहता है।

16.3.8 अन्तर्राष्ट्रीय कानून (International Law) – अन्तर्राष्ट्रीय कानून एक ऐसी व्यवस्था है जिसके नियमों को राष्ट्र–राज्य सरकारों ने स्वीकार किया है और वे इसे मानने के लिए बाध्य है। इसी से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में उनका व्यवहार नियन्त्रित होता है। इस कानून का मुख्य आधार अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता तथा विश्व जनमत है। विश्व में न्याय और शान्ति की स्थापना के लिये सभी राष्ट्रों को समान रूप में अन्तर्राष्ट्रीय कानून द्वारा आयोजित प्रतिबन्धों और सीमाओं को स्वीकार करना होगा। संयुक्त राष्ट्रसंघ तथा विशेषकर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना ने इस विचार को सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। कोई राष्ट्र मनचाहे ढंग से इनका उल्लंघन नहीं कर सकता। यह सभ्य राष्ट्रों के पारस्परिक आचाण के मान्य नियम है, जिन्हें विकसित करने के पूरे–पूरे प्रयत्न किये जा रहे है। इसका उल्लंघन करने वाले राज्य के विरूद्ध प्रतिबन्ध लगाये जा सकते है।

16.3.9 अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता (International Morality) – अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता व्यवहार करने की एक नैतिक संहिता के समान है जिसका पालन प्रायः सभी देश करते है। यह नैतिक भावना प्रत्येक देश की राष्ट्रीय शक्ति को सीमित करती है।

जब भी कोई राष्ट्र अन्य के सम्बन्ध में कोई कदम उठाता है तो दूसरे देशों द्वारा उस कदम के औचित्य तथा नैतिकता की जाँच होती है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी व्यवहार के कुछ सामान्य नैतिक नियम है। सन्धि समझौते को मानना, वायदों को पूरा करना, न्यायपूर्ण कार्य, अल्पसंख्यकों की रक्षा, युद्ध न करना, अन्तर्राष्ट्रीय कानून को मानना आदि ऐसी बातें है जिन्हें प्रत्येक राष्ट्र को स्वीकार करना चाहिये। यह नैतिकता है। प्रत्येक देश अपने व्यवहार को नैतिक सिद्ध करने की कोशिश करता है।

16.3.10 सामूहिक सुरक्षा (Collective Security) – सामूहिक सुरक्षा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के उद्देश्य के सिद्धांत पर आधारित है। शान्ति और सुरक्षा सभी राष्ट्रों की सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था है जो उन राज्यों के प्रतिरोध, जो शान्ति और सुरक्षा के सिद्धांत का उल्लंघन करते हैं, से क्रियान्वित होता है। इस प्रकार वो देश किसी अन्य देश की प्रभुसत्ता, स्वतन्त्रता या क्षेत्रीय अखण्डता की अवमानना करता है वह अपने बल प्रयोग को इस डर से नियन्त्रित करता है कि उसकी कार्यवाही का सभी राज्य सामूहिक रूप से विरोध करेंगे।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में भी सामूहिक सुरक्षा के विचार को अपनाया गया है। चार्टर में पहली धारा आक्रमणकारी के विरूद्ध 'प्रभावशाली सामूहिक उपयों पर बल देती है' तथा 39 से 51 धारा तक इनमें उपयों का विस्तृत वर्णन किया गया है। 1950 में कोरिया युद्ध में सामूहिक सुरक्षा पद्धति की परीक्षा हुई। लेकिन वहाँ भी रूस की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर अमेरिका ने प्रस्ताव पास करा लेने पर भी केवल 16 सदस्य राष्ट्रों ने युद्ध में भाग लिया, जिसमें अमेरिका को छोड़कर अन्य का सहयोग नाममात्र का था। सामूहिक सुरक्षा का प्रयत्न सफल हो गया। 'वीटो शक्ति' के रहते इसकी सफलता संदिग्ध है क्योंकि सुरक्षा परिषद् कोई निर्णय नहीं ले पाती है। आज की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में यह एक आदर्श मात्र ही है।

16.3.11 निःशस्त्रीकरण तथा शस्त्र–नियन्त्रण (Disarmament and Arms Control) निःशस्त्रीकरण का अर्थ है अब तक जमा किये शस्त्रों को नष्ट करना और शस्त्र–नियन्त्रण का अर्थ है–शास्त्र–दौड़ (शस्त्र–निर्माण प्रतियोगिता) पर अंकुश लगाना। ये दोनों इस विश्वास से संचालित है कि सैनिक शक्ति तथा शस्त्रों को कम करने से राज्य की राष्ट्रीय शक्ति सीमित होगी।

एटमिक हथियार, अन्तरमहाद्वीपीय प्रक्षेपणास्त्र तथा इसी प्रकार के अन्य भयानक हथियार राष्ट्रों के शस्त्रागार में प्रचुर मात्रा में एकत्र है। यदि इन शस्त्रों पर प्रतिबन्ध न लगाया गया तो शस्त्रों की दौड़ मानव जाति का संहार कर देगी और अब तक सभ्यता की उन्नति हुई है वह समाप्त हो जायेगी। लेकिन निःशस्त्रीकरण का इतिहास असफलता का इतिहास है। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अपने जन्म से ही निःशस्त्रीकरण के क्षेत्र में अपने उत्तरदायित्व का अनुभव किया है। इसके अन्तर्गत स्थायी निःशस्त्रीकरण आयोग गठित किया गया है। जो निःशस्त्रीकरण के लिए आज भी कार्य कर रहा है।

16.3.12 कूटनीति (Diplomacy) – अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रबन्धन में कूटनीति का महत्वपूर्ण स्थान है। पैडलफोर्ड और लिंकन के शब्दों में, "कूटनीति को प्रतिनिधित्व एवं सौदेबाजी की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा परम्परागत रूप से शन्तिकाल में राज्यों का परस्पर सम्बन्ध कायम रहता है।" कूटनीति के माध्यम से युद्ध लड़े बिना ही राष्ट्र अपने राष्ट्रीय हितों का संरक्षण तथा इसमें अभिवृद्धि कर सकते है। के. एम. पनिक्कर के अनुसार, "समस्त राजनयिक सम्बन्धों का मूल उद्देश्य अपने राष्ट्र के हितों की रक्षा करना होता है ओर प्रत्येक राष्ट्र का मूलभूत हित स्वयं अपनी सुरक्षा करना होता है। इस सर्वोपरि लक्ष्य के अतिरिक्त आर्थिक हित, व्यापार, देशवासियों की रक्षा आदि अन्य ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय है जिनका ध्यान रखना राजनय (कूटनीति) का उद्देश्य है।

कूटनीति के द्वारा एक देश की विदेश नीति दूसरे देश तक पहुँचती है। कूटनीति के माध्यम से एक देश के कूटनीतिज्ञ दूसरे देशों के नीति–निर्माताओं और कूटनीतिज्ञों के सम्बन्ध स्थापित करते है तथा राष्ट्रीय हितों के इच्छित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए समझौता वार्ता चलाते है। कूटनीतिज्ञों की समझौता वार्ताएँ विरोध सुलझाव करने तथा राष्ट्र के भिन्न–भिन्न उद्देश्यों के मेल–मिलाप का प्रभावशाली साधन है। पारस्परिक 'दो' और 'लो' (give and take) समायोजना तथा मेल–मिलाप आदि द्वारा राष्ट्रीय हितों के इच्छित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कूटनीति द्वारा प्रयत्न किया जाता है। उदाहरण के लिए रूस और चीन के खराब सम्बन्धों का लाभ उठाकर अमरीका के राष्ट्रपति निक्सन के समय में चीन से अपने सम्बन्ध बेहतर करके रूस की शक्ति कमजोर कर दी थी और अपनी शक्ति का प्रसार किया तथा यह सिद्ध करने में सफल रहा कि अमरीका साम्यवादी विचारधारा का कट्टर शत्रु नहीं है। जैसे–जैसे युद्धों की लागत बढ़ती जायेगी एवं अन्य शस्त्रों की प्रहारक क्षमता बढ़ती जायेगी वैसे–वैसे युद्ध के प्रति भय बढ़ता जायेगा और कूटनीतिक तरीकों से ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रबन्धन का प्रयास बढ़ता जायेगा।

16.3.12 गठबन्धन तथा सन्धियाँ (Alliances and Treaties) – गठबन्धन तथा सन्धियाँ दो या दो से अधिक देशों द्वारा अपने साझे हितों की प्राप्ति के लिए की जाती है। समझौते या सन्धियों को स्वीकार करने वाले राष्ट्रों का यह कानूनी कर्त्तव्य है कि वे साझे हितों के लिए कार्य करें। कोई भी समझौता इसके सम्बन्धित देशों के उद्देश्य पर निर्भर करता है। ये उद्देश्य सैन्य अथवा आर्थिक हितों से जुड़े हो सकते है। उदाहरण के लिए बढ़ते हुए साम्यवादी संकट के विरूद्ध पूँजीवादी लोकतान्त्रिक राष्ट्रों की सुरक्षा की आवश्यकता ने अनेक सैनिक समझौतों जैसे–NATO, SEATO, CENTO आदि को जन्म दिया। इसी प्रकार समाजवाद को संकट में देखकर साम्यवादी देशों के मध्य WARSAW PACT बना था। दूसरे महायुद्ध के पश्चात् यूरोप के आर्थिक पुनर्निर्माण की आवश्यकता ने यूरोप के साझा बाजार (European Common Market) या यूरोप का आर्थिक समुदाय (European Economic Community) जैसी संस्थाओं को जन्म दिया। भारत ने अपनी आवश्यकतानुसार 1971 में सोवियत संघ के साथ शान्ति, मित्रता तथा सहयोग की सन्धि (Treaty of Peace Friendship and Co-operation) की। इस प्रकार गठबन्धन तथा सन्धियाँ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रबन्धन का महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय साधन है।

16.4 अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रबन्धन में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका

संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना काल से लेकर अब तक कई बार ऐसे अवसर उत्पन्न हुए जो स्थानीय युद्ध या क्षेत्रीय युद्ध विश्व युद्ध में परिवर्तित हो सकते थे, लेकिन संयुक्त राष्ट्र संघ ने सामूहिक सुरक्षा की कार्यवाही द्वारा ऐसे युद्धों को फैलने से रोका। इसने सैनिक कार्यवाही तथा अन्य साधनों, जिनका उल्लेख चार्टर के सातवें अध्याय में किया गया है, का प्रयोग करके विश्व–शांति की स्थापना के लिए कार्यवाही की। वार्तालाप एवं अन्य शांतिपूर्ण साधनों के द्वारा कई जटिल समस्याओं के समाधान के लिए इसने पहल की है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अध्याय–7 की व्यवस्था के अनुसार विश्व–शांति व सुरक्षा पर संकट उत्पन्न होने, शांति भंग होने या विश्व के किसी देश या क्षेत्र में सशस्त्र आक्रमण होने की स्थिति में संयुक्त राष्ट्र संघ शांति एवं व्यवस्था की पुनर्स्थापना के उद्देशय से यदि आवश्यक हो, तो बल प्रयोग करके या प्रतिरोधात्मक उपायों से समाधान कर सकता है।

चार्टर के अनुच्छेद–39 के अनुसार सुरक्षा परिषद इस बात का निर्णय लेती है कि कौन–सी चेष्टाएँ शांति के लिए खतरनाक, शांति भंग करने वाली या आक्रमण की चेष्टाएँ समझी जा सकती है। इस संबंध में सुरक्षा परिषद ही सिफारिश करेगी या निर्णय लेगी कि अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को कायम रखने या फिर से स्थापित करने के लिए क्या किया जाए। अनुच्छेद–40 के अन्तर्गत यह व्यवस्था है कि किसी स्थिति को बिगड़ने से बचाने हेतु सुरक्षा परिषद किसी कार्यवाही का निश्चय करने से पहले विवादित पक्षों को अस्थायी कदम उठाने को कहेगी, जिन्हें वह उचित या आवश्यक मानती हो। इन अस्थायी कदमों से विवादित पक्षों के अधिकारों एवं हैसियत में कोई कमी नही होगी। यदि कोई पक्ष विधिवत ध्यान नहीं देता है तो सुरक्षा परिषद बल प्रयोग के साधनों का प्रयोग करेगी, लेकिन चार्टर में कहीं भी शांति भंग, शांति संकट आदि शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। अतः एक राष्ट्र की दृष्टि से जो आक्रमण होता है, वही दूसरे राष्ट्र की दृष्टि से घरेलू मामले में हस्तक्षेप भी हो सकता है। इस प्रकार के सभी मामलों का निर्णय सदस्यों के स्वीकारात्मक मतों से होता है, जिसमें 5 स्थायी सदस्यों की सहमति अनिवार्य है। फलतः राजनीतिक गुटबन्दी की वजह से सुरक्षा परिषद् अविलंब ऐसे मामलों में निर्णय नहीं ले पाती है।

अनुच्छेद–41 के अनुसार सुरक्षा परिषद अपने निर्णयों के अमल हेतु ऐसी कार्यवाही कर सकती है जिसमें बल प्रयोग की आवश्यकता न हो। वह संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्यों से इस संबंध में कूटनीतिक विच्छेद या आर्थिक प्रतिबन्ध आदि लगाने की माँग कर सकती है। साथ ही समुद्र, डाक–तार या यातायात के अन्य साधनों पर प्रतिबन्ध लगा सकती है।

अनुच्छेद–42 के अन्तर्गत यह उल्लेख है कि यदि अनुच्छेद–41 के अधीन कार्यवाही अपर्याप्त सिद्ध हो तो अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के लिए जल, थल एवं वायु सेनाओं द्वारा आवश्यक कार्यवाही की जा सकती है। इस संदर्भ में नाकेबंदी तथा संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य राष्ट्रों की सेनाओं द्वारा कार्यवाही की जा सकती है। अनुच्छेद–43 के अन्तर्गत सुरक्षा परिषद् यह निर्णय करती है कि उपयुक्त कार्यवाही संघ के कुछ सदस्यों द्वारा की जाए अथवा सभी सदस्यों द्वारा की जाए तथा जो कार्यवाही की जाए वह स्वतंत्र रूप से या प्रत्यक्ष या अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के माध्यम से की जाए। इस संदर्भ में सदस्य राष्ट्रों का यह कर्त्तव्य है कि सुरक्षा परिषद् की माँग पर वह सशस्त्र सेनाएँ तथा अविलम्ब कार्यवाही करने के एिल अन्य सुविधाएँ उपलब्ध कराएँ।

अनुच्छेद–45 में यह बताया गया है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य सामूहिक अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाही के लिए अपनी–अपनी सेना यथाशीघ्र उपलब्ध करायेगें, ताकि संयुक्त राष्ट्र संघ शीघ्रातिशीघ्र सैनिक कार्यवाही कर सके। इस संबंध में यह भी प्रावधान है कि सैनिक कार्यवाही कर सके। इस संबंध में यह भी प्रावधान है कि सैनिक दलों की तैयारी के विषय में संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् अपनी सैनिक स्टाफ समिति की सहायता लेगी। अनुच्छेद–46 के अनुसार स्टाफ समिति सैनिक कार्य के लिए योजना बनाएगी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विश्व–शांति एवं सुरक्षा को बनाए रखने हेतु संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् को संवैधानिक दृष्टिकोण से शक्तिशाली बनाया गया है, लेकिन व्यवहार में यह असफल निकाय सिद्ध हुआ है, क्योंकि प्रक्रियात्मक मामलों को छोड़कर शेष सभी मामलों में निर्णय के लिए संघ की सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों की सहमति अनिवार्य है, लेकिन विश्व के विभिन्न मामलों में विचारधारा एवं राष्ट्रीय हित की वजह से स्थायी सदस्यों में सहमति नहीं बन पाती है जिससे सुरक्षा परिषद् की प्रभावकारी कार्यवाहियों में अवरोध उत्पन्न होता है। स्थायी सदस्यों के बीच एकात्मकता की कमी के कारण सुरक्षा परिषद् अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा की मुख्य जिम्मेदारी को निभाने में असफल रहती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के बाहर शक्तिशाली सामरिक संधियों (NATO, SEATO) आदि ने सुरक्षा परिषद् के सम्मान को कम कर दिया है। ये संधियाँ सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों के बीच एकता भंग एवं सामूहिक सुरक्षा के उपकरण के रूप में विश्वास की कमी का ही प्रत्यक्ष परिणाम है।

किन्तु ढाँचें एवं क्रियाविधि में विभिन्न दोषों के बावजूद यह आज भी विश्व समुदाय की विश्वासपात्र शक्तिशाली संस्था है तथा विश्व–शांति बनाए रखने के लिए न केवल उत्तरदायी है, बल्कि क्रियाशील होकर विश्व में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

16.5 सारांश

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रबन्धन में अनेक तत्वों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही जिनमें विदेश नीति, कूटनीति, सामूहिक सुरक्षा विभिन्न गठबन्धन एवं सन्धियाँ तथा संयुक्त राष्ट्र संघ्रू ने विशेष योगदान दिया।

अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रबन्धन के प्रमुख तत्वों का वर्णन कीजिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रबन्धन में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका का उल्लेख कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का क्षेत्र संक्षेप में बताईए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में शक्ति प्रबन्धन का महत्त्व बताईए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. शक्ति प्रबन्धन का अर्थ बताईए।
2. कूटनीति शक्ति प्रबन्धन का आवश्यक तत्व है। दो तर्क दीजिए।
3. अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता से क्या अभिप्राय है।

इकाई – 17

नवीन वैश्विक (भूमंडलीय) व्यवस्था में भारत

(India in New Global Order)

17.0 उद्देश्य

इस इकाई में नवीन वैश्विक व्यवस्था में भारत की भूमिका का उल्लेख किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :–

- नवीन वैश्विक व्यवस्था में भारत की स्थिति के बारे में जान सकेंगे।
- भारत के विभिन्न क्षेत्रीय संगठनों के साथ सम्बन्धों के बारे में जान सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

भारत विश्व में सबसे बड़ी आबादी वाला दूसरा देश है। इसकी ऐतिहासिक परम्परा की जड़े हजारों वर्ष पुरानी हैं और अनेक निकटवर्ती–संलग्न पड़ौसी राष्ट्र भारतीय क्षेत्र के अन्तर्गत ही अपनी अलग पहचान बनाये रखने का प्रयत्न करते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर आज तक भारत अपने राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर विश्व के सभी देशों के साथ मित्रता एवं सहयोग की नीति अपनाता रहा है, चाहे उन देशों की राजनीतिक एवं आर्थिक प्रणाली कैसी भी क्यों न हो। भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने के प्रयास के तहत विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की सदस्यता को स्वीकार किया है। वह किसी भी ऐसे संगठन का सदस्य बनने को तैयार नहीं है, जिसकी प्रवृत्ति सैनिक हो अर्थात् भारत ने सैन्य गुटों से सदैव अपने को अलग रखा। भारत ने ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों में अपनी सहभागिता की है जो साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद और रंग–भेद के विरूद्ध रहे हैं।

इस प्रकार भारत राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीस हितों मे सामंजस्य बिठाकर स्वतन्त्र विदेश नीति का निर्माण व संचालन कर रहा है।

17.2 नवीन वैश्विक व्यवस्था में भारत

नवीन वैश्विक परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए भारत की विदेश नीति धीरे–धीरे अपनी सीमा से बाहर अपने हितों की तलाश कर रही है। अपनी विशालता और स्थिरता के साथ–साथ भारत अपनी आर्थिक और वैज्ञानिक प्रगति के लिए पहचाना जाने लगा है। एक परमाणु शक्ति सम्पन्न भारत के प्रति विश्व के लगभग सभी विकसित देशों का नजरिया बदल चुका है। वर्ष 1990 के पूर्व का भारत कहीं बहुत ही पीछे छूट चुका है। भारत ने जिस रणनीति और कूटनीति में सम्पूर्ण विश्व के समक्ष जिस प्रकार के विचार रखे हैं वह प्रत्येक देश की सम्प्रभुता और बराबरी को उजागर करता है। विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत की स्वीकृति लगातार बढ़ती जा रही है। अमेरिका के अलावा कई अन्य देश भी अब भारत को एक उभरती हुई महाशक्ति के तौर पर देखने लगे है और भारत की नीतियों–रणनीतियों पर उनकी निगाहें लगी रहती हैं। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भारत की भूमिका या भागीदारी को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है –

17.2.1 भारत और क्षेत्रीय सहयोग संगठन–द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विभिन्न क्षेत्रीय सहयोग संगठनों का निर्माण किया गया जिसका उद्देश्य क्षेत्रीय स्तर पर आर्थिक, सामाजिक और प्रतिरक्षा सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करना है। इन संगठनों में जैसे–दक्षिण–पूर्वी एशियाई संधि संगठन (SEATO), केन्द्रीय संधि संगठन (SENTO), वारसा पैक्ट, बगदाद पैक्ट आदि संगठन अपनी उपयोगिता खो चुके हैं तथा दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (SAARC), अफ्रीका एकता संगठन (OAS) जैसे संगठनों का महत्त्व वर्तमान में बना हुआ है। इनके प्रति भारत की नीति का उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है–

(अ) भारत और दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन–दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (सार्क) आठ देशों (भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, नेपाल, बांग्लादेश, भूटान, मालद्वीप व अफगानिस्तान) का क्षेत्रीय सहयोग संगठन है। इस संगठन में भारत की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। भारत सार्क संगठन का क्षेत्रफल और संसाधनों की दृष्टि से प्रमुख राष्ट्र है। भारत इस संगठन के माध्यम से सम्पूर्ण दक्षिण एशिया क्षेत्र में आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक विकास करके इस क्षेत्र को आत्मनिर्भर बनाना चाहता है। सार्क के अब तक 18 शिखर सम्मेलन हो चुके हैं। 18वाँ शिखर सम्मेलन नवम्बर, 2014 में काठमांडू (नेपाल) में सम्पन्न हुआ। 19वाँ सार्क सम्मेलन 9–10 दिसम्बर पाकिस्तान में इस्लामाबाद में होना था अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया हैं। सितम्बर, 2016 में 'उड़ी' में भारतीय सेना के ठिकाने पर पाक समर्थित आतंकवादियों द्वारा हमले की शर्मनाक घटना के पश्चात् भारत ने इस शिखर सम्मेलन के बहिष्कार की घोषणा की।

(ब) दक्षिण–पूर्व एशियाई राष्ट्रों का संगठन (ASEAN) और भारत–दक्षिण–पूर्व एशियाई राष्ट्रों का संगठन (ASEAN) दस देशों (इण्डोनेशिया, मलेशिया, फिलिपीन्स, सिंगापुर, थाईलैण्ड, ब्रूनोई, कंबोडिया, लाओस, म्यांमार और वियतनाम) का संगठन है। जिसका उद्देश्य दक्षिण–पूर्व एशिया में आर्थिक विकास, सामाजिक प्रगति तथा सांस्कृतिक गतिविधियों को तेज करना है।

आसियान देशों के संगठन में भी भारत की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। सन् 1991 के अंत में भारत को आसियान का प्रभागीय वार्ता भागीदार बना लिया गया है। इससे भारत और आसियान देशों के मध्य सम्बन्धों में एक नई शुरूआत हुई। भारत–आसियान सम्बन्धों के विकास के चलते नवम्बर, 2002 में प्रथम भारत–आसियान शिखर वार्ता हुई। अक्टूबर, 2003 में भारत और आसियान देशों के मध्य सम्बन्धों को विकसित करने की दृष्टि से सीधी विमान सेवाएँ शुरू की गई। इसके अतिरिक्त 10वें आसियान शिखर सम्मेलन 29 नवम्बर, 2004 के दौरान शांति प्रगति तथा साझी समृद्धि नामक 18 सूत्रीय साझेदारी दस्तावेज पर भारत के पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह तथा आसियान देशों के राष्ट्राध्यक्षों ने हस्ताक्षर किये। दोनों पक्षों ने विज्ञान, तकनीकी और खासकर आई.टी. और जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रगति के लिए संयुक्त अनुसंधान और विकास केन्द्र स्थापित करने की जरूरतों पर बल दिया।

भारत की पूर्व की ओर देखो नीति (Lookind East Policy of India)–भारत अपनी विदेश नीति के अन्तर्गत भारतीय प्रायद्वीप के पूर्व में स्थित दक्षिण–पूर्व एवं सुदूरपूर्व एशियाई राष्ट्रों के साथ सम्बन्धों को मधुर एवं विकसित करने का प्रयास कर रहा है। भारत की इस नीति क दायरे में ब्रुनोई, एण्डोनेशिया, सिंगापुर, म्यांमार, मलेशिया, वियतनाम, थाईलैण्ड, कम्बोडिया, फिलिपीन्स, कोरिया, जापान आते हैं। भारत की पूर्व की ओर देखो नीति के अन्तर्गत इन राष्ट्रों के साथ सम्बन्धों को सुधारने का प्रयास किया गया। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए जुलाई, 2004 में भारत और थाईलैण्ड ने मुक्त व्यापार समझौता का मसौदा लागू करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाया। थाईलैण्ड के साथ किया गया यह समझौता एक महत्त्वपूर्ण कदम है, क्योकि थाईलैण्ड एशिया के सबसे महत्त्वाकांक्षी इलाके में भारत को जोड़ता है।

इसके अतिरिक्त सिंगापुर के साथ व्यापक आर्थिक सहयोग समझौता (CECA) किया। इस समझौते के तहत सरकार ने सिंगापुर के उत्पादों और सेवाओं के लिए भारत के दरवाजे खोलने का निर्णया ले लिया है। इस प्रकार भारत के लिए सिंगापुर गैटवे–टू–पूर्वी एशिया क्षेत्र के अन्य देशों के साथ इन देशों को समन्वित करने में मदद देगा और विनिर्माण और सेवाओं की योग्यता और प्रतिस्पर्धात्मकता में सुधार लायेगा।

(स) यूरोपीय संघ एवं भारत–यूरोपीय संघ जिसका अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के साथ–साथ अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में भी महत्त्व बढ़ रहा है। धीरे–धीरे वह अमरीका के वैकल्पिक ध्रुव के रूप में उभरने की क्षमता हासिल कर रहा है।

यूरोपीय संघ मे भी भारत की महत्त्वपूर्ण भागीदारी रही है। यूरोपीय संघ से सर्वप्रथम विकासशील देशों में भारत ने राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित किये। आज भारत–यूरोपीय संघ सम्बन्धों मे इतनी गहराई हो गई है कि भारतीय वाणिज्यिक क्षेत्र में यूरोपीयन संघ की भागीदारी सर्वाधिक हो गई है। भारतीय ग्रामीण क्षेत्रीय निर्धनता निवारण, पर्यावरण पुनर्वास एवं रक्षा सम्बन्धी परियोजनाओं में यूरोपीय संघ आज सक्रिय सहयोग प्रदान कर रहा है। वर्ष 2005 में यूरोपीय संघ के हुए विस्तार ने भारत से इसके सम्बन्धों को और मजबूत किया है, दुनिया के दूसरे बड़े निर्यातक संघ यूरोपीय संघ से अपनी व्यापारिक समृद्धि को बरकरार रखने हेतु अपने व्यापार को मुक्त बाजार क्षेत्र तक ले जाना भारत के सामने एक प्रमुख उद्देश्य है।

13वाँ यूरोपीय संघ शिखर सम्मेलन ब्रसेल्स में 30 मार्च, 2016 को आयोजित किया गया। यूरोपीय संघ का प्रतिनिधित्व यूरोपीय परिषद् के अध्यक्ष **डोनाल्ड टसक** और यूरोपीय आयोग के अध्यक्ष **जॉन क्लाड जंकर** ने किया। भारत गणराज्य का प्रतिनिधित्व प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने किया। सम्मेलन में व्यापार, विनिमय, ऊर्जा, पर्यावरण संरक्षण, विदेशी शरणार्थियों की समस्या, सुरक्षा नीति आदि विषयों पर गहन चर्चा की गई।

(द) अफ्रीकी संघ एवं भारत (African Unioin and India)–अफ्रीका के 54 में से 53 देशों ने जुलाई, 2002 में अफ्रीकी यूनियन (संघ) की विधिवत् स्थापना यूरोपीय संघ जैसे क्षेत्रीय संगठनों की सफलता से प्रोत्साहित होकर की। अफ्रीकी संघ ने अफ्रीका में गृह युद्ध को समाप्त करने, जाति व रंग–भेद की नीति तथा उपनिवेशवाद को समाप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

अफ्रीकी संघ में भी भारत की अग्रणी भूमिका रही है। भारत ने हर समय अफ्रीकी राज्यों की स्वतंत्रता का समर्थन किया तथा अफ्रीका में रंगभेद की नीति और उपनिवेशवाद की आलोचना की। इसके अतिरिक्त अफ्रीकी संघ भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति से प्रभावित रहा है। अफ्रीकी राज्यों की स्वतंत्रता से गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सदस्यों की संख्या में वृद्धि हुई है तथा आन्दोलन सशक्त बना है। अफ्रीकी महाद्वीप के देशों ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन क उद्देश्यों में अपना दृढ़ विश्वास व्यक्त किया है तथा इसका सदैव समर्थन किया है।

भारत अफ्रीका शिखर सम्मेलन (2015)–भारत अफ्रीका मंच का शिखर सम्मेलन अक्टूबर, 2015 में नई दिल्ली में आयोजित किया गया। इसमें 54 देशों ने भाग लिया। सम्मेलन में भारत अफ्रीका के मध्य व्यापार बढ़ाने के लिए 10 करोड़ डॉलर का भारत–अफ्रीका विकास कोष स्थापित करने पर बल दिया। इसके अतिरिक्त नशीली दवाओं व मानव तस्करी सहित सीमा पारीय अपराधों के विरूद्ध संघर्ष के लिए मिलकर काम करने की प्रतिबद्धता पर विचार किया गया।

17.2.2 भारत और संयुक्त राष्ट्र संघ–संयुक्त राष्ट्र संघ का संस्थापक सदस्य भारत, संघ के सिद्धान्तों, उद्देश्यों ओर कार्यप्रणाली के प्रति आरम्भ से ही निष्पादन रहा है। भारत ने दो–दो वर्ष के कई कार्यकाल सुरक्षा परिषद् क अस्थायी

सदस्य के रूप में व्यतीत किये हैं। महासभा के 8वें अधिवेशन की अध्यक्षता हेतु भारतीय महिला विजय लक्ष्मी पण्डित को चुना जाना संघ में भारत की महत्ता को पुष्ट करता है। भारत संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग का सदस्य रहा है एवं नस्लवाद, भेदभाव का संघ के नियमों के अनुसार विरोध भी किया। भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा संचालित शांति स्थापना कार्यों का समर्थन किया एवं आवश्यकतानुसार सहयोग भी दिया। इसके अतिरिक्त शस्त्रीकरण, उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का विरोध किया है।

संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् का विस्तार एवं भारत–3 दिसम्बर, 2004 को संयुक्त राष्ट्र संघ के पूर्व महासचिव कोफी अन्नान को 16 सदस्यीय समिति ने सुरक्षा परिषद् के विस्तार के संदर्भ में दो विकल्प प्रस्तुत किये–(i) स्थायी सदस्यों की संख्या में 6 की वृद्धि करने की सिफारिश इसके अन्तर्गत अफ्रीका, एशिया और प्रशांत, यूरोप व अमरीका से दो–दो सदस्य शामिल किए जाएँ। अस्थ्यायी सदस्यों की संख्या में तीन की वृद्धि की जाये। (ii) स्थायी सदस्यों की संख्या पूर्ववत् 5 बनी रहे। इसके साथ–साथ आठ सदस्यों की एक नई श्रेणी बनाने का प्रस्ताव दिया हैं। इन सदस्यों का कार्यकाल चार वर्ष का होगा। अस्थायी सदस्यों की संख्या (वर्तमान) में मात्र एक की वृद्धि करने की सिफरिश की है। संयुक्त राष्ट्र की स्थायी सदस्यता के लिए कई देशों ने अपनी दावेदारी प्रस्तुत की है। इसी उद्देश्य को लेकर भारत, जापान, जर्मनी और ब्राजील ने मिलकर G-4 नामक एक समूह का निर्माण किया। भारत संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् की स्थायी सदस्यता का सर्वाधिक उपयुक्त पात्र है। भारत ने 21 सितम्बर, 2004 को अपना दावा प्रस्तुत किया। विश्व शांति में भारत की अग्रणी भूमिका, भारत की विशाल जनसंख्या एवं नीतिगत स्पष्टता, सुदृढ़ अर्थव्यवस्था, विश्व का सर्वाधिक विशाल लोकतन्त्र होने जैसी विलक्षण प्रतिभा के आधार पर भारत सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य बनने का प्रमुख दावेदार है।

17.2.3 भारत एवं शेष विश्व–भारत के शेष विश्व के प्रमुख राष्ट्रों के साथ सम्बन्धों का अध्ययन निम्न प्रकार किया जा सकता है–

(i) भारत–रूस–चीन त्रिगुट–सोवियत रूस का एक महाशक्ति के रूप में क्षरण और बढ़ते अमरीकी वर्चस्व के कारण विश्व समुदाय विशेषतः रूस एवं विकासशील देशों की छटपटाहट को विशेष रूप से अनुभव किया जा सकता है। इराक समस्या, अफगान आतंकवादियों से निपटने की अमरीकी रणनीति, कश्मीर मुद्दों आदि वैश्विक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में अमरीकी भूमिका और हठवादिता से उत्पन्न सभी सम्बद्ध देशों की नाराजगी के कारण वे सभी वैकल्पिक शक्ति स्त्रोतों के विषय में सोचने को बाध्य हुए हैं। रूस द्वारा प्रस्तावित भारत–रूस–चीन त्रिगुट इसी शक्ति केन्द्र की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है जो कार्यान्वित होने पर विश्व राजनीति की दिशा बदल सकता है।

प्रस्तावित त्रिगुट में भारत–रूस एवं चीन रूस–चीन परम्परागत मित्र रहे हैं परन्तु भारत–चीन सम्बन्ध उतार–चढ़ावों, प्रतिद्वन्द्विता और सन्देह से भरे हुए हैं। लेकिन इन दोनों देशों के सम्बन्धों में अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य को देखते काफी परिवर्तन आया है। अप्रेल, 2005 में चीनी प्रधानमंत्री भारत की यात्रा पर आये तथा दोनों देशों के मध्य द्विपक्षीय सम्बन्ध को मजबूत करने तथा सीमा विवाद को आपसी बातचीत द्वारा हल करने पर बल दिया। इसके साथ ही **जनवरी, 2006** में चीन में भारत और चीन के मध्य सम्बन्धों को मजबूत करने के उद्देश्य से दूसरे दौर की वार्ताएँ शुरू हुई जिसमें क्षेत्रीय, द्विपक्षीय और संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में भारत की स्थायी सदस्यता के संदर्भ में विचार–विमर्श हुआ लेकिन भारत और चीन के बीच बढ़ते सीमा विवाद तथा चीन और पाकिस्तान की बढ़ती नजदीकियों के कारण इस त्रिगुट की सफलताएँ सन्देह के घेरे में हैं।

(ii) जापान–भारत आर्थिक सहयोग की नीति–भारत और जापान के मध्य द्विपक्षीय सम्बन्ध बहुत प्रगाढ़ रहे हैं। जापान वर्तमान विश्व की सबसे विकसित अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। यद्यपि जापान पूर्व में विश्व की दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था रहा है लेकिन सूचना प्रौद्योगिकी तथा इंटरनेट क्रांति से प्रभावित पश्चिमी देशों के समरूप होना जापान की प्राथमिकता है।

भारत द्वारा 1998 में किये गये परमाणु परिक्षणों के बाद भारत–जापान सम्बन्धों में थोड़ी दूरियाँ बढ़ी लेकिन अगस्त, 2000 में जापान के प्रधानमंत्री योशिरो मोरी भारत की यात्रा पर आये तथा दोनों देशों के मध्य द्विपक्षीय सम्बन्धों को मजबूत करने का प्रयास किया। इन समबन्धों की स्थापना के पीछे निम्नलिखित कारण रहे हैं–(i) पूर्व एशिया के संदर्भ में चीन द्वारा ताईवान के विरूद्ध शक्ति प्रयोग किया जाने तथा उत्तरी कोरिया की सहायता से चीन की परमाणु हथियार विस्तार नीति का विरोध (ii) जापान की सुरक्षा नीतियों पर अत्यधिक घरेलू दबाव (iii) दक्षिण एशिया के संदर्भ में भारत–अमेरिका संबंधों में हो रहे सुधार के प्रति जापान का आकर्षण (iv) भारत में सूचना प्रौद्योगिकी के अत्यधिक विकास के फलस्वरूप जापानी निवेश की सम्भावनाओं में वृद्धि (v) करगिल में भारत की विजय तथा परमाणु परीक्षणों द्वारा भारत का शक्ति प्रदर्शन।

उपर्युक्त कारणों का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट होता है कि चीन द्वारा विशिष्ट भूमिका निभाए जाने के कारण, भारत एवं जापान के पड़ोसी क्षेत्रों विशेष रूप से पाकिस्तान तथा उत्तरी कोरिया में परमाणु हथियारों में अप्रत्याक्षित वृद्धि

हुई है जिसके फलस्वरूप भारत–जापान संबंधों की प्रगाढ़ता की संभावना में बढ़ोतरी हुई है। इसके अतिरिक्त 28 से 30 अप्रैल, 2005 को जापान के प्रधानमंत्री **जूनिचिरो काईजूमी** ने भारत की यात्रा की, जिसमें दोनों देशों के बीच सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने पर बल दिया गया। इसके साथ ही जापान के प्रधानमंत्री ने आश्वासन दिया कि वह संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में भारत की स्थायी सदस्यता हेतु पाकिस्तान से बात करने तथा भारत ने जापान क दावे के समर्थन के लिए चीन से बात करने का वादा किया है।

जापान के प्रधानमंत्री की यात्रा–सितम्बर, 2017 में जापान के प्रधानमंत्री **शिंजो आबे** भारत यात्रा पर आये यात्रा के दौरान दोनों देशों के मध्य निवेश बढ़ाने, समुद्री सुरक्षा, परिवहन सेवा, पर्यावरण सुरक्षा जैसे मुद्दोंपर चर्चा हुई। इसके साथ ही अफ्रीकी कोरीडोर क्षेत्र में चीन के प्रभाव को कम करने जैसे गम्भीर मुद्दों पर आपसी विचार–विमर्श हुआ।

(iii) भारत एवं फ्रांस–फ्रांस में आर्थिक सुधारों का दूसरा दौर शुरू हो चुका है। संसार का सबसे बड़ा मध्यम वर्ग भारत में रहता है। आधुनिक उपभोक्ता वस्तुओं का विशाल भण्डार पश्चिमी देशों की प्रतिस्पर्द्धा का मुख्य कारण है अतः ब्रिटेन, जर्मनी, जापान एवं अमरीका की तरह फ्रांस भी भारत से मधुर राजनीतिक एवं व्यापारिक रिश्ते कायम करना चाहता है। दूसरा कारण रक्षा सौदा का है, जिसका भारत एक बहुत बड़ा खरीददार है। अपनी रक्षा जरूरतों के लिए भारत सोवियत संघ पर निर्भर था। लेकिन सोवियत संघ के विघटन के बाद लगभग प्रत्येक विकसित देश भारत को सामरिक सामानों का निर्यात कर मुद्रा अर्जित करना चाहता है। फ्रांस मिराज–2000 विमानों की खरीद का सौदा एवं 66 प्रशिक्षण विमानों एवं अल्फा जेट विमानों का सौदा भी भारत से करना चाहता है।

(iv) भारत एवं इजराइल–भारत एवं इजराइल के मध्य सम्बन्धों में सुधार 9 सितम्बर, 1993 को ओस्ला समझौते के आधार पर हुआ। भारत और इजराइल के मध्य बढ़ते सम्बन्धों को वर्तमान विश्व व्यवस्था में इजराइल–भारत–अमरीकी धुरी कहा जा रहा है। भारत और इजराइल के बीच मित्रता समय–दर–समय बढ़ती जा रही है, वहीं दूसरी और इजराइल के परम मित्र अमरीका की मित्रता दिन–प्रति–दिन भारत से बढ़ती जा रही है। इसके अलावा तीनों ही देश आतंकवाद से लगभग समान रूप से प्रभावित हैं। इन्हीं स्थितियों में विशेषकर भारत को प्रतिरक्षा व अन्य जरूरतों की पूर्ति हेतु रूस के बाद इजराइल से संबंध बढ़ाने को तत्पर होना पड़ा। इजराइल सुरक्षा व तकनीकी के मामले में काफी सम्पन्न देश है। उसकी आर्थिक स्थिति काफी सबल है जिससे भारत को व्यापारिक रिश्ते विकसित करने में फायदा होगा।

प्रधानमंत्री मोदी की इजराइल यात्रा–जुलाई, 2017 में मादी ने इजराइल यात्रा की। यात्रा के दौरान आपसी हित के सात समझौतों पर हस्ताक्षर हुए जिनमें तकनीकी एवं शोध, पेयजल संरक्षण, ऊर्जा एवं जल संसाधन, कृषि क्षेत्र में सहयोग, अंतरिक्ष परमाणु ऊर्जा संरक्षण आदि क्षेत्रों में विकास हेतु समझौते हुए।

(v) भारत और ग्रेट ब्रिटेन–ब्रिटेन ने 1998 के परमाणु परीक्षणों के लिए भारत की आलोचना अवश्य की थी परन्तु उसने भारत के विरूद्ध प्रतिबंध लगाने से इन्कार कर दिया। ब्रिटेन की विदेश मंत्री रोबिन कुक, राष्ट्रपति बिल क्लिंटन की यात्रा के कुछ ही समय बाद भारत आये कुक ने अपनी यात्रा के दौरान पाकिस्तान द्वारा भारतीय सीमा पर जा रही आतंकवादी गतिविधियों की आलोचना की। कुक ने सुझाव दिया कि भारत–पाक नियन्त्रण रेखा पर यथा–स्थिति बनाए रखी जाए। सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्यता के भारत के दावे का स्पष्ट समर्थन न करते हुए भी ब्रिटिश सरकार ने कहा कि भारत इस सीट के लिए स्वाभाविक दावेदार है।

(vi) भारत एवं अफगानिस्तान–अफगानिस्तान मध्य एशिया का महत्त्वपूर्ण देश है। भारतीय साहित्य में इसका उल्लेख गांधार देश के रूप में आया है। समय–समय पर यह भारतीय साम्राज्य में शामिल और बाहर होता रहा है। ब्रिटिश काल में यह भारत से अलग कर दिया गया। वर्ष 2001 में अफगानिस्तान से तालिबान की सत्ता की समाप्ति के पश्चात् भारत के रूख में परिवर्तन महसूस किया गया। भारत सरकार ने अफगानिस्तान को लेकर नई नीति निर्धारित की जो परस्पर सहयोग पर आधारित है। भारत विश्व के अन्य देशों के साथ मिलकर अफगानिस्तान के पुनर्निर्माण में योगदान कर रहा है। साथ ही तकनीकी उन्नयन में भी सहयोग कर रहा है। 23–25 जनवरी, 2005 को अफगानिस्तान के राष्ट्रपति हामिद करजई भारत की यात्रा पर आये तथा विभिन्न द्विपक्षीय मुद्दों पर दोनों देशों के राष्ट्राध्यक्षों में बातचीत हुई। भारत ने अफगानिस्तान के पुनर्निर्माण में सहायता की। प्रतिबद्धता को दोहराने के साथ–साथ साझा महत्त्व के द्विपक्षीय क्षेत्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के मुद्दों पर चर्चा की। इस अवसर पर नागरिक उड्डयन तथा मीडिया व सूचना के क्षेत्रों में पारस्परिक सहयोग के समझौतों पर हस्ताक्षर किये गये।

सितम्बर, 2016 अफगानिस्तान के राष्ट्रपति मोहम्मद अशरफ गनी ने भारत की यात्रा की। यात्रा के दौरान द्विपक्षीय व्यापार, रक्षा व सुरक्षा मामलों के अतिरिक्त अफगानिस्तान में बुनियादी ढ़ांचे को मजबूत करने के लिए विशेष रूप से चर्चा की गई है। अफगानिस्तान में शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, कौशल विकास, महिला सशक्तिकरण, ऊर्जा व लोकतान्त्रिक संस्थाओं की मजबूती जैसे क्षेत्रों में कैपेसिटी एण्ड कैपेबिलिटी बिल्डिंग के लिए एक अरब डॉलर की मदद की घोषणा प्रधानमंत्री मोदी ने की। इसके अतिरिक्त व्यापार, पारगमन तथा आतंकवाद को समाप्त करने जैसे मुद्दों पर गम्भीर चर्चा हुई।

17.3 सारांश

इस प्रकार उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारत की अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में भागीदारी निरन्तर बढ़ती जा रही है। चाहे संयुक्त राष्ट्र संघ हो या अन्य क्षेत्रीय और आर्थिक सहयोग संगठन, सभी में भारत निर्णायक भूमिका अदा कर रहा है और इस भागीदारी को और सुनिश्चित करने हेतु भारत का संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् जैसी संस्था का स्थायी सदस्य बनना अनिवार्य है।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत के शेष विश्व के प्रमुख राष्ट्रों के साथ सम्बन्धों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. बदलते वैश्विक में परिदृश्य भारत की भूमिका का उल्लेख कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. भारत की 'पूर्व की ओर देखो' नीति क्या हैं?
2. यूरोपीय संघ के साथ भारत के सम्बन्धों को संक्षेप में समझाईए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. आसीयान (ASEAN) का पूरा नाम बताईए।
2. ओएस (OAS) क्या हैं?

इकाई – 18

आत्म निर्णय का अधिकार

(Right to Self Determination)

18.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आत्म निर्णय के अधिकार का अर्थ, संयुक्त राष्ट्र संघ और आत्म निर्णय का अधिकार और उपनिवेश उन्मूलन में आत्म निर्णय के अधिकार की भूमिका का वर्णन किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आपः

- आत्म निर्णय का अधिकार का अर्थ जान सकेगें।
- संयुक्त राष्ट्र संघ में आत्म निर्णय के अधिकार की जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- उपनिवेशवाद के उन्मूलन में आत्म निर्णय के अधिकार की भूमिका को समझ सकेगें।

18.1 प्रस्तावना

आत्म निर्णय के अधिकार का संरक्षण का अधिकार सिविल और राजनैतिक अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 1 में प्रदान किया गया है। इसी प्रकार का उपबंध आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद 1 में भी किया गया है। दोनों अनुच्छेदों के उपबन्ध एक समान है। अनुच्छेद 1 घोषणा करता है।

''सभी लोगों को आत्म निर्णय का अधिकार है। उस अधिकार के परिणामस्वरूप वे स्तंभ रूप से अपनी राजनैतिक प्रास्थिति का निर्धारण करेंगे तथा अपने आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करेंगे।''

आत्म निर्णय के अधिकार में राजनीतिक आत्म निर्णय और आर्थिक आत्म निर्णय सम्मिलित है। इसका अर्थ है कि लोगों को अपनी राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभुता का अधिकार है। इसके बहुत अर्थ लगाए जाते है। ऐतिहासिक संदर्भ में इसका अर्थ था 'एक राज्य के भीतर लोगों का अपनी सरकार चुनने का अधिकार। फ्रांसीसी क्रांति द्वारा प्रख्यापित प्रभुता की लोकप्रिय धारणा से इतिहास जुड़ा हुआ है, इसका तात्पर्य है कि एक शासक लोगों पर बिना उनकी सम्मति के शासन नहीं कर सकता या ''सरकार लोगों की इच्छा पर आधारित होनी चाहिए।'' अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन का यह नारा 'लोगों की सरकार, लोगों के लिए सरकार और लोगों द्वारा सरकार' लोकतांत्रिक विश्व में बहुत बड़े स्तर पर लोकप्रिय रहा है और अब भी है। आत्म निर्णय का अधिकार एक सामूहिक अधिकार है। जम्मू–कश्मीर के मुद्दे पर भारत ने आत्म निर्णय के अधिकार को अंगीकार नहीं किया है।

राष्ट्र–राज्य सिद्धांत के अन्तर्गत आत्मनिर्णय का सिद्धांत एक प्रमुख स्थान रखता है। इस सिद्धांत ने अनेक राष्ट्रों को जन्म दिया। 1815 ई. के वियना काँग्रेस और 1818 ई. की वरसाइल्स की संधि के मूलभूत सिद्धांत के रूप में इस सिद्धांत ने अनेक राष्ट्रीय राज्यों का निर्माण किया। यथा–ग्रीस, बेल्जियम, सर्बिया, आस्ट्रिया, हंगरी आदि।

इस सिद्धांत के समर्थन में जे. एस. मिल का कहना है कि स्वतंत्र संस्थाओं के लिए यह एक आवश्यक शर्त है कि शासकों की सीमाएँ राष्ट्रों की सीमाओं के साथ समावृत हों। ऐसे देश में, जिसमें कई राष्ट्रीयताओं की जनता रहती हों, स्वतंत्र संस्थाओं का होना असंभव सा ही है। इस सिद्धांत के समर्थन का प्रमुख आधार यह है कि अगर हर राष्ट्रीयता को आत्मनिर्णय का अधिकार दिया जाए तो हर जगह स्वतंत्रता का राज्य हो जाएगा और साम्राज्यवाद तथा एक राष्ट्रीयता द्वारा दूसरी राष्ट्रीयता को अधीनस्थ बनाने की समस्या ही दूर हो जाएगी। इस सिद्धांत का आधार जनतंत्रवाद है।

आत्म निर्णय और राष्ट्रवाद आत्मनिर्णय के अधिकार का सम्बन्ध प्रत्येक राष्ट्र को अपनी स्वतन्त्रता के विषय में निर्णय लेने के अधिकार से है। कोई राष्ट्र अपनी इच्छा के विरूद्ध दूसरे राष्ट्र के अधीन नहीं रह सकता है। वह अपनी इच्छानुसार अपने राजनीतिक भाग्य का निर्धारण कर सकता है। साथ ही राष्ट्रवाद एक ऐसी धारणा है जो एक राज्य में रहने वाले लोगों में एकता स्थापित करती है। एक रचनात्मक तथा प्रभावशाली शक्ति भी है।

व्यापक अर्थो में राष्ट्रवाद एक राज्य में रहने वाले लोगों को एक सूत्र में बाँधने का माध्यम है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से राष्ट्रवाद का उदय यूरोप में राष्ट्र–राज्यों के निर्माण के दौरान हुआ। 19वीं और 20वीं शताब्दी के पूवार्द्ध में जर्मनी के एकीकरण, हैप्सवर्ग और ओटोमन साम्राज्य के विघटन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा एशिया और अफ्रीका की राजनीतिक जाग्रति में प्रभावशाली शक्ति का काम किया। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में राष्ट्रवाद का उदारवाद, लोकतंत्र तथा संवैधानिक और नागरिक स्वतंत्रता के साथ जोड़ा गया। बाद में इस विचारधारा ने आक्रामक रूप धारण कर लिया और यह सैनिक और व्यापारिक प्रतिस्पर्धा द्वारा एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र से श्रेष्ठ सिद्ध करने के प्रयत्नों तथा साम्राज्यवाद का प्रतीक बन गई। 20वीं शताब्दी में यह फासीवाद तथा अन्य सर्वाधिकारवादी आंदोलनों के अनिवार्य तत्त्व के रूप में उभरा और उपनिवेशवाद के शिकार तृतीय विश्व के लोगों के लिए राष्ट्रवाद एक विद्रोही शक्ति के रूप में अभिव्यक्त हुआ।

प्रथम विश्व–युद्ध के बाद न्याययुक्त विश्व बनाने हेतु अमेरिका राष्ट्रपति वुडरों विल्सन ने आत्मनिर्णय के सिद्धांत की कल्पना पेश की। उनका मानना था कि केवल औपनिवेशिक शक्तियों के हितों का ध्यान ही नहीं रखा जाना चाहिए, अपितु शासित प्रजा की भावनाओं एवं उनके हितों को ध्यान में रखा जाना चाहिए और उनकी राजनीतिक स्वतंत्रता तथा प्रादेशिक अखंडता को संरक्षित रखने का आश्वासन दिया जाना चाहिए। उन्होंने मध्य यूरोप और पूर्वी यूरोप की जातियों (या राष्ट्रिक समूहों) की विदेशी आधिपत्य से मुक्ति को उचित ठहराया था। विचार के रूप में आत्मनिर्णय का सिद्धांत न केवल साम्राज्य की पूर्व स्थिति का विरोध करता था, बल्कि सामान्य रूप से यह हर साम्राज्यवाद का विरोधी था। फलतः इस सिद्धांत के क्रियान्वयन से कई समुदायों ने उस समय स्वतंत्रता प्राप्त कर ली और राष्ट्रीयता के आधार पर अनेक राष्ट्रों का गठन हुआ।

18.2 संयुक्त राष्ट्र संघ और आत्म निर्णय का अधिकार

सयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के उद्देश्यों में एक उद्देश्य जातियों के समान अधिकारों एवं आत्मनिर्णय के आधार पर राष्ट्रों के मध्य मैत्रीपूर्ण संबन्धों का विकास करना है। चार्टर के अध्याय ग्यारह, बारह और तेरह के अन्तर्गत इसे मान्यता प्रदान की गई और सभी जनता के आत्मनिर्णय के अधिकार की विस्तृत व्याख्या की गई है। विदेशी शासन शोषण या आधिपत्य के अधीन होना आत्मनिर्णय के सिद्धांत के प्रतिकूल घोषित किया गया है।

बाह्य रूप में आत्मनिर्णय के सिद्धांत को तीन प्रकार से लागू किया जा सकता है।

1. स्वतंत्र संप्रभुता संपन्न राज्य की स्थापना करके।
2. किसी स्वतंत्र राज्य में सम्मेलन अथवा सहभागी होने से।
3. स्वेच्छा से निर्धारित अन्य कोई राजनीतिक स्थिति ग्रहण करके।

इस अधिकार को सार्थक बनाने के लिए यह कहा गया कि प्रत्येक राष्ट्र का कर्त्तव्य है कि इस अधिकार का आदर करें, सम्बन्धित जन समुदायों की स्वतन्त्रता पूर्वक अभिव्यक्त इच्छा का आदर करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के उपनिवेशवाद का अन्त करने के लिए किए गए प्रयासों में सहायता करें, जनता को आत्मनिर्णय स्वतंत्रता एवं समानता तथा स्वाधीनता प्राप्त करने के बलात् वंचित न करे और चार्टर की व्यवस्था के अनुरूप संयुक्त अथवा अलग कार्यवाही करके जनता के आत्मनिर्णय के अधिकार की प्राप्ति में सहायता करे। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति को अपने विरूद्ध किए गए बलात् उपायों के विरूद्ध चार्टर के सिद्धांतों के अनुकूल सहायता माँगने एवं पाने का अधिकार है, लेकिन इन अधिकारों का प्रयोग उस राज्य की प्रादेशिक अखंडता अथवा राजनीतिक एकता भंग करने के लिए नहीं किया जा सकता, जिसकी सरकार प्रदेश में रहने वाली समस्त जनता का बिना जाति, रंग या धर्म का भेदभाव किए प्रतिनिधित्व करती हैं

उपनिवेशवाद का आज कोई समर्थन नहीं करता और वह सामान्य रूप से निंदनीय है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी अपने न्यास परिषद् के माध्यम से विभिन्न उपनिवेश के निवासियों के आर्थिक सामाजिक कल्याण के लिए महत्त्वपूर्ण प्रयास किए है और उन्हें स्वशासन एवं स्वतंत्र राजनीतिक संस्थाओं के विकास के लिए प्रेरित करके अपने दायित्व का निर्वाह किया है।

18.3 बाह्य आत्मनिर्णय और उपनिवेशवाद का उन्मूलन

प्रथम विश्व–युद्ध के बाद अमेरिकी राष्ट्रपति वुडरो विल्सन की 14–सूत्री माँगों में उपनिवेशवाद खत्म करने के प्रावधान के बावजूद शांति स्थापित करने का प्रयास सफल नहीं हुआ। इन सूत्रों का खुलेआम उल्लंघन हुआ है। राष्ट्रसंघ के विधान में भी केवल यह कहा गया कि सदस्य राष्ट्र अपने नियंत्रण के अधीन उपनिवेशों में न्याययुक्त व्यवहार स्थापित करने एवं सुरक्षा प्रबन्ध संचालित करने के लिए सहमत हुए है। वस्तुतः यह एक प्रकार का विश्वासघात था। युद्ध के दौरान यह कहा गया था कि युद्ध में सफलता के बाद उन्हें पारितोषितक के रूप में कुछ दिया जाएगा, जिससे विभिन्न उपनिवेशों की जनता ने अपने उपनिवेशी मालिकों को विशेष सहायता दी। उन्हें आशा थी कि पूर्ण स्वराज्य भले ही न मिले, लेकिन कुछ स्वायत्तता अवश्य मिल जाएगी। किन्तु उनकी आशाओं पर कुठाराघात हुआ, जिससे विभिन्न उपनिवेशों में असंतोष के कारण आंदोलन प्रारम्भ हुए।

उपनिवेशों की जनता राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक दासता के प्रतिरोध में स्वाधीनता की माँग करने लगी। वे समाज की सामाजिक, आर्थिक सरंचना में परिवर्तन हेतु शोषण पर आधारित विदेशी शासन को खत्म करना चाहते थे। द्वितीय विश्व–युद्ध के दौरान अटलांटिक चार्टर से उनकी अभिलाषा में वृद्धि हुई, क्योंकि अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट व ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा को बनाए रखने के लिए संयुक्त रूप से अटलांटिक चार्टर की घोषणा की और इसके अंतर्गत ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल और अमेरिकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने विश्व के राष्ट्रों को आश्वासन दिया कि वे विश्व के सभी राष्ट्रों को उनकी प्रभुसत्ता की रक्षा की गारंटी देते है तथा हम विश्व में ऐसी स्थितियों का निमार्ण करेंग जो न्याययुक्त हो। उन्होंने कहा कि हम ऐसे क्षेत्रीय परिवर्तन नहीं चाहते, जो उसे क्षेत्र की जनता द्वारा स्वतंत्रतापूर्वक अभिव्यक्त की गई इच्छा के अनुसार न हो, हम प्रत्येक राष्ट्र के, अपनी सरकार, जिसके अन्तर्गत वे रहेंगे, के रूप में चुनने के अधिकार का सम्मान करते है।

18.4 आत्म निर्णय का अधिकार और एशिया एवं अफ्रीका में उपनिवेशवाद का उन्मूलन

आत्मनिर्णय के सिद्धांत को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में अनेक प्रस्तावों, गुट–निपेक्ष देशों के सम्मेलनों तथा क्षेत्रीय संगठनों के संविधान में दोहराया गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के प्रस्ताव इस संबंध में उल्लेखनीय है, जिससे उपनिवेशवाद के उन्मूलन में प्रगति हुई। दिसम्बर, 1960 में महासभा द्वारा पारित प्रस्ताव को औपनिवेशिक प्रदेशों एवं वहाँ की जनता को स्वतंत्रता प्रदान करने वाला प्रस्ताव कहा जाता है, क्योंकि इस प्रस्ताव में औपनिवेशिक देशों एवं जनता को स्वतंत्रता प्रदान करने के विषय में घोषित किया गया है कि सारी जनता को आत्मनिर्णय का अधिकार है।

इसके बाद 1966 में भी आत्मनिणर्य के अधिकार के विषय में महासभा द्वारा प्रस्ताव पारित किया गया। शासक देशों से आग्रह किया गया कि वे शीघ्र उपनिवेशों को स्वतंत्रता प्रदान कर दें। फिर अक्टूबर, 1970 में राज्यों के संबंधों में विधि के सिद्धांतों के घोषणापत्र में जनता के आत्मनिर्णय के अधिकार को दोहराया गया।

इसके अतिरिक्त गुट–निरपेक्ष आंदोलन की स्थापना के समय से ही उपनिवेश्वाद और साम्राज्यवाद–विरोधी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एवं विभिन्न प्रदेशों में रह रही समग्र जनता का जाति रंग या धर्म एवं भेदभाव समाप्त करने के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किए गए। इससे उपनिवेशवाद के उन्मूलन की प्रक्रिया आरंभ हुई।

18.5 प्रजातीय असमानता और आत्मनिर्णय का अधिकार

आत्मनिर्णय के अधिकार के अन्तर्गत स्वतन्त्रता समानता के साथ–साथ प्रजातीय समानता को भी विश्व के विभिन्न क्षेत्रों विशेषकर दक्षिण अफ्रीका की स्थिति देखकर महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया था। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने इस संदर्भ में बार–बार रंगभेद की नीति की आलोचना की और इस संबंध में निदा प्रस्ताव पारित किया। बाद में इस संदर्भ में राजनयिक, संचार संबंध समाप्त करने एवं निर्यात बहिष्कार की घोषणा की और सुरक्षा परिषद् से कार्यवाही करने को कहा। संयुक्त राष्ट्र संघ के अतिरिक्त गुट–निरपेक्ष आंदोलन और राष्ट्रमंडल ने भी प्रजातीय समानता के विरूद्ध कदम उठाने की माँग की। विश्व जनमत की इच्छा का सम्मान करते हुए राजनीतिक एवं आर्थिक प्रतिबंध लगाए। अफ्रीकी नेशनल काँग्रेस भी प्रतिरोध में तेजी लायी, जिससे सरकार अपने सिद्धांत से हटी और एक व्यक्ति एक वोट के सिद्धांत पर लोकतंत्र की मान्यता बहाल हुई।

दक्षिण अफ्रीका जैसी स्थिति रोडेशिया (जिम्बाब्वे) में भी थी। रोडेशिया ब्रिटिश उपनिवेश की समाप्ति के बाद एक स्वशासी उपनिवेश था। उसने अपने यहाँ अनुपातिक मतदान प्रणाली की व्यवस्था की, जो सिर्फ गोरों को सरकार में प्रतिनिधित्व प्रदान करता था संयुक्त राष्ट्र संघ एवं राष्ट्रमंडल देशों ने इसके विरूद्ध भी अभियान चलाया, जिससे वहाँ भेदभाव समाप्त करके स्वतंत्र लोकतांत्रिक सरकार की स्थापना हुई।

18.6 आत्मनिर्णय और गैर–उपनिवेशी समाज

उपनिवेशों में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गैर–उपनिवेशी समाज में आत्मनिर्णय के सिद्धांत की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ गई है।

उपनिवेशवाद आर्थिक शोषण और राजनीतिक प्रभुत्त्व का एक साधन है। भारत साम्राज्यवाद के दुष्परिणामों का भुक्तभोगी रहा है। अतः औपनिवेशिक शासन से छुटकारे के बाद वह साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद को विभिन्न अप्रत्यक्ष एवं सूक्ष्म तरीकों से इन्हें सीमित करता रहा तथा नये राष्ट्रों को स्वतंत्रता के संघर्ष में पूर्ण रूप से सहायता प्रदान की। 1960 के दशक मे गोआ को मुक्त कराने के लिए भारत ने सैनिक कार्यवाही की और इसे भारत में मिला लिया। वस्तुतः भारतीय भूमि पर गोआ का अस्तित्व पुर्तगाल के सतत् आक्रमण का प्रतीक था। उसे स्वतंत्र करने के लिए बार–बार अनुरोध करने पर भी जब पुर्तगाल सहमत नहीं हुआ, तो भारत को विवश होकर शस्त्रों को सहारा लेना पड़ा। संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् में यह मामला गया तो भारत ने यह तर्क रखा कि गोआ में पुर्तगाल की उपस्थिति अवैध थी, क्योंकि यह आक्रमण और विजय का परिणाम था और भूतकाल में औपनिवेशिक राज्यों द्वारा विर्जित प्रदेशें को स्वतंत्र कराने के लिए बल प्रयोग करना अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अन्तर्गत निषिद्ध नहीं है। इसी तरह इडोंनेशिया पर जब इग्लैण्ड ने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पुनः अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयास किया तो भारत ने इसका घोर विरोध किया और इसके लिए एशियाई देशों को संगठित किया और राष्ट्र संघ में इस मामले को पेश किया।

वस्तुतः आत्मनिर्णय की अवधारणा में किसी क्षेत्र विशेष के लोगों की इच्छा एवं पड़ोसी से उसके संबंध महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है, किन्तु बड़ी शक्तियों के राजनीतिक छल एवं आर्थिक शोषण की नीति की वजह से विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में आत्म निर्णय के सिद्धांत की अवहेलना होती है।

18.7 आत्मनिर्णय और बहुसंजातीय समाज : आन्तरिक आत्मनिर्णय

समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के संजातीय समाज में आत्मनिर्णय का सिद्धांत स्पष्ट प्रकट होता है। विभिन्न राष्ट्रों के अन्दर व सीमापार संघर्ष तथा हिंसा इसे सत्यापित करती है कि विश्व में कुछ राष्ट्र अपनी स्वतंत्र स्थिति प्राप्त करना चाहते है।

सामान्यतः राष्ट्रवाद की धारणा से अलग होकर भाषा, धर्म प्रजाति, आर्थिक स्थिति से प्रभावित होकर किसी भौगोलिक क्षेत्र में रहने वाले लोग आत्मनिर्णय का दावा कर सकते है, क्योंकि किसी क्षेत्र में केन्द्रित अल्पसंख्यक जब यह महसूस करते है कि उनके साथ भेदभाव किया जा रहा है, तो वे राष्ट्रीय आत्मनिर्णय के लिए प्रयास करने लगते है यथा–यूगोस्लाविया में कोसावो संकट संजातीय आधार पर स्वायता या स्वतंत्रता हेतु है। इसी प्रकार रूस में चेचन्या और स्पेन के वास्क प्रान्त में भी संघर्ष इन्ही कारणों से है।

साम्राज्यवाद के काल में इन उपनिवेशवादी शक्तियों ने अपने शोषण की प्रक्रिया के अनुसार राज्यों को संगठित किया, लेकिन इन संजातीय समूहों के सामाजिक–सांस्कृतिक स्वायत्तता में हस्तक्षेप नहीं किया, पर स्वतंत्रता के उपरांत एक ओर तो उपनिवेशवाद का प्रतिरोध करने वाली संयोजनकारी भावना खत्म हो गई तथा दूसरी ओर राज्य के विभिन्न क्रियाकलाप से प्रतिस्पर्धा और विभाजक रेखा उत्पन्न होने से आत्मनिर्णय की भावना को गति मिली, जिसे देशद्रोह की संज्ञा से विभूषित करके दमन करने का प्रयास किया गया। फलतः संघर्ष को बढ़ावा मिला। इन संघर्षो के अलग–अलग स्तर एवं रूप रहे। कहीं यह स्वायत्तता, तो कहीं पहचान के लिए प्रकट हुआ। इन्हें निम्नलिखित मामलों द्वारा स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। –

18.8 श्रीलंका में तमिल समस्या और आत्म निर्णय के अधिकार हेतु आन्दोलन

श्रीलंका 65,610 वर्ग कि.मी. में फैला हुआ एक छोटा–सा द्वीप है जो 1948 में ब्रिटिश औपनिवेशिक दासता से स्वतंत्र हुआ। यहाँ पर रहने वाले भारतीय तमिलनाडु के मूल निवासी है। श्रीलंका में रहने वाली अधिकांश जनसंख्या बौद्ध धर्मावलंबी है। लेकिन हिन्दू एवं मुसलमान भी अल्पसंख्यक रूप में वहाँ विद्यमान है। अर्थात् श्रीलंका की डेढ़ करोड़, आबादी में 74% सिंहली, 13% श्रीलंका के तमिल, 6% भारतीय मूल के तमिल तथा शेष अन्य लोग है। तमिल श्रीलंका के उत्तर में जाफना जिले में रहते है। तमिल लोग धर्म से हिन्दू कहलाते हैं और सिंहली बौद्ध।

अनेक कारणों से श्रीलंका के तमिलों में असुरक्षा, अविश्वास और आतंक की भावना फैलने लगी। जयवर्द्धने की सरकार ने तमिलों के विरूद्ध घोर भेदभाव की नीतियाँ अपनाईं। आतंकवादियों के दमन के नाम पर निंदोष लोगों की सामूहिक हत्या की गई, तमिल नृवंशियों को बाध्य किया गया कि वे समुद्र में कूद पड़ें या समुद्र पार करके भारत में चले जाएँ। बहुसंख्यक सिंहलियों द्वारा श्रीलंका के तमिलों के प्रति आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में काफी भेदभावपूर्ण नीति अपनाई गई। तब श्रीलंका के तमिलों ने तमिल यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट नाम के एक राजनीतिक संगठन की स्थापना की तथा तमिलों के कुछ उग्रवादी संगठन तमिल ईलम नामक एक पृथक राष्ट्र की मांग करने लगे, लेकिन तमिल यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट सिर्फ स्वायत्तता की मांग करता है। किन्तु श्रीलंका की मुख्य सत्तारूढ़ पार्टियों ने उनकी मांगों पर ध्यान नहीं दिया तथा तब तमिलों द्वारा आंदोलन चलाया गया, तो उन्होंने उसे कठोरतापूर्वक दबा दिया। फलतः तमिलों ने स्वतन्त्रता की मांग शुरू कर दी। बाद में राष्ट्रपति जयवर्द्धने और भारतीय प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी के बीच एक समझौता–वार्ता हुई जिसके अन्तर्गत भारतीय शांति सेना को श्रीलंका भेजा गया, जिसका उद्देश्य श्रीलंका में शांति का माहौल बनाना एवं तनाव दूर करने में सहायता प्रदान करना था। भारतीय शांति सेना तमिलों में आम सहमति का निर्माण करने में नितांत असफल रही। जयवर्द्धने के पश्चात् प्रेमदासा के श्रीलंका के राष्ट्रपति बनते ही उन्होंने यह मांग प्रभावी ढ़ंग से उठाई कि भारतीय शांति सेना की वापसी हो। अतः मार्च, 1990 तक शांति सेना की लगभग सभी टुकड़ियाँ भारत लौट आई। श्रीलंका में लोकतांत्रिक प्रक्रिया शुरू हुई। इसमें शांति सेना का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा, लेकिन तमिलों की जातीय समस्या का समाधान नही हो पाया। वैसे वर्तमान समय में नार्वे की मध्यस्थता से युद्ध–विराम और संधि वार्ता पर एक हद तक समझौता हुआ है। राजनीतिक स्वायत्तता या पहचान हेतु यदि आंदोलन असफल रहे, तो यह आत्मनिर्णय की मांग में भी बदल सकती है।

18.8.1 स्वतन्त्र बांग्लादेश का निर्माण

अंग्रेज सरकार द्वारा विभिन्न क्रिया–प्रतिक्रिया के कारण 14 अगस्त, 1947 को भारत का विभाजन करके पाकिस्तान की स्थापना की गई। उत्तर–पश्चिमी भौगोलिक स्थिति ने भी पृथक् मुस्लिम राज्य बनाने में सहायता दी। भारत के उत्तर–पश्चिमी सीमांत प्रान्तों (सिंध, बलूचिस्तान, पंजाब आदि) में मुसलमानों की बहुलता थी और यह भौगोलिक दृष्टि से एक–दूसरे से सटा हुआ क्षेत्र था, जिसकी वजह से पाकिस्तान की धारणा को व्यावहारिक शक्ल मिल सकी। लेकिन पाकिस्तान के अन्तर्गत पश्चिमी पाकिस्तान और पूर्वी पाकिस्तान एक–दूसरे से अलग थे। इन दोनों में भाषा, संस्कृति, अर्थव्यवस्था आदि के आधार पर भी गहन विषमता थी। फिर भी स्वतंत्रता के कुछ वर्षो तक यहाँ संयुक्त शासन अच्छी तरह से चला, लेकिन भारत–पाकिस्तान युद्ध (1965) के बाद स्थिति बदल गई। पूर्वी पाकिस्तान में स्वायत्तता के लिए शेख मुर्जीबुर्रहमान के नेतृत्व में शांतिपूर्ण आंदोलन की शुरूआत हुई तथा 1970 के चुनाव में शेख मुजीबुर्रहमान के दल को इन क्षेत्रों में अभूतपूर्व सफलता मिली, लेकिन पश्चिमी पाकिस्तान के शासक वर्ग ने उन्हें सत्ता संचालन का अवसर नहीं दिया। साथ ही पूर्वी क्षेत्रों के लोगों के विरूद्ध, जो सैनिक तानाशाही, आर्थिक शोषण, भेदभाव और असमानता का अंत करके प्रजातंत्र की स्थापना करना चाहते थे, कठोर दमन–चक्र चलाया। इस दमर–चक्र से मानवता कराहने लगी। भारत ने इस

अद्वितीय मानवीय विपत्ति का शांतिपूर्ण समाधान कराने के लिए विश्व के सभी राष्ट्रों से अनुरोध किया और संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से भी इस व्यापक नरसंहार को रोकने का प्रयास किया।

उधर शेख मुजीबुर्रहमान की आवामी लीग ने अपनी सैनिक शाखा 'मुक्तिवाहिनी' संगठित की और भारत से सहायता का अनुरोध किया। 6 दिसम्बर, 1971 को भारत और मुक्तिवाहिनी के बीच संयुक्त सैन्य कमांड की औपचारिक घोषणा हुई तथा भारत ने पूर्वी पाकिस्तान को बांग्लादेश के रूप में मान्यता दे दी। भारत–पाकिस्तान युद्ध में पाकिस्तान की हार हुई। पाकिस्तान के सैनिकों ने आत्म–समर्पण कर दिया और स्वतंत्र अस्तित्व के रूप में बांग्लादेश का आविर्भाव हुआ, जिसे बाद में अन्य राष्ट्रों सहित संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्यता प्राप्त हुई। इस प्रकार भारत के समर्थन से बांग्लादेश का निर्माण हुआ।

18.9 सारांश

इस प्रकार आत्म निर्णय के अधिकार ने विश्व उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, रगभेद की नीति को समाप्त करने के साथ–साथ राष्ट्रवाद की भावना को भी विकसित किया लेकिन आत्म निर्णय के विभिन्न दावों, प्रतिदावों के मध्य संघर्ष को भी बढ़ावा मिला उन समाजों में जहाँ विभिन्न सभ्यता–संस्कृति के लोग रहते है, वहाँ आत्मनिर्णय पहचान आधारित कारकों यथा–धर्म, प्रजाति आदि के कारण जटिल रूप ले सकता है। आत्मनिर्णय के आंदोलन को अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भों से भी बढ़ावा मिल सकता है, क्योंकि यह आन्दोलन जब उग्र रूप धारण करता है, तो अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय से ही इसे सैन्य एवं राजनीतिक समर्थन प्राप्त होता है। विश्व में कई राष्ट्रों का निर्माण आत्मनिर्णय के आधार पर हुआ है और कई जगह यह आन्दोलन के रूप से अभी भी क्रियाशील है।

अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. आत्म निर्णय के अधिकार पर एक लेख लिखिए।
2. आत्म निर्णय के अधिकार ने एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में उपनिवेशवाद का किस प्रकार उन्मूलन किया ? समझाईए

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. आत्म निर्णय के अधिकार का महत्त्व बताईए।
2. संयुक्त राष्ट्र संघ में आत्म निर्णय के सिद्धांत का परीक्षण कीजिए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. आत्म निर्णय का अधिकार क्या है।
2. बहु संजातीय समाज का अर्थ बताईए।

इकाई – 19
हस्तक्षेप / आक्रमण
(Intervention / Invation)

19.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हस्तक्षेप का अर्थ प्रकार व कारणों तथा युद्व के कारण एवं परिणामों का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- हस्तक्षेप का अर्थ प्रकार व कारणों के समझ सकेगें।
- हस्तक्षेप को वैध बनाने के कारणों को समझ सकेगें।
- युद्व का अर्थ, कारण एवं प्रकारों के बारे में जान सकेगें।

19.1 प्रस्तावनाः

सामान्यतः जब एक राज्य दो राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों में अथवा उन दोनों में से किसी एक राज्य के विषय में उन दोनों की अथवा किसी एक की सहमति के बिना दखल देता है उसे हस्तक्षेप कहते है। अथवा जब एक राज्य किसी अन्य राज्य के आन्तरिक विषयों में बिना उसकी सहमति के वास्तविक आन्तरिक दशा को स्थापित रखने या उसमें परिवर्तन करने के लिए दखल देता है तो उसे ही हस्तक्षेप कहते है।

ओपेनहीम के अनुसार, ''हस्तक्षेप एक तानाशाही दखलन्दाजी है जो एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के मामलों को पलटने के लिए करता है।'' जैक्सन के अनुसार, ''हस्तक्षेप एक तानाशाही अथवा आदेशात्मक अभिव्यक्ति है जो एक राज्य स्वतन्त्रता के विरूद्ध हो।

प्रत्येक राज्य अपने क्षेत्र में सम्प्रभु होता है। अतः इस अधिकृत क्षेत्र में वह स्वेच्छानुसार शासन क्रियान्वित करता है। ऐसे प्रत्येक 'प्रभुत्व सम्पन्न' राज्य को अन्य देशों के साथ अपनी इच्छा के अनुसार सन्धियाँ करने की स्वतन्त्रता रहती है। वह इस बात के लिये स्वतन्त्र है कि वह अपने संविधान में किसी भी प्रकार का परिवर्तन करे अथवा किसी भी रूप में अपनी नीतियों का निर्धारण और क्रियान्वयन करे। परन्तु कभी–कभी ऐसा होता है कि अन्य राज्य बहुत से राज्यों से मिलकर या अकेले ही किसी राज्य के मामलों में दखल दे देते है और उसकी इच्छा के विरूद्ध किसी विशेष कार्य के लिये बाध्य कर देते है, इसी प्रकार के दखल को, जो किसी राज्य को किसी काम के लिये बाध्य करना है, हस्तक्षेप कहा जाता है।

सं. रा. संघ की महासभा द्वारा प्रस्ताव में कहा गया है कि, ''किसी राज्य को दूसरे राज्य के आन्तरिक या बाह्य मामलों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दखल देने का अधिकार नहीं है।

इस प्रकार उक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि किसी राज्य के आन्तरिक अथवा विदेशी मामलों में किसी अन्य राज्य द्वारा किया गया ऐसा दखल जिसके पीछे आज्ञा शक्ति का प्रयोग या शक्ति के प्रयोग की धमकी होती है अन्तर्राष्ट्रीय कानून में हस्तक्षेप कहलाता है। यदि किसी राज्य से सलाह ली जाती है तो ऐसा दखल हस्तक्षेप नहीं कहलायेगा।

उपयुर्क्त अध्ययन के पश्चात् हस्तक्षेप के संदर्भ में निम्न बातें स्पष्ट होती है।

1. हस्तक्षेप एक शत्रुतापूर्ण कार्यवाही है।
2. हस्तक्षेप केवल परामर्श या मध्यस्थता नहीं होता।
3. हस्तक्षेप द्वारा एक राज्य दूसरे राज्य के मामलों में शक्ति का प्रयोग करता है।

19.2 हस्तक्षेप के प्रकार

हस्तक्षेप के प्रमुख प्रकार निम्नलिखित है।

19.2.1 आन्तरिक हस्तक्षेप (Internal Intervention) – आन्तरिक हस्तक्षेप उस समय होता है जब एक राज्य में गृहयुद्ध की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस समय किसी अन्य राज्य द्वारा इसमें हस्तक्षेप करना आन्तरिक हस्तक्षेप है। हस्तक्षेप करने वाला राज्य या तो सरकार के पक्ष में अथवा विद्रोहियों के पक्ष में सहायता करता है। उदाहरणार्थ – 1936 में स्पेन के घरेलू युद्ध में इटली और जर्मनी द्वारा जनरल फ्रेंकों की सहायता करना, 1956 में सोवियत संघ द्वारा हंगरी में हस्तक्षेप करना आन्तरिक हस्तक्षेप का उदाहरण है।

19.2.2 बाह्य हस्तक्षेप (External Intervention) – बाह्य हस्क्षेप एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य के विदेशी मामलों में किया जाता है। सामान्यतया बाह्य हस्तक्षेप शत्रुतापूर्ण सम्बन्धों के विरूद्ध निर्देशित होता है। जब दो राज्यों में युद्ध चल रहा हो तो एक तीसरा राज्य युद्ध लड़ रहे किसी एक राज्य या दोनों के विरूद्ध युद्ध में सम्मिलित होकर हस्तक्षेप कर देता है, तो इसको बाह्य हस्तक्षेप कहा जाता है। उदाहरणार्थ–दूसरे विश्वयुद्ध में जर्मनी और इंग्लैण्ड में चल रहे युद्ध में इटली द्वारा जर्मनी के पक्ष में युद्ध में सम्मिलित होना।

19.2.3 दण्ड देने वाला हस्तक्षेप (Punitive Intervention) – जब एक राज्य को किसी दूसरे राज्य की कार्यवाही से हानि पहुँची हो तो वह बदला लेने के लिये बलपूर्वक कार्यवाही करें तो इसको दण्ड देने वाला हस्तक्षेप कहा जाता है। उदाहरणार्थ– जब एक राज्य को कोई कार्य करने के लिये या न करने के लिये, बाध्य करने के लिए एक अन्य राज्य उसकी नाकाबन्दी (Blockade) कर दे तो इसको दण्ड देने वाला हस्तक्षेप कहा जायेगा। उदाहरणार्थ–1962 में अमरीका ने क्यूबा के बन्दरगाहों की नाकाबन्दी सोवियत रूस के विरूद्ध की वह दण्ड देने वाला हस्तक्षेप का उदाहरण है।

19.2.4 कूटनीतिक हस्तक्षेप (Diplomatic Intervention) – यह चौथा प्रकार स्टार्क ने बताया है। उसके अनुसार 1895 में फ्रांस, रूस व जर्मनी ने जापान पर अपना कूटनीतिक दबाव बनाया और उसे शिमोनोस्की की सन्धि द्वारा प्राप्त लिआहोतुंग का प्रायद्वीप चीन को वापस करने के लिये बाध्य किया।

19.3 वैध हस्तक्षेप (Legitimate Intervention)

सामान्यतया अन्तर्राष्ट्रीय कानून हस्तक्षेप को अवैध मानकर इसका निषेध करता है परन्तु कुछ परिस्थितियों में अन्तर्राष्ट्रीय कानून राज्यों द्वारा हस्तक्षेप करने के अधिकार को स्वीकार भी करता है। ओपेहीम कहता है कि निम्न सात परिस्थितियों में हस्तक्षेप करने का अधिकार वैध रूप में विद्यमान रहता है।

(i) एक अधिपति राज्य अपने संरक्षण में रह रहे राज्य की सुरक्षा (Protectorate) के बाह्य मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकारी होता है।

(ii) जब एक राज्य का कोई विदेशी मामला, साथ–साथ किसी अन्य राज्य से सम्बन्धित मामला भी हो तो दूसरा राज्य पहले राज्य के मामले में हस्तक्षेप करने का अधिकारी होता है क्योंकि वह पहले राज्य की एक पक्षीय कार्यवाही को रोकने का अधिकारी होता है।

(iii) जब किसी अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि द्वारा किसी राज्य की बाह्य स्वतन्त्रता या उसकी भू–क्षेत्रीय सर्वोच्चता पर कुछ रोकें लगाई गई हों पर वह राज्य इन रोकों की उल्लंघना का प्रयास करे तो सन्धि में सम्मिलित दूसरे राज्यों को इस सम्बन्ध में हस्तक्षेप करने का अधिकार होता है।

(iv) यदि युद्ध की समाप्ति के समय एक राज्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून के ऐसे नियमों को तोड़ देता है जो कि कानून–निर्माण सन्धियों या रीति–रिवाजों पर आधारित होते हैं तो दूसरे राज्यों को हस्तक्षेप का अधिकार होता है ताकि उसको भूल करने से रोका जाये और अन्तर्राष्ट्रीय कानून के नियमों का पालन करवाया जाये।

(v) जब किसी राज्य ने एक सन्धि के द्वारा सरकार के एक निश्चित रूप या शासन को बनाये रखने की गारण्टी दूसरे राज्य को देनी होती है और दूसरा राज्य सरकार के स्वरूप या शासन को बदलने का प्रयास करे तो पहला राज्य हस्तक्षेप करने का अधिकारी होता है।

(vi) अपनी व्यक्तिगत सर्वोच्चता के सिद्धांत के अधीन एक राज्य अपने नागरिकों, जो कि एक दूसरे के हितों की रक्षा और उनकी व्यक्तिगत सुरक्षा के हित में भी हस्तक्षेप करने का अधिकारी होता है।

(vii) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के उल्लंघन की स्थिति में संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अधीन सभी सदस्य देशों को उस राज्य के विरूद्ध हस्तक्षेप करने का अधिकार होता है, जो कि किसी आक्रमणकारी कार्यवाही द्वारा या आक्रमण द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति को भंग करता है या करने का प्रयास करता है।

19.4 हस्तक्षेप के कारण

स्टार्क ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार हस्तक्षेप के पाँच कारण बतायें है।

1. संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अनुसार कई राज्य सामूहिक रूप से किसी राज्य के मामले में हस्तक्षेप कर सकते है जैसे – अनेक राज्यों ने मिलकर 1950 में कोरिया में हस्तक्षेप किया।
2. यदि विदेश में रहने वाले अपने नागरिकों अथवा उनकी सम्पत्ति की रक्षा के उद्देश्य से हस्तक्षेप किया जाए तो वह वैध माना जायेगा।
3. यदि कोई राज्य किसी राज्य पर सशस्त्र आक्रमण कर दे तो उसके प्रतिरोध में आक्रामक राज्य के विरूद्ध हस्तक्षेप किया जा सकता है।
4. यदि कोई राज्य किसी दूसरी राज्य के संरक्षण में है तथा उस संरक्षित राज्य पर कोई आक्रमण कर दे तो संरक्षक राज्य संरक्षित राज्य की सहायता के लिए हस्तक्षेप कर सकता है।
5. यदि कोई राज्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून का उल्लंघन करे तो अन्य राज्य सामूहिक रूप से उस पर आक्रमण कर अन्तर्राष्ट्रीय कानून को मानने के लिए विवश कर सकते है।

ओपेनहीम ने इस कारणों से अलग दो कारण और गिनाये है–

1. यदि अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार किसी राज्य पर कुछ प्रतिबन्ध लगाये जायें और वह राज्य उनका उल्लंघन करे तो राज्य सामूहिक रूप से इसे प्रतिबन्धों को मानने के लिए विवश किया जा सकता है। जैसे – 1914 में बैल्जियम की तटस्थ सम्बन्धी सन्धि के भंग होने पर ग्रेट ब्रिटेन ने हस्तक्षेप किया।
2. जब किसी सन्धि द्वारा एक निश्चित प्रकार का शासन निर्धारित किया जाये, तो उस शासन प्रणाली में परिवर्तन होने पर हस्तक्षेप किया जाये।

19.5 हस्तक्षेप को वैध बनाने के कारण

अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार निम्न कारणों से हस्तक्षेप वैध माना गया है।

19.5.1 आत्म–रक्षा (Self-defence) – प्रत्येक राज्य को आत्म–रक्षा के लिये सभी सम्भव उपायों का अवलम्बन करने का पूरा अधिकार है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की धारा 51 के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के उपायों का अवलम्बन करने के पूर्व सुरक्षा परिषद् द्वारा सभी राज्यों को यह अधिकार दिया गया है कि वे किसी अन्य राज्य द्वारा किये जाने वाले सशस्त्र आक्रामण से अपनी रक्षा करने के लिये विभिन्न कार्यवाही कर सकते है। इस दृष्टि से यदि एक राज्य की कार्यवाहियों से दूसरे राज्यों के हितों या सुरक्षा में कोई अव्यवस्था उत्पन्न होती हो तो दूसरे राज्य को पहले राज्य के मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार है।

ओपेनहीम (Oppenheim) ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि, "आत्म–रक्षा के सम्बन्ध में शक्ति का प्रयोग तभी उचित ठहराया जा सकता है, जबकि वह आत्म–रक्षा के लिए आवश्यक हो।"

19.5.2 प्रत्यपहार या बदला (Reprisals) – प्रत्यपहार के विषय में ब्रायरली का यह कहना है कि, "शाब्दिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से इसका अर्थ बदले की दृष्टि से सम्पत्ति जब्त करना या व्यक्तियों को पकड़ना है और पहले एक राज्य के लिये यह बात असाधारण नहीं थी कि वह अपने किसी ऐसे नागरिक को प्रत्यपहार पत्र (Letter Marque) दे जो दूसरे राज्य में न्याय से वंचित किया गया हो।" इस पत्र द्वारा उसे यह अधिकार दिया जाता था कि वह स्वयमेव दूसरे राज्य के प्रजाजन द्वारा पहुँचायी गई हानि का बदला बल प्रयोग द्वारा ले या अपराधी (Delinquent) राज्य के प्रजाजनों की सम्पत्ति लूट ले। अब विशेष प्रत्यपहार (Special Reprisal) की यह प्रथा बहुत समय से लुप्त हो चुकी है।

19.5.3 सन्धि के अधिकार का प्रयोग (Enforcement of Treaty Rights) – इस प्रकार के हस्तक्षेप में किसी सन्धि द्वारा किसी राज्य को, किसी अन्य राज्य के मामलों में हस्तक्षेप करने का कुछ अवस्थाओं के होने पर अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार से हस्तक्षेप करना किसी राज्य की स्वतन्त्रता के अधिकार में बाधा डालना नहीं माना जाता क्योंकि उक्त राज्य में सन्धि की शर्तों पर स्वेच्छा से हस्तक्षेप कर अपनी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाना स्वीकार किया जाता है। उदाहरणार्थ, सन् 1831 तथा 1839 की लन्दन सन्धियों में यूरोपीय शक्तियों ने स्वेच्छापूर्वक बेल्जिम की स्वतन्त्रता, एकता तथा तटस्थता की गारण्टी दी थी। जर्मनी ने जब इस सन्धि का उल्लंघन किया तो ब्रिटेन ने सन्धि के द्वारा प्राप्त अधिकार के कारण जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

19.5.4 शक्ति–सन्तुलन (Balance of Power) – शक्ति–सन्तुलन का तात्पर्य है कि सभी राज्यों में शक्ति का सन्तुलन रहे अर्थात् कोई राज्य अत्यधिक शक्तिशाली न होने पाये। इस प्रकार का सन्तुलन न रहने पर शक्तिशाली राज्यों की ओर से निर्बल राज्यों को खतरा उत्पन्न हो जाता है।

शक्ति–सन्तुलन को स्थापित रखे रहने के प्रयास में किये जाने वाले हस्तक्षेप का उदाहरण क्रीमिया के युद्ध से दिया जा सकता है (1856)। ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस द्वार इस युद्ध को लड़े जाने का उद्देश्य यह था कि टर्की के साम्राज्य को दबाकर रूस कही अधिक शक्तिशाली न बन जाये।

19.5.5 गृहयुद्धों में हस्तक्षेप (Intervention in Civil Wars) – मध्यकाल में इस प्रकार के हस्तक्षेपों की प्रक्रिया प्रचलित थी। किसी राज्य में होने वाले गृहयुद्धों का प्रभाव पड़ोसी राज्यों पर होना स्वाभाविक ही है।

सन् 1815 में वियना कांग्रेस ने यूरोप में फ्रांसीसी क्रांन्ति के विरोधी देशों में लोकतन्त्र एवं राष्ट्रीयता की अवहेलना करने वाले राज्यों की स्थापना की थी। इसलिये राष्ट्रीय भावना को दबाने के लिये ऑस्ट्रिया, रूस एवं प्रशा के राजाओं ने पवित्र संघ की स्थापना की थी। इसके द्वारा किसी देश में क्रांति होने पर अन्य राज्यों द्वारा हस्तक्षेप किया जा सकता है। सन् 1827 में ब्रिटेन, रूस और फ्रांस ने यूनान को स्वाधीन बनाने के लिये हस्तक्षेप किया था। सन् 1934–38 में जर्मनी तथा इटली की सरकारों ने स्पेन के गृहयुद्ध में हस्तक्षेप किया। इसी प्रकार पाकिस्तान में गृहयुद्ध होने पर भारत पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा क्योंकि बांग्लादेश से एक करोड़ शरणार्थी भारत की सीमा में आ गये। उनका भार वहन करना भारत के लिये कठिन था अतः 1971 में भारत ने अपनी सेनायें बांग्लादेश में भेजकर हस्तक्षेप किया।

आधुनिक युग में इस कारण का भी कोई महत्त्व नहीं माना जाता है और इस प्रकार के हस्तक्षेप को अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से न्याय–युक्त नहीं माना जाता है।

19.5.6 मानवीयता (Humanity) – अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार इस प्रकार के हस्तक्षेप को न्यायालय द्वारा उचित माना गया है। इस प्रकार का हस्तक्षेप मानवता की उपेक्षा कर दिये जाने पर, अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध किया जाता है।

न्यायाधीश लौटर पोख्ट ने इस सम्बन्ध में कहा है, "मानवीय अधिकारों के विषय में सं. रा. संघ के चार्टर के प्रावधानों द्वारा कानूनी उत्तदायित्व उत्पन्न होता है।"

सार्वभौमिक मानवीय उद्घोषणा, 1948 द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय कानून के इस आदर्श को कि 'मानव अधिकारों का उल्लंघन होने के आधार पर हस्तक्षेप किया जा सकता है' शक्ति मिली है।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों की आड़ में उपर्युक्त कारणों से महाशक्तियाँ अन्य राज्यों के मामलों में हस्तक्षेप करती है।

19.6 युद्ध या आक्रमण

सामान्यतः जब किन्हीं राज्यों के आपसी विवादों का निपटारा शान्तिपूर्ण तरीकों से नहीं हो पाता तो वे अपने विवादों का निपटारा करने के लिये युद्ध का सहारा लेते है। शताब्दियों से राज्यों के मध्य होने वाले विवादों का निपटारा करने वाले साधन के रूप में युद्ध की मान्यता को स्वीकार किया जाता रहा है। कई बार तो इसको पवित्र साधन माना गया है और कहा गया है कि अन्ततोगत्वा युद्ध ही वह साधन है जिससे राज्यों के आपसी विवाद सफलतापूर्वक निपटाये जा सकते है।

क्विंसी राइट के अनुसार, "युद्ध व्यापक रूप से, स्पष्ट रूप में भिन्न परन्तु एक तरह की इकाइयों के मध्य हिंसात्मक सम्पर्क होता है।" संकीर्ण अर्थ में "युद्ध से अर्थ उस कानूनी स्थिति से है, जो दो या उससे भी अधिक विरोधी समूहों में सैनिक संघर्ष के संचालन की समान रूप से आज्ञा देती है।"

ओपेनहीम के शब्दों में, "युद्ध सशस्त्र सेनाओं द्वारा दो या दो से अधिक राज्यों के मध्य संषर्ष है जिसका उद्देश्य एक–दूसरे पर अधिकार जमाना और जैसे विजयी राज्य चाहे उसी अनुसार शान्ति की शर्तें दूसरे पर थोपना होता है।

प्रो. मेलिनोस्की के अनुसार, "युद्ध राजनीतिक इकाइयों के बीच का सशस्त्र संघर्ष है। यह राष्ट्रीय अथवा जातीय नीतियों की साधना के लिये संगठित सैनिक शक्तियों द्वारा किया जाता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से युद्ध के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य उभरते है।

1. युद्ध के लिए एक से अधिक समूहों की आवश्यकता होती है।
2. इन समूह के मूल उद्देश्य एक–दूसरे के विरोधी होते है।
3. इन समूहों के हित परस्पर इतने विरोधी और उग्र होते है। कि समझौते की सम्भावना प्रायः नहीं रहती
4. अपने हितों की प्राप्ति के लिए शक्ति का एक प्रकार से व्यवस्थित प्रयोग किया जाता है।
5. युद्ध का उद्देश्य अपने हितों को प्राप्त करना और दूसरे पक्ष पर अपनी इच्छा को थोपना होता है।

19.7 युद्ध के कारण

युद्ध के प्रमुख कारण निम्नलिखित है।

19.7.1 मनोवैज्ञानिक कारण – मनोवैज्ञानिक युद्ध को मानव की सोच क्रिया का भाग मानते है। भय तथा असुरक्षा मानवीय स्वभाव के भाग हैं तथा इसी प्रकार आक्रमणशीलता भी उसकी प्रकृति का एक भाग है। सिगमंड फ्रायड का मत है कि मनुष्य स्वभाव से ही बुराई आक्रमणकारी विनाश और दुष्टता की प्रतिमूर्ति है। उसके शब्दों में, मनुष्य केवल अच्छे और मित्रतापूर्ण स्वभाव वाले प्राणी ही नहीं, जो केवल प्यार की इच्छा रखते है और जो आक्रामण की स्थिति में केवल अपनी सुरक्षा ही करते है बल्कि–आक्रमण की इच्छा बहुत तीव्र मात्रा में उनके अन्दर होती है, जो उसकी सहज प्राकृतिक देन के भाग के रूप में मानी जानी चाहिए। इस तरह बहुत से मनोवैज्ञानिक यह मानते है कि मानव–स्वभाव में युद्ध की प्रवृति है। इसलिए युद्ध अपरिहार्य है।

19.7.2 राजनीति कारण– राजनीतिक विवादों के कारण भी युद्ध होते है, जैसे– भारत–चीन युद्ध–1962, भारत–पाक युद्ध–1965, इन दोनों युद्वों में भारत की जमीन पर चीन और पाकिस्तान द्वारा कब्जा करने का प्रयास किया गया।

19.7.3 अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की स्थिति – कुछ विचारक मानते है कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का स्वरूप भी कभी–कभी युद्ध का कारण बनता है। उदाहरणार्थ–वर्साय की सन्धि–1919 के पश्चात् बनी अन्तर्राष्ट्री व्यवस्था ही मुख्य रूप से दूसरे विश्वयुद्ध का कारण बनी।

पामर और पर्किन्स के शब्दों में, "वर्तमान परिस्थितियों में बहुत–सी कठिनाइयों का सम्बन्ध राष्ट्र–राज्य व्यवस्था और साधारण रूप में समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के अराजकतावादी ढ़ाँचे से है।

19.7.4 आर्थिक कारण – कुछ विद्वान यह मानते है कि आर्थिक लाभों की इच्छा के कारण ही युद्ध होते है। लेनिन का मत था कि पूँजीवाद से साम्राज्यवाद बनता है और साम्राज्यवाद से युद्ध आर्थिक जनकल्याण सिद्धांत के अनुसार राज्य अपने लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए युद्ध करते है। परन्तु आधुनिक युद्ध के विनाशकारी स्वरूप के कारण आर्थिक कारणों को युद्ध का कारण नहीं माना जा सकता। युद्ध से तो दोनों पक्षों को हानि ही होती है।

19.7.5 सांस्कृतिक और विचारधारात्मक कारण – कुछ विचारक यह मानते है कि सांस्कृतिक और विचारधारात्मक मतभेद युद्ध के कारण है। वे भारत–पाक युद्ध को हिन्दू–मुसलमान युद्ध, अरब–इस्त्राइल युद्ध को मुसलमान–यहूदी युद्ध, अफगानिस्तान पर अमरीकी आक्रामण को मुसलमान–ईसाई युद्ध मानते है। द्वितीय विश्वयुद्ध लोकतन्त्र बनाम तानाशाही (फासीवाद और नाजीवाद), शीत युद्ध को लोकतन्त्र और साम्यवाद के मध्य विचारधारा का युद्ध था, परन्तु कई उदाहरण ऐसे भी हैं जहाँ एक ही धर्म (ईराक–इराक युद्ध), इराक–कुवैत युद्ध या युरोपीय राष्ट्रों में संषर्घ ऐसे ही उदाहरण है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि युद्ध का कारण विचारात्मक मतभेद न होकर राष्ट्रीय हित होता है।

19.8 युद्ध के प्रकार

युद्धों के अनेक प्रकार है, जो निम्नलिखित है।

19.8.1 न्यायपूर्ण युद्ध और अन्यायपूर्ण युद्ध (Just and Unjust War) – मध्यकाल में यूरोप में धर्म की धारणा पर आधारित युद्धों को न्यायपूर्ण और अन्यायपूर्ण रूपों में विभाजित किया गया था। वर्तमान में इस प्रकार की धारणा नहीं है तथापि राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिये किये गये युद्ध न्यायपूर्ण युद्ध तथा पड़ौसी देशों पर विस्तारवादी नीति के लक्ष्य से किये गये युद्ध अन्यायपूर्ण युद्ध कहलाते है।

19.8.2 समग्र युद्ध (Total War) – समग्र युद्ध उस युद्ध को कहते है जिसमें युद्धरत राज्यों की सम्पूर्ण जनता ही संलग्न रहती है। यह युद्ध योद्धा राज्यों की सेनाओं तक ही सीमित नहीं रहता। इसका प्रभाव सम्पूर्ण जनता पर पड़ता है। वर्तमान में सभी युद्ध समग्र युद्ध के पाँच कारण बताये हैं जो निम्नलिखित है –

(i) **सैनिक संख्या में वृद्धि** – सैनिकों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है।

(ii) **जटिल प्रक्रिया** – युद्ध की प्रक्रिया जटिल हो गई है। युद्ध की सामग्री का प्रबन्ध करने के लिये असैनिक जनता को सक्रिय होना पड़ता है।

(iii) **हवाई युद्ध का विकास** – हवाई युद्ध का विकास होने से युद्ध का क्षेत्र व्यापक हो गया है। अब युद्ध में नागरिक ठिकानों, स्टेशनों, बन्दगाहों, औद्योगिक केन्द्रों, आयुध कारखानों, तेल के डिपो आदि पर बम–वर्षा की जाती है।

(iv) **आर्थिक प्रतिबन्धों का लगाया जाना** – युद्ध जीतने के लिये आर्थिक प्रतिबन्ध भी लगाये जाते है जिससे सैनिक और नागरिक सभी प्रभावित होते है।

(v) **अधिनायकवादी राज्यों का उदय** – सर्वाधिकारवादी व्यवस्थाओं के विकास के कारण व्यक्ति पर राज्य का पूर्ण अधिकार होता है और युद्ध की स्थिति में सभी नागरिकों के सक्रिय सहयोग को आवश्यक माना जाता है।

19.8.3 मनोवैज्ञानिक युद्ध–क्रिया (Psychological Warfare) – मनौवैज्ञानिक युद्ध–क्रिया उद्देश्य शत्रु के मनोबल को गिराना होता है। प्रथम विश्वयुद्ध में इसका भरपूर प्रयोग किया गया। **पॉल लाइनबर्गर** (Paul Lineberger) के शब्दों में, ''राजनीतिक आर्थिक तथा सैन्य कार्य को और आगे बढ़ाने के लिए मनोविज्ञान के, विज्ञान के कुछ भागों को प्रयोग में लगाना'' तथा संकीर्ण रूप से, ''प्रचार को सम्पूरक करने के लिए दूसरे सैन्य, आर्थिक तथा राजनीतिक परिचालन विधियों के साथ शत्रु के विरूद्ध प्रचार का प्रयोग।'' **आइजनहॉवर** ने मनोवैज्ञानिक युद्ध को व्यक्ति के मस्तिष्कों के लिए संघर्ष कहा हैं।

19.8.4 औपचारिक व अनौपचारिक युद्ध (Formal and Informal War) – औपचारिक युद्ध उस लड़ाई को कहते हैं जो विधिवत् रूप से घोषणा करने के बाद छेड़ी जाती है, इसके विपरीत अनौपचारिक युद्ध उसको कहते हैं जिसमें बिना घोषणा के लड़ाई होती रहती है।

19.8.5 छापामार युद्ध (Guerilla War) – यह युद्ध जब लड़ा जाता है, जब युद्ध करने वाले पक्षों में से एक पक्ष निर्बल होता है। उसके पास इतनी सेना और युद्ध सामग्री नहीं होती कि वह सामने आकर विपक्षी से युद्ध कर सके। इसी कारण निर्बल पक्ष छिपकर गुप्त रूप से आक्रमण करता है और उसके उपरान्त छिप जाता है। अवसर पाकर वह पुनः आक्रमण करके छिप जाता है। इसलिये इसे 'छापामार' युद्ध कहा जाता है। ओपेनहीम के शब्दों में, ''यह एक ऐसा युद्ध है, जो शत्रु के द्वारा अधिकृत प्रदेश में ऐसे सशस्त्र व्यक्ति समूहों के द्वारा लड़ा जाता है, जो किसी संगठित सेना के भाग नहीं होते।

19.8.6 सार्वजनिक और वैयक्तिक युद्ध (Public and Private Wars) – युद्धों का यह वर्गीकरण मध्यकाल में प्रचलित था। जब दो राजनीतिक शक्तियाँ, जिनकी अपनी निजी सम्प्रभुता होती है, आपस में युद्ध करती हैं तो यह सार्वजनिक युद्ध

कहलाता है तथा जब दो गैर–राजनीतिक शक्तियाँ जैसे दो बड़े जमींदार होते है। गैर सम्प्रभू समुदायों के संघर्ष को विद्रोह कहते है।

19.8.7 पूर्ण और अपूर्ण युद्ध (Perfect and Imperfect War) – पूर्ण युद्ध में समस्त राष्ट्र प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में युद्ध से सम्बन्धित होता है जबकि अपूर्ण युद्ध कुछ व्यक्तियों और स्थानों तक ही सीमित रहता है।

19.8.8 युद्ध और गृहयुद्ध (War and Civil War) – युद्ध उस लड़ाई को कहा जात है जो सम्प्रभुता–सम्पन्न राज्यों के मध्य लड़ी जाती है जबकि गृहयुद्ध एवं सम्प्रभुता–सम्पन्न राज्य के अन्तर्गत विभिन्न वर्गों के बीच लड़ाई होती है। स्पेन में जनरल फ्रेंको (General Franco) का स्पेन की सरकार के विरूद्ध गृहयुद्ध का उदाहरण है। ओपेनहीम के शब्दों में, "गृहयुद्ध के अन्तर्गत एक राज्य में दो परस्पर विरोधी पक्ष सत्ता प्राप्त करने के लिये शस्त्रों का सहारा लेते है अथवा जनता का एक बड़ा भाग वैध सरकार के विरूद्ध विद्रोह करता है।

19.8.9 राजनयिक युद्ध–क्रिया (Political Warfare) – राजनयिक युद्ध में राज्य सैनिक शक्ति का प्रयोग नहीं करता, लेकिन किसी न किसी रूप में शक्ति का प्रयोग अवश्य होता है। राजनयिक युद्ध में राज्यों द्वारा शत्रु को कमजोर करने के लिए अवपीड़क साधनों (Coercive means) का प्रयोग किया जाता है।

वुल्फ तथा कोलोम्बिस ने राजनयिक युद्ध की परिभाषा देते हुए कहा है कि, राजनयिक युद्ध "शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक हिंसा का नियन्त्रित रूप है जो किन्ही विशेष विदेशी व्यक्तियों तथा जनताओं के विरूद्ध संचालित किया जाता है।"

राजनयिक युद्ध के साधन – राजनयिक युद्ध के प्रमुख साधन निम्न है।

(i) **फूट डालने के लिए प्रचार** – विरोधी पक्ष को कमजोर करने हेतु उसमें फूट डालने के लिए प्रचार किया जाता है।

(ii) **आतंकित करने के लिए प्रचार** – विपक्ष को आतंकित करने के लिए प्रचार किया जाता है।

(iii) **अल्पसंख्यकों को समर्थन देना** – शत्रु देश को कमजोर करने के लिए वहाँ के अल्पसंख्यक समुदाय को समर्थन देकर अपने पक्ष में किया जाता है। इससे सरकार के संचालन में बाधा उपस्थित की जा सकती है।

(iv) **निर्बल करने वाले आर्थिक साधन** – दूसरे राज्यों को निर्बल करने के लिए आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिये जाते है जैसे– अमरीका ने भारत द्वारा परमाणु परीक्षण करने पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिये थे।

(v) **अपराधियों को संरक्षण देना** – शत्रु देश के राजनीतिक अपराधियों को संरक्षण देना, दूसरे राज्यों में गुप्तचर गतिविधियों में वृद्धि करना आदि।

(vi) **क्रान्ति को प्रोत्साहन देना** – किसी दूसरे देश में क्रांति करने के लिए प्रोत्साहन देना भी एक साधन है। साम्यवादी चीन ने इण्डोनेशिया में सुकार्णो सरकार का तख्ता पलटने का षड्यन्त्र रचा, लेकिन सफल नही हुआ।

(vii) **अन्य साधन** – राजनीतिक युद्ध के अन्य साधन है – विद्रोह, ध्वंसन, हस्तक्षेप, नाकाबन्दी, बहिष्कार आदि।

19.9 युद्ध के प्रभाव

युद्ध के प्रभाव निम्नलिखित है।

19.9.1 राजनयिक सम्बन्धों पर प्रभाव (Effects on Diplomatic Relations) – युद्ध आरम्भ होने का सबसे पहला प्रभाव राजनयिक सम्बन्धों पर पड़ता है। जिन देशों के बीच युद्ध छिड़ता है उनके राजदूतों को स्वदेश लौट जाने के लिये कहा जाता है। यह व्यवस्था की जाती है कि राजदूतों को स्वदेश पहुँचने में किसी प्रकार का खतरा न हो। जब तक वे स्वदेश नहीं पहुँच जाते जब तक उनकों राजनयिक विशेषधिकारों का उपयोग करने का भी अधिकार रहता है। राजदूतों के चले जाने पर उनके दूतावास किसी तटस्थ देश को सौप दिये जाते है और उनके कागज पत्रों को मुहरबन्द कर दिया जाता है, ताकि उनका रहस्योद्घाटन न हो। राजनयिक दूतों के अतिरिक्त वाणिज्य दूतों से भी सम्बन्ध–विच्छेद कर दिया जाता है।

19.9.2 ऋण पर प्रभाव (Effects on Debts) – युद्ध का ऋणों पर भी प्रभाव पड़ता है। युद्ध छिड़ने पर ऋण लेने वाले राज्य के लिये यह आवश्यक नहीं रहता कि वह ऋणदाता योद्धा राज्य के ऋण का भुगतान करे, किन्तु युद्ध से ऋणदाता राज्य का अधिकार सदा के लिये समाप्त नहीं हो जाता । युद्ध के बाद शान्ति स्थापित हो जाने के पश्चात् ऋणदाता राज्य ऋणी राज्य से भुगतान लेने का हकदार हो जाता है। युद्ध के दौरान में किये गये ऋण के भुगतान के लिये ऋणी राज्य को बाध्य नहीं किया जाता।

19.9.3 समझौते पर प्रभाव (Effect on Contracts) – योद्धा राष्ट्रों में बाध्य राजनयिक और व्यापारिक सम्बन्धों के समाप्त हो जाने का परिणाम यह होता है कि इन राज्यों के नागरिकों, कम्पनियों, निगमों आदि द्वारा किये गये आपसी समझौते भी भंग हो जाते है। योद्धा राष्ट्रों के व्यक्तियों अथवा कम्पनियों के बीच साझेदारी के समझौते भी टूट जाते है। इस संदर्भ में हॉल का

कहना है, "युद्ध का प्रभाव केवल युद्धग्रस्त देश के लोगों के अनुबन्धों पर ही नहीं पड़ता है वरन् तटस्थ देश के नागरिक तथा युद्धग्रस्त देश के पक्ष में नागरिकों के बीच होने वाले अनुबन्धों पर भी युद्ध का प्रभाव पड़ता है।

19.9.4 व्यापारिक सम्बन्धों पर प्रभाव (Effect on Commercial Relations) – युद्ध छिड़ने पर युद्धरत राष्ट्रों के व्यापारिक सम्बन्ध समाप्त हो जाते है। यदि पूरी तरह से समाप्त नहीं होते तो कम से कम युद्ध काल तक के लिये स्थगित तो अवश्य हो जाते है। यदि युद्ध के दौरान में योद्धा राष्ट्रों के बीच व्यापार की आवश्यकता पड़ती है तो उसके लिये विशेष व्यवस्था की जाती है और इस प्रकार की गई व्यवस्था के अतिरिक्त अन्य प्रकार के व्यापार को निषिद्ध कर दिया जाता है। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान इंग्लैण्ड की सरकार ने 'Trading with Enemy Act' पास करके शत्रु देशों के साथ व्यापार करने की विशेष अनुमति प्रदान की थी। इस अधिनियम में की गई व्यवस्थाओं के अतिरिक्त और सभी प्रकार के व्यापार को निषिद्ध कर दिया गया था। इस प्रकार का कानून यू.एस.ए. ने भी बनाया था। वहाँ भी शत्रु देशों के साथ सम्पूर्ण व्यापारिक सम्बन्ध समाप्त कर दिये गये थे। इस प्रकार यह सिद्व होता है कि युद्ध के दौरान में प्रायः सभी युद्धरत देश आपसी व्यापार को निषिद्ध कर देते है।

19.9.5 सन्धियों पर प्रभाव (Effects on Treaties) – युद्ध का सन्धियों पर क्या प्रभाव पड़ता है यह अत्यन्त विवादास्पद विषय है। कुछ विद्वानों का यह मत है कि युद्ध छिड़ने पर योद्धा राष्ट्रों के मध्य सभी प्रकार की सन्धियाँ समाप्त हो जाती है। इसके विपरीत कुछ विद्धानों का कहना है कि युद्धारम्भ से सभी सन्धियाँ समाप्त नहीं होतीं।

संक्षेप में, युद्ध छिड़ने का सन्धियाँ पर जो प्रभाव पड़ता है, उसको निम्नांकित रूप से व्यक्त किया जा सकता है –

(i) युद्धरत राज्यों (Belligerent States) के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने वाली सन्धियाँ युद्ध छिड़ने पर समाप्त हो जाती है।

(ii) ऐसी सन्धियाँ जिनका सम्बन्ध सीमा–निर्धारण अथवा किसी प्रदेश के आदान–प्रदान से सम्बन्धित होता है। युद्ध से अप्रभावित रहती है। युद्ध छिड़ने पर भी वह पहले की भाँति विद्यमान रहती है।

(iii) जिन सन्धियों का सम्बन्ध युद्ध संचालन से होता है अथवा जो योद्धिक नियमों आदि का निर्धारण करती है, वे युद्ध छिड़ने पर समाप्त नहीं होती। युद्ध के दौरान भी वह पूर्ण प्रभावी रहती है। 1819 और 1907 के हेग सम्मेलन जैसी सन्धियाँ इसी प्रकार की है।

19.9.6 शत्रु देश में योद्धा सम्पत्ति पर प्रभाव (Effects on the Belligerent Property in Enemy Country) – कुछ समय पहले यह प्रथा प्रचलित थी कि युद्ध छिड़ने पर अपने–अपने देश में शत्रु की सभी प्रकार की सम्पत्ति को जब्त कर लिया जाये लेकिन धीरे–धीरे इस प्रथा का अन्त हो गया। अब अपने देश में शत्रु की वैयक्तिक सम्पत्ति को जब्त नहीं किया जाता और न ही उसके ऋणों का समाप्त किया जाता है। युद्ध के दौरान अचल सम्पत्ति को जब्त नहीं किया जाता और न ही उसके ऋणों को समाप्त किया जाता है। युद्ध के दौरान अचल सम्पत्ति को युद्ध के कार्यों के लिये जब्त किया जाता है लेकिन किसी भी राज्य को इस बात का अधिकार नहीं है कि वह शत्रु की वैयक्तिक सम्पत्ति पर अपना अधिकार स्थापित कर ले। शत्रु राज्यों के जहाजों के विषय में अन्तर्राष्ट्रीय कानून में विशेष व्यवस्था की गयी है। यह कहा गया है कि शत्रु राज्य के व्यापारिक जहाजों को युद्ध के हितों में कोई योद्धा राज्य, यदि वे खुले समुद्र में हो, अधिकृत कर सकता है।

19.9.7 युद्ध को रोकने तथा शान्ति को दृढ़ बनाने के सुझाव (Suggestions for Preventing War and Strengthening Peace) – आधुनिक युद्ध अत्यन्त भयानक और विनाशकारी प्रकार के होते है। आज राष्ट्रों के पास इतने अधिक घातक अस्त्र–शस्त्र हैं कि वे विश्व का अनेक बार विनाश कर सकते है। यद्यपि यह अलग बात है कि एक बार विनाश हो जाने के पश्चात् दोबारा विनाश करने के लिए कुछ शेष नहीं बचेगा। इसलिए वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विश्व को विनाश से बचाने के लिए युद्ध के विकल्पों पर विचार करना अनिवार्य हो गया है। **जॉन फॉस्टर डलेस** (John Foster Dulles) ने युद्ध रोकने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये है –

(i) युद्ध की विभीषिका का ज्ञान करना,

(ii) यह शिक्षा देना कि युद्ध कभी उपादेय नहीं होता,

(iii) आर्थिक राष्ट्रवाद के स्थान पर आर्थिक अन्तर्राष्ट्रीयता का प्रचार,

(iv) आक्रमणकारी राष्ट्रों द्वारा अर्जित लाभों को अमान्य करना,

(v) निःशस्त्रीकरण का प्रसार,

(vi) सामूहिक सुरक्षा के प्रावधानों की प्रभावशीलता,

(vii) अन्तर्राष्ट्रीय कानून,

(viii) विश्व सरकार के लिए प्रयत्न,

(ix) राष्ट्रीय नीति के रूप में युद्ध का परित्याग।

19.10 अन्य सुझाव–

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में युद्ध की सम्भावनाओं को कम करने के लिए कुछ सुझाव इस प्रकार है –

(1) युद्ध की बुराइयों तथा शान्ति के लाभों के प्रति शिक्षा का प्रसार तथा जागृति पैदा की जानी चाहिए।

(2) निःशस्त्रीकरण को निःशस्त्रीकरण की ओर पहला कदम मान कर अपनाया जाना चाहिए।

(3) संयुक्त राष्ट्र संघ को सुदृढ़ करना तथा इसकी सुरक्षा समिति को अन्तर्राष्ट्रीय समाज की शान्ति तथा व्यवस्था बनाये रखने के उत्तरदायित्व के लिए और अधिक विशाल लोकतन्त्रात्मक तथा शक्तिशाली बनाना चाहिए।

(4) अधिक अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग द्वारा शीत युद्ध की समाप्ति के इस युग में अन्तर्राष्ट्रीय विकास के लिए अधिक सक्रिय तथा समुचित पग उठाये जाने चाहिए।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय कानून को और स्पष्ट करना तथा इसके कार्य–क्षेत्र को I.C.J. (अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय) के आवश्यक कार्य–क्षेत्र के रूप में और बढ़ाना चाहिए।

(6) आक्रमणकारी को आक्रमण के लाभों से वंचित करना चाहिए।

(7) अन्तर्राष्ट्रीय एकीकरण की प्रवृत्तियों को और सुदृढ़ करना विशेषतया विभिन्न राष्ट्रों की आर्थिक एकीकरण की प्रवृत्ति को दृढ़ करना चाहिए।

(8) अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की पुनः संरचना की जानी चाहिए, ताकि अन्तर्राष्ट्रीय आय को सभी राष्ट्रों में उचित तथा आवश्यक रूप में बाँटा जा सके।

(9) अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति के लिए दृढ़ आर्थिक, राजनीति, कूटनीति तथा सुरक्षात्मक कदम उठाये जाने चाहिए। आतंकवादी संगठनों पर प्रतिबन्ध लगाकर सभी राज्यों का यह कर्त्तव्य बनाया जाना चाहिए कि वह अपने–अपने भू–क्षेत्र में ऐसे संगठनों को न तो स्थापित होने दे और न ही आतंकवादियो को कोई शरण या सहायता दे।

19.11 सांराश –

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों हस्तक्षेप और आक्रमण की नीति को अपनाने का उद्देश्य प्रायः राष्ट्रीय हितों को पूरा करना है। आजकल प्रायः जो किसी राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्रों के मामलों में हस्तक्षेप या आक्रमण किया जाता है तो उसका आधारभूत तर्क आत्म–सरंक्षण या जवाबी कार्यवाही कहकर दिया जाता है। इसी प्रकार मानव अधिकारो का खुलेआम उल्लंघन होता है इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हस्तक्षेप व आक्रमण के सम्बन्ध में आवश्यक नियमों और परिस्थतियों का उल्लेख किया जायें। साथ ही उसके परिचालन के क्रम में तथ्यों परिस्थतियों पर भी ध्यान रखा जाए।

अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में हस्तक्षेप के प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।
2. हस्तक्षेप का अर्थ एवं प्रकारों का उल्लेख कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. हस्तक्षेप को वैध बनाने के कोई चार कारण लिखिए।
2. आन्तरिक और बह्य हस्तक्षेप में अन्तर बताईए।
3. युद्ध के कोई चार प्रभावों का वर्णन कीजिए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में हस्तक्षेप से क्या अभिप्राय है।
2. राजनयिक युद्ध किसे कहते है।
3. वैध हस्तक्षेप क्या है।

इकाई–20

परमाणु प्रसार

(Nuclear Proliferation)

20.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में परमाणु प्रसार को रोकने के प्रयासों, परमाणु प्रसार के प्रभाव व परमाणु अप्रसार के मार्ग में बाधाओं के बारे में वर्णन किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :–

- परमाणु प्रसार का अर्थ जान सकेंगे।
- परमाणु अप्रसार के लिए किये गये प्रयासों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- परमाणु अप्रसार के मार्ग में बाधाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

वर्तमान युग परमाणु युग कहलाता है, जिसमें परमाणु शस्त्रों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। परमाणु शस्त्रों की इस बढ़ती संख्या को परमाणु प्रसार कहते है।

परमाणु युग का आरम्भ 16 जुलाई, 1945 को माना जाता है जब अमरीका द्वारा प्रथम परमाणु परीक्षण किया गया। 6 अगस्त, 1945 को जापान के शहर हिरोशिमा और 9 अगस्त, 1945 को नागासाकी पर परमाणु बम अमरीका द्वारा गिराये गये जिनसे लगभग 3.5 लाख लोग मारे गये। अमेरिका के बाद रूस ने भी अणु बम का विकास कर लिया। इसके पश्चात् ब्रिटेन, फ्रांस एवं साम्यवादी चीन भी अणुशक्ति देश बन गए। इसके अतिरिक्त भारत, इजराइल, पाकिस्तान, जर्मनी, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका तथा ब्राजील इत्यादि ऐसे ऐश हैं जिनके पास अणुबम विकसित करने की पर्याप्त क्षमता है तथा इन देशों ने भी अणुबम का निर्माण कर लिया है। परमाणु शस्त्र विश्व को अनेक बार नष्ट करने की क्षमता रखते है। **मैम्स लर्नर** ने परमाणु युग को "The Age of Overkill" (अति विध्वंसकारी युग) कहा है।

वर्तमान मे विश्व में लगभग 60,000 परमाणु शस्त्र तैयार हैं जिससे समस्त विश्व को 12 बार नष्ट किया जा सकता है। फिर भी इनकी होड़ निरन्तर जारी है। इन शस्त्रों का पृथ्वी से संचालन करने के स्थान पर अन्तरिक्ष से संचालन करने के प्रयास चल रहे हैं। इसके लिए अनेक सैन्य उपग्रह अन्तरिक्ष में छोड़े हैं। परमाणु विस्फोट सामग्री कितनी अधिक मात्रा में विद्यमान है ? इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि यदि उसे विश्व के सभी व्यक्तियों में समान मात्रा में बाँटें तो प्रति व्यक्ति के हिस्से में 10 टन आयेगी। अब तक किये गये नाभिकीय परीक्षणों से जितनी रेडियोधर्मिता फैल चुकी है वह अन्ततः मानव जाति के लिए घातक सिद्ध होगी। परमाणु शस्त्रों के रूप में सम्पूर्ण मानव जाति के अस्तित्व का संकट खड़ा हो गया है। यदि परमाणु शक्ति का प्रयोग सृजन करने के लिए लगाया जाये तो इससे बिजली उत्पादन, परिवहन, दूरसंचार और चिकित्सा में यह शक्ति वरदान सिद्ध होगी।

20.2 परमाणु अप्रसार–परमाणु अप्रसार से तात्पर्य वर्तमान समाय में विद्यमान परमाणु शस्त्रों के प्रसार को रोकने से है। अर्थात् परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र अपने परमाणु आयुधों की संख्या में वृद्धि नहीं करेंगे तथा परमाणु शक्ति विहीन राष्ट्र परमाणु आयुधों का निर्माण नहीं करेंगे।

परमाणु अप्रसार परमाणु शस्त्रों के क्षैतिजिय (Horizontal) विस्तार पर अंकुश लगाता है। इसके अन्तर्गत परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र गैर परमाणु शक्ति वाले देशों को परमाणु अस्त्र प्राप्त करवाने में सहायता नहीं करेंगे तथा गैर परमाणु शक्ति सम्पनन देश परमाणु अस्त्र प्राप्त भी नहीं कर सकते। 1968 की परमाणु अप्रसार संधि इसी नीति पर आाधारित थी।

20.3 परमाणु अप्रसार हेतु प्रयास

परमाणु अप्रसार हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ व अन्य संस्थाओं द्वारा अनेक प्रयास किय, जिनमें निम्नलिखित हैं–

20.3.1 परमाणु ऊर्जा आयोग–संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा परमाणु प्रसार के क्षेत्र में पहला प्रयास महासभा द्वारा 1946 में एक प्रस्ताव पारित कर परमाणु ऊर्जा आयोग (Nuclear Energy Commission) की स्थापना था। इस आयोग को शान्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिए परमाणु ऊर्जा के नियन्त्रण के बारे में उपयोगी सुझाव देने को कहा गया। इसने अपनी रिपोर्ट में परमाणु ऊर्जा के लिए एक प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण व्यवस्था की सिफारिश की। सोवयित संघ ने इसे मानने से इन्कार कर दिया। परिणामस्वरूप फरवरी, 1947 में संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् ने एक प्रस्ताव पारित कर परम्परागत शस्त्रों सम्बन्धी आयोग की स्थापना की। इसे दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जायेगा कि इन दोनों आयोगों को असफलता हाथ लगी, क्योंकि उनके सुझावों और सिफारिशों पर अमरीका और सोवियत संघ में मतभेद बने रहे।

20.3.2 निशस्त्रीकरण आयोग–अक्टूबर, 1950 और उसके बाद अमरीकी राष्ट्रपति ट्रूमेन ने संयुक्त राष्ट्र संघ में सुझाव रखा कि परमाणु ऊर्जा आयोग तथा परम्परागत शस्त्र आयोग के कार्यों को मिला दिया जाये। अन्ततः 11 जनवरी, 1952 को महासभा ने दोनों आयोग मिलाकर एक निशस्त्रीकरण आयोग (Disarmament Commission) की स्थापना की। इस आयोग के सदस्यों की संख्या 13 रखी गयी–जिसमें 5 सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य, छः अस्थायी सदस्य तथा कनाडा को सम्मिलित किया गया। इस आयोग ने शस्त्रास्त्रों एवं सैनिक दस्तों की कमी, निशस्त्रीकरण समझौते, शस्त्र सूची और सत्यापन आदि जैसे कई निशस्त्रीकरण प्रस्ताव पेश किए, किन्तु विश्व राष्ट्रों का उनके बारे में नकारात्मके रूख रहा। इस कारण यह आयोग भी निशस्त्रीकरण प्रयास में असफल ही रहा।

20.3.3 शान्ति के लिए परमाणु योजना–दिसम्बर, 1953 मे अमरीकी राष्ट्रपति आइनजहावर ने शान्ति के लिए परमाणु योजना (Atom for Peace Plan) का प्रस्ताव रखा। इसका प्रमुख उद्देश्य परमाणु ऊर्जा का शान्तिपूर्ण उपयोग था। इस योजना में परमाणु शक्तियों से इसका पालन करने को कहा गया, किन्तु सोवियत संघ द्वारा इसके विरोध के कारण अमरीकी राष्ट्रपति का यह प्रस्ताव निष्फल हो गया। सोवयित संघ का मानना था कि शान्ति के लिए परमाणु ऊर्जा योजना के पहले अस्त्रों के निषेध पर समझौता किया जाये।

20.3.4 परमाणु परीक्षण पर प्रतिबन्ध–जेनेवा सम्मेलन की असफलता के बावजूद परमाणु परीक्षण पर प्रतिबन्ध (Nuclear Test Ban) के बारे में वार्ता चलती रही। अक्टूबर, 1958 से 3 अप्रैल, 1961 तक चले जेनेवा सम्मेलन के बाद तीन विश्व शक्तियाँ–ग्रेट ब्रिटेन, अमरीका और सोवियत संघ में इस बात पर सहमत हुई, कि बाह्य अन्तरिक्ष महासागर तथा भूमि में सभी प्रकारे के परमाणु परीक्षण बन्द कर दिये जाने चाहिए। इस प्रकार की संधि को अन्तर्राष्ट्रीय स्टाफ के सख्त नियन्त्रण एवं निरीक्षण (Control and Supervision) के अन्तर्गत लागू किया जाना था। किन्तु यह प्रयास सोवियत संघ के प्रतिकूल रूख के कारण असफल हो गया। उसने माँग की कि एक निष्पक्ष प्रशासक को तीन सदस्यों (एक तटस्थ देशों से, एक पश्चिमी खेमे से तथा एक सोवियत खेमे से) के आयोग से प्रतिस्थापित (Replace) किया जाये। इससे परमाणु परीक्षण पर प्रतिबन्ध के बारे में आगे का परामर्श रूक गया और इस बारे में किसी भी प्रकार का समझौता न हो सका।

20.3.5 दस राष्ट्रों का निशस्त्रीकरण सम्मेलन–1960 में जेनेवा में निशस्त्रीकरण सम्मेलन आयोजित हुआ जिसमें दस राष्ट्रों ने भाग लिया। पश्चिमी खेमे से अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन, कनाडा, फ्रांस एवं इटली तथा साम्यवादी खेमे से सोवियत संघ, युगोस्लाविया, पोलैण्ड, रूमानिया एवं बुल्गारिया सम्मेलन में उपस्थित थे। दोनों खेमों की ओर से परमाणु हथियारों पर रोक लगाने, राकेट नष्ट करने तथा सैनिक संख्या घटाने जैसे अनेक प्रकार के प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये। किन्तु सम्मेलन का अन्त बहुत निराशापूर्ण वातावरण में हुआ, क्योंकि अन्तिम समय में सोवियत संघ ने अपने खेमे के अन्य देशों के साथ सम्मेलन से बहिष्कार कर दिया।

20.3.6 18 राष्ट्रों का निशस्त्रीकरण सम्मेलन–1962 में एक बार पुनः निशस्त्रीकरण सम्मेलन हुआ। इसमें भाग लेने वाले 17 देश थे–अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन, कनाडा, इटली, सोवियत संघ, रूमानिया, बुल्गारिया, पौलैंड, चेकोस्लोवाकिया, ब्राजील, भारत, बर्मा, संयुक्त अरब अमीरात, मैक्सिको, इथियोपिया, स्वीडन तथा नाइजीरिया। हालांकि इसमें 17 राष्ट्रों ने भाग लिया। किन्तु इसे 18 राष्ट्रों का निःशस्त्रीकरण सम्मेलन कहने का करण यह है कि अट्ठारहवें देश फ्रांस ने इसका बहिष्कार किया। सम्मेलन में अमरीका ने प्रमुख परमाणु शस्त्रास्त्रों में 30 प्रतिशत कटौती का प्रस्ताव पेश किया। सोवियत संघ ने सामान्य और पूर्ण निःशस्त्रीकरण का प्रस्ताव रखा, जिसके तहत तीन चरणों में सभी विदेशी सैनिक अड्डों तथा परमाणु अस्त्रों ने वाहक–साधनों के उन्मूलन की व्यवस्था की। तटस्थ देशों ने परमाणु विस्फोट पर रिपोर्ट देने के लिए वैज्ञानिकों के एक अन्तर्राष्ट्रीय आयोग की स्थापना का प्रस्ताव रखा। इस सम्मेलन के भी कोई लाभकारी नतीजे सामने नहीं आये।

20.3.7 अणु परीक्षण पर प्रतिबन्ध (Partial Test Ban Treaty-PBT or Moscow test Ban Treaty)–वायुमण्डल में अणुशक्ति परीक्षण पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए सन्धि पर अमरीका, सोवियत संघ और ब्रिटेन के विदेश मन्त्रियों ने संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचित ऊथांट के समक्ष 5 अगस्त, 1963 को हस्ताक्षर किये। फ्रांस और चीन इसमें सम्मिलित नहीं हुए। इस सन्धि में पाँच धाराएँ निम्न प्रकार थीं–

1. तीनों राष्ट्रों द्वारा संकल्प किया गया कि वे अपने अधिकार क्षेत्र और नियन्त्रण में विद्यमान किसी भी प्रदेश के वायुमण्डल में, इसकी सीमाओं में, बाह्य अन्तरिक्ष में, प्रादेशिक महासागरों के जल में कोई भीआण्विक विस्फोट नहीं करेंगे।
2. इस सन्धि में संशोधन का प्रस्ताव किसी भी राष्ट्र की सरकार द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि हस्ताक्षरकर्ता राष्ट्रों में से 1/3 राष्ट्र प्रस्ताव के पक्ष में हों तो संशोधन पर विचार किया जा सकता है।
3. इस सन्धि पर कोई भी देश हस्ताक्षर कर सकता है। इसके लिए यह व्यवस्था है कि हस्ताक्षरकर्ता देश इस सन्धि पर अपनी संसद या राष्ट्रीय परिषद् का समर्थन प्राप्त करेगा और इस समर्थन को सोवियत संघ, अमरीका व ग्रेट ब्रिटेन के पास जमा कराना पड़ेगा।

4. यह सन्धि असीमित समय के लिए है। हस्ताक्षरकर्ता देश 3 माह पूर्व नोटिस देकर इस सन्धि से हटसकता है।

5. इस सन्धि के अंग्रेजी व रूसी भाषा के दोनों रूप समान रूप से प्रामाणिक समझे जायेंगे।

इस सन्धि में भूमिगत अणु परीक्षणों को सम्मिलित नहीं किया गया। इस सन्धि का महत्त्व बताते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ के **महासचिव ऊथांट** ने कहा कि, "परीक्षण प्रतिबन्ध की सन्धि यद्यपि तीन दशाओं तक सीमित है एवं निःशस्त्रीकरण की मुख्य समस्या से मिलती–जुलती है, परन्तु इसके अतिरिक्त भी वह अपने आप में एक प्रमुख उद्देश्य है। इसके अधिक विस्फोटों से उत्पन्न हुई रेडियो–क्रियाशील धूल के खतरे से भी मानवता को बचाने का उद्देश्य सीधी तरह से पूरा हो जाता है। इसके अतिरिक्त आण्विक शस्त्रों पर रोक तथा महाविनाश के नये शस्त्रों के विकास पर प्रतिबन्ध लगाने में सहायता मिलेंगी एवं इस तरह शस्त्रों की होड़ को कम किया जा सकेगा। इस सन्धि से भूमिगत परीक्षणों पर प्रतिबन्ध सहित एक विस्तृत सन्धि करने का मार्ग उपलब्ध हो सकेगा।

20.3.8 परमाणु अप्रसार सन्धि (Nuclear Non-Proliferation Treaty)–दुनिया में हथियारों की होड़ सीमित करने तथा निशस्त्रीकरण के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने में इस सन्धि को महत्वपूर्ण माना जा सकता है। नवम्बर, 1967 में संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा की राजनीतिक समिति ने परमाणु आयुधों के निर्माण एवं प्रसार पर रोक लगाने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया। इसमें कहा गया कि परमाणु हथियार–विहीन राष्ट्र परमाणु अस्त्रों का निर्माण नहीं करें और परमाणु आयुध सम्पन्न राष्ट्र इसका निर्माण बन्द करें। इसको सन्धि के मसविदे का रूप देने के लिए निशस्त्रीकरण आयोग को प्रस्तुत किया गया। इस आयोग द्वारा तैयार सन्धि का मसविदा महासभा ने 13 जून, 1968 को स्वीकार कर लिया तथा सदस्य देशों को इस पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया। अमरीका और सोवियत संघ जैसे महत्वपूर्ण देशों सहित 40 देशों का अनुसमर्थन मिलने पर इस सन्धि को 5 मार्च, 1970 को लागू कर दिया गया। इस सन्धि की प्रमुख व्यवस्थाएँ निम्नांकित है :

1. परमाणु हथियार–सम्पन्न राष्ट्र, परमाणु आयुध–विहीन देशों को परमाणु अस्त्र प्राप्त करने में किसी प्रकार की सहायता नहीं देंगे;
2. हस्ताक्षरकर्ता परमाणु–अस्त्र–विहीन राष्ट्र परमाणु हथियार बनाने का कोई प्रयास नहीं करेंगे;
3. हस्ताक्षरकर्ता देशों को असैनिक कार्यों के लिए परमाणु ऊर्जा के विकास की पूरी छूट रहेगी। अर्थात् वे परमाणु ऊर्जा का शान्तिपूर्ण कार्यों के लिए उपयोग कर सकेंगे; और
4. परमाणु अस्त्रों के परीक्षण पर रोक लगाने की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था हो। इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेन्सी को अधिकार दिया गया। साथ ही कहा गया कि गैर परमाणु ऊर्जा के शान्तिपूर्ण कार्यों के लिए प्रयोग के बारे मे वे एजेन्सी के साथ समझौता कर ऐसा करें।

परमाणु अप्रसार सन्धि की विशेषताएँ

इस सन्धि पर भारत, चीन, पाकिस्तान सहित कई देशो ने हस्ताक्षर नहीं किये। इन देशों द्वारा इस निम्न आलोचना की गई :–

1. बड़ी शक्तियों द्वारा परमाणु एकाधिकार की साजिश–परमाणु प्रसार रोक सन्धि पर अन्य राष्ट्रों के हस्ताक्षर करवा कर सन्धि की पाँच परमाणु शक्तियाँ अपना परमाणु एकाधिकार कायम रखने की साजिश का खेल खेलना चाहती हैं। इस सन्धि मे परमाणु शक्तियों द्वारा परमाणु हथियार बनाने पर नहीं, बल्कि अन्य देशों द्वारा परमाणु हथियार न बनाने और विस्फोट नहीं करने की व्यवस्था की गयी है। इस प्रकार बड़ी शक्तियाँ अन्य देशों को शक्तिशाली नहीं देखना चाहती।

2. फ्रांस और चीन द्वारा सन्धि पर हस्ताक्षर करने से इन्कार–दुनिया की पाँच परमाणु एवं बड़ी शक्तियों में फ्रांस एवं चीन शामिल हैं। उन्होंने इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया। जब इन जैसे बड़े देशों ने इस सन्धि के प्रति उपेक्षा भाव दिखाया जिसके कारण गैर परमाणु देशों में सन्धि के प्रति नकारात्मक रूख रखा।। हालांकि चीन ने अमस्त, 1991 मे कहा कि वह अब इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने को तैयार हैं, किन्तु ऐसा लगता है कि वह इसके साथ अपनी कतिपय शर्तें भी जोड़ेगा, जिससे इसका कोई विशेष महत्व नहीं रह जायेगा। यह चीन द्वारा हस्ताक्षर न करने के समान ही होगा।

3. इसे सामान्य या पूर्ण निशस्त्रीकरण सन्धि नहीं माना जा सकता–अनेक लोग इस सन्धि को निशस्त्रीकरण के क्षेत्र मे अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम मानते हैं जो सही नहीं है। इसमे केवल परमाणु हथियारों पर रोक की ही व्यवस्था है, अन्य परम्परागत शस्त्रास्त्रों का उत्पादन रोकने या उन्हें सीमित करने के बारे मे यह एकदम मौन है। इस कारण इसे सामान्य या पूर्ण निशस्त्रीकरण सन्धि कदापि नहीं माना जा सकता।

4. सन्धि भेदभाव पूर्ण–सन्धि पर अनेक देशों द्वारा हस्ताक्षर न करने का प्रमुख कारण उसकी भेदभाव पूर्ण व्यवस्थाएँ है। इसमे बड़ी **शक्तियों** द्वारा परमाणु शस्त्रों के उत्पादन, शस्त्र जमा करने (Stock Piling) तथा उनके प्रयोग पर किसी

प्रकार की रोक नहीं लगायी गयी है। इसके विपरीत गैर–परमाणु देशों द्वारा ऐसे हथियार नहीं बनाने के सम्बन्ध में लम्बी–चौड़ी व्यवस्थाएँ की गयी हैं। इसे दोहरे मानदण्ड अपनाने वाली सन्धि ही कहा जा सकता है क्योंकि परमाणु और गैर–परमाणु देशों के बारे में इसकी व्यवस्थाएँ अलग–अलग हैं।

5. सन्धि से परमाणु ऊर्जा के शान्तिपूर्ण उपयोग में बाधा–इस सन्धि में गैर–परमाणु राष्ट्रों से कहा गया है कि वे परमाणु विस्फोट न करें तथा इसेक बदले परमाणु हथियार सम्पन्न राष्ट्र परमाणु ऊर्जा के शान्तिपूर्ण प्रयोग के लिए तकनीकी जानकारी एवं मदद देंगे। अनेक तकनीकी बातों का बहाना बनाकर परमाणु शक्तियाँ इस सहायता के आश्वासन को पूरा करने से मुकर सकती हैं। इस प्रकार परमाणु ऊर्जा के अभाव में विकासशील देशों द्वारा विकास कार्यक्रमों को सम्पादित करने में अनेक प्रकार की बाधाएँ उठेगी।

20.3.9 SALT-I समझौता–अमरीका और सोवियत संघ के मध्य 4 जुलाई, 1974 को दस–वर्षीय अणु शस्त्र परिसीमन समझौता हुआ जिसे 31 मार्च, 1976 से लागू किया जाना निश्चित किया गया। इसके अनुसार यह स्वीकार किया गया कि 10 वर्षों तक दोनों शक्तियाँ आक्रामक परमाणु शस्त्रों के उत्पादन को सीमित रखेंगी तथा 150 टन से अधिक के भूमिगत परमाणु परीक्षण नहीं करेंगी। इसमे यह भी निश्चित किया गया कि शान्तिपूर्ण कार्यों के लिए किये गये परीक्षण इसकी परिधि में नहीं आयेंगे।

20.3.10 SALT-II समझौता–अमरीका और सोवियत संघ मे 1979 में साल्ट-II समझौते पर हस्ताक्षर हुए। इसके बाद इस समझौते पर दोनों देशों की संसद द्वारा अनुमोदन होना था। अमरीकी कांग्रेस में इस पर विचार चल रहा था कि तभी सोवियत संघ ने अफगानिस्तान में अपनी सेनाएँ भेजकर हस्तक्षेप कर दिया। राष्ट्रपति कार्टर ने इस हस्तक्षेप के विरोधस्वरूप साल्ट-II के अनुमोदन को स्थगित करा दिया। इसलिए यह लागू नही हो सका।

20.3.11 मध्यम दूरी प्रक्षेपास्त्र सन्धि–8 दिसम्बर, 1987 को राष्ट्रपति रीगन और मिखाइल गोर्बाच्योव ने वाशिंगटन में इस सन्धि पर हस्ताक्षर किसे। इसमें दोनों नेताओं ने मध्यम दूरी के प्रक्षेपास्त्र (मिसाइलें) नष्ट करने को सहमत हो गये। इसके अनुसार 1,139 परमाणु हथियार नष्ट किये जाने थे। इसके अनुसार 50 किमी. से 5,000 किमी. तक भूमि पर मार करने वाले प्रक्षेपास्त्र नष्ट होने थे, जिनमें सोवियत संघ के सभी SS-20, SS-21, SS-22 और SS-23 मिसाइलें तथा अमरीका के Pershing IA, Pershing II तथा पृथ्वी पर लगे Curise Missiles नष्ट हो जाने थे। निर्धारित समय सीमा में दोनों ने इन्हें नष्ट कर दिया। समस्त विश्व ने इसका स्वागत किया।

20.3.12 START-I सन्धि–अमरीकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश और सोवियत संघ नेता मिखाइल गोर्बाच्योव ने 31 जुलाई, 1991 को मॉस्को में 'सामरिक हथियारों में कटौती की ऐतिहासिक सन्धि' (Strategic Arms Reductions Treaty-START-I) पर हस्ताक्षर किये। इस सन्धि की शर्तों के अनुसार दोनों राष्ट्र अपने परमाणु शस्त्रों में स्वेच्छा से 30 प्रतिशत कटौती करने को सहमत हुए। दोनों नेताओं ने इसे वास्तविक कटौती (Real Cut) कहा तथा सन्धि की प्रशंसा की।

यह स्टार्ट–I सन्धि 9 दिसम्बर, 2009 को समाप्त हो गई। स्टार्ट–I के स्थान पर एक नई स्टार्ट सन्धि पर अमरीका व रूस के बीच हस्ताक्षर चैक गणराज्य की राजधानी प्राग (Pragus) में 8 अप्रैल, 2010 को किए गए। अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा व रूसी राष्ट्रपति दमित्री मेदवेदेव द्वारा हस्ताक्षरित यह सन्धि स्टार्ट–I का स्थान लेगी। अमरीकी सीनेट व रूसी फैडरेशन काउन्सिल के अनुमोदन के पश्चात् दोनों देशों द्वारा दस्तावेजों के आदान–प्रदान के बाद यह प्रभावी होगा। मूलतः 10 वर्ष के लिए की गई इस सन्धि का कार्यकाल 5 वर्ष तक बढ़ाया जा सकेगा। नई स्टार्ट सन्धि (START) में दोनों देशों ने सात वर्षों में अपने परमाणु हथियारों की संख्या में एक–तिहाई तक कटौती करने तथा उन्हें ले जाने वाली पनडुब्बियों, मिसाइलों व बमवर्षकों की संख्या में आधी से अधिक कटौती करने के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त की है। ऑपरेशन डिप्लॉयड न्यूक्लीयर वारहैड्स की संख्या को घटाकर 1550 तक सीमित करने को दोनों पक्ष उस सन्धि से सहमत हुए हैं।

20.3.13 START-II सन्धि–अमरीकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश और सोवियत संघ नेता येल्तसिन ने 30 जनवरी, 1993 को मास्को में स्टार्ट– II सन्धि पर हस्ताक्षर किये जिसके अनुसार दोनों के परमाणु हथियारों में 2/3 कटौती करनी थी। राष्ट्रपति येल्तसिन ने इस सन्धि को अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि बताया।

20.3.14 व्यापक आणविक परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि (Comprehensive Test Ban Treaty-CTBT)–यह सन्धि विश्वभर में किये जाने वाले परमाणु परीक्षणों पर रोक लगाने के लिए लायी गयी थी। इस सन्धि पर 24 सितम्बर, 1996 से हस्ताक्षर होने शुरू हुए अब तक कुल मिलाकर 154 राष्ट्रों ने इस पर हस्ताक्षर कर दिये हैं तथा उनमें से 45 राष्ट्रों ने इसका विधिवत् अनुमोदन भी कर दिया है। परन्तु यह सन्धि तभी प्रभावी हो सकेगी जब विविध परमाणु क्षमता वाले सभी 44 देश इसकी पुष्टि कर दें। अभी तक 44 में से केवल 26 राष्ट्रों ने ही इस सन्धि का अनुमोदन किया है। 13 अक्टूबर, 1999 को अमरीकी कांग्रेस ने इसे अस्वीकार कर दिया। इसके पक्ष में 2/3 बहुमत आवश्यक था जबकि कांग्रेस ने 48 के मुकाबले 51 मतों से यह प्रस्ताव गिरा दिया। इसके बाद CTBT के प्रति विश्वास में कमी आयी है।

इस सन्धि के अनुसार कोई भी देश परमाणु परीक्षण नहीं करेगा, लेकिन परमाणु शस्त्र धारक देश अपने–अपने परमाणु शस्त्र बनाये रखेंगे तथा वे प्रयोगशालाओं को परमाणु अनुसन्धान हेतु परीक्षण कर सकेंगे। परमाणु शस्त्रविहीन देश परमाणु शस्त्र न बनायेंगे और न ही इसके लिए कोई परीक्षण करेंगे। वे शान्ति परमाणु तकनीक का विकास कर सकेंगे परन्तु इस सम्बन्ध में वे अपने परमाणु संयन्त्रों तथा केन्द्रों को अन्तर्राष्ट्रीय निरीक्षण के लिए खुला रखेंगे। भारत जैसे देश की इसको पक्षपातपूर्ण मानते हुए इसका विरोध कर रहे हैं क्योंकि इससे परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों की श्रेष्ठता को बनाये रखने का प्रयास किया गया।

20.3.15 अमेरिका–रूस में परमाणु शस्त्र कटौती सन्धि–मई, 2002 में अमेरिका के राष्ट्रपति जार्ज बुश ने रूस की यात्रा की। उन्होंने रूस के साथ मित्रता मजबूत करने के लिए परमाणु शस्त्रों की कटौती संबंधी ऐतिहासिक समझौते पर हस्ताक्षर किए। इस समझौते के अनुसार अमेरिका और रूस साढ़े सात हजार के लगभग परमाणु हथियार कम करेंगे। इन हथियारों की कटौती 2012 तक कर ली जायेगी।

20.3.16 निःशस्त्रीकरण पर सम्मेलन–एकमात्र बहुपक्षीय निःशस्त्रीकरण सन्धि वार्ता का निकाय निःशस्त्रीकरण सम्मेलन 2003 में तीन सत्रों में हुआ। भारत को प्रथम सत्र के प्रथम चार सप्ताह के लिए निःशस्त्रीकरण सम्मेलन की अपनी बारी पर अध्यक्षता मिली। इस अवसर पर तत्कालीन विदेशी सचिव कंवल सिब्बल ने अपने वक्तव्य में सार्वभौमिक सुरक्षा की चुनौती के रूप में अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद के आयामों पर प्रकाश डाला और आतंकवाद और सामूहिक विनाश के हथियारों के बीच संपर्कों को प्रकट किया। भारत ने इस कार्यक्रम के वर्तमान डैडलॉक को हटाने के लिए 2002 में की गई 5 राजदूतों की क्रासग्रुप पहल को अपना समर्थन दिया। हालांकि भारत ने सक्रिय रूप से भागीदारी की किन्तु विभिन्न तदर्थ गुटों के लिए अध्यादेश पर मतैक्य के अभाव में इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता।

20.3.17 संयुक्त राष्ट्र निःशस्त्रीकरण आयोग–2003 में संयुक्त राष्ट्र निःशस्त्रीकरण आयोग का महासत्र न्यूयार्क में 31 मार्च से 17 अप्रैल, 2003 को हुआ। आयोग ने दो विषयों प्रथम नाभिकीय निःशस्त्रीकरण को प्राप्त करने के उपाय एवं द्वितीय पारम्परिक हथियारों के क्षेत्र में व्यावहारिक विश्वासोत्पादक उपाय पर 3 वर्षीय चक्र के भाग के रूप में विचार करना शुरू किया था। 2003 का सत्र इन्हीं दोनों विषयों पर विचार करने में लगा। भारत ने यद्यपि सक्रिय रूप से भाग लिया किन्तु दोनों सत्रों में से किसी भी विषय के सुझाव पर सर्वसम्मति बनाने में असफल रहा और इसमें प्रक्रियात्मक रिपोर्ट स्वीकार की गई।

20.3.18 अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी–इसका सम्मेलन का 47वां सत्र 16 से 20 सितम्बर, 2003 को हुआ। परिवहन सुरक्षा संबंधी रक्षोपाय को मजबूत बनाने के संबंध में संकल्प इसके महत्त्वपूर्ण तथ्य थे। भारतीय राजदूत की अध्यक्षता में परिवहन सुरक्षा संकल्प को रिकार्ड समय में सर्वसम्मति मिली। भारत ने बिना किसी भेदभाव के एजेंसी के सभी सदस्य राज्यों के लिए संतुलित दृष्टिकोण स्थापित किये। अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी ने जून, 2003 के अंत मे नाभिकीय ईंधन चूक और नाभिकीय ऊर्जा के लिए नवीनतम प्रौघोगिकीयों पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया, जिसमें भारत से उच्चस्तरीय प्रतिनिधिमंडल ने भाग लिया। भारत ने स्वामित्व विहीन रेडियोएक्टिव स्त्रोतों का पता लगाने और सुरक्षा बनाने तथा रेडियोएक्टिव स्त्रोतों पर अन्तर्राष्ट्रीय आचार संहिता को अंतिम रूप देने में अपना योगदान दिया।

20.3.19 रासायनिक हथियार अभिसमय–भारत ने 28 अप्रैल से 9 मई 2003 तक हेग में रासायनिक हथियार अभिसमय के राज्य पक्षकारों के सफल प्रथम समीक्षा सम्मेलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और राजनीतिक घोषणा और समीक्षा सम्मेलन द्वारा रासायनिक हथियार अभिसमय के तहत अपनी सभी वचनबद्धताओं को पूरा करना जारी रखा। इस वर्ष ओ. पी. सी. डब्ल्यू. के तकनीकी सचिवालय ने भारत में विभिन्न सुविधाओं का निरीक्षण बिना किसी अवरोध के किया।

20.3.20 जैविक और विषले अस्त्र अभिसमय–नवम्बर, 2002 में जैविक और विषैले हथियार अभिसमय के राज्य पक्षकारों के पाँचवें पुनर्परीक्षा सम्मेलन के सत्र में 2003, 2004, 2005 में राज्य–पक्षकारों की एक सप्ताह की अवधि की तीन वार्षिक बैठकें करने के निर्णय के अतिरिक्त यह भी निर्णय लिया गया कि प्रत्येक वार्षिक बैठक की तैयारी विशेषज्ञों की दो सप्ताह की बैठक द्वारा की जाये। 10 से 14 नवम्बर, 2003 को जिनेवा में बी. डब्ल्यू. सी. के राज्य पक्षकारों की चर्चा करने हेतु सम्मेलन किया गया। जिसमें समझबूझ बढ़ाने के लिए दण्डविधान बनाने सहित अभिसमय में निर्धारित निषेधो की क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक राष्ट्रीय उपाय को स्वीकार करने पर बल दिया गया। इसके साथ ही राष्ट्रीय तंत्र को कायम करने और सुरक्षा बनाए रखने, पैथोजैनिक माइक्रो–आर्गन और टॉक्सिन की अनदेखी के लिए प्राविधिक बनाने और विधिक एवं अन्य तन्त्रों के बारे में बताया गया।

20.3.21 कुछ पारम्परिक हथियारों के सम्बन्ध में अभिसमय–भारत कुछ पारम्परिक हथियारों जो अत्यधिक खतरनाक समझो जाते हैं अथवा जिनका काफी गहरा प्रभाव पड़ता है, के प्रयोग को प्रतिबन्धित करने के संबंध में अभिसमय का उच्च संविदाकारी पक्षकार है और उसने सुरंगों और बूबी ट्रेप तथा अन्य उपकरणों के प्रयोग को निषिद्ध अथवा प्रतिबंधित करने संबंधी संशोधित प्रोटोकॉल सहित इसके सभी प्रोटोकोलों का अनुसमर्थन किया है। भारत ने 27–28 नवम्बर, 2003 को जिनेवा में संपन्न कुछ पारम्परिक हथियारों से संबधित अभिसमय के पक्षकार राज्यों की बैठक की अध्यक्षता की। बैठक

में सर्वसम्मति से युद्ध विस्फोटक शेषांगों पर नया प्रोटोकॉल स्वीकार किया गया। अध्यक्ष के रूप मे भारत ने प्रोटोकॉल के प्रारूप पर सर्वसम्मति विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की, जिसकी सभी सदस्य राज्यों ने प्रशंसा की।

20.3.22 हल्के हथियारों से सम्बन्धित नीति–7–11 जुलाई 2003 को न्यूयार्क में राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और सार्वभौम स्तरों पर छोटे और हल्के हथियारों के अवैध व्यापार और इसके सभी पहलुओं को रोकने, उससे लड़ने और समाप्त करने के लिए संयुक्त राष्ट्र कार्ययोजना पर विचार करने के लिए राज्यों की प्रथम द्विवार्षिक बैठक हुई, जिसमें राष्ट्रीय स्तर पर राज्यों कार्य योजना के क्रियान्वयन को मुख्य रूप से जोड दिया गया। निःशस्त्रीकरण से संबधित सम्मेलन में भारत के स्थाई प्रतिनिधि ने संयुक्त राष्ट्र महासभा के संकल्प 56/24–V के अनुसरण में संयुक्त राष्ट्र महासचिव द्वारा स्थापित छोटे और हल्के हथियारों का पता लगाने और उन्हें चिन्हित करने संबंधी सरकारी विशेषज्ञों के दल की अध्यक्षता की। दल के अनुसार अतंर्राष्ट्रीय तंत्र विकसित करने की आवश्यकता है, जिससे राज्य छोटे और हल्के हथियारों के अवैध व्यापार की समस्या को समय पर भरोसेमंद तरीके से हल कर सके।

20.3.23 वैकल्पिक परमाणु निःशस्त्रीकरण सम्मेलन–17 अप्रैल 2010 को दो दिवसीय परमाणु निःशस्त्रीकरण सम्मेलन का आयोजन ईरान में किया गया। सम्मेलन में परमाणु निःशस्त्रीकरण की चुनौती विभिन्न देशों के अन्तर्राष्ट्रीय कर्त्तव्यों सामूहिक विनाश के हथियारों के प्रभाव पर विचार विमर्श किया गया।

20.3.24 अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु सुरक्षा सम्मेलन–परमाणु सुरक्षा से तात्पर्य परमाणु हथियार को अनधिकृत समूहों व व्यक्तियों के हाथ में पहुँचने से रोकना है। इस चिन्ता का मुख्य कारण वर्तमान मे आतंकवादी समूहों की गतिविधियों व पहुँच क्षमता का विस्तार है। यह किसी कारणवश परमाणु हथियार आतंकवादी समूहों के हाथ लग जाते हैं जो वैश्विक सुरक्षा को गंभीर खतरा उत्पन्न हो सकता है।

इस पृष्ठभूमि में परमाणु हथियारों की सुरक्षा हेतु पहला विश्व सम्मेलन 12–13 अप्रैल, 2010 को अमरीका के शहर वाशिंगटन में हुआ। इस सम्मेलन में राष्ट्रों की जिम्मेदारी तथा परमाणु सुरक्षा के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेन्सी की भूमिका को प्रभावी बनाने पर बल दिया। इसी संदर्भ में दूसरा अन्तर्राष्ट्रीय शिखर सम्मेलन 26–27 मार्च, 2012 को दक्षिण कोरिया की राजधानी सियोल में सम्पन्न हुआ। इसमें 53 देशों के राष्ट्रध्यक्षों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में परमाणु सुरक्षा से जुड़े 11 मुद्दों पर विचार–विमर्श कर आम सहमति बनाने का प्रयास किया गया। 1 अप्रैल, 2016 को वाशिंगटन में चौथा परमाणु सुरक्षा सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें 50 देशों के प्रमुख नेताओं ने भाग लिया। भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने इस सम्मेलन में भाग लिया। सम्मेलन में अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया तथा रूस ने भारत को N.S.G. ग्रुप का सदस्य बनाने का समर्थन किया।

इन सम्मेलनों के परिणामस्वरूप 2009 से अब तक कई देश 2965 किग्रा. अत्यधिक क्षमता वाला यूरेनियम नष्ट कर चुके हैं जो 100 से अधिक परमाणु बम बनाने के लिए काफी था।

20.4 विश्व राजनीति पर आणविक शस्त्रों का प्रभाव

विश्व राजनीति पर परमाणु शस्त्रों का प्रभाव निम्न प्रकार से देखा जा सकता हैं –

20.4.1 महाशक्तियों में फूट पड़ना–अमरीका और सोवियत संघ दोनों ने मिलकर द्वितीय विश्वयुद्ध लड़ा था। परन्तु अमरीका ने अणुबम के आविष्कार को सोवयित संघ से गुप्त रखा जबकि ब्रिटेन और कनाडा को इसका ज्ञान था। जापान के शहरों हिरोशिमा और नागासाकी में बम गिराने के सम्बन्ध में अमरीका ने ब्रिटेन से परामर्श किया परन्तु सोवयित संघ से छिपाया। इसको स्टालिन ने गम्भीर विश्वासघात माना जिसके परिमाणस्वरूप दोनों देशों की युद्ध काल मैत्री टूट गयी। दोनों देशों में तनाव उत्पन्न हो गया और दोनों देश गुप्त रूप से शस्त्रों की होड़ में लग गये।

20.4.2 विश्व राजनीति में मोड़–सोवियत संघ ने परमाणु शक्ति के क्षेत्र में अमरीका के एकाधिकार को साम्यवादी जगत् के लिए खतरा मानते हुए परमाणु शक्ति प्राप्त करने का भरसक प्रयास किया और 1949 में उसे सफलता मिल गयी। अब दोनों देशों में शस्त्रों की होड़ और बढ़ गयी।

20.4.3 शीतयुद्ध–परमाणु शक्ति–सम्पन्न होने पर सोवियत संघ ने शीतयुद्ध को बढ़ावा दिया। पूँजीवाद बनाम साम्यवाद के लिए अमरीका और सोवियम संघ ने विभिन्न देशों को अपने–अपने प्रभाव में लेना शुरू कर दिया जिससे दुनिया दो गुटों में बँट गयी।

20.4.4 सह–अस्तित्व का महत्त्व–संचार प्रणाली की उन्नति के कारण आज समस्त विश्व सिकुड़ गया है। इसलिए विश्व का प्रत्येक भाग परमाणु युद्ध के लिए खुला है। विश्व के दोनों गुट एक–दूसरे के विनाश के लिए समर्थ हैं चाहे वे एक–दूसरे से कितनी ही दूरी पर हों। इसलिए प्रत्येक राष्ट्र एक–दूसरे के हमले से असुरक्षित है और नष्ट हो सकता है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के साथ सह–अस्तित्व की धारणा पर ही जीवित है।

20.4.5 परमाणु शक्तियों पर नियन्त्रण–कोरिया, क्यूबा, वियतनाम, स्वेज, अरब–इजराइल और खाड़ी युद्ध 1991 की घटनाओं ने परमाणु शक्तिसम्पन्न राष्ट्रों को डरा दिया है कि यदि परमाणु युद्ध हुआ तो दोनों ही देश नष्ट हो जायेंगे।

20.4.6 विदेश नीति पर प्रभाव–विश्व में परमाणु शक्तिसम्पन्न देश यह सोचते हैं कि जो देश परमाणु शक्तिसम्पन्न नहीं हैं वे परमाणु शक्ति को प्रयोग केवल असैनिक कार्यों के लिए करें न कि शस्त्रों के लिए। परन्तु परमाणु शस्त्रहीन राष्ट्र परमाणु शस्त्र–सम्पन्न राष्ट्रों के आक्रमण की स्थिति में किस प्रकार अपना बचाव करेंगे, इसका कोई आश्वासन नहीं है। इसलिए परमाणु शक्तिसम्पन्न देश बनने की प्रत्येक देश अपेक्षा करता है। CTBT पर अनेक देशों ने हस्ताक्षार नहीं किये हैं। अमरीका की कांग्रेस ने उसका अनुमोदन नहीं किया है। भारत और पाकिस्तान ने मई, 1998 में परमाणु परीक्षण कर लिये हैं।

20.4.7 असुरक्षा का वातावरण–परमाणु शक्ति ने देशों में असुरक्षा का वातावरण पैदा किया है। देशों में अपनी सुरक्षा के लिए सैनिक सन्धियाँ हुई हैं। राष्ट्रों ने परमाणु शस्त्रों को इकट्ठा करना शुरू कर दिया है।

20.4.8 अत्यधिक खर्चा–परमाणु शस्त्रों पर जितना खर्चा वर्तमान में किया जा रहा है। यदि इस धन को गरीबी, भुखमरी, अकाल जैसी स्थितियों को दूर करने में लगाया जाये तो मानव कल्याण हो सकता है।

20.4.9 सोवियत संघ के विघटन का कारण–सोवियत संघ ने अमरीका से शस्त्रीकरण की होड़ के लिए पर्याप्त मात्रा में धन व्यय किया जिसका परिणाम यह हुआ कि वह महाशक्ति तो बन गया परन्तु सोवियत जनता की आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ गईं। जनता में असन्तोष पैदा हुआ। मिखाइल गोर्बाच्योव की ग्लासनोस्ट और पेरेस्ट्रोईका की नीति के समय यह असन्तोष फूट पड़ा। जिसके परिणामस्वरूप साम्यवादी व्यवस्था का विघटन हुआ।

20.4.10 आतंक का सन्तुलन–दोनों महाशक्तियों के पास इतने परमाणु हथियार हैं कि वे चाहें तो एक–दूसरे को समाप्त कर सकते हैं। यह आतंक का सन्तुलन (Balance of Terror) की स्थिति है। यही स्थिति महाशक्तियों को युद्ध न करने के लिए विवश करती है।

इस स्थिति में दो विकल्प उभरकर सामने आते हैं कि यदि विश्व को जिन्दा रहना है तो परमाणु शक्ति का प्रयोग शान्तिपूर्ण असैनिक कार्यों के लिए किया जाये, परमाणु शस्त्रों को समाप्त कर दिया जाये और उनका निर्माण रोक दिया जाये अन्यथा विश्व का अस्तित्व अनिश्चित ही रहेगा। **राष्ट्रपति कैनेडी** ने 1961 में कहा था कि, "इन हथियारों को नष्ट करना ही होगा वरना ये हमें नष्ट कर देंगे एवं धरती किसी के जीवित रहने योग्य नहीं रह सकेगी।"

20.5 निःशस्त्रीकरण की आवश्यकता

निःशस्त्रीकरण निम्न कारणों से आवश्यक बताया गया है–

20.5.1 शान्ति की स्थापना–आइनिस क्लॉड का मत है, "शस्त्र–सज्जा राजमर्मज्ञों की युद्ध लड़ने के लिए लालायित कर देती है।" इस प्रकार शस्त्रीकरण से युद्ध की सम्भावनाएँ तथा प्रतिद्वन्द्विता बढ़ती है। अतः शस्त्रास्त्रों पर प्रतिबन्ध ही शान्ति स्थापना का एकमात्र साधन है। शस्त्रीकरण के कारण राष्ट्रों के सम्बन्ध अविश्वास तथा भय से आच्छादित रहते हैं, जिससे प्रतिद्वन्द्विता को प्रोत्साहन मिलता है। **कोहन** का मत है, "शस्त्रीकरण राष्ट्रों के बीच भय और मनमुटावों की स्थिति पैदा करता है। निःशस्त्रीकरण द्वारा भय और मनमुटावों को कम करके शान्तिपूर्ण समझौतों की प्रक्रिया को सुविधापूर्ण एवं शक्तिशाली बनाया जा सकता है।"

20.5.2 शस्त्रीकरण से अन्तर्राष्ट्रीय तनाव का उत्पन्न होना–राष्ट्रों में शस्त्र–निर्माण की होड़ अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं सुरक्षा भंग करती है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय तनाव बढ़ता है। अतः अन्तर्राष्ट्रीय तनाव में कमी लाने के लिए निरस्त्रीकरण अत्यन्त आवश्यक है।

20.5.3 आर्थिक विकास–निःशस्त्रीकरण आर्थिक विकास को तीव्र करने के लिए भी आवश्यक समझा जाने लगा है। शस्त्रीकरण के अभाव में आर्थिक साधनों को ऐसे कार्यों में लगाया जा सकता है, जिनसे कि लोगों के जीवन–स्तर को ऊंचा उठाया जा सके।

20.5.4 नैतिक लाभ–युद्ध को अनैतिक कार्य माना गया है और निःशस्त्रीकरण से युद्ध का विरोध होता है, इसलिए शस्त्रीकरण भी अनैतिक माना गया है। नैतिक पक्ष के समर्थकों का कहना है कि इकतरफा निःशस्त्रीकरण आक्रमण के विरूद्ध गारण्टी है जिसकी घोषणा करने वाले राष्ट्र कभी पराजित नहीं हो सकते हैं। आदर्शात्मक दृष्टिकोण से तो इस नैतिक आधार को मान लिया जाता है, लेकिन यथार्थवादी दृष्टिकोण से इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। आज विश्व में केवल जापान अणु शस्त्रों के निर्माण सम्बन्धी प्रतिबन्ध की नीति पर जमा हुआ है, और नैतिक पक्ष में विश्वास करता है।

20.5.5 आणविक संकट–द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् आणविक हथियारों के उत्पादन ने इस समस्या को और अधिक जटिल बना दिया हैं। आणविक आयुधों की छाया में विश्व का भविष्य अनिश्चित बना हुआ है, इसलिए निःशस्त्रीकरण की दिशा में विचार अब और अधिक गम्भीरता से किया जाने लगा है। यदि मानव जाति ने इन आणविक अस्त्र–शस्त्रों का विनाश नहीं किया तो ये अस्त्र मानव जाति का विनाश कर देंगे। आज परमाणु अस्त्रों की सहायक शक्ति से परमाणु सम्पन्न राष्ट्र भी भयभीत है।

फिलिप नोजल बेकर के शब्दों में, "आधुनिक शस्त्रों में प्रतिद्वन्द्विता मानवता के लिए मौत का ऐसा सन्देश बन गयी है जिसकी भयानकता किसी भाषा में भी व्यक्त नहीं की जा सकती है। केवल निरस्त्रीकरण सन्धि के द्वारा ही इसे रोका जा सकता है।"

20.5.6 राष्ट्रीय अस्तित्व–राष्ट्र के हित की दृष्टि से भी निःशस्त्रीकरण की मांग की जाती है। छोटे–छोटे राष्ट्र जिनके पास कम हथियार हैं, उन्हें शक्तिशाली बनाने के लिए बहुत प्रयास और दबाव महसूस करना पड़ता है। बड़े राष्ट्रों को भी अपने अस्तित्व एवं गौरव को बनाए रखने के लिए नये–नये हथियारों की प्रतिद्वन्द्विता में पड़ना होता है जिसके परिणामस्वरूप छोटे राष्ट्रों का शोषण होता है। अतः आज विश्व के सभी राष्ट्र राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से भी निःशस्त्रीकरण को आवश्यक समझते हैं।

20.5.7 उपनिवेशवाद व साम्राजयवाद का अंत करने में सहायक–साम्राजयवाद और उननिवेशवाद ये सभी शक्ति को बढ़ाने के दूसरे रूप हैं। एक राष्ट्र की शक्ति व शस्त्रों को बढ़ाना ही युद्ध को जन्म देता है। निःशस्त्रीकरण से साम्राजयवाद व उपनिवेशवाद का अंत होता है तथा राष्ट्रों के बीच शांति की जा सकती है।

20.5.8 वायुमण्डल को दूषित होने से बचाना–वायुमण्डल को दूषित होने से बचाने के लिए भी निःशस्त्रीकरण आवश्यक है। आण्विक अस्त्रों के परीक्षण से तीन प्रकार के खतरे उम्पन्न होते हैं, जो निम्न हैं–

(i) विस्फोट तथा उससे उत्पन्न तापीय प्रभाव से शक्तिशाली और तीव्रगति वाली तूफानी हवा की लहरें उठती हैं जिससे पेड़–पौधे, जीव–जन्तु तो क्या बड़ी–बड़ी मजबूत अट्टालिकाएँ भी पलभर में खण्डहर बन जाती हैं।

(ii) गामा किरणों तथा न्यूट्रॉन का विकिरण के कारण परमाणु विस्फोट वाली जगह का तापक्रम गरम होकर लावा बन जाता है जिससे ज्वलनशील वस्तुएँ जलकर खाक हो जाती है।

(iii) परमाणु विस्फोट से उत्पन्न रेडियोधर्मिता जीवित वस्तुओं के लिए घातक होती है। इसके प्रभाव में आने वाले जीव–जन्तुओं का विनाश निश्चित होता है। रेडियोधर्मिता भावी पीढ़ियों के स्वस्थ जीवन पर भी प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है।

20.5.9 मूल्यवान प्राकृतिक साधनों को बचाना–मूल्यवान प्राकृतिक साधनों, विशेषकर वनस्पति और तेल को बचाने के लिए भी निरस्त्रीकरण की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए सालभर में जितना पेट्रोल पूरे अफ्रीका में खर्च होता है उतना सैनिक गतिविधियों में फुँक जाता है।

20.5.10 विश्व–बन्धुत्व में सहयोग–जहाँ शस्त्रीकरण मानव–मानव में घृणा को जन्म देता है, एक दूसरे से अलगाव पैदा करता है, वहाँ निःशस्त्रीकरण से युद्धों को समाप्त करने में सहायता मिलती हैं तथा विश्व–बन्धुत्व की भावना का विकास करने में सहायता मिलती है। युद्ध नैतिकता के विरूद्ध है निःशस्त्रीकरण नैतिकता की ओर ले जाता है।

20.5.11 मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण–मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि शस्त्रीकरण देश में सैनिकीकरण को जन्म देता है। शस्त्रीकरण व सैनिकीकरण की उपस्थिति का अर्थ शक्ति का प्रदर्शन, धमकी, आक्रमण, विरोध आदि को प्रोत्साहित करना है। वे सभी कारण मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अशान्त वातावरण उत्पन्न करते हैं।

20.6 निःशस्त्रीकरण के मार्ग में बाधायें (समस्यायें)

यद्यपि निःशस्त्रीकरण के प्रयास गत 50 वर्षों से किये जा रहे हैं, लेकिन इसमें कोई विशेष सफलता अभी नहीं मिली है। निरस्त्रीकरण या निःशस्त्रीकरण के मार्ग की प्रमुख बाधायें निम्न प्रकार हैं–

20.6.1 राष्ट्रवाद और सम्प्रभुता–राष्ट्रवाद एवं संप्रभुता की भावना के कारण एक देश यह स्वीकार नहीं करता कि उसकी निरस्त्रीकरण की क्रियान्विति की जाँच के लिये कोई अन्तर्राष्ट्रीय संस्था बनायी जाये। इस प्रकार के निरीक्षण द्वारा एक देश की जनसंख्या पर जो अंकुश लगता है उसे मानने को कोई तैयार नहीं होता।

20.6.2 राष्ट्रीय हित–राष्ट्रीय हित निरस्त्रीकरण के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है। राष्ट्र सबसे पहले अपने राष्ट्रीय स्वार्थ को देखते हैं और उसके बाद वे अपनी राष्ट्रीय सीमा से बाहर निकलकर आर्दोन्मुख भाषा में अन्तर्राष्ट्रीय जगत् को धोखा देने का प्रयास करते हैं। कोई भी राष्ट्र इसका अपवाद नहीं है। उदाहरण के लिए, भारत ने 1968 की परमाणु अप्रसार संधि पर हस्ताार नहीं किये। इसका कारण यह है कि भारत अपने पड़ोसी चीन की बढ़ती शक्ति व उसकी विस्तारवादी नीति से आशंकित है। साथ ही वह परमाणु अप्रसार संधि को शंका की दृष्टि से देखता है।

20.6.3 अनुपात की समस्या–निरस्त्रीकरण की मूल समस्या सभी देशों के शस्त्रों को आनुपातिक रूप से कम करना है। राज्य इस बात के लिए विशेष सतर्क रहते हैं कि आनुपातिक शक्ति में निरस्त्रीकरण के बाद कोई भी परिवर्तन न हो। दूसरे शब्दों में, प्रत्येक राज्य निरस्त्रीकरण के द्वारा अपनी शक्ति पर तो कोई आंच नहीं आने देना चाहता, लेकिन वह दूसरे राज्यों की शक्ति को क्षीण करना चाहता है। अतः निरस्त्रीकरण के प्रस्ताव प्रायः एकपक्षीय होते हैं। आनुपातिक निरस्त्रीकरण करना तो और भी कठिन है।

20.6.4 राजनीतिक समस्यायें–निरस्त्रीकरण राजनीतिक समस्याओं के समाधान पर निर्भर करता है। इसलिए इस दिशा में ठोस कार्य तब तक नहीं हो सकता जब तक महाशक्तियों में मौलिक मतभेद बने रहेंगे।

20.6.5 आर्थिक कारण–अमरीका और ब्रिटेन आदि पूँजीवादी देशों से शस्त्रास्त्र निर्माण करने वाली कम्पनियों के मालिक व हिस्सेदार राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं और निरस्त्रीकरण कार्यक्रमों को सफल नहीं होने देते। निरस्त्रीकरण से शस्त्र उद्योग बन्द होंगे, पूँजीवादी देशों में बेकारी बढ़ेगी। इससे लोगों की क्रय शक्ति घटेगी। इससे आर्थिक कटौती होगी व आर्थिक संकट बढ़ेगा।

इससे स्पष्ट होता है कि निरस्त्रीकरण की अनेक बाधायें हैं जिनका निराकरण राष्ट्रों के बीच व्याप्त अविश्वास को दूर करके ही किया जा सकता है।

सारांश

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि वर्तमान समय में परमाणु शस्त्रों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है जो मानव सभ्यता के लिए एक बड़ा खतरा है। इस समस्या के निदान के लिए लम्बे समय से प्रयास किये जाते रहे हैं लेकिन राष्ट्रवाद एवं प्रभुसत्ता की भावना, राष्ट्रीय हित, आर्थिक एवं राजनीतिक कारणों से अभी तक आशानुरूप सफलता नहीं मिल पायी हैं। लेकिन अभी भी इस दिशा में निरन्तर प्रयास जारी है।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. परमाणु अप्रसार की दिशा में किये गये प्रयासों पर प्रकाश डालिए।
2. 'परमाणु अप्रसार तात्कालीन समय की आवश्यकता है' उपर्युक्त कथन के संदर्भ में परमाणु अप्रसार की आवश्यकता के सम्बन्ध में तर्क दीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. परमाणु अप्रसार सन्धि (1968) की प्रमुख विशेषताएं बताईए।
2. परमाणु अप्रसार की दिशा में प्रमुख बाधाओं का उल्लेख कीजिए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. परमाणु प्रसार से क्या अभिप्राय है ?
2. सीटीबीटी (CTBT) का पूरा नाम लिखिए।

इकाई–21

अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद

21.0 उद्देश्य

इस इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का अर्थ, कारण और दुष्प्रभावों का उल्लेख किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :–

- आतंकवाद का अर्थ, विशेषताएँ व अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के बारे में जान सकेंगे।
- अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के प्रकारों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आतंकवाद के दुष्प्रभावों को जान सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

आतंकवाद वर्तमान विश्व की भयानक समस्या है। **ब्रिया रोजर** के अनुसार "20वीं सदी का आतंकवाद अपने स्वरूप में अद्‌भूत है और विश्व के लिए एक कलंक के समान है।"

पिछले कुछ वर्षों में आतंकवाद की समस्या ने सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया है। विश्व में भारत, अमेरिका, रूस, चीन आदि देश आतंकवाद से पीड़ित है। आतंकवादी विभिन्न हिंसात्मक घटनाओं जैसे–अपहरण, कत्ल, बम विस्फोट तथा तोड़–फोड़ आदि के द्वारा आतंकवाद का प्रसार करके अपने उद्देश्यों को पूरा करते है। आतंकवादी संगठन राज्यों पर विशेष रूप से दबाव बना कर अपने संकीर्ण हितों को पूरा करने का प्रयास करते है। हथियारों का गैर कानूनी व्यापार, नशीले पदार्थों की तस्करी, जातीय हिंसा व नस्लवाद अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के भयंकर हानिकारक एवं घिनौने रूप दिखा रहे है। पिछले लगभग तीन दशकों से विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद तीव्र गति से विकसित हो रहा है। विभिन्न आतंकवादी संगठन कई देशों व कई साधनों से धन इकट्ठा करके आतंकवादी गतिविधियों का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विस्तार कर रहे है और दिन–प्रतिदिन अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का स्वरूप उग्र रूप धारण करता जा रहा है।

आतंकवाद एक ऐसी विचारधारा का पोषण कर रहा है जिसमें अपनी इच्छाओं को मनवाने के लिए अस्त्र–शस्त्रों के प्रयोग से निर्दोष लोगों में भय पैदा करना है। भौतिक दृष्टि से सम्पन्न समझे जाने वाले राष्ट्रों तथा कट्टर मानसिकता वाले राष्ट्रों में यह आतंकवाद की प्रवृत्ति खूब पनप रही है। अमेरिका के राष्ट्रपति जॉन एफ. केनेडी, भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी, भारत के प्रधानमन्त्री श्री राजीव गाँधी इन्हीं आतंकवादियों का शिकार बने हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका के वर्ल्ड ट्रेड संटर और भारतीय संसद पर हमले करे आतंकवादियों ने समुदाय को विशेष संदेश दिया कि आतंकवाद किसी भी राष्ट्र की सीमाओं को नहीं पहचानता। इस प्रकार आतंकवादी अपनी बातों को मनवाने के लिए आम जनता को निशाना बनाते है ताकि सरकार पर दबाव बनाया जा सके।

21.2 आतंकवाद का अर्थ

शाब्दिक दृष्टि से आतंकवाद (Terrorism) लैटिन भाषा के दो शब्दों Terrer एवं deterre से बना है, जिसमें terrere का अर्थ है tremble यानी भय से काँपना और deterre का अर्थ है भयभीत होना। इस प्रकार आतंकवाद का तात्पर्य है हिंसा द्वारा लोगों को भयभीत करना, ताकि वे डर से काँपना शुरू कर दें और राज्य की मशीनरी जो संगठित शक्ति पर टिकी है, उसे निष्प्रभावी बनाकर, अनपे लक्ष्यों तथा उद्देश्यों की प्राप्ति की जाए। आतंकवाद की अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं, जिनमें से सबसे अधिक उपयुक्त परिभाषा यह है कि जब कोई भी व्यक्ति, समाज, संगठन या राष्ट्र अपनी जीवन पद्धति, अपने विचार, मान्यताओं और मूल्यों को किसी दूसरे पर छल, कपट, शक्ति और हिंसा के बलबूते पर थोपने की चेष्टा करता है, तो उसे आतंकवाद कहा जाता है। आतंकवाद का रूप बौद्धिक, राजनीतिक व सामाजिक किसी भी प्रकार का हो सकता है।

राम आहूजा के अनुसार, "आतंकवाद हिंसा या हिंसा की धमकी के उपयोग द्वारा लक्ष्य की प्राप्ति के लिए संघर्ष या लड़ाई की एक विधि व रणनीति है। यह क्रूर व्यवहार है जो मानवीय प्रतिमानों का पालन नहीं करता।"

वृहद हिन्दी कोश के अनुसार, आतंकवाद की परिभाषा निम्न प्रकार है–"राज्य या विरोधी वर्ग को दबाने के लिए भयोत्पादक उपायों का अवलम्बन।"

एडवांस लर्नर्स डिक्शनरी ऑफ करन्ट इंग्लिश के अनुसार, "ऐतिहासिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हिंसा एवं भय का उपयोग करना आतंकवाद है।"

21.3 आतंकवाद की विशेषताएं –

(i) यह राज्य एवं समाज के विरूद्ध होता है।

(ii) इसका राजनीतिक उद्देश्य होता है।

(iii) यह अवैध एवं गैर कानूनी होता है।

(iv) यह न केवल अपने तात्कालिक शत्रु को अपितु सामान्य लोगों को भी डराने और उनमें भय एवं आतंक पैदा करने की कोशिश करके उन्हें अवंपीड़ित एवं वश में करने का कुप्रयास करता है।

(v) यह अपने कार्यों एवं हमलों को इतने आकस्मिक एवं भयंकर रूप में अंजाम देता है कि केवल जनसाधारण में ही नहीं अपितु कभी–कभी सरकार में भी बेबसी या लाचारी की भावना पैदा कर देता है।

(vi) यह केवल विरोधी पक्ष पर ही नहीं सजातीय समुदाय पर भी हमला बोल सकता है।

(vii) इसमें लड़ने या भागने की प्रतिक्रिया होती है।

(viii) यह बुद्धिसंगत विचार को समाप्त कर देता है।

21.4 आतंकवाद के उद्देश्य–आतंकवाद के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

(1) अपने उद्देश्यों व आदर्शों का सघन प्रचार करना और जनता का अधिकाधिक समर्थन प्राप्त करना।

(2) अपने संगठन की शक्ति को बढ़ाने के लिए विशेषकर युवा वर्ग को अपनी ओर आकर्षित करना और अपने आदर्शों के पक्ष में इनके दिल व दिमाग में विष घोलना और उन्हें संगठन के लिए मर मिटने को तैयार करना।

(3) धमकी हिंसा और सार्वजनिक सम्पत्ति अन्धाधुन्ध नष्ट करके सरकार या शासन पर अपनी माँगों को मनवाने के लिए दबाव डालना।

(4) विरोधियों और मुखबिरों को किसी भी कीमत पर सहन न करना और उन्हें खत्म करने के लिए आवश्यक कदम उठाना।

(5) देश की सुरक्षा, शांति व अखण्डता के लिए हर सम्भव खतरा उत्पन्न करना ताकि देश में भय, आतंक व असुरक्षा का ववातावरण बना रहे।

(6) देश के अन्य अलगाववादी शक्तियों को भड़काना ताकि सरकार व जनता का सिर दर्द बना रहे।

21.5 आतंकवाद के कारण

21.5.1 उपनिवेशवाद–आधुनिक आतंकवाद का जन्म प्रायः औपनिवेशिक प्रशासनों (देशों) में शासकों द्वारा वर्षों तक अपनाई गई दमनकारी गतिविधियों जिसे आतंकवादी गतिविधियाँ भी कहा जाता है और उसकी प्रतिक्रियास्वरूप वहाँ जन्मे स्वतंत्रता आन्दोलनों को माना जाता है। प्रायः सभी देशों के स्वतंत्रता संग्राम में विदेशी शासकों को भगाने के लिए आतंकवादी गतिविधियों को अपनाया गया, लेकिन इस आतंकवाद में आम जनता को लक्ष्य न बनाकर उसे साथ रखा गया।

21.5.2 राष्ट्रीयता की पहचान–उपनिवेशों की समाप्ति की प्रक्रिया में अनेक छोटे–बड़े राष्ट्र स्वतंत्रता प्राप्त करते चले गए। इन राष्ट्रों में कुछ विशेष जातीयता एवं धार्मिक समूह अपनी पहचान के लिए पृथक राष्ट्रों की माँग करने लगे जिसके लिए इन समूहों ने संगठित एवं सुनियोजित आन्दोलन आरम्भ किए। इस प्रकार के आतंकवादी युद्ध आज भी श्रीलंका, चेचन्या (रूस), भारत आदि देशों मे जारी हैं। इन संघर्षरत राष्ट्रीयताओं का सम्बन्ध सामाजिक, धार्मिक व वैचारिक आधार पर अन्य राष्ट्रीयताओं से होताा है जिसमें इन्हें हथियारों, धन आदि की सहायता प्राप्त होने लगती है जो सुनियोजित, संगठित एवं प्रायोजित आतंकवाद को जन्म देती है।

21.5.3 संसाधनों की कमी–आतंकवाद का माध्यम उस जातीय समूह या अलगाववादी संगठन द्वारा लिया जाता है जो प्रत्यक्ष युद्ध करने में सक्षम नहीं होते हैं। कोई भी पृथकतावादी संगठन धीरे–धीरे आकार लेता है क्योंकि उसका दमन भी साथ–साथ चलता रहता है। अतः अपने स्वरूप को बनाए रखने, विद्रोह को प्रदर्शित करने, सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए वह अपने विध्वंसकारी कार्यों को करते रहते हैं।

21.5.4 नीति–निर्धारकों की अवहेलना–अनेक राष्ट्रों में आतंकवाद का कारण वहाँ की राष्ट्रीय सरकारों द्वारा किसी जातीयता विशेष या क्षेत्र विशेष की उपेक्षा करना भी है। राजनीतिक, आर्थिक एवं नागरिक अधिकारों से उन्हें वंचित किये जाने पर उनमें कुंठा जन्म ले लेती है जो विद्रोह, हिंसा और अलगाववादी प्रवृत्ति को जन्म देती है। भारत में उत्तर–पूर्व के राज्यों का आतंकवाद इसी प्रकार का आतंकवाद है। सरकार की दमनकारी नीति उनमें विद्रोह भरती है और बाद में उसमें विदेशी ताकतें भी शामिल होती है।

21.5.5 संचार साधनों का विकास–इण्टरनेट, फैक्स, सैटेलाइट फोन आदि के माध्यम से किसी भी समय कहीं पर भी दूर बैठकर सूचनाओं का आदान–प्रदान किया जा सकता है। आतंकवादी संगठनों ने भी इस तकनीक को अपनाया है। उनकी अपनी वेबसाइट है जिनके माध्यम से समय–समय पर वह संदेश जारी करते रहते हैं। सूचना तकनीक एवं वैज्ञानिक अनुसंधानों ने आतंकवाद को जन्म तो नहीं दिया लेकिन इसे सुगम बनाकर नई दिशाएँ प्रदान की है।

21.5.6 आतंकवादियों को विदेशी सहायता–कुछ राष्ट्र दूसरे देशों को आतंकवाद रोकने में सहायता नहीं देते बल्कि अस्थिरता फैलाने के लिए आतंकवादियों को आर्थिक और राजनीतिक सहायता करते हैं। पाकिस्तान भारत मे इसी प्रकार

का आतंक फैलाना चाहता है जिसके लिए आईएसआई, लश्कर–ए–तैय्यबा, जैश–ए–मोहम्मद आदि आतंकी संगठन क्रियाशील हैं।

21.5.7 आतंकवादी गतिविधियों को राष्ट्रों का प्रोत्साहन–आतंकवाद को बढ़ावा देने में कुछ राष्ट्र एवं देश अपने राजनीतिक, सामरिक एवं आर्थिक हितों की वृद्धि के लिए रूचि लेते हैं तथा सुनियोजित तरीके से संघर्षरत गुटों को आतंकवादी गतिविधियों को करने के लिए प्रेरित एवं सहायता करते हैं। भारत में पाकिस्तान द्वारा कराई जा रहीं आतंकवादी गतिविधियाँ इसका एक अच्छा उदाहरण है। अमेरिका की कुटिल विदेश नीति भी आतंकवाद को पल्लवित करने वाली रही है। अमेरिका ने अपना राजनीतिक वर्चस्व बनाए रखने के लिए अनेक आतंकवादी संगठनों एवं आतंकवादियों जिनमें ओसामा बिन लादेन भी एक था को बढ़ावा दिया गया। ओसामा बिन लादेन को अफगानिस्तान मे रूस की सेना को बाहर निकालने के लिए अमेरिका ने ही सशक्त किया था। किन्तु अमेरिका की नीति है कि उसके विरूद्ध जो भी आतंकवादी संगठन या आतंकवादी कार्य लगते हैं वह उनका अन्त करने का कार्य करने लगता है।

21.6 आतंकवाद के प्रकार :

आतंकवाद किसके द्वारा, किसके विरूद्ध फैलाया जा रहा है यह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इस दृष्टिकोण के अनुसार आतंकवाद के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित हैं :–

21.6.1 जैव आतंकवाद–खाड़ी युद्ध के दौरान ईराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने जैव हथियार को विकसित किया। 11 सितंबर को अमेरिका पर हुए हमले के बाद जिस जैव आतंकवाद को लोग सिर्फ कल्पना मात्र मान में लेते थे वह एंथ्रेक्स युक्त लिफाफे की शक्ल में सामने आया। इस प्रकार की नीति में सूक्ष्म जीवाणुओं के द्वारा मानव समुदाय को हानि पहुँचाने की बात सामने आती है। ये सूक्ष्म जीवाणु एक बार प्रवेश कर जाने पर आसानी से मानव, जानवर या फसल को नष्ट कर देते हैं। यद्यपि कई राष्ट्र जैव हथियार विकसित करने की होड़ शामिल रहे हैं, लेकिन अमेरिका मे एंथ्रेक्स बैक्टीरिया के समाने आते ही सभी के जिस्म में सिहरन–सी दौड़ गई। संदेश किया जा रहा है कि यह हरकत अलकायदा संगठन या इराके जैसे अमेरिका विरोधी देश की हो सकती है।

अन्य पारंपरिक हथियारों की तुलना में जैव हथियार अधिक घातक होते हैं। पारंपरिक हथियारों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना खतरनाक हो सकता है जबकि जैव हथियारों को आसाानी लाया व ले जाया जा सकता हैं। इन हथियारों के माध्यम से नागरिकों की सामान्य जिन्दगी और राजनीतिक व्यवस्था को छिन्न–भिन्न कर देना ही आतंकवादियों का लक्ष्य होता है।

21.6.2 आणविक आतंकवाद–अणु बमों एवं परमाणु बमों को निर्मित करने पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पाबंदी है। और किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र द्वारा यह कृत्य नहीं किया जा सकता। आतंकवादियों से भी यह उम्मीद की जाती रही है कि मानवीय समुदाय के नाते वह इतने विध्वंसकारी हथियारों का प्रयोग नहीं करेंगे किन्तु अलकायदा संगठन के कुछ गोपनीय दस्तावेज इस बात की पुष्टि करते हैं कि तालिबान परमाणू हथियार (यू. 2.35) के शोध मे संलग्न है। विशेषज्ञों को चिंता इस बात की है कि आतंकवादी आर्थिक या रेडियोएक्टिव बम का इस्तेमाल किसी देश के खिलाफ कर सकते हैं या फिर किसी अपहृत विमान से इसे हवा मे फैला सकते हैं। 1995 मे चेचन्या अलगाववादियो ने मास्को के एक पार्क में खतरनाक परमाणु तथा रेडियोधर्मी तत्वों से भरे कनस्तर को रखकर आतंक मचा दिया था। आज वैश्विक स्तर पर इस बात की चिंता है कि आतंकवादी गतिविधियों में संलिप्त इराक या पाकिस्तान जैसे परमाणु सक्षम राष्ट्र आतंकवादियों को इसकी सप्लाई कर सकते हैं या आतंकवादी जबरन परमाणु हथियारों को अपने नियंत्रण में ले सकते हैं।

21.6.3 साइबर आतंकवाद–साइबर आतंकवाद की अवधारणा 21वीं सदी के आतंकवाद की अवधारणा है, जिनमें सबसे आधुनिक हथियार का प्रयोग होता है। साइबर आतंकवाद में देश की सुरक्षा व्यवस्था में कम्प्यूटर प्रणाली के माध्यम से सेंध मारी जाती है। समस्त जानकारी चुरा ली जाती है या नष्ट कर दी जाती है। हालांकि संयुक्त राष्ट्र एवं अन्य विकसित देश इस साइबर आक्रमण की संभावना को पूरी तरह खत्म करने के लिए एक संयुक्त तंत्र बनाकर इलैक्ट्रॉनिक आतंकवाद के खिलाफ वैश्विक मोर्चा तैयार कर रहे है। 1999 मे कोसोवो युद्ध के दौरान पूरे 78 दिनों तक अमेरिकी ने सर्बियन कम्प्यूटर नेटवर्क को पूरी तरह जाम कर दिया था। अफगानिस्तान संकट के समय पाकिस्तान, अरब और फिलीस्तीन के कम्प्यूटर हैकर्स ने अलकायदा संगठन नेटवर्क विकसित किया। इसकी मदद से उन्होंने अमेरिकी सेना की वेबसाइट सहित परमाणु ऊर्जा नियंत्रण बोर्ड, एम्स तथा जे.एन.यू. (भारत) की वेबसाइट से जानकारियाँ हासिल कर लीं। साइबर विशेषज्ञों के अनुसार आतंकवादी उच्च तकनीकी का इस्तेमाल करते हुए कोई भाषा मे संवाद कर रहे हैं, जिसे जान पाना कठिन है। साइबर अपराध मे विशेषज्ञ एक सामान्य फोटो के बाइनरी कोड को बदलकर उसके तीन मूल रंगों लाल, हरा और नीला मे बदल दिया जाता है। संदेश प्राप्त करने वाला की रंग की इस बदली हुई भाषा के माध्यम से संदेश प्राप्त कर सकता है।

21.6.4 आनुवंशिक आतंकवाद–आनुवांशिक आतंकवाद में कुछ वैज्ञानिकों का आनुवंशिक ज्ञान घातक हथियार के रूप में सामने आ सकता है। ऐसा माना जाता है कि जैव आतंकवादी उपलब्ध जीन और वायरस के तालमेल से एंथ्रेक्स से भी ज्यादा खतरनाक जीवाणु तैयार कर सकते हैं। जीन अभियंत्रण की अवधारणा में डी. एन. ए. के क्रम में फेरबदल कर रोगा

निरोधक स्थिति तैयार की जाती है, लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि उच्चतर तकनीकी विशेषज्ञ आधुनिक प्रयोगशाला की बदौलत इस तकनीक का इस्तेमाल नये खतरनाक बीमारी फैलाने वाले जीवाणु तैयार करने में लग जाए। इस प्रकार की तकनीक यदि आतंकवादियों को मिल जाए तो घटनाक्रम अत्यन्त कठिन हो सकता है।

21.6.5 राज्य प्रायोजित आतंकवाद–आतंकवाद का तीसरा रूप राज्य प्रायोजित आतंकवाद है। विश्व के कई देश प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आतंकवाद को शह प्रश्रय दे रहे हैं। **क्यूबा, ईरान, इराक, लीबिया, उत्तरी कोरिया, दक्षिणी यमन और सीरिया** को इस आतंकवाद का समर्थक माना जाता है। ऐसे देशों की सूची में अब पाकिस्तान का नाम भी जुड़ गया है। भारत में आतंकवाद को बढ़ावा देने वाला देश पाकिस्तान ही है।

21.6.6 इस्लामिक आतंकवाद–इस्लामिक आतंकवादी इस्लाम राज्य की स्थापना के जुनून मे आतंकवादी कृत्य करते हैं। इसे वे जिहाद कहते हैं। अलकायदा इसका स्पष्ट उदाहरण है। यह विचारधारा के रूप मे आतंकवादी सेना मे नियमित भर्ती की जाती है। ये प्रशिक्षित आतंकवादी छोटे राज्यों को सहयोग प्रदान करते हैं तथा हथियारों की तस्करी करते हैं तथा गैर–इस्लामिक राज्यों में आतंकवादी घटनाओं को अन्जाम देते हैं। अलकायदा से निकला एक गुट–**आईएसआईएस (इस्लामिक स्टेट आफ ईराक एंड सीरिया)** है। इसे 10 हजार लड़ाकों को तैयार करने में लगभग 2 वर्ष का समय लगा है। सीरिया में ची रहे गृहयुद्ध से भी इसे मदद मिली। इसमे आतंकवादी ताकतों के कई गुट मौजूद हैं। आईएसआईएस को बाहर से मदद मिल रही है। पैसा, हथियार, गोला–बारूद उसे दूसरे देशों से मिल रहे है।

21.6.7 नाको आतंकवाद–जो धन के बदलने मे मादक द्रव्यों के धन्धे को समर्थन देता है। समाचार पत्रों मे प्रकाशित सूचनाओं से पता चलता है कि अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के कुख्यात सरगना ओसामा बिन लादेन ने मादक द्रव्यों की तस्करी से अथाह धन कमाया।

21.6.8 अपराध सम्बन्धित आतंकवाद–जो आतंक फैलाने के लिए हिंसा को प्रमुख हथियार बनाता है और राजनीतिक सत्ता को हथियाने के लिए धन का उपयोग करता है। दाउद इब्राहिम जैसे अण्डर वर्ल्ड सरगनाओं द्वारा संचालित गिरोह के कारनामे इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

21.7 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद

जब आतंकवादी संगठन के सदस्य संगठित होकर राष्ट्र की सीमाओं को लांघकर दूसरे देशों में आतंकवादी घटनाएँ करते हैं, तो उसे अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद कहा जायेगा। अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद में कोई आतंकवादी संगठन अनेक देशों में अपना नेटवर्क फैलाकर किसी समुदाय, राष्ट्र या देश या सरकार के विरूद्ध अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए आतंक फैलाने की घटनाएँ कर सकता है। इस प्रकार जब आतंकवाद की घटनाओं का सम्बन्ध एक देश विशेष की स्थानीय समस्याओं से सीमित न रहकर दो देशों के सम्बन्धों को प्रभावित करता है तो उसे अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद कहा जा सकता है।

21.8 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का आगमन–1960 के दशके में कई एक आतंकवादी समुह/संगठन यूरोप में दिखाई देने लगे, जैसे–इटली में रैड ब्रिगेड तथा पश्चिमी जर्मनी में रैड आर्मी फैक्शन। इन दोनों समूहों ने अपने देशों में विद्यमान व्यवस्थाओं को नष्ट करके नई व्यवस्थाओं की स्थापना के लिए आतंकवापद का सहारा लिया।

1960 से 1980 के समय के दौरान शीत युद्ध ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों तरह से आतंकवाद की उत्पत्ति तथा तीव्रता को बढ़ावा दिया–शीत युद्ध के दोनों खेमों में उभरी शस्त्र दौड़ ने शस्त्र उत्पादन तथा शस्त्र व्यापार को बहुत बढ़ावा दिया।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में कई अवैध शस्त्र बाजार में अस्तित्व में आ गए तथा उन्होंने विभिन्न देशों में विद्यमान विद्रोही संगठनों और आतंकवादी समूहों को शस्त्र बेचने प्रारंभ कर दिये। कुछ देशों ने भी ऐसे संगठनों को शस्त्र देकर अपने प्रतिद्वन्द्वियों के विरूद्ध अपने हितों की सुरक्षा करने की नीति अपनाई। इस प्रक्रिया में विभिन्न देशों में कई आतंकवादी संगठन सक्रिय हो गये और अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद, सीमा–पार आतंकवाद, जातीय आतंकवाद, धार्मिक आतंकवाद तथा नशीले पदार्थों की तस्करी से जुड़ा आतंकवाद उत्पन्न हो गया। कुछ राज्यों ने परोक्ष युद्ध में आतंकवादी संगठनों का प्रयोग करना आरंभ कर दिया।

21.9 इस्लामिक आतंकवाद या इस्लामिक जिहादी आतंकवाद की उत्पत्ति तथा प्रसार–1980 के दशक में इस्लामिक जिहादह आतंकवाद उत्पन्न हुआ। इस्लामिक जिहादी समूहों ने विश्व भर में इस्लाम को फैलाने के लिए आतंकवादी कार्यवाहियों का सहारा लेने की नीति अपनाई। उन्होंने उन प्रदेशों को स्वतंत्र करवाने का उद्देश्य अपनाया जो कभी भी भूतकाल में मुस्लिम शासकों के अधीन रहे थे। साथ ही उन्होंने गैर–मुस्लिम देशों में रहने वाले मुसलमानों के अधिकारों को सुरक्षित करने का लक्ष्य अपनाया। इन्होंने अपनी गतिविधियों के लिए कई देशों, जैसे–अफगानिस्तान, पाकिस्तान, सूडान, मध्य एशिया, केन्द्रीय एशिया, पश्चिमी एशिया में अपने स्कूल और प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित कर लिए। जो देश इन इस्लामिक जिहादियों के प्रशिक्षण अड्डे बने उनके पड़ौसी देशों को इन जिहादियों की गतिविधियों से उत्पन्न तनावपूर्ण परिस्थितियों का सामना करना पड़ा।

21.10 अफगानिस्तान संकट और अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का विकास–1989 में अफगानिस्तान संकट ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के फैलाव का मार्ग प्रशस्त किया। भूतपूर्व सोवियत संघ के अफगानिस्तान में सैनिक हस्तक्षेप के बाद, कई इस्लामिक संगठनों ने इसके विरूद्ध शस्त्रपूर्ण विरोध शुरू कर दिया। इस कार्यवाही में इनको संयुक्त राज्य अमरीका, पाकिस्तान तथा अनेक पश्चिमी तथा इस्लामिक राष्ट्रों का भारी समर्थन मिला। इन्होंने न केवल इनको आर्थिक सहायता दी, अपितु शस्त्र–पूर्ति सहायता भी दी।

धीरे–धीरे इन इस्लामिक संगठनों ने अपने आपको इस्लाम के सैनिक–जिहादी कहना प्रारंभ कर दिया तथा इस्लाम के विस्तार तथा मुसलमानों की रक्षा के लिए अपनी शस्त्र गतिविधियों को दृढ़ तथा तीव्र कर दिया। अफगानिस्तान–पाकिस्तान का क्षेत्र इस्लामिक संगठनों–जिहादी समूहों का केन्द्र बन गया। इन क्षेत्रों में प्रशिक्षित जिहादी समूह अपने धर्म की सुरक्षा के सम्बन्ध में कट्टरवादी समूह बन गये तथा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में आतंकवादी कार्यवाहियों में संलग्न हो गये। भारत में इनकी गतिविधियाँ, विशेष रूप से कश्मीर और पंजाब में काफी उग्र रूप धारण कर गईं।

21.11 आतंकवाद का एक वैश्विक व्यवस्था के लिए खतरे के रूप में उभरना–20वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में विश्व–समुदाय ने विश्व के कई देशों किरगिस्तान, रूस, चीन, तजाकिस्तान, उज्बेकिस्तान, मिस्त्र, अल्जीरिया तथा भारत के विभिन्न क्षेत्रों–मध्य एशिया, दक्षिणी–पूर्वी एशिया, कन्द्रीय एशिया, पश्चिमी एशिया, अफ्रीका तथा यूरोप के कई भागों में अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के उभरने को चिंतापूर्ण रूप में देखा। यह अपने विभिन्न रूपों में विश्व के कई भागों में फैल गया। सीमा पर आतंकवाद, पार–राष्ट्रीय आतंकवाद तथा नशीले पदार्थों की तस्करी से जुड़ा आतंकवाद सभी ने मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद को एक गंभीर समस्या बना दिया तथा अफगानिस्तान–पाकिस्तान तथा केन्द्रीय एशिया के क्षेत्र इसके गढ़ बन गये। आतंकवादी संगठनों की कार्यवाहियों ने विभिन्न देशों की सुरक्षा व्यवस्था को प्रभावित करना प्रारंभ कर दिया।

1989 से आज तक भारत सीमा–पार आतंकवाद का सामना कर रहा है। रूस, मिस्त्र, अल्जीरिया, रूस (चेचन्या) और कई अन्य देश जिहादी संगठनों की गतिविधियों के कारण अपनी–अपनी सुरक्षा व्यवस्थाओं के लिए खतरा अनुभव कर रहे हैं। हरकत–उल–अन्सार, लश्कर–ए–तोयबा, हिजबुल मुजाहिद्दीन, अल बदर, हम्मास जैसे कई समूह आज विश्वभर में आतंकवादी कार्यवाहियों में संलग्न हैं। आज सीमा–पार आतंकवाद के द्वारा पाकिस्तान जैसे देश अपने संकीर्ण हितों की पूर्ति का प्रयत्न कर रहे हैं।

2011 तक ओसामा बिन लादेन अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का एक प्रमुख संरक्षक तथा नेता बना रहा। उसके नेतृत्व में कार्य कर रहे जिहादी समूह संयुक्त राज्य अमेरिका को अपना निशाना बनाए हुए हैं। आज विभिन्न देशों की सरकारों को अस्थिर बनाकर, परोक्ष युद्ध को सहारा लेकर, हवाई जहाज अगवा कर, निर्दोष व्यक्तियों का कत्ल कर, बम विस्फोट करके तथा अन्य आतंकवादी कार्यवाहियों द्वारा यह जिहादी संगठन विश्व शांति और सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा बने हुए हैं।

21.12 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के दुष्प्रभाव

अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के कारण उत्पन्न हो रहे खतरों दुष्प्रभावा को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है–

(1) आतंकवाद एक सीमा–पार राष्ट्रीय क्रिया है। यह दूसरे देशों में विरोध तथा हिंसा के कीटाणु फैलाने की योग्यता रखता है। कुछ क्षेत्र जिनका वैसे विरोध के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता, विरोध में फंस जाते हैं।

(2) आतंकवादी घटनाएँ, बिना किसी पूर्व चेतावनी के परम्परागत युद्ध को आरंभ कर सकती हैं। युद्ध छेड़ने के एक सोचे–समझे षड्यंत्र के अधीन एक विशेष प्रकार की आतंकवादी घटनाएँ एक राज्य क विरूद्ध प्रयुक्त की जा सकती हैं।

(3) आतंकवाद तथा युद्ध के बीच की रेखाएँ कमजोर होने से भी एक युद्ध आरंभ हो सकता है।

(4) आतंकवाद तथा संगठित अपराध (आतंकवाद तथा नशीले पदार्थों की तस्करी) के बीच दिखाई दे रहे तथा बढ़ रहे सम्बन्ध राज्य की सत्ता के प्रभाव को सीमित कर रहे हैं। आतंकवादी बल प्रयोग तथा संगठित अपराध द्वारा एवं राज्य में भ्रष्टाचार फैलाकर यह कार्य करते है।

(5) आतंकवाद में शामिल युद्ध जैसी हिंसक तथा तोड़–फोड़ की कार्यवाहियाँ एक राज्य में फैल कर विकास को अवरूद्ध करती हैं तथा राज्य की अर्थव्यवस्था को खराब कर देती हैं।

(6) आतंकवादी समूह आत्मनिर्णय के अधिकार, राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम, स्वतंत्रता आंदोलन, अल्पसंख्यकों के अधिकार, मानवाधिकार तथा स्वतंत्रता जैसी अवधारणाओं का प्रयोग करके एक राज्य पर दबाव बना कर उसकी शक्ति व प्रभाव को कमजोर करने का प्रयास करते हैं।

(7) किसी राज्य में हो रही आतंकवादी कार्यवाहियों के कारण अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को खतरे का नाम देकर शक्तिशाली राज्य अपने हस्तक्षेप करने का आधार बना सकता है।

(8) आतंकवाद के कारण किसी भी क्षेत्र में युद्ध का खतरा उत्पन्न हो सकता है।

ये सभी खतरे अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के लिए गंभीर और भयानक खतरा पैदा कर देते हैं। विश्व के सभी क्षेत्रों के लोग अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की मुसीबत के साथ रह रहे हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के लोगों ने 21वीं शताब्दी में आतंकवाद के भयानक स्वरूप को अनुभव किया तथा आज उनका देश अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति के लिए कार्य कर रहा है परन्तु उसकी इराक नीति ने निश्चित रूप से इस्लामी जैहादी आतंकवाद को अधिक सक्रिय कर दिया है। दुख की बात यह है कि कुछ राज्य–शासन भी आतंकवाद को शरण, समर्थन तथा सहायता देते रहे हैं। लीबिया तथा पाकिस्तान ऐसे ही देश रहे हैं। यद्यपि आज वे भी अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति के लिए सहयोग की बात कह रहे हैं। आज विश्व का कोई भी क्षेत्र अथवा राज्य आतंकवाद की मार का निशाना बन सकता है। इस कारण यह आवश्यक है कि इसका सामना सभी देश मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाही द्वारा करें, तभी इसकी समाप्ति को संभव बनाया जा सकता है।

21.13 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति के प्रयास

अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद को समाप्त करने या इसके खतरे को समाप्त करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय जगत में अनके प्रयास किये गये है, जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं :–

21.13.1 संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा प्रयास–सुंयक्त राष्ट्र संघ ने अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद को दूर करने के दो उपाय बताये–(1) कानूनी उपाय (2) राजनीतिक उपाय

(1) कानूनी उपाय–कानूनी क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ तथा इसकी विशिष्ट ऐजेंसियों ने आतंकवाद के खिलाफ बुनियादी कानूनी दस्तावेज की रचना करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के नेटवर्क को विकसित किया है। ऐसी विशिष्ट ऐजेंसिया हैं–अन्तर्राष्ट्रीय नगर विमानन संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय समुद्री संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय आणविक ऊर्जा ऐजेन्सी, बुनियादी कानूनी दस्तावेज की रचना करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय समझौते हैं। इनमें प्रमुख निम्न हैं–

(i) विमानों पर किए गए अपराधों एवं कतिपय अन्य कार्यों पर टोक्यो कन्वेंशन, 1963।

(ii) विमानों के गैर–कानूनी कब्जे के विरोध हेतु हेग कन्वेंशन, 1970।

(iii) नागर विमानन की सुरक्षा के खिलाफ गैर–कानूनी कार्यों के निरोध पर मांट्रियल कन्वेंशन, 1971 तथा प्रोटोकॉल 1988।

(iv) राजनयिक प्रतिनिधियों सहित अन्तर्राष्ट्रीय रूप से सुरक्षा प्राप्त लोगों के खिलाफ अपराधों के निरोध एवं दण्ड पर न्यूयार्क कन्वेंशन, 1973।

(v) आणविक सामग्री की भौतिक सुरक्षा पर वियेना कन्वेंशन, 1980 ।

(vi) समुद्री नौकायन की सुरक्षा के खिलाफ गैर कानूनी कार्यों के विरोध पर रोम कन्वेंशन, 1988।

(vii) महाद्वीपीय समुद्री चट्टान श्रेणी पर स्थित फिक्स्ड प्लेटफार्मों की सुरक्षा के खिलाफ गैर कानूनी कार्यों के निरोध पर रोम प्रोटोकॉल, 1988।

महासभा ने चार कन्वेंशन प्रस्तुत किये हैं–

(1) बन्धक बनाने के खिलाफ कन्वेंशन, 1979।

(2) संयुक्त राष्ट्र एवं सहयोगी कर्मचारियों की सुरक्षा पर कन्वेंशन, 1994।

(3) आतंकवादी बमबारी के निरोध के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेंशन, 1997।

(4) आतंकवाद को वित्त पोषण करने के निरोध हेतु अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेंशन, 1999।

(2) राजनैतिक उपाय–राजनतिक क्षेत्र में महासभा ने 1994 में अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की समाप्ति के उपायों पर घोषणा की और 1996 में, 1994 की घोषणा की सम्पूर्ति के लिए घोषणा स्वीकार की जिसमें आतंकवाद के सभी कार्यों और व्यवहारों को अपराध ठहराते हुए उनकी भर्त्सना की।

11 सितम्बर, 2001 को अमरीका पर हुए भयंकर आतंकवादी हमलों ने आतंकवाद को अन्तर्राष्ट्रीय कार्य–सूची के केन्द्र में ला दिया। 12 सितम्बर को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् ने अमरीका पर हुए आतंकवादी हमलों की निन्दा करने सम्बन्धी संकल्प 1368 पारित किया। उसके बाद 28 सितम्बर, 2001 को उसने संकल्प 1373 (2001) पारित किया जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का प्रतिकार करने के लिए विविध और व्यापक नीतियों का उललेख है। इस संकल्प में अन्य बातों के साथ–साथ सभी राज्यों से आतंकवादी कृत्यों को धन देने से रोकने और उनका दमन करने, संभावित आतंकवादियों की सभी वित्तीय परिसम्पत्तियों तथा आर्थिक संसाधनों पर रोक लगाने, आतंकवादियों को किसी प्रकार का समर्थन देने जिसमें भर्ती और प्रशिक्षण आदि शामिल है, से बचने का आवाह्न किया गया है।

आतंकवाद का सामना करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ में अभी दो प्रक्रियायें चल रही हैं–

(i) भारत द्वारा प्रस्तावित (वर्ष 1996 में) अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद पर एक व्यापक अभिसमय का अन्तिम रूप दिया जाना।

(ii) संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा सितम्बर 2006 में अंगीकार की गई–वैश्विक आतंकवादरोधी रणनीति इसके क्रियान्वयन के लिए सदस्यों की अनौपचारिक बैठक दिसम्बर, 2007 में आयोजित की गई ताकि अभी तक किये गये प्रयासों का मूल्यांकन किया जा सके।

21.13.2 संयुक्त राज्य अमेरिका की आतंकवाद के विरूद्ध जंग की नीति–11 सितम्बर, 2001 को घटना के बाद अमेरिकी राष्ट्रपति बुश ने आतंकवाद के विरोध में निम्न जंग नीति अपनायी। इस नीति के अन्तर्गत उसने आतंकवाद के विरोध में निम्न अभियान चलाया–

(i) आतंकवाद के विरूद्ध विश्व जनमत को साथ लेने की कूटनीति–अमरीका ने अपने आतंकवादी जंग को प्रारम्भ करने से पहले विश्व जनमत को अपने साथ लेने का अभियान चलाया। उसकी इस राजनयिक पहल में अमेरिका को पूरी सफलता मिल गई। अमेरिका ने नाटो के सभी देशों और रूस से भी इस षड्यंत्र के अपराधियोंको खोजने व ढूँढ़ने में सहायता माँगी।

उसने संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभी की बैठक आयोजित करने की पहल की ताकि आतंकवादियों के खिलाफ कार्यवाही में अधिकतम समर्थन जुटा सके।

(ii) आतंकवादियों के विरूद्ध सशस्त्र संघर्ष की नीति–आतंकवाद के विरूद्ध अमेरिका ने एक तरफ पाकिस्तान की धरती से तथा दूसरी तरफ अफगानिस्तान के उत्तरी गठबन्धन को सैनिक तथा आर्थिक सहायता देकर सशस्त्र संघर्ष प्रारम्भ कर दिया और इस संघर्ष मे तालिबान सरकार का पतन हो गया तथा अफगानिस्तान से आतंकवादियों का सफाया हुआ। इस प्रकार अमेरिका ने अलकायदा आतंकवाद के विरूद्ध संघर्ष को जारी रखा।

(iii) आतंकवाद को इस्लाम से अलग करने की नीति–आतंकवाद के विरूद्ध अमेरिका की सशस्त्र संघर्ष की नीति को अलकायदा तथा लादेन ने इसे इस्लाम के विरूद्ध अमरीकी साम्राज्यवाद का हमला बताया। दूसरी तरफ अमेरिका ने आतंकवाद को इस्लाम से पृथक् करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार अमरीका ने आतंकवाद और इस्लाम को अलग–अलग कर अफगानी आतंकवाद के विरूद्ध संघर्ष किया।

21.13.3 भारत की आतंकवाद विरोध की नीति–भारत ने प्रारंभ से ही सभी तरह के आतंकवाद के विरोध की नीति अपनायी है। आतंकवादी गतिविधियों पर अंकुश लगाने के लिए भारत सभी छोटे–बड़े देशों से इस बुराई के खिलाफ संगठित होकर कार्य करने पर बल दे रहा है।

6 जनवरी, 2002 को **भारत–ब्रिटिश नई दिल्ली घोषणा–पत्र** में आतंकवद के विरूद्ध चार मूल बिन्दु निर्धारित किये गये जिनके प्रति प्रतिबद्धता दोनों देशों में व्यक्त की। ये मूल बिन्दु इस प्रकार हैं:–

(अ) आतंकवाद को किसी भी आधार पर न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता, जहाँ कहीं भी यह हो, उसकी कड़ी निन्दा की जानी चाहिए तथा इसका उन्मूलन किया जाना चाहिए।

(ब) आतंकवाद को समर्थन देने वाले सभी लोगों, आतंकवादियों को शरण, प्रशिक्षण एवं वित्तीय सहायता प्रदान करने वाले सभी व्यक्तियों एवं संगठनों की निन्दा की जाए।

(स) विश्व में आतंकवाद को समूल समाप्त करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव संख्या 1373 का दोनों देशों ने समर्थन किया।

(द) आतंकवाद विरोधी गतिविधियों के संचालन के लिए दोनों राष्ट्रों द्वारा पारस्परिक सहयोग हेतु समिति बनाने की बात पर सहमति हुई।

सितम्बर, 2007 में सपन्न संयुक्त राष्ट्र महासभा के 62वें अधिवेशन में भी भारत ने आतंकवाद के विरूद्ध एकजुट होकर संघर्ष की हिमायत की।

दक्षेस के 18वें शिखर सम्मेलन (नवम्बर, 2014) में दक्षिण एशिया में बढ़ा आतंकवाद और धार्मिक कट्टरपंथ को समाप्त करने व आपराधिक मामलों में परस्पर सहयोग के भारत के आवाहन का सभी सदस्य देशों ने समर्थन किया तथा आतंकवाद, चरमपंथ और उग्रवाद से सामूहिक रूप से लड़ने कर प्रतिज्ञा की। सितम्बर, 2016 में चीन में हुए जी–20 के शिखर सम्मेलन मे भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने आतंकवाद के विरूद्ध जीरो टॉलरेंस की नीति पर बल दिया तथा कहा कि जो देश आतंकवाद को बढ़ावा दे रहे हैं, उन्हें अलग–थलग किया जाना चाहिए।

21.13.4 आतंकवाद को रोकने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संगठन–आतंकवाद को रोकने के लिए निम्नलिखित संगठनों का निर्माण किया गया हैं–

(i) काउंटर टेरेरिज्म कमेटी (सीटीसी)–संयुक्त राष्ट्र के अधीन कार्यरत यह कमेटी राष्ट्र संघ द्वारा पारित आतंकवाद विरोधी प्रस्तावों के क्रियान्वयन का कार्य करती है तथा आतंकवाद से जूझ रहे देशों की सहायता करती है।

(ii) फिनांशियल एक्शन टास्क फोर्स–यह अन्तर्राष्ट्रीय संस्था आतंकवादियों के वित्तीय स्त्रोतों एवं लेन–देन पर निगाह रखती है। इसके 33 देश सदस्य हैं।

(iii) आपरेशन ग्रीन क्वेट–न्यूयॉर्क स्थित यह संगठन आतंकवादियों के वित्तीय स्त्रोतों पर रोकथाम का कार्य करता है। इसे अमेरिका ने स्थापित किया था।

(iv) काउन्टर टेरेज्मि ग्रुप (सीटीजी)–यह संगठन भी आतंकवादियों के वित्तीय स्त्रोतों पर निगाह रखता है। इसके 8 सदस्य हैं।

21.14 सारांश

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि आज आतंकवाद का सामना करने के लिए यह आवश्यकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसी नीति या नियमों का निर्धारण किया जाये जिसका अनुकरण सभी देश ईमानदारी से करें तथा विश्व के शक्तिशाली व विकसित राष्ट्र इस समस्या के समाधान हेतु विशेष भूमिका निभायें।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. आतंकवाद के उदय के प्रमुख कारणों का विवेचन कीजिए।
2. आतंकवाद के प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।
3. आतंकवाद की समाप्ति के लिए किये गये प्रयासों का उल्लेख कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. आतंकवाद के प्रकारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. आतंकवाद की समाप्ति के लिए सुझाव दीजिए।
3. आतंकवाद के प्रमुख उद्देश्य बताईए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. आतंकवाद क्या हैं ?
2. किन्हीं चार आतंकवादी संगठनों के नाम लिखिए।
3. आई.एस.आई.एस. (ISIS) का पूरा नाम बताईए।

इकाई–22

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भूमिका

(Role of Science and Technology in International Relations)

22.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का अर्थ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास प्रवृत्तियों तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के निर्धारण में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की भूमिका का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- प्रौद्योगिकी व तकनीक का अर्थ समझ सकेगें।
- विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास की नवीन प्रवृतियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के निर्धारण में तकनीकी की भूमिका के बारे में समझ सकेगें।

22.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में तकनीक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में इसका महत्त्व प्राचीन काल से लेकर आज तक बना हुआ है। इसे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का स्वरूप बदलने वाला एक महत्त्वपूर्ण कारक माना जा सकता है। उल्लेखनीय है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी वे साधन है जिनसे मनुष्य अपने परिवेश व जीवन में सकारात्मक परिवर्तन ला सकता है। किसी सामाजिक या राजनीतिक आवश्यकता से वैज्ञानिक आविष्कारों का जन्म होता है तथा जब वैज्ञानिक आविष्कारों का प्रयोग बहुत सारे भौतिक पदार्थो के व्यवहारिक उपयोग में लाया जाता है तो प्रौद्योगिकी का विकास होता है। 20वीं शताब्दी को प्रौद्योगिकी शताब्दी कहा जाता है। इस प्रौद्योगिकी शताब्दी का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर व्यापक प्रभाव पड़ा है इससे सामाजिक परिवर्तनों के साथ–साथ वैश्विक अर्थव्यवस्था में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन आया है। इस प्रकार 20वी शताब्दी की प्रौद्योगिकी क्रान्ति के परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का स्वरूप बदल गया है।

22.2 प्रौद्योगिकी या तकनीक का अर्थ

विज्ञान के व्यवहारिक ज्ञान को तकनीक का नाम दिया जाता है। तकनीक या प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत आविष्कार तथा वे सभी साधन आते है जिनसे राष्ट्र की भौतिक समृद्धि में सहायता मिलती है। तकनीकी उन्नति से अभिप्राय है नयी पद्धतियों का प्रयोग। यह एक प्रकार से पुराने तौर–तरीकों की विजय है। तकनीकी परिवर्तन एक जटिल समाजिक प्रक्रिया है जिसमें कई तत्व शामिल है, जैसे विधान, शिक्षा, अनुसन्धान, वैयक्तिक एवं सार्वजनिक क्षेत्रों में विकास, प्रबन्ध, प्रविधि, उत्पादन सुविधाएं, श्रमिक और मजदूर संगठन। क्विन्सी राइट के अनुसार, ''अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के प्रशिक्षण के रूप में तकनीकी ज्ञान वह विज्ञान है जो आविष्कार और भौतिक संस्कृति की प्रगति को विश्व राजनीति से संयुक्त करता है। यह यान्त्रिक पद्धतियों के विकास तथा युद्ध–कूटनीति, अन्तर्राष्ट्रीय, व्यापार, यात्रा एवं संसार में उनके प्रयोग की कला है।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र–कृषि, उद्योग, चिकित्सा, शासन व्यवस्था, शिक्षा का उपकरण, संचार साधन, अर्थव्यवस्था तथा युद्ध संचालन में तकनीकी शोधों का अपूर्व प्रभाव है। चिरकाल से तकनीक ने राष्ट्रीय शक्ति की स्थिति के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है और यह माना जाता है कि तकनीकी ज्ञान की दृष्टि से एक राष्ट्र जितना आगे बढ़ जाता है वह उतना ही अधिक शक्ति की दृष्टि से भी आगे आ जाता है। तकनीकी विकास से राष्ट्रीय शक्ति को अनेक रूपों में प्रभावित होती है तकनीकी प्रगति राष्ट्र के स्वरूप को बदल देती है, पुराना परम्परावादी समाज और राष्ट्र आधुनिक एवं प्रगतिशील बन जाता है, इससे राष्ट्रों की शक्ति स्थिति में परिवर्तन आ जाता है, राष्ट्र की आक्रमणकारी शक्ति बढ़ जाती है, राष्ट्र की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आ जाता है। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि आज अपनी तकनीकी प्रगति के कारण ही संयुक्त राज्य अमरीका और रूस की गणना संसार की महाशक्तियों में होती है।

22.3 विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास की प्रवृतियाँ

आधुनिक युग में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का निरन्तर विकास हो रहा है। 20वीं सदी की शुरूआत से ही प्रोद्योगिकी के विकास हेतु विज्ञान का सहारा वृहद् पैमाने पर लिया जाने लगा। फलतः अनुसंधान एवं विकास गतिविधि के लिए अनेक प्रयोगशालाएँ स्थापित की गई और विभिन्न कार्यक्रमों को सूत्रबद्ध करके विज्ञान की प्रगति की ओर ध्यान दिया गया। इसके अन्तर्गत ऊर्जा, स्वाथ्य, कृषि, इलेक्ट्रॉनिक्स, अंतरिक्ष अनुसंधान तथा नाभिकीय विज्ञान इत्यादि पर विशेष ध्यान दिया गया। अब किसी क्षेत्र का अध्ययन उसके बिना किसी वास्तविक सम्पर्क के किया जा सकता है। पृथ्वी की सतह की वस्तुओं से सूर्य की विद्युत चुंबकीय किरणें को टकराने के बाद होने वाले विकिरण को उपग्रहों के माध्यम से मापा जा सकता है। उपग्रहों या वायुयानों में लगे दूर–संवेदक, विद्युत–चुंबकीय पटल की पराबैगनी एवं सूक्ष्म तरंग किरणों का इस्तेमाल करके इन किरणों की प्रवृति के आधार पर धरातलीय वस्तुओं का अनुमान लगा सकते है।

इस प्रकार वैज्ञानिक ज्ञान एवं प्रौद्योगिक का स्तर आधुनिक विश्व में दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। जैसे–जैसे विज्ञान अपने क्षेत्र का विस्तार कर रहा है, वैसे–वेसे ही अनुसंधान उपकरण एवं लागत खर्च बढ़ रहे है। वैज्ञानिकों को महंगे

उपकरणों पर निर्भर होना पड़ रहा है। विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में एक–दूसरे से अन्तःक्रिया बढ़ रही है। इससे वैज्ञानिक अनुसंधान एवं प्रौद्योगिक विकास के लक्ष्य इतने विस्तृत एवं व्यापक हो गए कि अब विभिन्न वैज्ञानिकों को समूह के रूप में टीम भावना के अनुसार कार्य करना पड़ता है। फलतः जटिल उपकरण, विशाल धनराशि एवं कामगारों के क्रियाकलाप आधुनिक युग में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास हेतु अनिवार्य हो गए है।

इसके परिणामस्वरूप वैज्ञानिक अनुसंधान एवं विकास अब सरकार के नियंत्रण में चले गए है। सरकार द्वारा प्रदत्त धन से विविध क्षेत्रों में वैज्ञानिक अनुसंधान एवं विकास की रणनीति अधिक सुदृढ हुई है। विज्ञान एवं तकनीक के जरिए सामाजिक व आर्थिक नियोजन पर बल दिया जा रहा है। वैज्ञानिकों के सामने सुरक्षित लक्ष्य रखे गए है और विज्ञान पर अपेक्षाओं का भार आ पड़ा है। इसे मानव जाति के लिए वे सारे लाभ सुनिश्चित करने है, जो वैज्ञानिक ज्ञान के उपार्जन और उपयोग से हासिल हो सकते है। इस प्रकार वैज्ञानिक ज्ञान के उपयोग से संसार में जीवन का स्तर बेहतर हुआ है। आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के उपयोग ने कई जटिल समस्याओं को हल करने में मदद की है। अब विज्ञान में सैद्धान्तिक कार्य की बजाय व्यावहारिक कार्य करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। बात चाहे रोग नियंत्रण, कृषि क्रांति अंतरिक्ष या अन्य क्षेत्रों को हो, विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने आबादी के बड़े हिस्से को राहत पहुँचायी है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रयोग न केवल आतंक के उन्मूलन, बल्कि परमाणु ऊर्जा और रक्षा के क्षेत्र की उपलब्धियों को भी नया आयाम प्रदान किया है।

तकनीकी प्रगति के तीन क्षेत्रों ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को सबसे अधिक प्रभावित किया है।

1. सैनिक तकनीक, 2. औद्योगिक तकनीक, 3. संचार तकनीक।

1. सैनिक तकनीक – अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की दृष्टि से सैनिक तकनीक में हुई प्रगति ने राष्ट्रीय शक्ति को बहुत अधिक प्रभावित किया है। राष्ट्रों तथा सभ्यताओं का भाग्य युद्ध तकनीक के अन्तर के कारण बहुधा निर्धारित हुआ। पन्द्रहवी शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक के अपने विकास काल में यूरोप ने युद्ध तकनीक की दृष्टि से इतनी अधिक प्रगति की कि वह पश्चिमी गोलार्द्ध, अफ्रीका तथा निकटवर्ती तथा सुदूपूर्व के देशों की अपेक्षा कहीं बढ़कर थी। चौदहवीं तथा पन्द्रहवीं शताब्दियों में परम्परागत अस्त्रों में पैदल सेना, आग्नेय अस्त्र व तोपखाने के जुड़ जाने से शक्ति के वितरण में महत्वपूर्ण परिवर्तन उस पक्ष के अनुकूल हो गया, जिसने इनका प्रयोग अपने शत्रु से पूर्व प्रारम्भ कर दिया था। सामन्त एवं राजा लोग जो घुड़सवार सेना तथा दुर्ग पर अवलम्बित रहे, अब अपनी पहली प्रबल स्थिति को दुर्बल पाने लगे और नए अस्त्रों के सामने अपने को पूर्व स्थिति से विच्छिन्न अनुभव करने लगे। सैनिक तकनीक में परिवर्तन की प्रक्रिया को दो घटनाओं से स्पष्ट किया जा सकता है। प्रथम, सन् 1315 में मोरगाटन तथा सन् 1339 में लाऊपन के युद्धों में स्थित पैदल सेनाओं ने सामन्तवादी घुड़सवार सेनाओं को विध्वंसपूर्ण पराजय प्रदान की थी, जिससे यह स्पष्ट हो गया कि आम जनता की संगठित पैदल सेना, सामन्तशाही कीमती घुड़सवार सेना से उच्च होती है। दूसरा उदाहरण 1449 में फ्रांस के चार्ल्स अष्टम ने उन गर्वोन्मत्त इटालियन नगर राज्यों की शक्ति को ध्वस्त कर दिया था, जो उस समय तक दीवारों के पीछे सुरक्षित रहा करते थे।

बीसवीं शताब्दी में अभी तक युद्ध की तकनीक में चार नए परिवर्तन दृष्टिगोचर होते है। इस नए तकनीकी परिवर्तनों द्वारा एक पक्ष को विरोधी पक्ष के विरूद्ध कम से कम तात्कालिक लाभ प्राप्त हो गया, क्योंकि विरोधी पक्ष या तो उसे पहले प्रयोग में न ला पाया अथवा उनके विरूद्ध बचाव नहीं कर पाया। सर्वप्रथम, तो प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटिश जहाजों के विरूद्ध विशेष रूप में प्रयोग की गयी जर्मनी की पनडुब्बियां थीं। इनसे तो ऐसा विदित होने लगा था कि शायद वे जर्मनी के पक्ष में युद्ध के निर्णय का ही कारण बन जाएगीं, किन्तु ग्रेट ब्रिटेन ने उनके विरूद्ध जवाब में सशस्त्र रक्षक जहाजी बेड़े का आविष्कार कर लिया। द्वितीय, जर्मनी के मुकाबले में ग्रेट ब्रिटेन ने प्रथम विश्वयुद्ध के अन्तिम दिनों में टैंकों का काफी बड़ी संख्या में तथा केन्द्रित रूप में प्रयोग किया था, जिससे मित्र राष्ट्रो को विजय के लिए महत्वपूर्ण पूंजी प्राप्त हो गयी थी। तृतीय, स्थल, जल और वायु सेना का युद्ध संचालन व व्यूह–रचना में चातुर्यपूर्ण प्रयोग द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ में जर्मनी तथा जापान के लिए उच्चता का कारण बन गया था। पर्ल हरबर तथा ब्रिटिश व डच द्वारा सन् 1941 व 1942 में जापान के हाथों खायी गयी विध्वंसकारी पराजय एक प्रगतिशील शत्रु के प्रहार के सम्मुख तकनीकी पिछड़ेपन की सजा ही थी। अन्त में, जिन राष्ट्रों के पास अणुशस्त्र तथा उन्हें फेंकने के साधन है वे अपने प्रतिद्वन्द्वियों की तुलना में तकनीकी दृष्टि से बहुत लाभपूर्ण स्थिति में है। अणु प्रक्षेपास्त्रों के निमार्ण के लिए उच्चस्तरीय संश्लिष्ट, गहन तकनीकी, औद्योगिक ज्ञान की आश्यकता है। अणु प्रक्षेपास्त्रों के आधिपत्य के कारण आज अमरीका, रूस और चीन की आक्रामक एवं संहारक शक्ति अपरिमित हो गयी है।

इनकी तुलना में विश्व के अन्य राष्ट्र शक्ति की दृष्टि से नगण्य हो गए है। अतः आणविक तकनीक ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राज्यों के शक्ति परिणाम को मूलतः परिवर्तित कर डाला है।

2. औद्योगिक तकनीक – औद्योगिक तकनीकी आर्थिक समृद्धि की स्थापना करके राष्ट्रीय शक्ति में वृद्धि करती है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कार्य करने की अधिक श्रेष्ठ, सक्षम, सुनियोजित, व्यवस्थित तकनीकी प्रक्रिया को ही औद्योगिक ज्ञान का विकास कहते है। औद्योगिक विकास का उद्देश्य तकनीकी ज्ञान से उत्पादन क्षमता बढ़ाना, वितरण तथा संचय

की समस्याओं का निराकरण, उद्योगों का संगठन, वैज्ञानिक ज्ञान का उद्योगों में प्रयोग, श्रमिकों का प्रशिक्षण तथा राष्ट्रीय हितों के साथ श्रमनीति का सामंजस्य करना होता है। प्रो. राल्फ टर्नर के शब्दों में, ''भूमि में खनिज पदार्थ की अन्वेषण प्रक्रिया से लेकर धातु को अस्त्र–शस्त्र का रूप देने की तथा युद्ध–स्थल तक पहुँचाने की क्रिया औद्योगिक ज्ञान के उपयोग की क्रमिक अवस्थाएं है। सम्पूर्ण रूप से सफल युद्ध संचालन की मुख्य समस्या, इस व्यापक क्रम की निरन्तरता को बनाए रखना है।

18वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति ने औद्योगिक तकनीक के क्षेत्र में प्रगति के लिए महान् मार्ग प्रशस्त किया था और उसके उपरान्त विश्व के राज्यों के शक्ति सम्बन्धों में बुनियादी अन्तर आया। औद्योगिक तकनीकी के परिणामस्वरूप ही ब्रिटेन अपने उपयोग की आवश्यकता से बहुत अधिक उत्पादन करने में सफल हो गया। इस अधिक उत्पादन को बेचने के लिए उसे नयी मण्डियों की खोज करनी पड़ी, जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश साम्राज्यवाद की स्थापना हुई। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय दक्षिणी–पूर्वी एशिया के रबड़ पैदा करने वाले देशों पर जब जापान ने अधिक कर लिया तो अमरीका को रबड़ मिलना कठिन हो गया, परन्तु अमरीका ने अपनी सुविकसित औद्योगिक तकनीक के सहारे सिन्थैटिक रबड़ उत्पादित कर इस कमी को पूरा कर लिया और उसकी राष्ट्रीय शक्ति पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ सका।

औद्योगिक तकनीकी सहायता से राष्ट्र के आर्थिक उत्पादन में वृद्धि होती है जिससे नागरिकों का जीवन–स्तर ऊंचा उठता है। राष्ट्र के निवासियों का जीवन–स्तर ऊंचा होने से अन्य राष्ट्रों द्वारा उसे प्रशंसा प्राप्त होत है। इससे राष्ट्र में पूंजी का बाहुल्य होता है और पूंजी बाहुल्य के कारण तकनीकी अथवा आर्थिक सहायता देने में राष्ट्र सक्षम हो जाता है। संयुक्त राज्य अमरीका की शक्ति का एक बहुत बड़ा कारण उसके द्वारा जरूरतमन्द राष्ट्रों को अलग–अलग ढंग की आर्थिक सहायता देने की सामर्थ्य है और इसके माध्यम से वह उनके व्यवहार को प्रभावित करने की स्थिति में आ जाता है।

3. संचार तकनीक – संचार तकनीकी से अभिप्राय यह है कि आवागमन और संचार के आधुनिक साधनों का किसी राष्ट्र में किस सीमा तक विकास हुआ है। संचार तकनीकी के उन्नत विकास पर ही वस्तुओं, मनुष्यों और विचारों का आदान–प्रदान सम्भव है। आवागमन के आधुनिक साधनः जैसे सड़कें, रेल, मोटर, वायुयान न केवल किसी राष्ट्र को एकता प्रदान करते है। अपतु दूसरे राष्ट्रों की आर्थिक समृद्धि एवं व्यापार सुविधाएं बढ़ाने में भी बहुत बड़ा योगदान देते है। रेडियों, टेलीविजन, आदि प्रचार साधनों से न केवल अपने राष्ट्र के निवासियों के मस्तिष्क पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। इनसे जहां एक ओर किसी राष्ट्र को नागारिकों को भड़काया जा सकता है। सुविकसित प्रचार तकनीकों से अन्य राष्ट्रों के सम्मुख अपनी राष्ट्रीय शक्ति का प्रदर्शन भी किया जा सकता है। हम सभी जानते है कि साम्यवादी चीन ने भारत विरोधी प्रचार कर पाकिस्तान की मैत्री प्राप्त कर ली। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान हिटलर ने संचार माध्यमों से जर्मन शक्ति का ऐसा प्रदर्शन किया कि ब्रिटेन और फ्रांस जैसे देशों को भी तुष्टीकरण की नीति अपनानी पड़ी।

पैडलफोर्ड एवं लिंकन के अनुसार 'तकनीकी' पांच प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को प्रभावित करती है। प्रथम, तकनीकी के कारण एक देश अपनी मान्यताओं और लक्ष्यों में परिवर्तन कर लेता है। अमरीका ने जिस समय अपनी पार्थक्यकरण की नीतियों को छोड़ा उस समय तकनीकी के कारण उसकी आक्रामक क्षमता काफी बढ़ चुकी थी। द्वितीय, तकनीकी द्वारा अन्य तत्वोंः जैसे आर्थिक तत्व, जनसंख्या, मनोबल, आदि को भी प्रभावित किया जाता है। तकनीकी से सम्पन्न जनसंख्या वाला देश ही महाशक्ति बनने के सपने संजो सकता है। तृतीय, तकनीकी विदेश नीति की विषय–वस्तु को प्रभावित करती है। आणविक शस्त्रों के विकास करने की क्षमता का प्रदर्शन के बाद सन् 1971 में अमरीका ने चीन को मान्यता प्रदान कर दी। चतुर्थ, तकनीकी राष्ट्र निर्माण का प्रचुर साधन है। यह औद्योगिक देशों को वह सामर्थ्य देती है जिसके आधार पर वे सम्पत्ति का प्रचुर निर्माण कर उसका निर्यात करते है। पंचम, तकनीकी का विदेश नीति के संचालन पर क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ा है। इससे विदेश नीति का लोकतन्त्रीकरण हुआ है और विदेशी नीति से सम्बन्धित प्रश्नों पर लोकमत का प्रभाव बढ़ा है।

22.4 अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के निर्धारण में तकनीक की भूमिकाः अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के निर्धारण में प्रौद्योगिकी या तकनीक की महत्वपूर्ण भूमिका है। इसको निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है।

22.4.1 तकनीक द्वारा राष्ट्र के स्वरूप में परिवर्तन – तकनीक के माध्यम से राज्य का स्वरूप परिवर्तित हो सकता है। आर्नोल्ड टायनबी की मान्यता है कि राजनीतिक समुदाय का आकार संचार–साधनों की प्रगति के अनुपात में विकसित होता है। जब आवागमन के साधन स्थानीय अथवा एकदम अविकसित थे, तब लोग कुछ ही मीलों के दायरे में सामूहिक रूप से रहते थे। कालान्तर में जब लोगों ने घोड़ों आदि का प्रयोग आरम्भ किया तो नगर–राज्य और प्रारम्भिक राज्य की स्थापना हुई। आवागमन के साधनों के विकास के साथ लोग अधिकाधिक क्षेत्रों पर नियन्त्रण करने की ओर प्रेरित हुए और आकार की वृद्धि के साधन के रूप में तकनीकी आविष्कारों का अधिकाधिक प्रयोग किया जाने लगा। 15वीं शताब्दी में जब समुद्रों पर विजय पा ली गयी तथा विशालकाय जहाजों का निर्माण हुआ तो अन्तमहाद्वीपीय साम्राज्य स्थापित हुए और आज ध्वनि की गति से तीव्रगामी वायुयानों ने विश्व को एक परिवार का रूप दे दिया है। इसी प्रकार जो समुद्र पहले के

दो राष्ट्रों के। मध्य सम्पर्क बढ़ाने में बाधक थे, वे आज सम्पर्क को घनिष्ठ बनाने के साधन बन गये है। संसार के साधनों और सैनिक संसाधनों के क्षेत्र में तकनीकी खोजों ने शक्ति के नये स्त्रोत खोल दिये है।

22.4.2 तकनीक द्वारा राष्ट्र की शक्ति–स्थिति में परिवर्तन – तकनीक विकास राज्य की शक्ति–स्थिति में परिवर्तन लाने में सक्षम है। प्राचीन काल में शक्ति उन राष्ट्रों के पास थी जिनके पास पर्याप्त सैनिक और घोड़े हुआ करते थे। मध्य युग में बारूद के आविष्कार से बन्दूक और तोप वाली सेना शक्तिशाली मानी जाने लगी। वर्तमान युग अणु युग है इसमें तकनीकी ज्ञान के माध्यम से प्रगति कर अमरीका समस्त राष्ट्रों का सिरमौर बना हुआ है। तकनीकी विकास की प्रवत्ति राष्ट्र की सुरक्षात्मक वृद्धि की अपेक्षा आक्रमणकारी शक्ति को बढ़ाने की है।

22.4.3 तकनीक द्वारा राज्य की समाजिक–आर्थिक अवस्था में परिवर्तन – तकनीक ज्ञान राज्य की सामाजिक और आर्थिक प्रगति में सहायक होता है। तकनीक से राष्ट्र का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है, नागरिकों का जीवन–स्तर उठाया जा सकता है, स्वास्थ्य के क्षेत्र में महामारियों और बीमारियों से नागरिकों की रक्षा की जा सकती है। राष्ट्र की आर्थिक शक्ति में विकास सम्भव है। तकनीक से ऊर्जा के साधन अधिक प्रभावी बनते जा रहे है।

22.4.4 तकनीकी विकास राजनीतिक स्वतन्त्रता को सार्थक बनाता है – स्प्राउट के मतानुसार कोई राष्ट्र तकनीकी विज्ञान की दृष्टि से आत्म–निर्भर बनकर अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता को अधिक सार्थक और प्रभावशाली बना सकता है तथा स्वतन्त्र निर्णय शक्ति का विकास कर सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में तकनीकी विकास के सहारे राष्ट्र अपनी शक्ति के दूसरे तत्वों को प्रभावशाली बना लेता है। जैसे – विकसित तकनीक के बल पर कृषि तथा औद्योगिक क्षेत्र में क्रान्ति लायी जा सकती है, राजनीतिक स्वतन्त्रता का सार्थक बनाया जा सकता है। तकनीकी रूप से विकसित राष्ट्रों ने पिछड़े हुए अफ्रों–एशियाई राष्ट्रों की राजनीतिक स्वतंत्रता को अनेक दबावों से प्रभावित किया है।

22.4.5 तकनीक और विश्व सरकार के प्रयास – आज विश्व दोराहे पर खड़ा है। प्रश्न यह है कि तकनीकी ज्ञान के विकास को रचनात्मक कार्यों में लगाकर मानव को सुखी बनाया जाये या विनाशकारी हथियारों से उसे समाप्त कर दिया जाये। आज समय की माँग है कि विश्व के राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में अपना विश्वास प्रकट करते हुए 'विश्व सरकार' के लिए प्रयास करें। तभी मानव सभ्यता सुरक्षित रह सकती है।

22.4.6 तकनीक द्वारा राष्ट्र की आक्रमणकारी शक्ति में परिवर्तन – तकनीक से राष्ट्र की आक्रामणकारी शक्ति में बहुत वृद्धि हुई है। तकनीकी हथियारों को जो देश पहले अपना लेते है, वे लाभ में रहते है। हेंस जे, मॉर्गेन्थों में चार पद्धतियों की ओर संकेत किया है।

(i) जर्मनी की पनडुब्बियाँ प्रथम विश्वयुद्ध में ब्रिटिश जहाजों के विरूद्ध विशेष रूप में प्रयोग की गयी थी जिनसे यह भय पैदा हो गया था कि शायद युद्ध का निर्णय जर्मनी के पक्ष में होगा, किन्तु ग्रेट ब्रिटेन ने इसके जवाब में सशस्त्र रक्षक जहाजी बेड़े का आविष्कार कर पासा पलट दिया।

(ii) जर्मनी ने प्रथम विश्वयुद्ध के अन्तिम दिनों में टैंकों का भारी संख्या में प्रयोग किया जिससे मित्र राष्ट्रों की विजय का मार्ग प्रशस्त हुआ।

(iii) जल, थल और वायु सेना के युद्ध–संचालन और चातुर्यपूर्ण व्यूह रचना के बल पर द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ में जर्मनी और जापान ने चारों ओर तहलका मचा दिया।

(iv) जिन राष्ट्रों के पास अणु–अस्त्र और उन्हें द्रुतगति से निशाने पर छोड़ने के मिसाइल हैं वे अपने प्रतिद्वन्द्वियों की तुलना में तकनीकी दृष्टि से बहुत लाभपूर्ण स्थिति में है। तकनीकी आविष्कार के साथ–साथ युद्ध तकनीक भी आक्रमणकारी शक्ति को प्रबल बना देती है। 1991 के खाड़ी युद्ध में इराक पर अमरीका की नेतृत्व वाली बहुराष्ट्रीय सेनाओं की सफलता का कारण अमरीका की तकनीकी सैनकि श्रेष्ठता थी। आज अनेक ऐसे जैविक और रासायनिक हथियार बन गये है, जिनके प्रयोग से सम्पूर्ण मानव–जाति कुछ ही घण्टों में समाप्त की जा सकती है। एच० जे० मॉर्गेन्थो एवं स्प्राउट के अनुसार बोटुलिनस नामक विषैले पदार्थ की केवल साढ़े आठ औंस की मात्रा, इस धरती पर बसने वाली सम्पूर्ण मानव–जाति को नष्ट कर सकती है।

22.4.7 तकनीक विकास से राज्यों की गोपनीयता समाप्त हो गयी – तकनीकी विकास से राज्यों की गोपनीयता समाप्त हो रही है। जिस विकास को राज्य गोपनीय रखना चाहते हैं तकनीक विकास से वह शीघ्र ही अन्य राज्यों को ज्ञात हो जाता है। अमरीका ने अणु बम की तकनीक को गुप्त रखा लेकिन रूस ने उसका पता लगा लिया और भारत, चीन, जापान, इसराइल आदि देश उस तकनीक से परिचित हो चुके है।

22.4.8 तकनीक का शीतयुद्ध पर प्रभाव – तकनीक विकास ने शीतयुद्ध को प्रोत्साहित किया। अणु बम का निर्माण अमरीका ने किया लेकिन रूस को इसकी तकनीक अमरीका ने नहीं दी। बाद में रूस ने भी इसका ज्ञान प्राप्त कर अणु बम बना लिया और दोनों देशों में शीतयुद्ध शुरू हो गया। सैनिक तकनीक से गुटबन्दियों को प्रेरणा मिली इसके फलस्वरूप सीटो, सेण्टो, वारसापैक्ट जैसे संगठन बने।

22.4.9 तकनीक के कारण एक राष्ट्र की मान्यताओं औल लक्ष्यों में परिवर्तन – तकनीक के कारण एक राष्ट्र अपनी मान्यताओं और लक्ष्यों में परिवर्तन कर लेता है। संयुक्त राज्य अमरीका ने जिस समय अपनी अलगाववादी नीति को छोड़ा उस समय नई तकनीक के कारण राष्ट्र की आक्रामक क्षमता बहुत बढ़ चुकी थी। आज विश्व संचार–साधनों के विकास के कारण 'एक विश्व' हो चुका है। एक विश्व होने का अर्थ हैः राष्ट्रों की पारस्परिक निर्भरता का बढ़ना। आज विश्व के किसी भी भाग में होने वाला छोटा सा संघर्ष समस्त राष्ट्रों की रूचि का विषय बन जाता है और उन्हें प्रभावित करता है। तकनीकी प्रभाव के कारण स्थिति यह हो गयी है कि कोई राष्ट्र अपनी इच्छाओं को केवल शक्ति के माध्यम से क्रियान्वित नहीं कर सकता और न ही यह सोच सकता है कि पर्याप्त दूरी की समस्याओं से उसका कोई सम्बन्ध नही है।

22.4.10 तकनीक के कारण आर्थिक तत्त्व तथा जनसंख्या आदि में परिवर्तन – तकनीक से आर्थिक तत्त्व तथा जनसंख्या आदि को प्रभावित किया जाता है। उदाहरणार्थ– तेल का उत्पादन करने वाले क्षेत्रों को परम्परागत रण–कौशल की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समझाा जाता है। परन्तु अणु शक्ति के प्रसार से इनका महत्त्व घट गया है। दूरी का भौगोलिक महत्त्व बहुत कम हो गया है। तकनीकी दृष्टि से सम्पन्न जनसंख्या वाला राष्ट्र महाशक्ति बन सकता है।

22.4.11 तकनीक के कारण विदेश नीति में परिवर्तन – तकनीक विदेश नीति को प्रभावित करती है। तकनीकी विषयों में अन्तर्राष्ट्रीय समन्वय किया जाता है, तकनीकी सहायता कार्यक्रम चलाये जाते है। शस्त्र–नियन्त्रण पर अधिक बल दिया जाता है। अन्तरिक्ष तथा संचार स्थलों को नियमित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कानून बनाये जाते है।

22.4.12 तकनीक राष्ट्र निर्माण का प्रमुख साधन – तकनीक औद्योगिक देशों को वह सामर्थ्य देती है, जिसके आधार पर वे सम्पत्ति का प्रचुर मात्रा में निर्माण कर उसका निर्यात कर सकें। यह विकासशील राष्ट्रों को पूँजी के उपयोग की सामर्थ्य प्रदान करती है। विभिन्न राष्ट्र राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय तकनीकी विशेषज्ञों का आदान–प्रदान करते है। मानीवय एवं लाभकारी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय तकनीकी क्रियाएँ सरकारी एवं गैर–सरकारी स्तरों पर विकसित होती है, जिससे राष्ट्र–निर्माण होता है।

22.4.13. तकनीक का विदेश नीति पर प्रभाव – तकनीक का विदेश नीति के संचालन के तरीकों पर विशेष प्रभाव पड़ा है। संचार साधनों पर किया गया प्रचार, तकनीकी सहायता तथा वैज्ञानिक आदान–प्रदान, अन्तरिक्ष एंव अन्य प्रकार के कार्यक्रम, विदेश नीति के कार्यान्वयन को प्रभावित करते है।

22.5 तकनीकी विकास के आधार (Basis of Technological Development) – तकनीक विकास राष्ट्रीय शक्ति का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। आज सभी राष्ट्र इसे अपनाकर अपना विकास करना चाहते है। जापान, जर्मनी जैसे देश तो इसे अपनाकर अपना विकास कर चुके है। परन्तु भारत, पाकिस्तान, इण्डोनेशिया और चीन इतनी शीघ्रता से अपना विकास नहीं कर सके। तकनीकी विकास के आधार के रूप में कुछ निष्कर्ष निम्नलिखित है।

22.5.1 तकनीकी विकास पर सरकार के स्वरूप का अधिक प्रभाव नहीं पड़ता – इसका अभिप्राय यह है कि तकनीकी विकास सभी देश चाहते है चाहे वे पूँजीवादी हों या साम्यवादी।

22.5.2 तकनीकी विकास साम्यवादी व्यवस्था में अधिक हो यह आवश्यक नही है – तकनीकी विकास जितनी तेजी से चीन में हुआ उतनी तेजी से सोवियत संघ में नहीं हुआ जबकि दोनों ही देश उस समय साम्यवादी थे।

22.5.3 तकनीकी विकास पर सामाजिक शक्तियों का अधिक प्रभाव – तकनीक विकास पर सरकार के स्वरूप की अपेक्षा सामाजिक शक्तियों का अधिक प्रभाव पड़ता है। यदि समाज परिवर्तनशील और विकासशील है तो तकनीकी विकास सरलता से होता है। इसके विपरीत परम्परावादी और रूढ़िवादी समाज में तकनीकी विकास में अनेक बाधाएँ आती है। इस प्रकार जिस समाज का ढ़ाँचा वैज्ञानिक आधार में मेल नहीं खाता, वह समाज पिछड़ जाता है।

22.6 सारांश

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में तकनीक एवं प्रौद्योगिकी का व्यापक महत्त्व है। प्रौद्योगिकी और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के मध्य सम्बन्ध प्राचीन काल से ही रहा है। 20वीं शताब्दी में यह घनिष्ठता और अधिक बढ़ गई है। टेक्नॉलाजी ने शक्ति के स्वरूप तथा राष्ट्रों के मध्य सम्बन्धों में पूर्णतः परिवर्तन कर दिया है। आज वे ही राष्ट्र शक्ति के उच्च शिखर पर है जिन्होंने तकनीकी दृष्टि से काफी उन्नति कर ली है।

अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का अर्थ एवं भूमिक का विवेचन कीजिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के निर्धारण में तकनीकी की भूमिका एवं महत्त्व का उल्लेख कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. संचार तकनीक का वर्तमान में क्या महत्त्व है ? समझाईए।
2. सैनिक तकनीकी का महत्त्व स्पष्ट कीजिए।
3. तकनीकी विकास की प्रवृत्तियों का वर्णन कीजिए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रौद्योगिकी या तकनीक का अर्थ बताईए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में तकनीकी ने कौन–कौनसे तीन क्षेत्रों को सर्वाधिक प्रभावित किया।
3. तकनीकी का शीत युद्ध पर क्या प्रभाव पड़ा कोई दो प्रभाव बताइये।

इकाई–23

राष्ट्रों के बीच असमानता

(Imequality among Nations)

23.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत राष्ट्रों के बीच असमानता के स्वरूप व विकसित एवं विकासशील देशों के बीच असमानता का विवेचन किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :–

- राष्ट्रों के बीच असमानता के बारे में जान सकेंगे।
- असमानता के आंकलन की विधियों को जान सकेंगे।
- निर्धन और विकसित राष्ट्रों के बीच असमानता को समझ सकेंगे।

23.1 प्रस्तावना

राष्ट्रों के बीच असमानता से तात्पर्य आर्थिक, साामजिक, शैक्षिक, राजनीति दृष्टि से राष्ट्रों के मध्य समानता के अभाव से है। पिछले कुछ दशकों की अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के निष्पक्ष विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के बीच विशेषतया विकसित और विकासशील राष्ट्रों के बीच व्यापक असमानताएँ उत्पन्न हुई हैं।

विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के बीच असमानता की खाई को विभिन्न अर्न्तराष्ट्रीय संगठन पाटने में असफल रहे हैं। UNCTAD के विवरणों से स्पष्ट होता है कि विकासशील राष्ट्रों के आत्मनिर्भर होने के लिए किए गए प्रयत्नों को पर्याप्त समर्थन नहीं मिला है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का ढ़ाँचा विकसित राष्ट्रों के पक्ष में है। ऊर्जा संकट, गिरता हुआ निर्यात, विश्व बाजार में कड़ी प्रतियोगिता, बहुराष्ट्रीय निगमों का एकाधिकारिक नियंत्रण, समकालीन समय में ब्रैटनबुड्स की अपर्याप्ता, विकासशील राष्ट्रों को अपर्याप्त तथा सीमित विदेशी सहायता आदि सभी ने मिलकर असमानता के स्तर को स्थायी बनाने एवं बढ़ाने का कार्य किया है। निरन्तर आर्थिक संकट, जिसे मुद्रास्फीति की प्रवृत्तियों तथा शेष भुगतान की समस्या ने और अधिक बल दिया है। व्यापार एवं सहयोग में निरंतर कमी तथा इन सबसे अधिक तीसरे विश्व के भयानक आर्थिक एवं सामाजिक चक्रव्यूह ने प्रचलित सुख की स्थिति खराब कर दी है। अतः निश्चय ही विकसित और विकासशील राष्ट्रों की असमानता एवं विश्व की आर्थिक स्थिति की इस वास्तविक गम्भीरता की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसीलिए आवश्यकता इस बात की है कि विद्यमान अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंध एवं व्यापार में राष्ट्रों के बीच असमानता उत्पन्न करने वाले कारकों को चिह्नित करके संतुलित संबंध स्थापित करने का प्रयास किया जाए।

23.2 राष्ट्रों के बीच असमानता स्वरूप

अन्तर्राष्ट्रीय जगत में विकसित एवं विकासशील देशों के बीच असमानता दायरा बहुत बढ़ गया है। विकसित देशों कि जनसंख्या विश्व की जनसंख्या में 30 प्रतिशत से भी कम है यह समस्त विश्व की 70 प्रतिशत से भी अधिक सम्पत्ति एवं आय पर नियन्त्रण रखते है। जबकि विकासशील देशों में 70 प्रतिशत से भी अधिक जनसंख्या निवास करती है, केवल 30 प्रतिशत आय एवं सम्पत्ति पर नियन्त्रण रखते हैं। 24 औद्योगिक देशों की प्रति व्यक्ति आय 3000 से 6000 पौण्ड तक है जबकि 125 से अधिक विकासशील देशों की प्रति व्यक्ति आय 100 पौण्ड है। आज करीब दो–तिहाई व्यक्ति 30 प्रतिशत से कम आय में अपना जीवन निर्वाह साधन हैं, लेकिन एशिया और अफ्रीका में निरक्षरों की संख्या बढ़ती जा रही है। इसी तरह विश्व के पास पोषण के पर्याप्त साधन हैं, लेकिन विकासशील देशों के 70 प्रतिशत बच्चे अंसतुलित भोजन द्वारा कुपोषण व अल्पपोषण के शिकार है, अर्थात् विश्व में विभिन्न साधनों का विभाजन असमान एवं असंतुलित है। यही वजह है कि विकसित एवं औद्योगिक देश विकासशील निर्धन राष्ट्रों द्वारा प्रयुक्त किए गए साधनों से बीस गुणा अधिक साधनों का उपयोग कर रहे हैं।

विकसित राष्ट्र धनी हो रहे है। विकासशील राष्ट्र अधिक निर्धन हो रहे हैं। तकनीकी दृष्टि से मजबूत एवं औद्योगिक दृष्टि से मजबूत एवं विकसित होने की वजह से विकसित राष्ट्र व्यापार पर अपना नियन्त्रण बढ़ा रहे। GATT, WTO, UNCTAD आदि संस्थाएँ विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के मध्य निरन्तर बढ़ते हुए अन्तर को रोकने में असफल रही है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के नियम विकसित देशों के पक्ष में हैं। द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय वित्तीय सहायता कार्यक्रम के बावजूद विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के मध्य असमानता का अन्तर बढ़ रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय निर्यात का गिरता हुआ स्तर विश्व बाजार में कड़ी प्रतियोगिता, वर्तमान में WTO की अपर्याप्तता, विश्व बैंक एवं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का सौतेला व्यवहार और विकासशील राष्ट्रों की अपर्याप्त आर्थिक तकनीकी सहायता इत्यादि समस्याओं ने विकासशील राष्ट्रों को निर्धन रहने के लिए बाध्य कर दिया है।

23.3 निर्धनता एवं असमानता का मापन

सामान्यतः किसी समाज का एक बड़ा भाग अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति में असमर्थ रहता है या न्यूनतम जीवन स्तर से वंचित रहता है, केवल निर्वाह स्तर पर गुजारा करता है उसे निर्धन कहा जाता है। दुनिया के देशों में गरीबी की परिभाषा भिन्न–भिन्न प्रकार से दी गई है, तथापि इन सबका आधार न्यूनतम या अच्छे जीवन की कल्पना है। गरीबी की सभी परिभाषाओं में यह प्रयास किया जाता हैं कि वे समाज के औसत जीवन स्तर के निकट हों, इस कारण वे परिभाषाएँ समाज में विद्यमान असमानताओं को दर्शाती हैं और उस सीमा का एहसास कराती हैं।

विश्व एवं भारत में अनेक अर्थशास्त्रियों एवं संस्थाओं ने गरीबों के निर्धारण के लिए अपने–अपने प्रमाप बनाए हैं। इन सभी अध्ययनों का आधार 2250 कैलोरी के बराबर खाद्य का मूल्य है। भारत के योजना आयोग के मुताबिक ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति 2400 कैलोरी प्रतिदिन तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्रतिदिन के हिसाब से यदि भोजन प्राप्त नहीं होता है, तो उसे गरीबी की रेखा के नीचे माना जाता है। ऐसे परिवार जिनकी दैनिक आय 2100 कैलोरी प्रतिदिन के हिसाब से यदि भोजन प्राप्त नहीं होता है, तो उसे गरीबी की रेखा के नीचे माना जाता है। ऐसे परिवार जिनकी दैनिक आय 1 अमेरिकी डॉलर यानी 48 रू. से कम हो, वह भारत मे गरीबी रेखा के नीचे माना जाता है। भारत मे गरीबी की सामान्यतः स्वीकृत परिभाषा उचित जीवनस्तर की अपेक्षा न्यूनतम जीवनस्तर पर अधिक बल देती है। इन सभी तर्कों का सार यह है कि गरीबी के स्तर को अनाज, दालों, दूध, सब्जियों, मक्खन, कपड़े या कैलोरी प्राप्ति के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है।

असमानता के आंकलन की मुख्यतः दो विधियाँ प्रचलित हैं–

(1). आय असमानता के आकलन हेतु मुद्रा की दर में परिवर्तन।

(2). क्रय–शक्ति की समानता।

मुद्रा–दर परिवर्तन को सामान्यतः मुद्रा मे आय परिवर्तन के लिए प्रयोग मे लाया जाता है, जिसमें राष्ट्रीय मूल्य स्तरों को निष्कासित कर दिया जाता है।

उल्लेखनीय है कि आंकलन की दोनों प्रणालियाँ अलग–अलग परिणाम प्रकट करती हैं।

विनिमय दर के प्रयोग से असमानता के संबंध मे उच्च आकलन प्राप्त होने की संभावना रहती है तथा यह असमानता की प्रकृतियों को भी प्रभावित कर सकती है, जबकि क्रयशक्ति समानता–असमानता में जीवनस्तर में वृद्धि की वास्तविक स्थिति को प्रकट करती है अर्थात् विनिमय दर जीवनस्तरों में वृद्धि की अपेक्षा ज्यादा वृद्धि उपस्थित करता है।

विश्व के विभिन्न देशों में आय के स्तरों में वृद्धि एवं ऋणात्मक वृद्धि साथ–साथ चलती रहती है। कुछ क्षेत्रों में असमानता का स्तर बढ़ रहा है, तो कुछ क्षेत्रों में होता जा रहा है।

23.4 विकसित और विकासशील देशों के मध्य सम्बन्ध तथा असमानता के कारण

23.4.1 विकासशील राष्ट्रों पर विकसित राष्ट्रो का नव–उपनिवेशीय नियन्त्रण : व्यापक अन्तःनिर्भरता तथा अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के सभी सदस्यों का समान सम्प्रभु स्तर होने पर भी विकासशील राज्य अभी तक नव–उपनिवेशवादी नियन्त्रण के अधीन रह रहे हैं। स्वतन्त्रता के उदय तथा परिणामस्वरूप सम्प्रभु स्तर की प्राप्ति ने उन्हें राजनीतिक रूप से तथा सैद्धान्तिक रूप से ही स्वतन्त्र किया है। आर्थिक रूप से तथा वास्तविक व्यवहार में, ये विकसित राष्ट्रों पर आज भी निर्भर हैं। घोर निर्धनता के कारण तथा आवश्यक वस्तुओं की कमी के कारण वे विदेशी सहायता के लिए विकसित राष्ट्रों पर निर्भर रहते हैं। उनकी वर्तमान स्थिति, सदियों से पश्चिमी साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के पंजों मे भोगे गए शोषण का परिणाम है। आज के विकसित राज्य केवल तभी विकसित हो सके जब भूतकाल में उन्होंने अपने उपनिवेशको जो अब सम्प्रभु विकासशील राष्ट्र बन गये हैं, के साधनों तथा धन का शोषण किया। अपने साम्राज्यों की समाप्ति के बाद भी विकसित राष्ट्र विकासशील राष्ट्रों की अर्थ–व्यवस्थाओं तथा नीतियों पर अपना पूर्ण नव–उपनिवेशीय आर्थिक तथा राजनीतिक नियन्त्रण बनाये हुए हैं। "नव–उपनिवेशवाद का सार है" जैसे एन. नक्रूमा (N. Nkrumah) ने कहा है, "जो राज्य इसके अधीन हैं, वे केवल सिद्धान्त में स्वतन्त्र हैं तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रभुत्ता के सारे बन्धन उन पर लागू होते हैं। वास्तव में, इनकी आर्थिक व्यवस्था तथा इस तरह उनकी आन्तरिक नीति बाहर से ही निर्देशित होती हैं।"?

विकसित देशों का विकासशील देशों पर नव–उपनिवेशवादी नियन्त्रण आज तक समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को एक क्रूर वास्तविकता बना हुआ है। विदेशी सहायता, सैन्य सहायता, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाएं, सन्धियों की भागीदारी, हस्तक्षेप, बहुराष्ट्रीय निगम, संरक्षणवादी व्यापार नीति जैसे साधनों द्वारा विकसित देश विकासशील देशों की अर्थ–व्यवस्था तथा नीतियों पर गहरा नियन्त्रण बनाए हुए हैं। भारत जैसे देश की अर्थव्यवस्था पर भी IMF तथा विश्व बैंक का प्रभाव रहा है। इसने विकास के बाद भी भारत आज अपने को कुछ विकसित देशों पर निर्भर पाता है। आज विकासशील देश नव–उपनिवेशवाद से छुटकारा पाने के भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु वस्तुओं तथा जानकारी के आयात के लिए उनकी विकसित देशों पर निरन्तर निर्भरता के कारण उनके प्रयत्न सीमित हो जाते हैं तथा वे अधिक

सफल नहीं हो पातें। विकसित तथा विकासशील देशों के सम्बन्धों का व्यवहार विकसित देशों के सम्बन्धों का व्यवहार विकसित देशों द्वारा विकासशील राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं तथा नीतियों पर अपने नव–उपनिवेशीय नियन्त्रण को बनाये रखने तथा सुदृढ़ करने के प्रयत्न तथा विकासशील राष्ट्रों का इस उपनिवेशीय नियन्त्रण से छुटकारा पाने के प्रयत्न के रूप में किया जा सकता है। दक्षिण–दक्षिण सहयोग तथा विकास के लिए क्षेत्रीय सहयोग के द्वारा तथा इसके साथ विकसित देशों के साथ समझौतापूर्ण व्यवस्था के द्वारा, विकासशील देश नव–उपनिवेशवाद के युग को समाप्त करने के प्रयत्न कर रहे हैं।

23.4.2 विकसित देशों द्वारा विश्व की आय तथा साधनों का अत्यधिक शोषण : विकसित तथा कम विकसित देशों के बीच के सम्बन्धों की एक विशेषता यह है कि विकसित राष्ट्र विश्व के साधनों तथा आय का आनुपातिक अधिक शोषण तथा उपभोग कर रहे हैं। धनी तथा दृढ़ राष्ट्र विभिन्न प्रकार से लुके–छिपे साधनों द्वारा निर्धन तथा कमज़ोर राष्ट्रों को हानि पहुंचा कर भी अपने काम में लगे हुए हैं। तकनीकी तथा औद्योगिक रूप से विकसित होने तथा आर्थिक रूप से समृद्ध होने के कारण विकसित देश कच्चे माल की मंडियों पर अपना नियन्त्रण आज भी बनाए हुए हैं जिसका अभिप्राय यह हैं कि निर्मित माल तथा पूंजी उपकरणों पर उनका लगभग एकाधिकार है। यही कारण है कि वे जो माल विकासशील देशों से खरीदते हैं उनका मूल्य भी ये अपनी इच्छानुसार ही नियत करते हैं। परिणामस्वरूप वे अपने लाभों वाले विभिन्न साधनों में तीसरे विश्व के सारे साधनों को पूरी तरह समाप्त कर देने की स्थिति में हो जाते हैं। विकसित देश सदैव ही विकासशील देशों पर दबाव डालने के लिए इस प्रकार की चालें चलते रहते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF), विश्व बैंक तथा अन्य विश्व आर्थिक संस्थाओं की आड़ में विकसित देश, विशेषकर संयुक्त राज्य अमरीका, विकासशील देशों की आर्थिक नीतियों को प्रभावित करने के प्रयत्न करते रहते हैं। अपनी आर्थिक समस्याओं पर नियन्त्रण पाने के लिए सभी विकसित राज्य विकासशील राज्यों की आर्थिक प्रणालियों पर इच्छानुसार नियन्त्रण करने का प्रयास कर रहे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं तथा विश्व–अर्थव्यवस्था पर विकसित देशों के नियन्त्रण के कारण विकासशील राष्ट्रों पर उनका नियन्त्रण और भी सुदृढ़ हो जाता है। अपनी दृढ़ स्थिति के कारण विकसित अल्पसंख्यक अपने इच्छित उद्देश्य के अनुसार ही विश्व के साधनों का अपनी इच्छा अनुसार बड़ी आसानी से तथा शीघ्रता से बंटवारा कर लेते हैं।

23.4.3 विकासशील राष्ट्रों पर विकसित राष्ट्रों के नियन्त्रण–उपकरण के रूप में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका : विकसित राष्ट्र बहुत से बहुराष्ट्रीय निगमों (MNC's) द्वारा विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं तथा इस तरह उनकी नीतियों पर अपना पूर्ण नियन्त्रण रख रहे हैं। बहुराष्ट्रीय निगम विकसित राष्ट्रों के होते हैं तथा ये विकासशील राष्ट्रों के बाजारों की अर्थव्यवस्थाओं तथा नीतियों पर उनका नियन्त्रण बनाये रखने के लिए अपने देशों की सरकार के अतिरिक्त बाजू बन कर काम करते हैं। विकासशील देशों में बड़ी संख्या में उद्योग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में इन्हीं निगमों के अधीन होते हैं या इनके द्वारा नियन्त्रित होते हैं। अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, इटली, जापान, कैनेडा–इन सातों राष्ट्रों में लगभग 900 बड़े–बड़े बहुराष्ट्रीय निगम हैं जो सारे विश्व के 50 प्रतिशत से अधिक उत्पादन पर नियन्त्रण रखते हैं। ये निगम वास्तव में कम–विकसित राष्ट्रों में प्रचुर मात्रा में पाये जाने वाले प्राकृतिक साधनों या कच्चे माल पर अपना नियन्त्रण रखते हैं। तकनीकी ज्ञान तथा अन्तर्राष्ट्रीय पेटैन्टों पर अपना एकाधिकार होने के कारण इन देशों में औद्योगिक केन्द्रों द्वारा ये बहुराष्ट्रीय निगम बड़ा लाभ कमाते हैं। भारत जैसे देश का भी, जो निश्चय ही दूसरे विकासशील देशों से अधिक विकसित है, आज भी बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा शोषित हो रहा है।

बहुराष्ट्रीय निगमों (MNC's) द्वारा विकासशील राष्ट्रों की मंडियों तथा तकनीकी ज्ञान तक की पहुंच को नियन्त्रित करने के लिए कई प्रकार के अवरोध पैदा कर दिये थे तथा अब भी किए जा रहे हैं। ये निगम इस योग्य होते हैं कि आर्थिक विकास की दर को नियन्त्रित कर सकें तथा ये अविकसित राष्ट्रों के आर्थिक तथा औद्योगिक विकास को अपने हित में मोड़ने की भी योग्यता रखते हैं। बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा खड़े किए गए अवरोधों का विकासशील देश किसी भी साधन द्वारा कोई विशेष प्रत्युत्तर नहीं दे सकते। "इस तरह विकसित राष्ट्र बहुत अधिक चोट पहुंचाने के योग्य होते हैं। उनके निर्यात, चाहे वे निर्मित उत्पादन हों या प्राथमिक वस्तुएं पार–राष्ट्रीय निगमों के संचालन के सशक्त प्रभाव तले होते हैं।"

23.4.4 विकासशील देशों की नीतियों पर विकसित देशों का नियन्त्रण : अपनी श्रेष्ठ आर्थिक, राजनीतिक तथा सैन्य शक्ति के कारण विकसित देश विकासशील देशों पर अप्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रण रखते हैं। विकसित देश नए राज्यों में शस्त्र दौड़ शुरू कर सकते हैं तथा इस तरह उनकी अर्थव्यवस्थाओं को विकासशील अर्थव्यवस्था से प्रतिरक्षा अभिमुखी कार्यक्रमों में बदल देते हैं। वे अपनी इच्छानुसार विनिमय दर निश्चित करके, व्यापार में संरक्षणवाद अपना कर तथा अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं तथा बहुराष्ट्रीय निगमों पर अपना अधिकार जता कर, विकासशील राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं की स्थिरता को हानि पहुंचा सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय समबन्धों में अपनी इच्छा अनुकूल विशिष्ट स्थिति पैदा करने के लिए तथा इसे बनाए रखने के लिए वे विकासशील राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों में प्रायः हस्तक्षेप कर सकते हैं तथा ऐसा करते भी हैं। अपनी श्रेष्ठ संचार तकनीक तथा दूसरे राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक युद्धकला साधनों के प्रयोग द्वारा विकसित राष्ट्र विकासशील राष्ट्रों की नीतियों तथा जनमत को नियन्त्रित करने तथा उन पर इच्छित प्रभाव डालने की स्थिति में होते हैं।

23.4.5 नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की समस्या : तृतीय विश्व के देश नीओ (NIEO) को समकालीन समय की अनिवार्य आवश्यकता मानते हैं क्योंकि केवल यही उनकी तेजी से गिरती अर्थ–व्यवस्थाओं को सम्भाल सकती है। व्यापक अन्तःनिर्भरता के इस युग में कम–विकसित देशों के साधनों तथा मण्डियों का और अधिक शोषण तथा ह्रास बुहत अधिक हानिकारक होगा तथा विकसित राष्ट्रों की अर्थ–व्यवस्था के लिए भी विध्वंसक सिद्ध होगा। इसलिए नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ–व्यवस्था विकसित तथा कम–विकसित राष्ट्रों के लिए बहुत अधिक सहायक तथा उपयोगी सिद्ध हो सकती है। कम–विकसित देश इस बात की वकालत करते हैं कि नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का निर्माण करने के लिए, विकसित राष्ट्र इस विषय पर बातचीत करने के लिए आगे आएं। वे इस उद्देश्य के लिए उत्तर–दक्षिण में अविलम्ब गम्भीर वार्ता की वकालत करते हैं। वे यह विश्वास करते हैं कि न तो संयुक्त राष्ट्र और न ही दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं वास्तविक रूप में नीओ (NIEO) के निर्माण में सहायक हो सकती हैं क्योंकि इनमें विकसित राष्ट्रों का प्राधान्य है।

दूसरी तरफ विकसित राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में न तो अपनी वर्तमान आर्थिक स्थिति को त्यागने के लिए तथा न ही अपने नियन्त्रण को छोड़ने के लिए तैयार हैं। विद्यमान व्यवस्था, कम–विकसित राष्ट्रों की नीतियों तथा अर्थव्यवस्थाओं पर उनके आर्थिक तथा राजनीतिक नियन्त्रण को बनाये रखने में सहायक हैं। वे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) तथा विश्व बैंक (World Bank) जैसी अन्य आर्थिक संस्थाओं पर अपनी प्रमुख स्थिति को छोड़ना नहीं चाहते। वे इस बात की वकालत करते हैं कि विद्यमान अर्थ–व्यवस्था तथा इस की संस्थाओं में बातचीत तथा सामंजस्य द्वारा संशोधन करके तृतीय विश्व की कुछ मांगों को इसमें शामिल किया जा सकता है। इसलिए वे नीओ (NIEO) के विषय पर उत्तर–दक्षिण वार्ता के लिए न तो गम्भीर हैं तथा न ही इसमें उन्हें कोई रूचि है। इस प्रकार दोनों में असमानता बनी हुई है।

23.4.6 पूर्वी यूरोप तथा भू. पू. सोवियत गणराज्यों में हुए नए परिवर्तनों ने विकासशील देशों की आर्थिक समस्याओं को बढ़ा दिया है : अब पश्चिम के विकसित देश तथा अमरीका पूर्वी यूरोप के देशों को आर्थिक सहायता देकर इन का विकास करने की ओर अधिक ध्यान दे रहे हैं, वे यह समझते हैं कि इनमें साम्यवाद की पुर्नस्थापना को रोकने के लिए ऐसा करना आवश्यक है। विदेशी सहायता का इन देशों की ओर झुक जाना विकासशील देशों के लिये चिन्ता का विषय बना हुआ है।

23.4.7 नया गैट/विश्व व्यापार संगठन की अपूर्णता : विश्व अर्थव्यवस्था में जो नया गैट समझौता हुआ है तथा जिस विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थापना हुई है, उसने विकसित और विकासशील देशों की समस्याओं को हल करने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है। इसके विपरीत सामाजिक धारा (Social Clause), श्रम कानूनों में सम्भावित परिवर्तनों तथा एकस्व अधिकारों (Patents) और प्रतिलिप्यधिकार (Copy Right) के विषयों ने विकसित तथा विकासशील देशों के सम्बन्धों को और भी उलझा दिया है। 1999 के WTO के सिएटल सम्मेलन में विकसित तथा विकासशील देशों के मध्य WTO के अधीन मुद्दों के सम्बन्ध में मतभेद स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आये।

इस प्रकार विकसित तथा कम–विकसित राष्ट्रों के बीच सम्बन्ध आज भी तनावपूर्ण हैं तथा बिल्कुल ही संतोषपूर्ण नहीं हैं। विकसित राष्ट्र, विशेष रूप से आर्थिक तथा व्यापारिक सम्बन्धों में, विकासशील देशों पर कठोर तथा शोषणात्मक नियन्त्रण रखे हुए हैं। भयानक अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति, ऊर्जा संकट, निरन्तर बनी रहने वाली अनुत्पादक तथा हानिकारक शस्त्र दौड, GATT तथा UNCTAD की असफलता, उत्तर–दक्षिण की नीओ (NIEO) के विषय पर एकमत की कमी, अपना उत्तरदायित्व निभा सकने में संयुक्त राष्ट्र संघ की असफलता आदि, सभी ने मिलकर एक भयानक परिस्थिति पैदा कर दी है जिसमें विकासशील राष्ट्र, विकसित राष्ट्रों पर निर्भरता तथा निर्धनता के कारण अपने आप को हानि की स्थिति में पाते हैं।

23.5 असमानता को कम करने हेतु सुझाव

असमानता कम करने के संबंध में निर्भरता सिद्धांत के समर्थक ए.जी. फ्रैंक का विचार हैं कि असमानता के वास्तविक कारणों की पहचान इस हेतु आवश्यक है। असमानता कम करने के लिए विकासशील देशों को संसाधनों की आवश्यकता है और विकसित देश ही इस संदर्भ मे मददगार हो सकते हैं। हालाँकि भूमंडलीकरण की नीतियाँ कई जगहों पर लाभदायक साबित हुई हैं, लेकिन यह सपना अभी काफी दूर है। संसार में यह प्रमाणित चुका है कि विकासात्मक सहायता भी विकासशील देशों की क्षमता विकसित करने में नाकाम रही है। इन देशों मे सामाजिक–आर्थिक असमानता मिटने का नाम ही नहीं ले रही है।

इसलिए कहा जा सकता है कि संसार के विभिन्न राष्ट्रों मे बढ़ती हुई असमानता के परिदृश्य में विकसित देशों को समझना होगा कि विकासशील एवं अविकसित देशों को एक बाजार के रूप में देखा जाता रहेगा, तब तक उनकी असमानता जारी रहेगी। उनका असंतोष उन्हें अपराध, आतंक और उग्रवाद की दिशा में बढ़ने क लिए प्रेरित करेगा। इसलिए यह आवश्यक हे कि विकसित देश, वैश्विक संस्थाएँ तथा स्वयं विकासशील देश हर स्तर पर सहयोगात्मक कार्य करें, तो असमानता कम करने में सफलता हाथ लग सकती है। ध्यान रहे, क्षमता में सुधार लाकर ही असमानता को समाप्त किया जा सकता है और यह सिर्फ दिल्ली, केन्या या बांग्लादेश की ही नहीं, बल्कि वाशिंगटन, पेरिस तथा लंदन की भी जिम्मेवारी बनती है।

शॅवलसिन मत के अनुसार समाज का उद्देश्य कम सुविधा प्राप्त या सुविधा से वंचित समूह की स्थिति सुधारने एवं असमानता को कम करने का होना चाहिए, ताकि समाज के कमजोर वर्ग लाभान्वित हो सके।

यूटिलिटेरिन मत का मानना है कि त्वरित विकास में समाज के सुविधाविहीन वर्ग का ध्यान रखा जाए। असमानता को सीमित करने से समाज के खर्च में ह्रास आ सकता है, लेकिन आधुनिक राजनीति में इस मुद्दे पर व्यापक मतभेद है।

भूमंडलीकरण के इस दौर में असमानता के विरूद्ध कार्यवाही में अल्पविकसित देशों के कमजोर वर्गों के कल्याण हेतु विकास नीति को क्रियान्वित करने, गरीबी कम करने और सामाजिक प्रभाव का अध्ययन करके विश्लेषण करने को कहा जाता है। साथ ही विभिन्न साधनों के मध्य राष्ट्र विशेष की आवश्यकतानुसार कार्यक्रम और प्रयास की अनिवार्यता पर बल दिया जाता है।

विकासशील देशों में नई प्रौद्योगिकी एवं शिक्षा की गुणवत्ता मे सुधार लाकर दक्षता के स्तर को बढ़ाकर असमानता कम करने में सहायता मिल सकती है।

23.6 सारांश

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि विश्व में विकसित और विकासशील देशों के मध्य असमानताएँ मौजूद है और यह तीव्र गति से बढ़ रही हैं। विकासशील देश आज अपने उचित अधिकारों तथा समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में उचित भाग की प्राप्ति करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हैं। वे विकसित राष्ट्रों द्वारा उत्पादित व्यवस्था के आधिपत्य को समाप्त करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हैं। परन्तु गरीबी तथा विकसित देशों पर उनकी निर्भरता इनके मार्ग मे बाधा हैं।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विकसित और विकासशील देशों के बीच असमानता के प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रों के बीच असमानता के स्वरूप पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।
2. असमानता के आंकलन की विधियाँ बताईए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रों के बीच असमानता के दो कारण बताईए।
2. नव अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था से क्या अभिप्राय हैं ?

इकाई – 24

विश्वव्यापी भूमण्डलीय निगमवाद और राज्य प्रभुसत्ता

(Global Corporatism and State Soveveignty)

24.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में भूमण्डलीकरण के युग में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका बहुराष्ट्रीय निगमों के लाभ एवं दोष तथा राज्य प्रभुसत्ता पर भूमण्डलीकरण के प्रभाव का विवेचन किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :–

- भूमण्डलीय निगमवाद की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- भूमण्डलीकरण के युग में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका को समझ सकेंगे।
- बहुराष्ट्रीय निगमों के लाभ व हानियों को समझ सकेंगे।

24.1 प्रस्तावना

भूमण्डलीकरण के कारण दुनिया छोटी होती जा रही है और विश्व व्यापार की परिकल्पना साकार हो रही है। इसने सम्पूर्ण राष्ट्रों को एक करके ग्लोबल विलेज की व्यवस्था प्रस्तुत की है। भूमण्डलीकरण ने एक आदर्श पूँजीवाद की नव उदारवादी व्यवस्था को प्रोत्साहन एवं संरक्षण प्रदान किया है।

24.2 भूमण्डलीकरण एवं भूमण्डलवाद

भूण्डलीकरण ने सम्पूर्ण विश्व व्यवस्था को एक नवीन आधार प्रदान किया है। भूमण्डलीकरण की नीति एक व्यवस्था है जिसमें सम्पूर्ण विश्व बाजार को एक ही कार्यक्षेत्र के रूप मे देखा जाता है। इस प्रकार की प्रक्रिया में विश्व बाजारों के मध्य पारस्परिक निर्भरता उत्पन्न होती है और व्यापार देश की सीमाओं से प्रतिबन्धित न होकर विश्व के अन्य देशों की दिशा में अग्रसर होता है।

उल्लेखनीय है कि उत्तर–ब्रेनवुड्स युग में विश्व अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में जो महत्त्वपूर्ण कार्य हुए, जिसमें क्षेत्रीय आर्थिक उपव्यवस्थाओं का विकास और बहुराष्ट्रीय निगमों का विस्तार किया गया, लेकिन 27 वर्षों के पश्चात् 1971 ई. में अमेरिकी राष्ट्रपति निक्सन ने ब्रेटनवुड्स व्यवस्था के अंत की घोषणा की और कहा कि संयुक्त राज्य अमेरिका अब अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था के नियमों एवं प्रक्रियाओं का पालन नहीं करेगा और इसी के साथ भूमण्डलीकरण प्रारम्भ हुआ। फलतः 1990 के दशक में यूरोपीय अर्थव्यवस्था साझे व्यापार से प्रारम्भ होकर यूरोपियन संघ में भी ऐसी ही आर्थिक व्यवस्था को लागू किया गया। आज भूमंडलीकरण सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में विद्यमान है और इसके द्वारा विश्व सिमटकर छोटा हो गया है और दुनिया को एक भूमण्डलीय गाँव के रूप में देखा जाने लगा है।

इस प्रकार भूमण्डलीकरण वह प्रक्रिया है, जिसमें सम्पूर्ण विश्व एक ही जगह समाहित हो जाता है। वस्तुतः भूमण्डलीकरण एक देश की सीमा के बाहर अन्य देशों में वस्तुओं और सेवाओं का लेन–देन करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय निगमों और बहुराष्ट्रीय निगमों के साथ देश के उद्योगों की संबद्धता है।

भूमण्डलीकरण के माध्यम से आज संसार के विभिन्न देशों में बिना किसी अवरोध के विभिन्न वस्तुओं के आदान–प्रदान को संभव बनाने के लिए प्रयास किया जाता है और व्यापार के अवरोधों को कम किया जाता है। साथ ही आधुनिक प्रौद्योगिकी के निर्बाध प्रवाह को संभव बनाने हेतु उपयुक्त वातावरण तैयार किया जाता है। भूमंडलीकरण व्यवस्था में राष्ट्रों मे पूँजी के स्वतन्त्र प्रवाह को संभव बनाने हेतु आवश्यक परिस्थितियाँ पैदा की जाती हैं। विस्तृत रूप में भूमंडलीकरण से अभिप्राय उन्मुक्त बाजार एवं प्रतिस्पर्द्धा, राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ समायोजन तथा राष्ट्रीय बाजार को अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में परिवर्तित करना है। भूमंडलीकरण में राष्ट्रों की राजनीतिक सीमाओं के आर–पार आर्थिक व्यवस्थाओं की लेन–देन की प्रक्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। विश्व की अर्थव्यवस्था में निरन्तर जो खुलापन या आपसी जुड़ाव और परस्पर निर्भरता के फैलाव की नीति आ रही है, वह भूमंडलीकरण की नीति का ही प्रमाण है।

इस प्रकार भूमण्डलीकरण ने विश्व के सभी भागों में रहने वाले लोगों के मध्य सामाजिक–आर्थिक, औद्योगिक, व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंधों को बढ़ाने की व्यापक प्रक्रिया को एक गति प्रदान की है। इसमे ऐसे नियमों व तरीकों को कुशलता से बढ़ाने पर जोर दिया गया है, जिससे विश्व के लोगों का सामाजक–आर्थिक एकीकरण एक संतुलित दिशा में किया जा सके।

24.3 भूमण्डलीय निगमवाद की प्रमुख विशेषताएँ

भूमण्डलीय निगमवाद की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. भूमण्डलीकरण के तीन कर्ता है। मानव विकास की रिपोर्ट ने भूमण्डलीकरण के तीन कर्ताओं का उल्लेख किया–

(i) **विश्व व्यापार संगठन**–प्रथम कर्ता विश्व व्यापार संगठन है, जो सदस्य देशों की राष्ट्रीय सरकारों के ऊपर वर्चस्व रखता है।

(ii) **बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ**–दूसरा कर्ता बहुर्राष्ट्रीय कम्पनियाँ है, जिसकी आर्थिक क्षमता अनेक राज्यों की कुल सम्पत्ति से भी ज्यादा ह। इन्होंने उच्च राजनीति से निम्न राजनीति को आर्थिक प्रभावशाली बना दिया है तथा एक तरफ पूँजी, उद्योग, तकनीकी ज्ञान आदि को विकसित करके विकासशील तीसरे विश्व के राष्ट्रों को विकसित देशों पर अधिकाधिक निर्भर बना दिया है। अर्थात् एक तरफ तो ये विकासशील देशों को सहायता एवं विशिष्ट ज्ञान का अवसर प्रदान करते हैं तथा दूसरी तरफ ये उनकी अर्थव्यवस्था तथा नीतियों पर उपनिवेशीय नियंत्रण भी कायम कर रहे है।

(iii) **गैर–सरकारी संगठन**–तीसरा कर्ता गैर–सरकारी संगठन है, जसका ताना–बाना सम्पूर्ण विश्व में फैल रहा है और यह तीनों मिलकर भूमंडलीकरण को अपनी इच्छित दिशा प्रदान करते है।

2. भूमंडलीकरण या अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं निवेश कमजोर देशों के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ है। साथ ही शक्तिशाली एवं कमजोर दोनों प्रकार के देशों में यह लोकतंत्रीय नियंत्रण को शिथिल बना देता है, क्योंकि इसमें बड़ा व्यापार आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था पर पूरी तरह हावी हो जाता है। मुख्यधारा के लिए यह सोचना संभव नहीं होता कि एक ओर मुक्त व्यापार, भूमंडलीकरण तथा दूसरी ओर सुरक्षावाद के बीच टकराव उत्पन्न हो जाता है।

3. भूमंडलीकरण के अन्तर्गत व्यापारी समुदाय ने राज्य की सरकार पर हावी होने के शक्तिशाली प्रयास किये हैं। अपने लाभों को बढ़ाकर तथा श्रम को कमजोर करके भूमंडलीकरण ने शक्ति संतुलन को व्यापार के पक्ष मे कर दिया तथा राजनीतिक दलों पर व्यापारी समुदाय के प्रभाव को निर्णायक रूप से बढ़ा दिया है।

4. भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को एक नया संरक्षणवादी व्यवहार करने की योग्यता प्राप्त हुई तथा इससे सभी देशों, विशेषकर तीसरी दुनिया के देशों को नुकसान पहुंचाया है।

इस प्रकार सोवियत संघ के बिखराव के पश्चात् से ही यह माना जाने लगा था कि विश्व एक ध्रुवीय हो जाएगा, लेकिन भूमंडलीकरण के माध्यम से आज व्यवस्था बहुध्रुवीय अधिक दिखाई पड़ रही है। भारत के पूर्व विदेश सचिव जे.एन. दीक्षित लिखते है कि सैनिक शक्ति एवं विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र मे यह विश्व भले ही एकध्रुवीय हो गया ह, लेकिन जनसंख्या और इससे जनित मानव शक्ति संसाधन, प्राकृतिक संसाधन, औद्योगिक एवं प्रौद्योगिक क्षमता अपने वृहद् अर्थ मे आर्थिक शक्ति आदि कुछ ऐसे तत्व हैं, वहाँ एकध्रुवीयता का अंत हो जाता है और विश्व बहुध्रुवीय हो जाता है।

24.4 संघटक निगमवादी भूमण्डलीय संरचनाएं

विश्व मे द्विपक्षीय व्यापारिक उद्देश्यों के लिए व्यापारिक योजनाक्रम एवं सहयोग की वृद्धि हेतु कई एक ऐसी क्षेत्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय औपचारिक एवं अनौपचारिक संरचनाएँ विद्यमान हैं, जो भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को सफल बनाने की और कार्य कर रहे है यानी भूमंडलीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में कई बड़ी–बड़ी क्रियाओं, जैसे–NAA (North America Free Trade Agreement) की स्थापना या फिर EMU (Europe an Monetary Union) मे शामिल होने की क्रिया आदि के संबंध में जनसंचार साधनों तथा व्यापार जगत द्वारा भारी प्रचार मुहिमों का सहारा लिया जाता है।

इसके अतिरिक्त विश्व व्यवस्था के भूमंडलीकरण हेतु General Agreement on Trade and Traiffs (GATT) का सूत्रपात किया गया और अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक समझौते एवं अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं की नीति इनका पक्ष पोषण करती है। कई एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, यथा–World Trade Organisation (WTO), International Montetary Funr (IMF), अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बैक आदि ने इसके हितों को महत्त्व दिया है। 1980 के दशक में तो विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने तीसरी दुनिया के देशों, जो ऋण के बोझ से दबे हुए थे, को विवश किया कि वे अपने बाहरी ऋण को पहले वापस करें, कठोर वित्तीय कदम उठाकर अपने बजट में कटौती करें, कठोर वित्तीय नियंत्रण की व्यवस्था करें, निर्यात को बढ़ाएँ जिससे उन्हें अधिक विदेशी मुद्रा प्राप्त हो और वे बाहरी ऋण की अदायगी करें। अपने आप को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़े, कुशलता के लिए निजीकरण अपनाएँ और अपने बाजारों को विश्व के लिए खोलें।

इस प्रकार भूमंडलीकरण ने आर्थिक और राजनीति व्यवस्था पर हावी होने का प्रयास किया और कई एक वित्तीय समझौतों ने सरकार की भूमिका को सीमित किया तथा व्यापारिक कम्पनियों के हितों को बढ़ावा दिया। मजदूरों के प्रति इनके उत्तरदायित्व में कमी आई। वस्तुतः विश्व के प्रति ही बहुराष्ट्रीय कम्पनी का उत्तरदायित्व कम हो रहा है, अतः भूमंडलीकरण की प्रक्रिया से राज्य की भूमिका सीमित हो रही है।

24.5 भूमण्डलीकरण के युग में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका

वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण के दौर में बहुराष्ट्रीय निगमों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका का विश्लेषण दो भागों में किया जा सकता है–(1) मेजबान देशों पर प्रभाव (2) अपने देश पर प्रभाव।

24.5.1 मेजबान देशों पर बहुराष्ट्रीय निगमों पर प्रभाव : बहुराष्ट्रीय निगम राष्ट्रीय सीमाओं के पार वस्तुओं का आदान–प्रदान, तकनीक के प्रसार तथा प्रबन्धकीय ज्ञान की महत्त्वपूर्ण संप्रेषण पट्टी हैं।

बहुराष्ट्रीय निगमों तथा उनके समर्थकों का विश्वास है कि इन्होंने पूँजी तथा उत्पादन को पहले विश्व से तीसरे विश्व तक पहुंचाया है तथा यह तीसरे विश्व के लिए बहुत लाभदायक भी रहा है। *(i)* बहुराष्ट्रीय निगम विकासशील राष्ट्रों की विदेश धननिवेश आवश्कताओं को पूर्ण करते हैं। *(ii)* ये अधिक वेतन देते हैं, रिकार्ड ठीक रखते हैं, अधिक कर देते हैं तथा स्थानीय घरेलू उद्योगों की अपेक्षा कहीं अधिक प्रबन्धकीय ज्ञान तथा प्रशिक्षण देते हैं। *(iii)* बहुराष्ट्रीय निगम प्रायः अपने कर्मचारियों को अधिक कल्याणकारी सेवाएं प्रदान करते हैं तथा निश्चित रूप से उन्हें जीवन–वृत्ति के अच्छे अवसर प्रदान करते हैं। *(iv)* वे उन मुख्य माध्यमों क रूप में कार्य करते हैं जिनके द्वारा विकसित तकनीक विकसित राष्ट्रों से विकासशील देशों तक पहुंचती हैं।

तथापि तीसरे विश्व के देश बहुराष्ट्रीय निगमों के साथ जुड़ी लागतों, जो उन्हें चुकानी पड़ती हैं, को अधिक मानते हैं। "पूंजी, नौकरियां तथा अन्य लाभ, जो वे विकासशील अर्थ–व्यवस्थाओं में लाते हैं, उन्हें लोग अपनाते हैं परन्तु इन लाभों की शर्तें उन्हें अन्यायपूर्ण तथा शोषणपूर्ण लगती हैं तथा ये नये राष्ट्रों को उनके साधनों से वंचित करते हैं।" बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा तीसरे विश्व के राष्ट्रों तक तकनीक का बहाव तीसरे विश्व को उन पर निर्भर बना देता है। यह देशीय उपक्रम को यदि समाप्त नहीं कर देता तो सीमित अवश्य कर देता है। ये वास्तव में उद्योगीकरण, आर्थिक विकास तथा आत्म–निर्भरता की प्रक्रिया को अवरूद्ध कर देते हैं।

बहुराष्ट्रीय निगम लाभ कमाने वाले संगठन हैं, ये हमेशा अपने अंश–धारियों, जो अधिकतर अपने देश में रहते हैं, के लाभों को अधिकतम करने के प्रयत्न करते हैं। विकासशील राष्ट्रों से विकसित राष्ट्रों के बीच पूंजी का बहाव अत्यधिक होता है तथा वे इसे फिर तीसरे विश्व के देशों में जहां कि उत्पादन होता हैं, जमा नहीं होने देते।

बहुराष्ट्रीय निगम, तकनीक के स्थानान्तरण, ज्ञान देने तथा लाइसैंस देने की जो फीस लेते हैं वह बहुत अधिक होती है तथा मेजबान देशों की अर्थ–व्यवस्थाओं पर इनका बहुत अधिक तनाव बना रहता है। स्थानान्तरित तकनीकी प्रक्रिया एक अन्य ऐसा साधन है जो बहुराष्ट्रीय निगम अपने लाभों को बढ़ाने के लिए प्रयुक्त करते हैं। बहुराष्ट्रीय निगम विकासशील राष्ट्रों के प्रयत्नों तथा उनकी अर्थव्यवस्थाओं पर हानिकारक तथा नकारात्मक प्रभाव डालते हैं।

24.5.2 बहुराष्ट्रीय निगमों का अपने देशों पर प्रभाव : अपने देशों के प्रति बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका खेदजनक होती है। निःसन्देह ये अपने राष्ट्रों को बहुत लाभ पहुंचाते हैं, लेकिन इनके द्वारा इनकी अर्थव्यवस्थाओं तथा उत्पादन एवं रोजगार बाजारों में जो उथल–पुथल होती है उसकी तुलना में इनकी लागतें बहुत अधिक होती हैं तथा बहुराष्ट्रीय निगमों के आलोचक इन पर दोष लगाते हैं कि ये अधिक मजदूरी संघों की उपेक्षा करने के लिए उत्पादन सुविधाओं को विदेशों को भेज देते हैं। औद्योगिक रूप में विकसित राष्ट्र से औद्योगिक रूप से अविकसित राष्ट्रों, जहां मजदूरी बड़ी सस्ती तथा मजदूर संघ बड़े क्षीण हैं, तक जाने का व्यवहार अपने देशों में संरचनात्मक बेरोजगारी के कारण बनते हैं क्योंकि पूंजी, मजदूरी से अधिक गतिशील होती है। प्रायः अपनी आर्थिक शक्ति के कारण बहुराष्ट्रीय निगम मेजबान राष्ट्रों की नीतियों को अपने पक्ष में प्रभावित कर सकते हैं। बदले में अपने देश इन बहुराष्ट्रीय निगमों को अपनी विदेश नीति के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए विशेषतया तीसरे विश्व के राष्ट्रों से सम्बन्धों की स्थापना के उपकरणों के रूप में प्रयुक्त करते हैं।

बहुराष्ट्रीय निगम अपनी पूंजी, वस्तुओं तथा तकनीकों को विश्व के विभिन्न भागों में स्थानान्तरित करने की योग्यता के कारण, अपने देश द्वारा अपनी अर्थव्यवस्था को प्रभावशाली तथा सुदृढ़ बनाने के लिए किये गये उपायों की उपेक्षा भी कर सकते हैं। उदाहरण के लिए बहुराष्ट्रीय निगम, अपने देशों के बहुराष्ट्रीय उद्यमों व अन्य धनी राज्यों को भेज कर अपने देश की कठोर ऋण नीति की उपेक्षा कर सकते हैं। बहुराष्ट्रीय निगम अपने लाभों को अपने देश से आने की छूट को रोक कर अपने देश में भुगतान–संतुलन की समस्याओं को बढ़ावा देते हैं। जैसे–जैसे बहुराष्ट्रीय निगमों के लाभों में वृद्धि होती है वैसे–वैसे ये अपने देश के नियन्त्रण में नहीं रहते। ये सुदृढ़ आर्थिक तथा प्रबन्धकीय कार्यवाही द्वारा अपने देश द्वारा भावी लक्ष्यों को नकार सकते हैं। इस प्रकार बहुराष्ट्रीय निगम अपने देश की सरकार के लिए भी मुसीबत का कारण बन सकते हैं। एक शक्तिशाली उच्चस्तरीय अराज्यीय लाभ कमाने वाले उद्यम के रूप में काम करने की योग्यता स्वदेश के लिए मुसीबत खड़ी कर सकती है। स्वदेश के राजनीतिक तथा आर्थिक, दोनों ही प्रकार के विदेश नीति के उद्देश्य बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा दुर्बल बना दिये जाते हैं।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के समकालीन युग में बहुराष्ट्रीय निगम अपने देश तथा मेजबान देश, दोनों की सरकारों को प्रभावित करते हैं। ये समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में अराज्यीय तथा गैर–सरकारी विशालकाय आर्थिककर्ताओं के रूप में उभरे है। बहुराष्ट्रीय निगमों की राजनीति, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक बहुत बड़ा भाग है।

24.6 बहुराष्ट्रीय निगमों के लाभ

बहुराष्ट्रीय निगमों का समर्थन करने वाले विद्वानों ने इसके निम्नलिखित लाभ बताये हैं–

(1) बहुराष्ट्रीय निगम संगठित आर्थिक इकाइयों के रूप में तकनीकी ज्ञान देने तथा सारे विश्व को एक आर्थिक इकाई के रूप में मानने की तथा कुशलता एवं उत्पादकता के लिए उत्पादन के तत्वों को आपस में मिला लेने की योग्यता हैं।

(2) बहुराष्ट्रीय निगम कम कीमत पर अधिक तथा पहले से अच्छा उत्पादन करने की योग्यता रखते हैं, इसलिए ये उन उत्पादनों के लिए विश्व भर की बढ़ती मांगों को पूरा कर सकते हैं।

(3) बहुराष्ट्रीय निगम विशेषतया कम विकसित देशों में आधुनिकीकरण के शक्तिशाली साधन हैं। वे विकसित देशों से तकनीक, तकनीकी ज्ञान तथा पूंजी को विकासशील देशों तक ले जाने का साधन हैं।

(4) अपने मेजबान देशों में बहुराष्ट्रीय निगम कई नौकरियों के अवसर पैदा करते हैं, विकसित तकनीक शुरू करतमे हैं तथा स्थानीय नागरिकों को आधुनिक प्रबन्ध की कला तथा विज्ञान का प्रशिक्षण देते हैं।

(5) बहुराष्ट्रीय निगम अन्तर्राष्ट्रीय अन्तनिर्भरता को बढ़ाते हैं जो बदले में सारे विश्व को अन्तर्राष्ट्रवाद के प्रति प्रतिबद्ध करके उसे एकीकरण के लिए बाध्य करती है।

24.7 बहुराष्ट्रीय निगमों के दोष

बहुराष्ट्रीय निगमों में निम्न कमियाँ एवं दोष पाये जाते हैं–

(1) संगठित श्रम बहुराष्ट्रीय निगमों को बेरोजगारी के एजेण्ट मानते हैं क्योंकि ये अपन प्लांटों को 'सस्ते श्रम' के क्षेत्रों में ले जाते हैं।

(2) क्योंकि बहुराष्ट्रीय मजदूर संघों ने बहुराष्ट्रीय प्रबन्धकों के साथ अपनी गति को नहीं बनाया, इसलिए बहुराष्ट्रीय निगम सामान्य काम करने की परिस्थितियों तथा क्षतिपूर्ति की कीमत पर कहीं अधिक हड़ताल विरोधी हो सकते हैं।

(3) संगठित मजदूर संघ इस बात पर जोर देते हैं कि, "बहुराष्ट्रीय संघ प्रायः आज के विदेशी प्रतिस्पर्धा के युग में अपने राष्ट्रीय उद्योगों के हितों की उपेक्षा करते हैं तथा उन्हें हानि पहुंचाते हैं।" बहुराष्ट्रीय निगम बाजारों को अविकसित देश के 'दास–मजदूरों' द्वारा उत्पादित वस्तुओं से भर देते हैं।

(4) बर्नेट तथा मूलर्ज इस बात से इन्कार करते हैं कि बहुराष्ट्रीय निगम विश्व शान्ति तथा उन्नति के मूल वाहक हैं। उनका विचार है कि इसके विपरीत ये निगम भुखमरी, बेरोजगारी तथा असमानता की समस्याओं को सुलझाने में कोई विशेष सहायता नहीं करते।

(5) बहुराष्ट्रीय निगम ने केवल अमीर तथा गरीब देशों के बीच की खाई को चौड़ा कर रहे हैं बल्कि बड़े पैमाने पर विकासशील राष्ट्रों से लाभ कमा कर अपने देशों को स्थानान्तरित कर रहे हैं।

(6) बहुराष्ट्रीय निगम निर्धन राष्ट्रों पर धनी राष्ट्रों के नव–उपनिवेशीय नियन्त्रण के वाहक हैं। अमीर देश इन गैर–सरकारी लाभ कमाने वाले संगठनों को गरीब राष्ट्रों की अर्थ–व्यवस्थाओं तथा नीतियों को प्रभावित करने के लिए प्रयुक्त करते हैं।

(7) बहुराष्ट्रीय निगमों ने वर्तमान मानवीय, सामाजिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक आवयश्कताओं की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया है। ये आर्थिक असमानता, पर्यावरण प्रदूषण तथा मनोवैज्ञानिक विमुखता को जन्म देते हैं। इनका ध्यान सिर्फ अपने लाभों पर ही होता है। ये मानवीय आवश्यकताओं तथा जीवित रहने की आवश्यक परिस्थितियों की ओर बहुत कम ध्यान देते हैं। ये परम्परागत जमींदारों तथा जागीरदारों के समान ही या उनसे भी अधिक शोषण करने वाले होते हैं।

24.8 राज्य प्रभुसत्ता पर भूमण्डलीकरण का प्रभाव

राज्य प्रभुसत्ता के दो पहलू हैं–आन्तरिक एवं बाह्य। बाह्य प्रभुसत्ता का अभिप्राय यह है कि राज्य के भीतर सभी व्यक्तियों तथा समुदायों पर राज्य का एकछत्र अधिकार है। राज्य सबको आदेश देता है, लेकिन किसी से आदेश प्राप्त नहीं करता। **प्रो. लास्की** ने लिखा है कि राज्य अपने प्रदेश में सब मनुष्यों और समुदायों को आदेश प्रदान करता है। उसकी इच्छा पर कोई कानूनी प्रतिबन्ध नहीं होता। किसी विषय में वह अपनी इच्छा प्रक कर देने से ही उसका अधिकारी हो जाता है।

बाह्य प्रभुसत्ता का अभिप्राय यह है कि राज्य अन्य राज्यों के दबाव अथवा हस्तक्षेप से स्वतंत्र होता है। उसकी इच्छा, निजी इच्छा है। **गैटेल** के शब्दों में, जिसे हम बाह्य प्रभुसत्ता कहते हैं, वह वस्तुतः अधिकारों की वह पूर्णता है, जिसके द्वारा विदेशी राज्यों से व्यवहार के विषय में आन्तरिक प्रभुसत्ता की अभिव्यक्ति होती है।

जहाँ तक भूमण्डलीकरण के प्रभाव की बात है, तो यह स्पष्ट है कि शीत–युद्ध की समाप्ति के पश्चात् विश्व के विभिन्न देशों में आपसी सहयोग एवं साझेदारी बढ़ी है। आर्थिक क्षेत्रीय संगठन, कार्यात्मक संगठन, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ एवं गैर–राजकीय संगठन आदि काफी सक्रिय हो रहे हैं। लोगों का लोगों के साथ संबंध तथा आपसी अन्तःक्रियाओं एवं

संबंधों में तेजी से वृद्धि हो रही है। राष्ट्र–राज्यकी भौगोलिक सीमाओं को संचार के साधनों एवं यातायात के साधनों ने कमजोर कर दिया है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्र–राज्य की भूमिका में कमी आई है, क्योंकि आज भूमण्डलीकरण को एक आदर्श मूल्य के रूप में मान्यता मिल चुकी है और विभिन्न राष्ट्र अपने आर्थिक विकास हेतु इसे स्वीकार कर रहे हैं और एकीकरण की ओर बढ़ रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था आज गतिशील है। राष्ट्र–राज्य या राज्य प्रभुसत्ता ने अपना प्रभाव बनाए रखा है और वे अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों एवं आंदोलनों को विकास का अवसर प्रदान करते हैं। इन नए आंदोलनों ने प्रभुसत्ता को अस्वीकार करके परस्पर अन्तर्निर्भरता तथा अपनी साझी आवश्यकताओं तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए क्षेत्रीय सहयोग करने की आवश्यकता को पहचाना है। परिणामस्वरूप क्षेत्रीय विकास तथा अन्तर्राष्ट्रीय एकीकरण की ओर विशेष झुकाव हो गया है, लेकिन अभी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में राज्य प्रभुसत्ता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज भूमण्डलीकरण के युग में भी अराज्यीयकर्त्ता राज्य प्रभुसत्ता को बदलने की अपेक्षा स्वयं गतिविधियों का स्वरूप उनसे निर्धारित करवाते हैं।

किन्तु भूमण्डलीकरण ने प्रभुसत्ता के अन्य तत्वों पर विपरीत प्रभाव डाला है। प्रभुसत्ता भी एक हद तक कमजोर हुई है। राज्य के निर्णय एवं निष्कर्ष प्रभुसत्ता के संतुलित विकल्प पर आधारित नहीं होते और इन्हें राज्य की सीमाओं में समेटा नहीं जा सकता। सीमाएँ स्वतंत्र हो गई हैं। प्रभुसत्ता के निश्चित कारकों ने नागरिक समाज से एक अन्तःक्रिया स्थापित कर ली है, जिसे राज्य ने अधिकार प्रदान किया था, वह धीरे–धीरे कम हो रहा है।

24.9 सारांश

सारांश में यह कह सकते हैं कि बहुराष्ट्रीय निगमों के समर्थक भूमण्डलीकरण के युग में इन्हें आर्थिक, औद्योगिक तथा तकनीकी विकास के साधन मानते हैं जो विकासशील तथा विकसित दोनों की राष्ट्रों की सेवा में लगे हुए हैं। इसलिए उनका कहना है कि आवश्यकता इस बात की है कि युद्ध, पिछड़ेपन तथा निर्धनता रहित विश्व की स्थापना के लिए इन अन्तर्राष्ट्रीय निगमों के साधनों का उचित प्रयोग किया जाए। परन्तु इसके आलोचक तथा तीसरे विश्व के राष्ट्र, बहुराष्ट्रीय निगमों के उद्भव तथा विकास को समकालीन राजनीति का बड़ा खतरा मानते हैं। वे बहुराष्ट्रीय निगम के विरूद्ध कड़े उपाय अपनाने का समर्थन करते हैं ताकि वे नव–उपनिपवेशवाद की स्थापना न कर सके। ऐसा केवल राष्ट्रीय तथा स्थानीय निगमों के द्वारा ही किया जा सकता है क्योंकि बहुराष्ट्रीय निगम अपने शक्तिशाली स्तर के कारण संयुक्त राष्ट्र संघ के तथा अन्य संस्थाओं के नियन्त्रण से आज अधिकांशतः स्वतन्त्र ही बन चुके हैं।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. भूमण्डलीकरण के युग में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूमिका का विवेचन कीजिए।
2. भूमण्डलीकरण निगमवाद की प्रमुख विशेषताएँ बताईए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. बहुराष्ट्रीय निगमों के लाभ बताईए।
2. बहुराष्ट्रीय निगमों के दोष बताईए।
3.. राज्य प्रभुसत्ता पर भूमण्डलीकरण के प्रभावों का वर्णन कीजिए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. बहुराष्ट्रीय निगमों का अर्थ बताईए।

2 भूमण्डलीकरण के तीन कर्ता बताईए।

इकाई–25

मानवाधिकार और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

(Human Rights and International Trade)

25.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत मानवाधिकार और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के विभिन्न पहलुओं, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विस्तार व मानवाधिकार तथा विश्व व्यापार संगठन की भूमिका आदि का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :–

- मानवाधिकारों के अर्थ को समझ सकेंगे।
- मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- मानवाधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के प्रभावों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- मानवाधिकारों के लिए बहुराष्ट्रीय निगमों के उत्तदायित्व को समझ सकेंगे।

25.1 प्रस्तावना

मानवाधिकार की भावना विश्वबन्धुत्व पर आधारित है। मानवाधिकारों का सम्बन्ध मनुष्यों के व्यक्तित्व के विकास से जुड़ा हुआ है। अतः इसका अभिप्राय विभिन्न राष्ट्रों को ऐसे अधिकार प्रदान करने से है जिसका उपयोग करके प्रत्येक राष्ट्र अपने विकास को गतिशील कर सकता है।

मानवाधिकारों एवं मानव गरिमा की धारणा के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध है अर्थात् वे अधिकार जो मानव गरिमा को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं, उन्हें मानवाधिकार कहा जाता है। मानवाधिकारों का सम्बन्ध मानव की स्वतन्त्रता, समानता एवं गरिमा के साथ जीने के लिए स्थितियाँ उत्पन्न करने से होता है। मानवाधिकार ही समाज में ऐसा वातावरण उत्पन्न करते हैं जिसमें सभी व्यक्ति समानता के साथ निर्भीक रूप से मानव गरिमा के साथ जीवन व्यतीत कर पाते हैं। उल्लेखनीय है कि मानवाधिकारों को मूल अधिकार, आधारभूत अधिकार, नैसर्गिक अधिकार व जन्मजात अधिकार भी कहा जाता है।

25.2 मानवाधिकारों का अर्थ

मानवाधिकार ऐसे अधिकार हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव प्राणी होने के नाते प्राप्त होते हैं। भले ही उसकी राष्ट्रीयता, लिंग, वर्ग, जाति, व्यवसाय और सामाजिक–आर्थिक स्थिति कुछ भी हो। मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम (Human Right Protection Act), 1993 की धारा 2(घ) में मानवाधिकार की परिभाषा दी गई है। इसके अनुसार मानवाधिकार से तात्पर्य व्यक्ति के जीवन, स्वतन्त्रता, समानता एवं गरिमा से सम्बन्धित उन अधिकारों से है, जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत हैं अथवा अन्तर्राष्ट्रीय करारों में सम्मिलित हैं।

रेमण्ड हाऊस एनसाइक्लोपीड़िया के अनुसार, मानव अधिकारों का अर्थ है : "एक मनुष्य होने के नाते ही एक व्यक्ति के शक्तियों, अस्तित्व की शर्तों तथा प्राप्तियों के दावे होते है।" यह वह अधिकार होते है जो मनुष्य की प्रवृत्ति में निहित होते हैं तथा जो उसके मनुष्य जीवन को जीने के लिए नितांत आवश्यक होते है। ये व्यक्ति की योग्यताओं के पूर्ण विकास के साथ–साथ मानवीय योग्यताओं में वृद्धि तथा चेतना के प्रयोग द्वारा अपने हितों और आवश्यकताओं को पूर्ण करने की आवश्यक शर्तें होती है।

25.3 मानवाधिकारों की विशेषताएँ :– मानवाधिकारों की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :–

1. मानव अधिकार व्यक्ति के लिए अनिवार्य हैं, क्योंकि इनके बिना कोई भी व्यक्ति मनुष्य के रूप में न तो अपने अस्तित्व को बनाए रख सकता है और न ही अपना विकास कर सकता है।
2. मानव अधिकार, अविभाज्य तथा अन्तःसम्बन्धित है। इसका तात्पर्य है कि विभिन्न प्रकार के सामाजिक, नागरिक तथा आर्थिक मानव–अधिकार, एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं तथा व्यवहार में उन्हें एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।
3. मानव अधिकार विश्व शान्ति व सुरक्षा तथा विकास के लिए आवश्यक है। यदि इन अधिकारों का कहीं पर भी उल्लंघन किया जाता है तो इससे विश्व शान्ति को खतरा उत्पन्न हो सकता है।
4. मानव अधिकार सार्वभौमिक है अर्थात् वे प्रत्येक देश में प्रत्येक व्यक्ति की जाति, धर्म, लिंग, निवास, उत्पत्ति आदि के भेदभाव के बिना समान रूप से उपलब्ध होते हैं।
5. मानव अधिकार प्राकृतिक है, क्योंकि ये प्रत्येक व्यक्ति को जन्म से ही प्राप्त होते हैं। कोई राज्य उन्हें छीन नहीं सकता, क्योंकि राज्य उन्हें प्रदान नहीं करता है।

6. मानव अधिकार अदेय है, इसका मतलब है कि इन अधिकारों से व्यक्ति को अलग नहीं किया जा सकता और न एक व्यक्ति द्वारा अपने मानव अधिकारों को दूसरों को दिया जा सकता है।

25.4 मानवाधिकारों के विभिन्न रूप

संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकारों को कई रूपों में विभाजित किया जिसमें प्रमुख निम्न है :–

1. **राजनीतिक मानवाधिकार** :– राजनीतिक मानवाधिकार किसी भी लोकतान्त्रिक समाज का आधार होता है। राजनीतिक मानवाधिकार के अन्तर्गत राष्ट्रीयता एवं शरण पाने का अधिकार, शान्तिपूर्वक सभा एवं संघ गठित करने का अधिकार, सरकार में शामिल होने व सार्वजनिक आन्दोलन की स्वतन्त्रता एवं विचार व अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिकार शामिल किया जाता है।
2. **नागरिक अधिकार** :– जीवन, स्वतन्त्रता एवं सम्पत्ति से सम्बन्धित ऐसे अधिकार जो सभी व्यक्तियों और राष्ट्रों के जीवन के सभ्य तरीकों को बढ़ावा देने में सहायता करते हैं, नागरिक अधिकार के रूप में माने जाते हैं।

   मानवाधिकारों की घोषणा में उन अधिकारों का उल्लेख है जिनके लिए सभी मनुष्य बिना किसी भेदभाव के हकदार हैं।
3. **सामाजिक एवं आर्थिक मानवाधिकार** :– सामाजिक एवं आर्थिक मानवाधिकार के अन्तर्गत सामाजिक सुरक्षा, कार्य करने, आराम करने व अवकाश प्राप्त करने एवं स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक मानव जीवन स्तर बनाये रखने के अधिकार वर्णित हैं।
4. **सांस्कृतिक मानवाधिकार** :– विभिन्न देशों के लोगों मे तथा देश के विभिन्न भागों में विविध प्रकार की परम्पराएँ व रीति रिवाज पाये जाते हैं। इन सभी को संरक्षित करने का अधिकार मानव को प्राप्त है तथा इस माध्यम से मानव अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखता है।

25.5 मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा

संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अधीन कार्य करते हुऐ, संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक परिषद् ने फरवरी 1946 में मानव अधिकार आयोग की स्थापना की। इस आयोग को यह निर्देश दिया गया कि वह (1) एक अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार–पत्र (2) नागरिक स्वतन्त्रताओं, स्त्रियों के स्तर, सूचना की स्वतन्त्रता और ऐसे ही अन्य विषयों पर अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों/घोषणाओं, (3) अल्पसंख्यकों की सुरक्षा (4) नस्ल, लिंग, भाषा या धर्म कि आधार पर भेदभाव रोकने तथा (5) मानव अधिकारों से सम्बन्धित अन्य विषयों पर अपनी सिफारिशें और रिपोर्ट पेश करे। इस आयोग ने 30 महीनों तक कड़ी परिश्रम करके मानव अधिकारों पर सार्वभौमिक घोषणा तथा कुछ अन्य समझौतों पर मसौदे तैयार किए। मानव अधिकारों की घोषणा को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 10 दिसम्बर, 1948 को अपना लिया। 10 दिसम्बर को मानवाधिकार दिवस के रूप में मनाया जाता है। मानवाधिकार घोषणा पत्र में प्रस्तावना सहित 30 अनुच्छेद है। जिनमें नागरिक राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का वर्णन है।

घोषणा पत्र :– मानवाधिकारों का 30 अनुच्छेदों वाला घोषणा पत्र निम्न प्रकार है :–

अनुच्छेद 1. सभी मनुष्य अधिकार एवं सम्मान के सम्बन्ध में स्वतन्त्र व समान पैदा होते है। उनको चेतना और बुद्धि प्राप्त है तथा उन्हें एक–दूसरे के साथ भातृत्व भाव की भावना में कार्य करना चाहिए।

अनुच्छेद 2. इस घोषणा में शामिल सभी अधिकार और स्वतन्त्रताएं प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी नस्ल, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या अन्य विचार, राष्ट्रीय या सामाजिक उत्पत्ति, सम्पत्ति, अन्य या दूसरे दर्जे के भेदभाव के प्राप्त होने चाहिए।

अनुच्छेद 3. प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वतन्त्रता तथा अपने व्यक्तित्व का अधिकार है।

अनुच्छेद 4. किसी को भी दासता या बन्धन में नहीं रखा जाएगा, सभी स्वरूपों में दासता तथा दास व्यापार का निषेध होगा।

अनुच्छेद 5. किसी को भी यातना या क्रूर मानवता विरोधी, नीचा दिखाने वाला व्यवहार या दण्ड नहीं दिया जाएगा।

अनुच्छेद 6. प्रत्येक को कानून के सामने तथा सभी जगह एक व्यक्ति के रूप में मान्यता प्राप्त होगी।

अनुच्छेद 7. सभी कानून के सम्मुख समान हैं तथा सभी को बिना किसी भेदभाव के, कानून के सामने एक समान सुरक्षा उपलब्ध होगी। सभी को किसी भी प्रकार के शोषण के विरूद्ध सुरक्षा प्राप्त होगी।

अनुच्छेद 8. संविधान या कानून के अधीन प्राप्त मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में प्रत्येक को योग्य न्यायालयों की शरण/सुरक्षा प्राप्त होगी। अपने अधिकारों की उल्लंघना के विरूद्ध वह न्याय प्राप्ति के अधिकारी होंगे।

अनुच्छेद 9. किसी को भी निरंकुश रूप में बन्दी नहीं बनाया जाएगा, हिरासत में नहीं लिया जाएगा तथा देश–निकाला नहीं दिया जाएगा।

अनुच्छेद 10. प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों और कर्तव्यों के निर्धारण तथा अपने विरूद्ध आपराधिक दोष के मामले एक तटस्थ तथा स्वतन्त्र न्यायालय के सामने समान तथा उचित सार्वजनिक सुनवाई का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 11. प्रत्येक ऐसे व्यक्ति, जिस पर कोई आपराधिक दण्डनीय दोष लगा हो, को तब तक निर्दोष समझा जाएगा जब तक कानून और सार्वजनिक मुकद्दमें में उसका अपराध सिद्ध नहीं को जाता। ऐसे मुकद्दमें के समय उस को अपने बचाव की पूरी सुविधा प्राप्त होगी।

अनुच्छेद 12. किसी के निजी जीवन, परिवार, घर, पत्र–व्यवहार में निरंकुश हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा न ही उसके सम्मान तथा सम्मान की स्थिति के विरूद्ध आक्रामक कार्यवाही की जाएगी, इस सब के लिए उसे कानून की सुरक्षा का अधिकार प्राप्त होगा।

अनुच्छेद 13. अपने राज्य की सीमा के अन्दर रहने तथा घूमने–फिरने की स्वतन्त्रता का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त होगा। किसी को भी किसी देश को अपने देश को भी छोड़ने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 14. प्रत्येक को अपनी जान बचाने के लिए दूसरे देश में शरण प्राप्त करने का अधिकार होगा लेकिन यह शरण उनको प्राप्त करने का अधिकार नहीं होगा जिन्हें गैर–राजनीतिक अपराधी या फिर संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्तों एवं उद्देश्यों के विरूद्ध किए गए अपराधों के सन्दर्भ में बन्दी बनाने की आवश्यकता होगी।

अनुच्छेद 15. प्रत्येक को एक राष्ट्रीयता (नागरिकता) प्राप्ति का अधिकार है। न ही किसी को निरंकुश रूप में उसकी राष्ट्रीयता से वंचित किया जाएगा और न ही उसे अपनी राष्ट्रीयता को बदलने के लिए मजबूर किया जाएगा।

अनुच्छेद 16. निश्चित आयु की स्त्रियों एवं पुरूषों को बिना किसी नस्ल राष्ट्रीयता या धर्म की सीमा के विवाह तथा परिवार बनाने का अधिकार प्राप्त होगा।....परिवार समाज की एक प्राकृतिक तथा मौलिक समूह–इकाई है जिसे समाज तथा राज्य से सुरक्षा प्राप्ति की योग्यता प्राप्त है।

अनुच्छेद 17. प्रत्येक को अपने आय में तथा दूसरों के साथ मिल कर सम्पत्ति का स्वामी बनने का अधिकार है । किसी को भी निरंकुश रूप में उसकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद 18. प्रत्येक को विचारों, चेतना तथा धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार है। इसी में धर्म या विश्वास परिवर्तन करने का अधिकार है। ऐसा कोई व्यक्ति स्वयं अकेले अथवा दूसरों के साथ मिल कर सार्वजनिक अथवा निजी रूप में कर सकता है। प्रत्येक अपने धर्म का पालन, पूजा–पाठ कर सकता है तथा उसका प्रचार कर सकता है।

अनुच्छेद 19. प्रत्येक को विचार रखने और उन्हें प्रकट करने का अधिकार है। ऐसा वह बिना किसी हस्तक्षेप के कर सकता है। वह जन प्रसार–साधनों के माध्यम से कोई भी सूचना प्राप्त भी कर सकता है तथा प्रकट भी कर सकता है।

अनुच्छेद 20. प्रत्येक को शान्तिपूर्ण इकट्ठे होने तथा संस्थाएं बनाने का अधिकार है। किसी को किसी ओर संस्था का सदस्य बनने के लिए विवश नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद 21. प्रत्येक अपने देश की सरकार में, प्रत्यक्ष रूप में या फिर अपने द्वारा स्वतन्त्रता पूर्वक निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से, भाग लेने का अधिकार है। सभी को अपने देश में सार्वजनिक सेवा में पहुंच का समान अधिकार है।

अनुच्छेद 22. समाज का सदस्य होने के नाते प्रत्येक को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है। वह अपने सम्मान तथा स्वतन्त्र विकास के लिए आवश्यक आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों की प्राप्ति अपने राष्ट्रीय प्रयासों तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग तथा प्रत्येक राज्य के संगठन और संसाधनों के अनुसार कर सकता है।

अनुच्छेद 23. प्रत्येक को काम का अधिकार प्राप्त है, वह अपना व्यवसाय अथवा नौकरी स्वतन्त्रतापूर्वक चुन सकता है, वह अपने काम के सम्बन्ध में अच्छी परिस्थिति प्राप्त करने का अधिकारी है, तथा उसे बेरोजगारी के विरूद्ध सुरक्षा प्राप्ति का अधिकार है। बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक को समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार है। प्रत्येक अपने हितों की सुरक्षा के लिए व्यापार संघ बना सकता है या उनमें शामिल हो सकता है।

अनुच्छेद 24. प्रत्येक को आराम करने तथा आनन्द–प्राप्ति का अधिकार है इसमें काम के घण्टों तथा वेतन सहित अवकाश प्राप्त करने की व्यवस्था निहित है।

अनुच्छेद 25. अपने तथा अपने परिवार के स्वास्थ्य के लिए प्रत्येक को जीवन के एक उचित मानदण्ड की प्राप्ति का अधिकार है। इसमे खुराक, कपड़े, घर, दवाइयां, डाक्टरी देखभाल तथा अन्य आवश्यक सामाजिक सेवाओं की प्राप्ति शामिल है। बेरोजगारी, बीमारी, पंगुता, पिछड़ापन, बुढ़ापे तथा नियंत्रण के कारण आजीविका उपार्जित करने की असमर्थता मे सुरक्षा प्राप्ति का अधिकर है। माताएं और बच्चे विशेष देखभाल तथा

सहायता के अधिकारी हैं। सभी बच्चे, जो शादी के बाद या फिर शादी के बिना पैदा होंगे, उन्हें एक जैसी सामाजिक सुरक्षा प्राप्त होगी।

अनुच्छेद 26. प्रत्येक को शिक्षा का अधिकार है। कम से कम प्राथमिक तथा मौलिक स्तरों पर शिक्षा निःशुल्क होगी। प्राथमिक शिक्षा प्राप्ति आवश्यक होगी। शिक्षा उस दिशा की ओर निर्देशित होगी जिससे मानव व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सके, मानव अधिकारों और स्वतन्त्रताओं के प्रति सम्मान हो सके, सभी राष्ट्रों, नस्ली या धार्मिक समूहों में मित्रता हो सके, तथा शान्ति के रख–रखाव में संयुक्त राष्ट्र की गतिविधियों को आगे ले जाया जा सके।

अनुच्छेद 27. समुदाय की सांस्कृतिक जीवन–कला तथा वैज्ञानिक प्रगति की क्रिया में स्वतन्त्रतापूर्वक भागीदारी का अधिकर प्रत्येक को प्राप्त है। प्रत्येक को अपने द्वारा किए जाने वाले किसी वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक उद्यम का लाभ प्राप्त करने का अधिकार है।

अनुच्छेद 28. प्रत्येक को एक ऐसी सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में शामिल होने का अधिकार है जिसमें इस घोषणा में दर्ज अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं को प्राप्त किया जा सकता है।

अनुच्छेद 29. प्रत्येक के अपने समुदाय (समाज) जिसमें ही उसके व्यक्तित्व का विकास हो सकता है, के प्रति कर्तव्य हैं। प्रत्येक पर उसके अधिकारों एवं स्वतन्त्रताओं के सम्बन्ध में केवल वही प्रतिबन्ध या सीमाएं लागू हो सकती हैं जो कि उसके कानून तथा समाज द्वारा उसके अधिकारों और स्वतन्त्रताओं की सुरक्षा एवं मान्यता के लिए आवश्यक हो। इन अधिकारों और स्वतन्त्रताओं का प्रयोग कभी भी संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्वान्तों और उद्देश्यों क विरूद्ध नहीं किया जा सकता।

अनुच्छेद 30. इस घोषणा के किसी भी भाग की व्याख्या और विश्लेषण किसी भी राज्य, समूह या व्यक्ति के लिए इस प्रकार नहीं की जा सकती जिससे वह कोई ऐसी कार्यवाही को करने लगे जो कि इन अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं को सीमित अथवा नष्ट करने की दिशा में हो।

25.6 मानवाधिकार और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में दो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आये हैं – (1) 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के पश्चात् उसके संरक्षण में बहुत मानवाधिकार कानून बनाये गये हैं। (2) विश्व अर्थव्यवस्था में भूमण्डलीकरण का प्रभाव बढ़ रहा है। इन परिवर्तनों से व्यापार और विदेशी सम्बन्धों के लिए राष्ट्रीय प्रतिबन्धों में कमी आई है। दूर संचार प्रणाली का विस्तार हुआ है, अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियो का आपसी नेटवर्क और संगठन का विस्तार हुआ है, ई–कामर्स (Online Marketing) का प्रवेश हुआ है, बहुराष्ट्रीय राष्ट्रीय उघोगों की भूमिका में वृद्धि और क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण को बढ़ावा मिला है और एक संगठित विश्व बाजार का विकास हुआ है।

इस प्रकार के वातावरण में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विकास लगातार और अधिक तेजी से हुआ है। बहुत से सिद्धान्तों का यह मानना था कि इस विकास से गरीब और विकासशील देशों में आर्थिक विकास होगा। जीवन स्तर सुधरेगा, मानव की दिशाओं और सभी व्यक्तियों के मानव अधिकारों में सुधार होगा।

लेकिन मुक्त व्यापार के समर्थकों के इस प्रकार के दावों के विपरीत मानवाधिकार बहुत खतरे में है। क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार केवल लाभ कमाने के सिद्धान्त पर कार्य करता है, उसका उद्देश्य सिर्फ और सिर्फ लाभ कमाना है न कि मानवाधिकारों का सम्मान एवं विकास करना।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का मानवाधिकारों पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव दिखाई देते हैं।

25.7 अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विस्तार और मानवाधिकार

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की संरचना में सम्पूर्ण विश्व में व्यापक परिवर्तन आया है। पिछले पाँच दशकों के दौरान विश्व निर्यात दस गुना से भी अधिक बढ़ गया है। यही स्थिति आयातों के संदर्भ में भी देखी जा सकती है। मुद्रास्फीति का समायोजन करने के बाद भी विश्व का कुल सकल घरेलू उत्पाद अपेक्षाकृत तेजी से बढ़ता जा रहा है। विदेशी निवेश की वृद्धि दर भी निरन्तर बढ़ती जा रही है। टी.एन.सी. के प्रचलन से भी विश्व व्यापार पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। विदेशी विनिमय प्रवाह बढ़ रहा है।

25.8 विश्व व्यापार संगठन की भूमिका

विश्व व्यापार संगठन 1 जनवरी 1995 से अस्तित्व में आया। विश्व व्यापार संगठन एक स्थायी संगठन है तथा इसकी स्थापना सदस्य राष्ट्रों की संसद द्वारा अनुमोदित एक अन्तर्राष्ट्रीय संधि के आधार पर हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक जगत में उसकी स्थिति अब अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक के बराबर है, किन्तु मुद्राकोष एवं विश्व बैंक की भांति यह संयुक्त राष्ट्र संघ की एजेन्सी के रूप में कार्य नहीं कर रहा है। **मराकेश** घोषणा के द्वारा यह स्वीकार किया गया था कि इस नए व्यापार कानून से विश्व अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होगी और इसके परिणामस्वरूप दुनिया के देशों में अधिक से अधिक

व्यापार, निवेश, रोजगार और आय में वृद्धि होगी। जैसा कि ज्ञातव्य है कि मराकेश करार विश्व के इतिहास में सबसे अधिक बड़ा व्यापार मसौदा था, जिसमें पेपर विकल्प से लेकर जैट विमान तक शामिल है। मराकेश घोषणा का अधिकांश भाग उसकी विशालता का प्रतीक माना जात है। आज कुल विश्व व्यापार का 90% भाग विश्व व्यापार संगठन के माध्यम से होता है।

25.9 विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य :– विश्व व्यापार संगठन की प्रस्तावना में इसके उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है जो निम्नलिखित हैं :–

1. जीवन स्तर को ऊँचा उठाना।
2. पूर्ण रोजगार एवं प्रभावपूर्ण माँग में वृहदस्तरीय एवं ठोस वृद्धि करना।
3. वस्तुओं के उत्पादन एवं व्यापार का प्रसार करना।
4. सेवाओं के उत्पादन एवं व्यापार का प्रसार करना।
5. विश्व के संसाधनों का अनुकूलतक उपयोग करना।
6. अविरत विकास की अवधारणा को स्वीकार करना।
7. पर्यावरण का संरक्षण एवं उसकी सुरक्षा करना।

25.10 विश्व व्यापार संगठन का कार्य

1. विश्व व्यापार समझौता एवं बहुपक्षीय तथा बहुवचनीय समझौतों के कार्यान्वयन, प्रशासन एवं परिचालन हेतु सुविधाएं प्रदान करना।
2. व्यापार एवं प्रशुल्क से संबंधित किसी भी भावी मसले पर सदस्यों के बीच विचार–विमर्श हेतु एक मंच के रूप में कार्य करना।
3. विवादों के निपटारे से संबंधित नियमों एवं प्रावधानों को लागू करना।
4. व्यापार नीति समीक्षा प्रक्रिया से संबंधित नियमों एवं प्रावधानों को लागू करना।
5. विश्व स्तरीय आर्थिक नीति निर्माण मे अधिक सामंजस्य भाव लाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक से सहयोग करना।
6. वैश्विक संसाधनों का अनुकूलतम प्रयोग करना।

25.11 मानवाधिकारों के लिए बहुराष्ट्रीय निगमों का उत्तरदायित्व

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार प्रणाली राष्ट्र की सीमा के आर–पार व्यापारिक गतिविधियों का संचालन करती है। जिसका आज के यांत्रिक विश्व पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि हम दुनिया के कुछ विकसित राष्ट्रों को राजस्व प्राप्ति की तुलना, विश्व के सबसे बड़े प्राचीन बहुराष्ट्रीय निगमों के प्राप्त राजस्व से करें, तो हम पाते हैं कि विश्व के केवल छः देशों–संयुक्त राज्य अमेरिका 1248 बिलियन डॉलर, जर्मनी 690 बिलियन डॉलर, यू.के. 38 बिलियन डॉलर, इटली 339 बिलियन डॉलर एवं फ्रांस 221 बिलियन डॉलर का राजस्व सबसे बड़े नौ बहुराष्ट्रीय निगमों मित्सुविशि 184 बिलियन डॉलर, मित्सुई 182 बिलियन डॉलर, सुमिटोमा 168 बिलियन डॉलर, मेराबेनि 161 बिलियन डॉलर, फोर्ड मोटर 137 बिलियन डॉलर, टोयोटा मोटर 111 बिलियन डॉलर और एक्सोन 110 बिलियन डॉलर के राजस्व से कहीं अधिक है। विकसित देशों की विशाल आर्थिक शक्ति के कारण, टी.एन.सी. बहुधा राष्ट्रीय सरकारों के प्रभावी नियंत्रण से परे होते हैं। इनमें वे बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ शामिल हैं, जो अपनी भौगोलिक सीमा के अंदर है।

आज विश्व के देशों में लगभग 38,500 से भी अधिक मूल बहुराष्ट्रीय निगमें हैं, जिनकी दुनिया के विभिन्न देशों में 2,50,000 से भी अधिक संमद्ध कम्पनियाँ कार्यरत है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ जो मौलिक रूप से किसी एक देश में स्थित होती हैं, परन्तु उनका व्यापारिक तथा व्यावसायिक विस्तार एक से अधिक देशों में फैला होता है। नवीनतम तकनीकों के साथ साधन–संपन्न बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रभाव का दुनिया की आर्थिक गतिविधियों मे सहज की अध्ययन किया जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार, विश्व व्यापार का 70 प्रतिशत भाग विश्व की केवल 500 बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा किया जाता है। विश्व के कुल घरेलू उत्पाद का 30% एवं कुल विदेशी निवेश का 80% भाग उनके स्वामित्व में है। उन्नत, व्यापक आधुनिक तकनीक, कुशल प्रबंधकीय व्यवस्था तथा व्यापक तथा सरल विक्रय नीति के आधार पर उनका व्यापार नित्यप्रति बढ़ता जा रहा है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों की महत्त्वपूर्ण विशिष्टता यह होती है कि उनके मुख्य फैसले संपूर्ण दुनिया के संदर्भ में एक साथ लिए जाते हैं, जिसके कारण इनके निर्णय बहुधा उस राष्ट्र की आर्थिक नीतियों से बेमेल हो जाते हैं, जहाँ उनका कार्यस्थल होता है। इनका मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना होता है। उनके अधिकतम लाभ के उद्देश्य में उस बात का ख्याल नहीं रखा जाता कि उन क्रियाओं की प्रतिक्रिया उन देशों पर क्या होगी, जिनमें यह यह कार्यरत हैं। इनकी एक विशेषता

यह भी है कि यह कंपनी भिन्न–भिन्न देशों में विभिन्न प्रकार की संस्थाओं के माध्यम से कार्य करती है। अल्प विकसित देशों में यह निगम अपनी नियंत्रित, कंपनियों के माध्यम से कार्य करती है। ये नियंत्रित कंपनियाँ दूसरे देशों की कंपनियों के साथ मिलकर संयुक्त उद्यम भी स्थापित कर सकती है। यह कंपनियां बहुधा अपनी पूँजी तथा उत्पादन इकाइयाँ उन स्थानों पर स्थापित करती हैं, जहाँ पर उन्हें कच्चा माल एवं सस्ते श्रमिक उपलब्ध होते हैं। हालाँकि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ के बीच विकासशील तथा विकसित देशों में निवेश आकर्षित करने की आशा में विश्वव्यापी प्रतियोगिता चल रही है। उसी प्रतिस्पर्धा को ध्यान में रखकर एक देश दूसरे देशों के खिलाफ पर्यावरणीय, बाल श्रमिक तथा मानवीय अधिकारों को न्यूनतम स्तर प्रदान करने के लिए बोली लगाता है। यह प्रतिस्पर्धा प्रत्यक्षतः थोड़े–से सामाजिक लाभ, कामगारों को कम श्रमिक, कम सुविधा, कम स्वास्थ्य सुविधा तथा बहुत–से सामाजिक, राजनीतिक एवं ट्रेड यूनियन से जुड़े अधिकारों के उल्लघंन में योगदान कर रही है। अतः यह कहा जा सकता है कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा जो लाभ अर्जित किया जा रहा है, वह कर्मचारियों का शोषण करके कमाया गया है। इनके द्वारा श्रमिकों के मूल अधिकारों तथा मानव अधिकारों के लिए बनाए गए कानूनों का साफ तौर पर उल्लघंन किया जाता रहा है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के इलेक्ट्रॉनिक कूड़ा कबाड़ से आज पूरी दुनिया मे एक बहुत बड़ी समस्या पैदा हो गई है। यह साईबर क्रांति की देन है। ई–वेस्ट पर्यावरण के लिए किसी गंदे पानी एवं रसायन से ज्यादा खतरनाक है। यह इलेक्ट्रॉनिक कूड़ा पर्यावरण में इतनी बुरी तरह जहर घोलता है कि पीने के पानी को विषाक्त बनाने के साथ–साथ बच्चों की सेहत पर भी बुरा असर डालता है। बच्चे में जन्मजात विकलांगता आती है। मछलियों से लेकर वन्य जीवों का जीवन भी प्रभावित होता है तथा गर्भपात और कैंसर का कारण पैदा करता है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा औद्योगीकरण की अंधाधुंध दौड़ संपूर्ण विश्व में पर्यावरण को प्रदुषित करने में लगी हुई है। इसके प्रभाव से पृथ्वी के जीवन–स्वरूपों की विकास क्रिया में अवरोध उत्पन्न होने लगता है। संरक्षण प्रदान करना दुनिया के सभी देशों में प्रमुख विषय का स्थान ले चुका है। लेकिन प्रकृति के नियम, मानव द्वारा स्थापित देशों की सीमाओं तक ही सीमित नहीं है, इसलिए पर्यावरण प्रदुषण नियंत्रण एक अंतर्राष्ट्रीय समस्या है, एक देश की नहीं। अतः इसका समाधान भी विश्व के सभी देशों को मिलकर करना होगा।

25.12 सारांश

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का क्षेत्र निरन्तर बढ़ता जा रहा, जिसके कारण बहुराष्ट्रीय निगमों का महत्त्व तीव्र गति से बढ़ता जा रहा है। बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा मानवाधिकारों का उल्लंघन किया जा रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के बढ़ते स्वरूप के कारण बहुत–से मानव अधिकारों का तो ध्यान ही नहीं रखा जाता। बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा जब तक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्य आचार संहिता का पालन नहीं किया जाता, तब तक लोगों के मानवीय अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समकालीन व्यापार पद्धति के रूप में सुरक्षित नहीं रह सकते।

इसके अतिरिक्त मुक्त व्यापार से धनी देशों को अधिक लाभ प्राप्त हो रहा है तथा गरीब व मध्यम देशों को हानि उठानी पड़ रही है। यही दुनिया के देशों में वह कारण बना जिसके चलते धनी और निर्धन देशों के बीच खाई का अंतर बढ़ता जा रहा है। इसी व्यवस्था के कारण दुनिया के देशों में आज गरीब देशों की अवहेलना हो रही है। अतः जब तक टी.एन.सी. (Transnational Corporation) से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त आचार संहिता का पालन करने के लिए बाध्य नहीं किया जाता, तब तक मानवाधिकारों का विस्तार नहीं किया जा सकता।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. मानवाधिकारों से क्या अभिप्राय हैं ? मानवाधिकारों के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख कीजिए।
2. मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा पर एक निबन्ध लिखिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. मानवाधिकारों की विशेषताएं बताईए।
2. विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य लिखिए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. मानवाधिकारों को परिभाषित कीजिए।
2. विश्व व्यापार संगठन के दो कार्य बताईए।

इकाई–26

अमेरिकी शक्ति का परिवर्तनशील स्वरूप

(Changing Nature of American Power)

26.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में विश्व राजनीति में अमरीका के शक्ति के परिवर्तित स्वरूप के बारे में उल्लेख किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :–

- विश्व शक्ति के रूप में अमेरिका की भूमिका को जान सकेंगे।
- संयुक्त राज्य अमेरिका के एक महाशक्ति के रूप में उदय का अध्ययन कर सकेंगे।
- महाशक्ति के रूप में अमेरिकी विदेश नीति की विशेषताओं को जान सकेंगे।

26.1 प्रस्तावना

संयुक्त राज्य अमेरिका उत्तर अमरीकी महाद्वीप में स्थित एक संघीय गणराज्य है। जनसंख्या और क्षेत्रफल दोनों ही दृष्टि से इसका तीसरा स्थान है। संयुक्त राज्य अमेरिका का नाम सबसे पहले **थॉमस पेन** ने सुझाया था। 4 जुलाई, 1776 के स्वतन्त्रता घोषणा–पत्र में इसका अधिकारिक रूप से प्रयोग किया गया।

26.2 विश्व शक्ति के रूप में संयुक्त राज्य अमेरिका :

स्वतन्त्रता प्राप्ति के कुछ वर्षों पश्चात् से ही स्वतन्त्र अमेरिका ने तटस्थता की नीति का सहारा लेकर रचनात्मक कार्यों द्वारा देश के पुनर्निर्माण की नीति के स्थान पर अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने युद्ध की नीति के स्थान पर पृथकृतावाद की नीति का अनुसरण किया और यूरोपीय देशों से व्यापार को प्रधानता दी। 1823 में 'मुनरो सिद्धान्त' के प्रतिपादन के बाद अमरीकी विदेश नीति में एक नवीन परिवर्तन आया। अमेरिकी राष्ट्रपति मुनरो ने यह घोषणा की कि अमेरिकी गोलार्द्ध में किसी तरह का राजनीतिक हस्तक्षेप करने का प्रयास किया गया तो यह प्रयास अमेरिका के विरूद्ध शत्रुतापूर्ण कार्यवाही मानी जायेगी। इसके द्वारा यूरोपीय राष्ट्रों को अमेरिकी गोलार्द्ध से दूर रहने को कहा गया। साथ ही 'अमेरिका अमेरिकावासियों के लिए है' का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया। इससे लैटिन अमेरिका के कई राष्ट्र अमेरिका के संरक्षण में आ गये।

इस प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका की शक्ति में प्रभावशाली वृद्धि के कारण पश्चिमी गोलार्द्ध में यूरोपीय राष्ट्रों की प्रसारवादी महत्त्वकांक्षा पर प्रभावी रोक लगीं। इसके बाद अमेरिका धीरे–धीरे विश्व राजनीति में तटस्थता नीति को त्याग कर विश्व राजनीति में हस्तक्षेप प्रारम्भ किया। 1905 ई. में रूस जापान युद्ध का अंत करने के लिए राष्ट्रपति रूज्वेल्ट ने सफलतापूर्वक हस्तक्षेप किया। वह पूर्वी एशिया में जापान के प्रसार को राकना चाहता था, क्योंकि यह स्पष्ट लग रहा था कि प्रशांत महासागर में प्रभुत्व स्थापना में जापान अमेरिका का प्रतिद्वन्द्वी बनने वाला है। 1906 ई. में मोरक्को को लेकर जब फ्रांस और जर्मनी में युद्ध छिड़ा, तो अमेरिका ने इस मामले में भी मध्यस्थता की और बीच–बचाव करवा कर यूरोपीय शांति को भंग होने से बचाया।

इसी तरह प्रथम विश्व–युद्ध (1914) में सम्मिलित होने का अमेरिका को कोई इरादा नहीं था, लेकिन 1917 आते–आते परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बदली कि अमेरिका को बाध्य होकर जर्मनी के खिलाफ युद्ध में सम्मिलित होना पड़ा। अमेरिका अपने धन, जन, युद्ध सामग्री, आयुधों इत्यादि की मदद से मित्र राष्ट्रों का मदद करने लगा और संपूर्ण अमेरिकी शक्ति युद्ध को सफल बनाने मे लग गई और युद्धापरान्त स्थायी शांति की नींव रखने के उद्देश्य से प्ररित होकर युद्धकाल मे ही अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन ने अपने प्रसिद्ध 14 सूत्रों का प्रतिपादन किया। इन सूत्रों मे युद्धोत्तर विश्व के पुनर्निर्माण के लिए कार्यक्रम प्रस्तुत किए गए थे। जर्मनी ने इन्हीं सूत्रों को आधार मान कर युद्ध में पराजित होकर आत्मसमर्पण किया।

26.3 संयुक्त राज्य अमेरिका का एक महाशक्ति के रूप में उदय

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान 1941 में **पर्ल हार्बर** पर जापानी आक्रमण के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका प्रत्यक्ष रूप से इस युद्ध में सम्मिलित हो गया। इसके बाद जापान, जर्मनी तथा इटली (ध्रुवी शक्तियाँ) के विरूद्ध युद्ध में पूर्ण भूमिका निभानी शुरू कर दी तथा एक नेतृत्वपूर्ण निर्धारक की भूमिका अदा भी की। मित्र राष्ट्रों की युद्ध–नीति के निर्माण तथा संचालन में इसने एक महान भूमिका अदा की जो ध्रुवीय शक्तियों की पराजय का प्रमुख निर्धारक बनी। इसके आकार, स्थिति, जनसंख्या, औद्योगिक विकास, सैनिक तैयारी, प्रभावी, सक्रिय एवं कुशल नेतृत्व, उच्च मनोबल, अनुशासित एवं प्रतिबद्ध कूटनीति, स्वस्थ और लोकप्रिय विचारधारा तथा परमाणु क्षमता सब ने मल कर इसकी राष्ट्रीय शक्ति में भारी तथा उच्च स्तरीय वृद्धि की। जापान, जर्मनी, इटली को पराजय देने में संयुक्त राज्य अमरीका ने अग्रणी भूमिका अदा की।

दूसरे विश्व युद्ध के दौरान शस्त्र व्यापार के द्वारा इसकी सैनिक शक्ति तथा आर्थिक शक्ति में भारी वृद्धि हुई। 1945 में यह विश्व का पहला परमाणु शस्त्र धारक देश बन गया।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद इसने अपनी परम्परागत अलगाववाद (Isolationalism) की नीति का त्याग कर दिया तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में एक सक्रिय तथा शीर्ष कर्ता बन गया। संयुक्त राष्ट्र संघ के संगठन तथा स्थापना में इसने भरपूर भूमिका निभाई। यह संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् का स्थायी सदस्य, एक वीटो शक्ति धारक बन गया। यूरोपीय देशों की शक्तियों में हुई भारी कमी के कारण जो शक्ति–शून्य (Power Vacuum) पैदा हो गया था, उसे यूरोप में अपने प्रभाव तथा शक्ति को फैला कर भरने का प्रयास आरम्भ कर दिया। इस दिशा में उसने भूतपूर्व सोवियत संघ की फैल रही शक्ति को भी सीमित करने के लिये कार्य करना आरम्भ कर दिया। मार्शल योजना अधीन धन की सहायता के द्वारा इसने पश्चिमी यूरोपीय देशों पर अपना प्रभाव बढ़ा भी लिया। फिर इसने उत्तर अटलांटिक सन्धि (NATO) का संगठन कर अपने नेतृत्व में यूरोपीय क्षेत्रीय सुरक्षा के पक्ष में एक महत्त्वपूर्ण तथा दृढ़ पहल की। उत्तर अटलांटिक सन्धि संगठन (NATO) ने इसका प्रभाव और शक्ति काफी बढ़ा दी तथा बाद में दक्षिण पूर्वी एशिया सन्धि (SEATO) के द्वारा इसने इस क्षेत्र में भी अपना प्रभाव और शक्ति बढ़ा ली। इसी तरह कई द्विपक्षीय, त्रि–पक्षीय तथा बहुपक्षीय सैनिक सन्धियों के एक जाल द्वारा इसने विश्व के लगभग सभी भागों में अपने प्रभाव–क्षेत्र स्थापित कर लिये तथा यह एक सक्रिय प्रभावशाली विश्व स्तर की महाशक्ति बन गया।

साम्यवाद के प्रसार को रोकना, लोकतंत्रीय देशों की सहायता कर उन्हें साम्यवाद के बढ़ते खतरे से सुरक्षित बनाना, अपने गठबन्धन साथियों तथा कई अन्य देशों को वित्तीय और सैनिक सहायता देना, संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् में सक्रिय और शक्तिशाली भूमिका निभा कर, अपनी परमाणु–शस्त्र क्षमता तथा मिसाइल शक्ति एवं उपग्रह टेक्नोलॉजी का विकास कर अपनी महत्त्वपूर्ण शक्तिशाली भूमिका निभाना इसकी विदेश नीति की विशेषता बन गई।

अतः दूसरे विश्व युद्ध के बाद के वर्षों में अर्थात् उत्तर–युद्ध काल में सुंयक्त राज्य अमरीका अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में एक महाशक्ति के रूप में उभर कर सामने आया। उत्तर–विश्व युग की अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था एक दृढ़ दो ध्रुवीय व्यवस्था बन गई तथा दोनों में एक शक्तिशाली गुट का नेता तथा विश्व का एक सबसे अधिक शक्तिशाली देश संयुक्त राज्य अमरीका बन गया।

ट्रूमैन सिद्धांत, मार्शल योजना, क्षेत्रीय सुरक्षा संगठनों की स्थापना, संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् में अपनी शक्तिशाली वीटो शक्ति के प्रयोग द्वारा, विदेशी सहायता को अपनी विदेश नीति का एक उपकरण बना कर तथा साम्यवाद के विरूद्ध कार्यवाही करके, विशेषकर (भू.पू.) सोवियत संघ की शक्ति पर अंकुश लगा कर संयुक्त राज्य अमरीका एक महाशक्ति के रूप में दृढ़ शक्तिशाली और प्रभावी भूमिका निभाने लगा। यह तथा ब्लॉक (नाटो ब्लॉक या फिर अमरीकी ब्लॉक या पूंजीवादी–उदारवादी ब्लॉक या पश्चिमी ब्लॉक) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में एक अत्यंत शक्तिशाली केन्द्र बन गया।

26.4 महाशक्ति के रूप में संयुक्त राज्य की विदेश नीति की प्रमुख विशेषताएं

एक महाशक्ति के रूप में संयुक्त राज्य अमरीका की विदेश नीति तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में इसकी भूमिका निम्नलिखित आधारों पर चलने लगी :

(1) विश्व राजनीति में तथा विश्व के प्रत्येक भाग में अपनी तथा अपने ब्लॉक की शक्ति एवं प्रभाव में वृद्धि ;

(2) विश्व में अपनी सैनिक शक्ति तथा उपस्थिति में वृद्धि ;

(3) साम्यवाद के फैलाव को दृढ़ता से रोकना तथा इस के विरूद्ध जबरदस्त कार्यवाही करना ;

(4) विश्व राजनीति में (भू.पू.) सोवियत संघ की शक्ति और भूमिका पर अंकुश लगाना ;

(5) सैनिक सुरक्षा संगठनों के द्वारा अपने प्रभाव क्षेत्र का विकास करना तथा इन्हें शक्तिशाली बनाना ;

(6) अधिक से अधिक देशों को अपने सुरक्षा गठबंधनों में शामिल करना ;

(7) विश्व के विभिन्न भागों में अपने सैनिक अड्डे बनाकर अपनी सैनिक उपस्थिति को बढ़ाना ;

(8) अपनी परमाणु शक्ति, मिसाइल शक्ति तथा उपग्रह तकनीकी का तीव्रता से विकास करना ;

(9) विश्व राजनीति में निर्णायक ओर निर्धारक भूमिका अदा करना ;

(10) विदेशी सहायता को अपनी विदेश नीति के उपकरण के रूप में प्रयोग करके अपना प्रभाव बढ़ाना।

इन सभी आधारों तथा उपकरणों द्वारा संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व राजनीति में एक नेतृत्वपूर्ण शक्तिशाली, अग्रणी, सक्रिय तथा प्रभावी भूमिका निभाने लगा तथा अभी तक ऐसा ही कर रहा है।

26.5 शीतयुद्ध काल में अमेरिकी शक्ति

शीतयुद्ध काल में अमेरिका और सोवियत संघ के मध्य शक्ति प्रतिस्पर्द्धा चलती रही और शीतयुद्ध की समाप्ति की निरन्तर दिशा में अनेक प्रयास किये गये।

1974 में **ब्लाडीवोस्अक** में सोवियत संघ क नेता ब्रेझनेव तथा अमरीका के राष्ट्रपति फोर्ड के बीच वार्ता हुई। इस वार्ता के अन्तर्गत दोनों देशों ने शीत–युद्ध को समाप्त करने की दिशा में प्रयास करने पर सहमति जताई। तृतीय यूरोपीय सुरक्षा सम्मेलन का आयोजन बेलग्रेड में किया गया। इस सम्मेलन में 50 यूरोपीय देशों ने भाग लिया। इन देशों ने भी पूर्वी और पश्चिमी यूरोप के बीच सुरक्षा एवं सद्भावना स्थापित करने एवं सहयोग को दृढ़ बनाने पर बल दिया। अगस्त, 1975 में अमेरिका एवं यूरोपीय राज्यों के राष्ट्राध्यक्षों के मध्य हेलसिंकी में एक समझौता सम्पन्न हुआ, जिसमें पारस्परिक संबंधों को व्यवस्थित एवं शांतिपूर्ण ढ़ंग से चलाने के लिए एक आचार संहिता बनाई गई। अमेरिका तथा सोवियत संघ ने औपचारिक रूप से हेलसिंकी समझौते को स्वीकार किया। इस प्रकार शीत–युद्ध की समाप्ति की दिशा में यह एक महत्त्वपूर्ण कदम था।

वियतनाम एक लम्बे समय से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शीत–युद्ध का केन्द्र बना हुआ था, किन्तु अप्रैल, 1975 में वियतनाम युद्ध समाप्त हो गया तथा वियतनाम का एकीकरण हो गया, जिसके परिणामस्वरूप शीत–युद्ध में कमी आई। जून, 1977 को साल्ट–II (SALT-II) पर दोनों महाशक्तियों के हस्ताक्षर हुए। अमेरिकी राष्ट्रपति जिमी कार्टर ने जनवरी, 1978 में मित्र राष्ट्रों को यह आश्वासन दिया कि सोवियत संघ के साथ सामरिक अस्त्र परिसीमन संधि तथा कोई भी नवीन संधि यूरोप के सुरक्षा हितों को ध्यान में रखकर ही की जाएगी। फिर भी सोवियत संघ और अमेरिका ने अपने सामरिक हथियारों में कमी का आश्वासन दिया।

इसी तरह सोवियत विदेश मंत्री ग्रोमिकी ने मई, 1978 में कहा कि सामरिक महत्त्व के खतरनाक हथियारों को सीमित करने के मामले पर अमेरिकी नेताओं से वार्ता में सफलता प्राप्त हुई। दोनों महाशक्तियों में शीत–युद्ध के तनाव को कम करने के लिए कई वार्ताएँ हुई। इसमें कैम्प डेविड समझौते का विशेष महत्त्व है, क्योंकि अमेरिका और सोवियत संघ के मध्य तनाव को कम करने में इसका विशेष योगदान रहा। यह समझौतर 26 मार्च, 1979 को मिस्त्र व इजराइल के मध्य सपन्न हुआ, जिससे मध्य–पूर्व में शांति स्थापित हो सके।

शीत–युद्ध समाप्ति की दिशा में वास्तविक शुरूआत अमेरिकन राष्ट्रपति जॉर्ज बुश एवं सोवियत राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाच्योव के काल में हुई। जॉर्ज बुश ने 1989 में राष्ट्रपति पद सम्भालने के बाद अमेरिका और सोवियत संघ के मध्य सामरिक शस्त्रों क संबंध में वार्ता की शुरूआत की। उधर मिखाइल गोर्बाच्योव ने 1985 में सोवियत संघ की प्रशासकीय सत्ता संभालने के बाद 'ग्लासनोस्त' एवं 'पेरेस्त्रोइका' की नीति का आश्रय लेकर सोवियत समाज एवं राज्य व्यवस्था में परिवर्तन की शुरूआत की। गोर्बाच्योव की 'पेरेस्त्रोइका' का अर्थ पुनसंरचना तथा 'गलासनोस्त' का अर्थ खुलापन था। इससे दोनों महाशक्तियों के मध्य तनाव में कमी हुई और विश्वास एवं सद्भाव का माहौल बना। सोवियत संघ ने 1988 में अफगानिस्तान से अपनी सेनाओं की वापसी की घोषणा की और यूरोप से अपने प्रक्षेपास्त्रों को हटाने एवं सेना में कमी का उद्गार व्यक्त किया, तो लगा कि शीत–युद्ध समाप्ति की ओर है। सोवियत संघ के आक्रामक रूख में बदलाव एवं अमेरिका के साथ विश्व समस्या पर बातचीत से शीत–युद्ध क दौर में काफी कमी आ गई।

फिर इस मध्य परिस्थिति इस प्रकार बदली कि सोवियत संघ अपने आपको एक संगठित एकीकृत राष्ट्र–राज्य के रूप में संगठित नहीं रख पाता। 1990–91 के काल में वह अपनी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक कमजोरी के कारण अपनी राष्ट्रीय अखण्डता को बरकरार नहीं रख सका। इस महाशक्ति के भिन्न–भिन्न खंड हो गए। रूस इसका उत्तराधिकारी बना, लेकिन अपनी आर्थिक स्थिति में विभिन्न कमजोरी की वजह से महाशक्ति का रूप नहीं धारण कर सका। फलतः 1990–91 के खाड़ी युद्ध में जब अमेरिका ने इराक, जिसने कुवैत पर अपना आधिपत्य जमा लिया था, के विरूद्ध कार्यवाही की, दोनों महाशक्तियों में सहयोग का वातावरण उपस्थित था। अतः सोवियत संघ के विघटन के बाद अमेरिका ने एकमात्र महाशक्ति का रूप धारण कर लिया। वह आज भी विश्व में एक सक्रिय महाशक्ति के रूप में अपनी शक्तिशाली एवं दृढ़ भूमिका निभा रहा है। आज अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अमेरिका की महाशक्ति की भूमिका की कोई चुनौती नहीं है। भले मध्यस्तरीय शक्ति के देश चीन, जापान, भारत, जर्मनी आदि देश विश्व व्यवस्था को बहुकेन्द्रीय बनाने का प्रयास कर रहे है।

26.6 एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था में अमरीकी वर्चस्व

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था का उदय हुआ और संयुक्त राज्य अमेरिका का वर्चस्व स्थापित हुआ। खाड़ी युद्ध में अमेरिका सफलता को इसका उदाहरण माना जा सकता है। सोवियत संघ एवं साम्यवादी गुट के विखण्डन तथा विश्व की अन्य शक्तियों के कमजोर होने के कारण विश्व शान्ति संरचना में अमेरिका का दबदबा कायम हो गया। अमेरिका ने एक महाशक्ति के रूप में विश्व राजनीति पर अपना प्रभुत्व

जमा लिया है। यह संयुक्त राष्ट्र संघ के सुरक्षा परिषद् के निर्णय–निर्माण पर नजर डालने से स्पष्ञ दिखाई पड़ता है। इसके अलावा ईराक और लीबिया के सम्बन्ध में सुरक्षा परिषद् के निर्णय में इसे देखा जा सकता है।

वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अमेरिका एकमात्र महाशक्ति का स्तर सिद्ध करने में सफल रहा है। इसने बल प्रयोग द्वारा अपनी इच्छित नीतियों को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में स्वीकार्य बनाकर अपनी सामर्थ्य को भी प्रकट किया है। कोई भी देश या अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, चाहे वह गुट–निरपेक्ष आंदोलन हो या यूरोपीय संघ या राष्ट्रमंडल, अमेरिका का विरोध करने की स्थिति में नहीं है। अमेरिका ने विश्व जनमत की परवाह न करते हुए अपनी विदेश नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया है। इसने अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था, भूमंडलीकरण, लोकतंत्र, स्वतंत्रता, निःशस्त्रीकरण, आतंकवाद एवं मानव–अधिकारों के संबंध में अपने विचारों को विश्व में स्वीकार्य बनाने की क्षमता का बोध करवा दिया है।

वस्तुतः अमेरिका की आर्थिक एवं सामरिक शक्ति आज विश्व में सर्वप्रथम स्थान रखती है। लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक स्थायित्व, घरेलू अर्थव्यवस्था और सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रमुखता ने विश्व की इस महाशक्ति को इस स्थिति में पहुँचा दिया है, जहाँ कठिनाई होने की सम्भावना दूर–दूर तक नहीं दिखाई देती है। आज विश्व में अमेरिका की सक्रिय भागीदारी के बिना किसी महत्त्वपूर्ण कार्य को सफल नहीं बनाया जा सकता, बल्कि यह कहा जाए, जो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आज विश्व में अमेरिका जो कहता है, या करता हे, वही सारा विश्व करता है। अर्थात् अमेरिका पर विश्व की नजर लगी होती है और उसका प्रभाव काफी वृहद् पैमाने पर पड़ता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में पूंजीवादी अर्थव्यवस्था है, जो कि प्रचुर मात्रा में उपस्थित प्राकृतिक संसाधनों और उच्च उत्पादकता से प्रेरित है। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के अनुसार 16.8 ट्रिलियन डॉलर की अमेरिकी जीडीपी, बाजार विनिमय दर पर सकल विश्व उत्पाद का 24 फीसदी और क्रय शक्ति समानता (पीपीपी) पर सकल विश्व उत्पाद का 19 फीसदी से अधिक का प्रतिनिधित्व करती है। यद्यपि कृषि अमेरिकी सकल घरेलू उत्पाद का 1 प्रतिशत से कम हिस्सा है, फिर भी संयुक्त राज्य मक्का और सोयाबीन का दुनिया का शीर्ष उत्पादक है। राष्ट्रीय कृषि सांख्यिकी सेवा, कृषि उत्पादकों सम्बन्धित आकड़े उपलब्ध कराती है, जिसमें मूंगफली, जई, राई, गेहूं, चावल, कपास, मकई, जौ, सूखी घास, सूरजमुखी और तिहलन आदि शामिल हैं। इसके अलावा संयुक्त राज्य अमेरिका कृषि विभाग (यूएसडीए) गोमांस, कुक्कुअ, सूअर का मांस और डेयरी उत्पादों सम्बन्धित पशुधन आंकड़े प्रदान करती है। देश आनुवांशिक संशोधित फसल का प्राथमिक विकासक और उत्पादक है, वर्तमान में दुनिया भर के बायोटेक फसलों का आधा हिस्सा इसके पास है।

अमेरिका संसार की एकमात्र महाशक्ति है, कोई भी देश इसके प्रभाव से अछूता नहीं है। यह उच्च शिक्षा, सूचना प्रौद्योगिकी, वैज्ञानिक अनुसंधान में ही नहीं बल्कि आतंकवाद विरोध, शस्त्र प्रसार के रोक एवं अन्य संघर्षों के समाधान में विश्व को नेतृत्व प्रदान करता है। वर्तमान विश्व की अर्थव्यवस्था पर अमेरिका का ही प्रभुत्व है। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाएँ–विश्व बैंक या अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि संस्थाओं पर इसका नियंत्रण एवं निर्देशन है। आज नहीं अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था NIEO की स्थापना इसलिए नहीं हो पा रही है, क्योंकि अमेरिका आर्थिक संबंधों की पुर्नसंरचना के प्रस्ताव को स्वीकार करने को तैयार नहीं है।

26.7 अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य

अमेरिका को एक महाशक्ति के रूप में प्रतिस्थापित करने में कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य इस प्रकार है –

26.7.1 विश्वव्यापी नेटवर्क–अमरीका एकमात्र देश है जिसका सबसे ज्यादा प्रभावी नेटवर्क दुनिया भर में फैला हुआ है। नेटवर्किंग की दृष्टि से अमरीका आज नंबर एक है। परमाणु बमों की तकनीक सबसे पहले हासिल कर उसने दुनिया के देशों में अपनी अलग छवि बनाई। आज भी दुनिया के सभी विवादित मुद्दों पर अमरीका हावी है और उसकी सहमति के बिना किसी भी समस्या का समाधान संभव नहीं है। चाहे अफगानिस्तान, उत्तर कोरिया, ईरान, पाकिस्तानी आतंकवाद, सीरिया, दक्षिण चीन सागर आदि में से कोई भी क्यों न हो अमरीका हर जगह हावी दिखाई देता है। हालांकि पिछले कुछ वर्षों में चीन और रूस ने उसे नए सिरे से चुनौति देने की कोशिश की है।

26.7.2 वैश्विक सोच–कहा जाता है कि अमरीका हर राष्ट्रपति अपने देश के बारे में 50 साल आगे की सोचता है। ताकि उसकी संतति सुरक्षित रह सके। इसका उल्लेख **फारेड जकरिया** की पुस्तक **"फ्रॉम वेल्थ टू पावर"** में भी मिलता है। जकारिया अपनी पुस्तक में लिखते है कि अमरीकी नेतृत्व दूरदर्शी सोच रखता है। वह वैश्विक व्यवस्था को लीड करने की सोच पर आधारित है। 1776 में आजादी के बाद उसने अपनी अर्थव्यवस्था का तेजी से विस्तार किया है। दुनिया को बेहतर नेतृत्व देने के लिए उसने प्रेशिडेंशियल सिस्टम को अपनाया। यह अमेरिकी विस्तारवादी सोच के सबसे ज्यादा अनुकूल है। वहां की अध्यक्षीय शासन व्यवस्था अमरीकी राष्ट्रपति को अंतराष्ट्रीय मसलों पर अहम निर्णय लेने के लिए सक्षम बनाता है।

26.7.3 वैश्विक मसलों पर अहम भूमिका–1898 में स्पेनिश–अमेरिकी युद्ध से लेकर अभी तक अमरीका ने हर अतंराष्ट्रीय मसलों पर अहम भूमिका निभाने का काम किया है। प्रथम विश्व युद्ध, पूर्वी एशिया में अस्थिरता के दौर को समाप्त कराने और द्वितीय विश्व युद्ध में निर्णायक भूमिका निभाई। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमरीका का दुनिया भर में हर मामले में

विस्तार तेजी से हुआ। उसने ब्रेटन वुड्स सिस्टम के तहत दुनिया की अर्थव्यवस्था को एक–दूसरे से जोड़ेने का काम किया। शीत युद्ध के काल में उसने रूस के खिलाफ गैर युद्ध गठबंधन नाटो को स्थापित किया। उसने साम्यवादी शासन को रोकने के क्रम में दुनिया भर में सैन्य ताकत का विस्तार किया। उसी का नतीजा है कि वियतनाम, इराक, अफगानिस्तान, सऊदी अरब और दक्षिण कोरिया जैसे देशों के साथ गठजोड़ किया और अमरीकी हितों की रक्षा की।

26.7.4 चीन के साथ ट्रेड वार–अमरीकी राष्ट्रपति चीन के बढ़ते प्रभाव को कम करने के लिए चौतरफा घेरने में जुटा है। ताकि अमरीकी बादशाहत को आगे भी बरकरार रखा जा सके। इसके लिए अमरीका में दक्षिण सागर में चीन को घेरने की कोशिश की है। उत्तर कोरिया को अपने वश में करने के लिए युद्ध को भी न्योता देने से पीछे नही रहा। हालांकि युद्ध नही हुआ, पर अमरिका ने इसकी रूपरेखा तैयार कर ली थी। इतना ही नही उसने चीन को घेरने के लिए भारत के साथ रणनीतिक समझौता भी किया है। चीन उत्पादों पर अतिरिक्त शुल्क लगा दिया है। ट्रेड वार में भी अमरीका की जीत की उम्मीद ज्यादा है। अर्थशास्त्रियों का कहना है कि ट्रेड वार में हमेशा उस देश को ज्यादा नुकसान होता है। जिसके पक्ष में ट्रेड हो। अमरीका और चीन के बीच ट्रेड का संतुलन चीन के पक्ष में है।

26.8 शीत युद्ध के बाद चुनौतियाँ

अमेरिका के अधीन विकसित हो रही एकल ध्रुवीय व्यवस्था पर अकुंश लगाने के लिए यूरोपीय संघ, जापान, रूस तथा भारत आदि देश अधिक सक्रिय भूमिका निभाने का प्रयास कर रहे हैं। रूस और चीन के सामरिक महत्त्व का समझौता किया हैं। वे मित्रता एंव सहयोग का वातावतण बना रहे हैं। रूस और भारत ने भी 21वीं सदी में एक ध्रुवीय व्यवस्था के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को बहुकेन्द्रीय बनाने का प्रस्ताव रखा है। इससे लगता है कि युरोपीय संघ के देश, जापान, रूस, भारत, चीन, दक्षिण अफ्रीका और G–15 के देश विश्व को बहुकेन्द्रीय स्वरूप देने की दिशा में कार्य कर रहे हैं। फिर भी अमेरिका विश्व की एकमात्र महाशक्ति है तथा रूस, अमेरिका एवं रूस चीन में मित्रता व सहयोग के नए युग की शुरूआत हुई है।

इक्कीसवीं सदी की इस निरंकुश महाशक्ति को राष्ट्र–राज्यों की राष्ट्रीय सम्प्रभुत्ता और भौगोलिक अखंडता का ख्याल नहीं है और उसका दावा है कि आतंकवाद के विरोध के नाम पर या लोकतंत्र की बहाली के लिए दुनिया के किसी भी या सभी राष्ट्रों के अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में दखल करने का उसे विशेषाधिकार है। अमेरिका की आक्रमणकारी सेना अफगानिस्तान और इराक में लोकतंत्र की स्थापना कर रही है, क्योंकि अमेरिका दुनिया में लोकतांत्रिक विश्व–व्यवस्था कायम कारना चाहता है। मध्य एशिया में पूर्व सोवियत संघ से अलग हुए प्रत्येक राष्ट्र को अपने देश में चुनावों के लोकतांत्रिक हाने का प्रमाणपत्र अमेरिका से हीं लेना पड़ता है।

अनेक राजनीतिक विश्लेषकों का मत है कि निकट भविष्य में कोई भी राष्ट्र अमेरिका से मुकाबला करने की स्थिति में नहीं है। यूरोपीय संघ विश्व रानीतिक में महत्त्वपूर्ण भुमिका निभा सका है, सैन्य शक्ति के मामलें में अमेरका से उसकी स्थिति निम्न–स्तर की है। रूस की सैन्य क्षमता तुलनात्मक रूप से विश्व के अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा बेहतर है, लेकिन उसकी अर्थव्यवस्था उस सीमा तक अमेरिका से मुकाबले की स्थिति उत्पन्न करने में अवरोधक शक्ति के रूप में खड़ी है। दोनों में सहयोगात्मक संबंध विकसित हो रहे हैं। कुछ लोग चीन की शक्तिशाली स्थिति देखकर यह कहते हैं कि निकट भविष्य में चीन अमेरिका से मुकाबला कर सका है। तिब्बत, मानव अधिकार, व्यापार तथा ताइवान आदि मसले पर मतभेद उत्पन्न होने से विवाद बढ़ सकता है, जबकि कुछ अन्य लोग अमेरिका–चीन के मध्य बढ़ते हुए व्यापार, निवेश के कारण संबंधों को प्रगाढ़ मानते हैं, जिसने राजनीतिक मतभेद के बावजूद भी प्रगति की है। इसलिए चीन अमेरिका से मुकाबला करने की स्थिति मे नहीं है। वह अपनी जनसंख्या एवं अन्य कुछ मामलों को लेकर अमेरिका से संबंध बढ़ाने पर ही बल देगा। क्योंकि सैन्य मामले मे उसकी तुलना ही नहीं हो सकती, जबकि उन्नत प्रौद्योगिकी के मामले में वह अमेरिकी नीति पर आधारित व्यवस्था को प्रश्रय देगा। अतः अमेरिका को महाशक्ति के रूप मे 21वीं सदी मे आगे बढ़े रहने की संभावना है।

26.9 सारांश

इस प्रकार वर्तमान समय में निःसन्देह अमेरिका एकमात्र महाशक्ति के रूप में कार्यरत होकर विश्व व्यवस्था मे अपना प्रभुत्व जमाए हुए है। सोवियत संघ के विघटन के बाद रूस अमेरिकी प्रभुत्व को नियंत्रित रखने में असमर्थ है। महाशक्ति के रूप में अमेरिका का अस्तित्व अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में बढ़ रहे अमेरिकी प्रभुत्व संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में बढ़ रहे अमेरिकी नियंत्रण में भी देखा जा सकता है। नाटो का अस्तित्व तथा रूस–चीन एवं अन्य पश्चिमी देशों का अमेरिकी शक्ति पर अंकुश लगाने को अरूचि आदि तत्वों से यह प्रकट होता है। अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरूद्ध कार्यवाही अमेरिका अपने राष्ट्रीय हितों को सम्मुख रखकर ही कर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के एक प्रमख केन्द्र अफगानिस्तान मे विद्यमान तालिबान शासन को उसने समाप्त कर दिया है। इराक में सद्दाम हुसैन का शासन खत्म कर दिया तथा उदारवाद एवं लोकतंत्रीकरण के आदर्श पर अफगानिस्तान और इराक का पुनर्निर्माण कर रहा है। इस प्रकार अमेरिका एकल ध्रुवीय व्यवस्था से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को संचालित कर रहा है।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था में अमेरिकी वर्चस्व का विवेचन कीजिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अमरीकी शक्ति के परिवर्तित स्वरूप पर एक निबन्ध लिखिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. महाशक्ति के रूप में संयुक्त राज्य अमेरिका की विदेश नीति की विशेषताएँ बताईए।
2. शीतयुद्धोत्तर काल में अमरीकी शक्ति में आये परिवर्तन को समझाईए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था का अर्थ बताईए।
2. मुनरो सिद्धान्त क्या हैं ?

इकाई–27

चीन एक उभरती हुई शक्ति

(China as an Emerging Power)

27.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में चीन के अभ्युदय एवं विश्व राजनीति में इसके बढ़ते प्रभाव का वर्णन किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप :–

- अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में चीन के अभ्युदय के बारे में जान सकेंगे।
- अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में चीन की बढ़ती आर्थिक एवं सैनिक शक्ति के बारे में जान सकेंगे।

27.1 प्रस्तावना

चीन विश्व की सबसे बड़ी आबादी वाला देश है। चीनी सभ्यता और संस्कृति विश्व में सबसे प्राचीन मानी जाती है। सदियों तक एक बड़ी शक्ति के रूप में चीनी साम्राज्य का प्रभाव क्षेत्र रहा है। सुदूर पूर्व में कोरिया व जापान से लेकर पश्चिम में मध्य एशिया की आधुनिक संघ की सीमा तक उत्तर में मंगोलिया से लेकर दक्षिण में दक्षिण–पूर्वी एशिया के द्वीप समूहों तक चीनी प्रभुत्व घटता–बढ़ता रहा है।

19 वीं शताब्दी तक यूरोपीय औपनिवेशिक विस्तार के दौर मे चीनी शक्ति का ह्रास हो चुका था और चीन सामाजिक कुरीतियो–कुप्रथाओं से ग्रसित था। तब भी अन्य एशियाई देशों की तरह विराट भौगोलिक विस्तार के कारण उसे पूरी तरह कभी गुलाम नहीं बनाया जा सका। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में मानहानि और तिरस्कार के बावजूद उसकी एक हस्ती बची रही।

27.2 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में चीन का अभ्युदय :

1949 में श्री माओत्से–तुंग के नेतृत्व में चीन में साम्यवादी सरकार की स्थापना के बाद चीन ने अल्पकाल में ही विभिन्न क्षेत्रों में आश्चर्यजनक प्रगति की और शीघ्र ही अणुशक्ति संपन्न देश बन बैठा। माओत्से–तुंग के नृतत्व में चीन ने साम्यवादी क्रांति के पश्चात् एक ओर अपने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजनाओं पर द्रुतगति से कार्य करना प्रारंभ कर दिया, वहीं दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपनी पहचान बनाने के लिए साम्राज्यवादियों के विरूद्ध आक्रामक रूख अपनाया।

1953 तक चीन ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कठोर नीति का अवलम्बन किया। इस काल में साम्यवादी चीन का उद्देश्य आन्तरिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने व साम्यवाद को पूर्ण रूप से चीन में स्थापित करने का रहा। मार्क्स तथा लेनिन के सिद्धांत को आधार मानकर साम्यवादी दल के गठन पर विशेष बल दिया गया। इसके बाद साम्यवाद के प्रसार हेतु कोरिया युद्ध में भाग लिया। फिर बर्मा, इंडोनेशिया एवं भारत इत्यादि देशों पर अपना दबाव बनाने तथा एशिया में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के ध्येय से चीन ने एशिया में साम्यवाद के प्रसार की नीति अपनाई।

माओत्से–तुंग की मृत्यु के पश्चात् 1978 में देंग जियाओ पेंग के नेतृत्व में चीन ने आर्थिक उदारीकरण और बाजार अर्थव्यवस्था का रास्ता अपनाया। मार्क्सवाद को तिलांजलि देकर देश ने चीन की व्यवहारिक परम्परा का पालन करते हुए नारे दिये–"धनी होना पाप नहीं हैं" और बिल्ली सफेद हो या काली जब तक चूहे मारती है ठीक हैं।" चीन के लम्बे इतिहास के अनेक विरोधाभासों की तरह एक यह भी है कि साम्यवादी देश पूँजीवादी रास्ते पर चलें। इस कदम को सैद्धान्तिक जामा पहनाने के लिए चीन की साम्यवादी पार्टी ने इसे "बाजारी समाजवाद" की संज्ञा दी।

1978 के बाद चीन ने एक स्थिर संस्थागत ढ़ाँचा और सत्ता हस्तान्तरण की पद्धति विकसित की और उदारीकरण का कार्य प्रारम्भ किया। जिससे पिछले 20–22 सालों में चीन दुनिया का सबसे तेज प्रगति करने वाला देश बन गया।

27.3 शीतयुद्धोत्तर काल में चीन की वैश्विक स्थिति :

शीतयुद्धोत्तर काल में विश्व में द्विध्रुवीय विश्व व्यवस्था की स्थापना हुई। जिसके नेता थे–अमेरिका और सोवियत संघ, इसी काल में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन विश्व की तीसरी शक्ति के रूप उभरकर सामने आया। इस समय चीन समाजवादी सिद्धान्तों से प्रेरित होकर सोवियत संघ के सानिध्य में रहा, लेकिन बाद में सोवियत संघ से सीमा–विवाद के फलस्वरूप वह पृथकतावाद की नीति के अनुरूप नीति अपनाकर तृतीय विश्व (एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका) का एक अंग बन गया।

सन् 1991 में सोवियत संघ के विघटन के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे लम्बे समय से चला आ रहा शीतयुद्ध समाप्त हो गया। सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् अमेरिका ने विश्व राजनीति मे एक महाशक्ति के रूप में प्रभुत्व स्थापित करने की नीति का पालन करना शुरू किया, जिसके परिणामस्वरूप विश्व की संरचना एकल–ध्रुवीय हो गई। अमेरिका के द्वारा विकसित हो रहे इस एकल–ध्रुवीय पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए जापान, रूस, चीन, यूरोपीय संघ

एवं भारत आदि देश प्रयास करने लगे। इसमें रूस और चीन एकध्रुवीय व्यवस्था के स्थान पर बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था करने का समर्थक है। वर्तमान मे अन्य देश भी बहुकेन्द्रीय विश्व–व्यवस्था के समर्थक हैं।

27.4 विश्व अर्थव्यवस्था में चीन की वर्तमान स्थिति :

चीन की अर्थव्यवस्था का निरन्तर विकास हो रहा है। चीन की अर्थव्यवस्था इस समय नॉमिनल जीडिपी के अनुसार अमेरिका के बाद दुनिया में दूसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है जिसका नॉमिनल जीडीपी 10 ट्रिलिलन डॉलर से भी अधिक है जोकि विश्व की तीसरी व चौथी अर्थव्यवस्थाओं – जापान व जर्मनी – के जीडीपी के योग से भी अधिक है।

चूँकि दुनिया के तमाम देशों मे जीवन स्तर और मुद्राओं का मूल्य अलग होता है, इसलिए विश्व अर्थव्यवस्था में किसी देश की वास्तविक स्थिति जानने के लिए उस देश के जीडीपी के अतिरिक्त उसकी मुद्रा के मूल्य को भी ध्यान में रखना चाहिए। परचेजिंग पॉवर पैरिटी (पीपीपी) ऐसा ही एक मापदण्ड है जिसके अनुससार चीन की अर्थव्यवस्था पहले ही दुनिया की सबसे बड़ा अर्थव्यवस्था बन चुकी है। 1990 में विश्व अर्थव्यवस्था में चीन की अर्थव्यवस्था की हिस्सेदारी 2 प्रतिशत से भी कम थी जोकि 2014 में बढ़कर 13 प्रतिशत हो गयी। इस समय दुनिया के 80 प्रतिशत एयरकंडीशनर, 70 प्रतिशत मोबाइल फोन और 60 प्रतिशत जूते चीन में बनते है। विश्व बैंक के डेटा के अनुसार वैश्विक कपड़ा निर्यात में चीन की हिस्सेदारी 40 प्रतिशत से भी ऊपर है। मैन्यूफैक्चरिंग सेक्टर, जिसे पूँजीवादी मूल्य उत्पादन का सबसे प्रमुख क्षेत्र माना जाता हैं में चीन दुनिया का अग्रणी देश बन चुका है। इस प्रकार चीन ने मैन्युफैक्चरिंग में 110 वर्षों से चले आ रहे अमेरिका के नेतृत्व को पछाड़ दिया है। दुनिया के कुल कच्चे स्टील के उत्पादन का लगभग आधा हिस्सा चीन का है। मार्क्सवादी भूगोलशास्त्री डेविड हार्वी ने यह दिखाया है कि वर्ष 2011 और 2013 के बीच चीन में सीमेण्ट की जितनी खपत हुई वह अमेरिका द्वारा समूची बीसवीं सदी में सीमेण्ट की कुल खपत का डेढ़ गुना है। इसके अतिरिक्त खदान व सेवा क्षेत्रों में भी चीन ने हाल के दशकों में तेजी से विकास किया है। आज दुनिया की कुल आर्थिक वृद्धि का 30 प्रतिशत चीन की बदौलत है।

27.5 चीन की अर्थव्यवस्था विस्तार एवं बढ़ता वित्तीयकरण :

समाजवादी अतीत की वजह से 1970 के दशक के अन्त में चीन में पूँजीवाद की पुनर्स्थापना होने के बावजूद 1990 तक चीन की अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक उपक्रमों का ही दबदबा था। लेकिन 1990 के दशक के निजीकरण की प्रक्रिया के जोर पकड़ने की वजह से चीन की अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र की भूमिका क्रमशः कम से कम होती गयी है। सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों में भी निजी कम्पनियों जैसा ही तानाशाहना प्रबन्धन काम करता है। आज हालात ये हैं कि चीन का अधिकांश उत्पादन निजी क्षेत्र में होता है, हालांकि अभी भी सार्वजनिक उपक्रम चीन की अर्थव्यवस्था में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सार्वजनिक कंपनियाँ भी निजी कम्पनियों की ही तरह मुनाफे के आधार पर काम करती हैं और उनको होने वाना मुनाफा सरकार को न जाकर सार्वजनिक कम्पनियों के लिए विशेष रूप से निर्मित फण्ड में जाता है। इस प्रकार चीन की अर्थव्यवस्था में पूँजीवादी विकास के साथ ही साथ सार्वजनिक और निजी दोनों ही क्षेत्रों में इजारेदारी का विकास हुआ है।

चीन की अर्थव्यवस्था मे इजारेदारी का आलम यह है कि दुनिया की 2000 सबसे बड़ी और सबसे ताकतवर कम्पनियों की सूची फोर्ब्स ग्लोबल 2000 में चीन अमेरिका के बाद दूसरे स्थान पर है। इस सूची में 565 कम्पनियाँ अमेरिका की हैं, जबकि 263 कम्पनियाँ चीन की हैं। फॉर्च्यून ग्लोबल 500 सूची में 100 से भी अधिक कम्पनियाँ चीन की हैं, जबकि 2001 में इस सूची में केवल 12 चीनी कम्पनियाँ थीं। इनमें से दो–तिहाई से भी अधिक कम्पनियाँ सार्वजनिक क्षेत्र की हैं। दुनिया के दस सबसे बड़े बैंकों में चार बैंक चीन के हैं। यह तथ्य विश्व वित्तीय बाजार में चीन के बढ़ते दबदबे की ओर इशारा करता हैं। औद्योगिक पूँजी और बैंकिंग पूँजी के विलय से चीन में भी वित्तीय पूँजी का एक विराट साम्राज्य खड़ा हुआ है जिसकी अहमियत चीन की अर्थव्यवस्था में समय बीतने के साथ बढ़ती ही जा रही है। अधिकांश बैंक और बीमा कम्पनियाँ अभी भी राज्य के स्वामित्व में हैं। इस प्रकार चीन में एक विशिष्ट किस्म का राज्य एकाधिकार पूँजीवाद का निर्माण हुआ है।

27.6 पूँजी का निर्यात :

पूँजी के निर्यात के मामले में भी चीन की अर्थव्यवस्था ने पिछले कुछ वर्षों में जबरदस्त विकास किया है जो उसके उभरते हुए साम्राज्यवादी शक्ति का संकेत हैं। चीन का पूँजी निर्यात उत्पादक निवेश (कारखानों, सड़कों, बन्दरगाहों आदि के निर्माण के लिए) और वित्तीय पूँजी (बॉण्ड, कर्ज आदि) दोनों ही रूपों में हो रहा है। पिछले तीन दशकों में उत्पादन के क्षेत्र में तेजी से बढ़ते पूँजी संचय के फलस्वरूप चीन में वित्तीय पूँजी का एक विशाल भण्डार एकत्र हुआ है जिसका एक सूचक वहाँ का विपुल विदेश मुद्रा भण्डार है। जहाँ वर्ष 2000 में यह भण्डार 1.65 बिलियन डॉलर के आस–पास जा पहुँचा है। इस विदेशी मुद्रा भण्डार का बड़ा हिस्सा अमेरिका और यूरोप के तमाम देशों में ट्रेजरी बॉण्ड की खरीददारी में लगा है। इन ट्रेजरी बॉण्डों में निवेश की वजह से चीन अमेरिकी सरकार का सबसे बड़ा विदेशी ऋणदाता बन चुका है।

साम्राज्यवादी मुल्कों में वित्तीय पूँजी लगाने के अतिरिक्त चीन अपने देश में मेहनतकशों के शोषण से संचित अपार पूँजी का लाभ उठाते हुए विकासशील या अल्पविकसित देशों में भी विकास कर्ज के रूप में वित्तीय पूँजी का निर्यात कर रहा है। तीसरी दुनिया के देशों को कर्ज देने के मामले में चीन विश्व बैंक को भी पीछे छोड़ चुका है। 16 जनवरी 2016 को चीन के नेतृत्व में **एशियन इंफ्रास्ट्रक्चर इन्वेस्टमेण्ट बैंक (एआईआईबी)** की शुरूआत हुई जिसका मुख्यालय बीजिंग में है। यह एक बहुपक्षीय विकास बैंक है जिसका विशेष मैंडेट एशिया में इंफ्रास्ट्रक्चर का विकास करना है। 100 बिलियन डॉलर के पेडअप कैपिटल वाले इस बैंक में 50 बिलियन डॉलर का योगदान अकेले चीन ने किया है। यह बैंक शुरूआती पाँच से छह वर्षों में प्रतिवर्ष 10–15 बिलियन डॉलर का कर्ज देगा। एआईआईबी की शुरूआत के अतिरिक्त चीन पिछले वर्ष **यूरोपियन बैंक फॉर रीकंस्ट्रक्शन एंड डेवलपमेण्ट (ईबीआरडी)** के 67वें सदस्य के रूप में शामिल हुआ। जहाँ एआईआईबी एशिया में इंफ्रास्ट्रक्चर के लिए फण्डिंग पर ध्यान केन्द्रित करेगा वही ईआरबीडी मुख्य तौर पर पूर्वी यूरोप और मध्य एशिया के कुछ क्षेत्रों में इंफ्रास्ट्रक्चर विकास पर जोर देगा। इसके अतिरिक्त ब्रिक्स देशों द्वारा निर्मित ब्रिक्स बैंक या न्यू डेवलपमेण्ट बैंक (एनडीबी) की स्थापना में भी चीन की अग्रणी भूमिका रही है। एआईआईबी, ईबीआरडी और एनडीबी में चीन की अग्रणी भूमिका तथाकथित 'ब्रेटनवुड बहनों' वर्ल्ड बैंक और आईएमएफ के वर्चस्व में कमी ओर विश्व वित्तीय तन्त्र में बुनियादी बदलावों की ओर इंगित करती है। चीन पहले से ही तीसरी दुनिया के देशों को ऋण देने के मामले में पश्चिमी साम्राज्यवादियों को पीछे छोड़ चुका है। गौरतलब है कि चीनी बैंकों द्वारा दिये गये ऋण पर ब्याज की दर अन्य अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं द्वारा दिये जाने वाले ऋण पर ब्याज की दर से अमूमन अधिक होती है। उदाहरण के लिए श्रीलंका ने चीन से अरबों डॉलर का ऋण लिया है। श्रीलंका का कुल राष्ट्रीय ऋण 64.9 बिलियन डॉलर है जिसमें से चीन से लिये गये ऋण का हिस्सा 8 बिलियन डॉलर है जो बेहद उच्च ब्याज दर से लिया गया ऋण है। उदाहरण के लिए श्रीलंका के हम्बनटोटा बन्दरगाह के निर्माण के लिए वहाँ की सरकार ने चीन से 6.3 प्रतिशत की ब्याज दर पर 301 मिलियन डॉलर का ऋण लिया है जबकि विश्व बैंक और एशियाई विकास बैंक द्वारा 0.25 से 3 प्रतिशत की ब्याज दर पर ऋण दिये जाते हैं। श्रीलंका की अर्थव्यवस्था में मन्दी की वजह से श्रीलंका की सरकार चीन से लिये गये ऋण का भुगतान नहीं कर पा रहे है जिसकी वजह से श्रीलंका की सरकार ने इस ऋण को ईक्विटी में बदलने को फैसला किया है। इसकी परिणिति उस परियोजना में चीन के मालिकाने के रूप में भी हो सकती है। यही नहीं श्रीलंका की सरकार ने चीन की कम्पनियों को हम्बनटोटा बन्दरगाह के कुल शेयर का 80 प्रतिशत और समूचे बन्दरगाह को 99 साल के पट्टे पर भी देने का फैसला किया है। गौरतलब है कि मट्टला हवाई अड्डे का निर्माण श्रीलंका सरकार ने चीन से 300–400 मिलियन डॉलर ऋण लेकर किया था। चूँकि अब श्रीलंका की सरकार इस हवाई अड्डे के परिचालन व परिवहन में लगने वाला खर्च वहन नहीं कर पा रही है इसलिए उसने चीन की कम्पनियों को नियन्त्रण सौंप दिया है।

2007 में शुरू हुई मौजूदा विश्वव्यापी महामन्दी के पहले से ही चीन ने 'गो ग्लोबल' ('दुनिया की ओर जाओ') नीति के तहत अपनी अर्थव्यवस्था को सस्ते मालों के निर्यात वाली अर्थव्यवस्था से पूँजी निर्यात वाली अर्थव्यवस्था की ओर मोड़ना शुरू की दिया था। महामन्दी के बाद से तो इस दिशा में वह अभूतपूर्व तेजी के साथ आगे बढ़ा है। वर्ष 2011 में चीन ने कुल 4–6 खरब डॉलर की पूँजी निर्यात की थी। यह बात भी सच है कि चीन की अर्थव्यवस्था में विदेशी पूँजी का आयात भी बड़े पैमाने पर होता है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों से चीन का पूँजी निर्यात पूँजी आयात के मुकाबले कहीं तेजी से बढ़ा है और आज चीन नेट पूँजी निर्यातक देश बन चुका है।

आज चीन पश्चिमी विकसित मुल्कों से लेकर एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका के देशों सहित दुनिया के कोने–कोने में अपनी पूँजी लगा रहा है। चीन की कम्पनियाँ बड़े पैमाने पर अमेरिका की कई कम्पनियों में निवेश कर रही हैं और तमाम कम्पनियों को खरीद भी रही हैं जिससे अमेरिकी पूँजीपति सकते में आ गये हैं। ऑस्ट्रेलिया में चीन ने खनन, तेल, गैस व अन्य प्राकृतिक संसाधनों के दोहन में बड़े पैमाने पर निवेश किया है और हाल के वर्षों में उसने खाद्य, एग्रीबिजनेस, रियल स्टेट, नवीकरणीय ऊर्जा, हाई टेक एवं वित्तीय सेवाओं में भी निवेश करना शुरू किया है। इसी तरह से कनाडा में भी चीन तेल, गैस व खनन में बड़े पैमाने पर निवेश कर रहा है। ब्राजील में चीन का निवेश मुख्य रूप से ऊर्जा एवं धातु उद्योग में हो रहा है। इसी तरह लैटिन अमेरिका के अन्य मुल्कों जैसे पेरू, अर्जेण्टीना, इक्वाडोर आदि में चीन ऊर्जा एवं अवरचनागत क्षेत्र में पूँजी लगा रहा है। अपने पड़ोसी मुल्क वियतनाम में चीन लकड़ी, रबर, खाद्य फसलों एवं खनिज सम्पदा के दोहन में बेतहाशा निवेश कर रहा है और वहाँ से मालों को ढोकर चीन लाने के लिए बड़े पैमाने पर सड़कों एवं रेलमार्ग के विकास में निवेश कर रहा हैं। इसी तरह चीन हिन्दचीन एवं दक्षिण–पूर्वी एशिया के मुल्कों में भी बड़े पैमाने पर निवेश कर रहा है। दक्षिण एशिया में नेपाल, पाकिस्तान, बांग्लादेश और श्रीलंका में भी चीन पूँजी निवेश कर रहा है। नेपाल में चीन पूँजी निवेश के मामले में भारत को भी पीछे छोड़ चुका है। यही नहीं चीन ने भारत की 'मेक–इन–इण्डिया– स्कीम का लाभ उठाते हुए इसे भारत में पूँजी निर्यात के अवसर के रूप में हाथोहाथ लिया है।

अफ्रीका में चीन पूँजी निवेश करने पर विशेष जोर दे रहा है। गौरतलब है कि माओकालीन चीन अफ्रीकी मुल्कों में बुनियादी ढ़ाँचें के निर्माण से लेकर खनन आदि में निवेश करके मित्रतापूर्ण मदद करता था। लेकिन आज का चीन इस पुरानी दोस्ती का इस्तेमाल अपनी साम्राज्यवादी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए बड़ें पैमाने पर पूँजी निवेश करके अपनी

अर्थव्यवस्था को सरपट रफ्तार से दौड़ाने के लिए जरूरी तेल और खनिज सम्पदा की लूट के लिए कर रहा है। अंगोला चीन के सबसे बड़े तेल आपूर्तिकर्ताओं में से एक बन गया है। चीन का पूँजी निवेश नाइजीरिया, जाम्बिया, घाना, लाइबेरिया, रवाण्डा, सूडान जैसे अफ्रीकी मुल्कों में सबसे ज्यादा है। इस वक्त समूचे अफ्रीका में चीन की 800 से भी अधिक कम्पनियाँ काम कर रही हैं और वहाँ रहने वाले चीनी नागरिकों की संख्या 10 लाख से भी अधिक है। ये तथ्य अपने आप में अफ्रीका में चीन की साम्राज्यवादी दखल को दिखा रहे हैं।

27.7 वन बेल्ट, वन रोड़ परियोजना :

चीन की बहुचर्चित 'वन बेल्ट, वन रोड़' (ओबीआर) परियोजना अपने आप में चीन की साम्राज्यवादी महत्त्वकांक्षा का सूचक है। इस परियोजना में 4 अरब से अधिक जनसंख्या वाले 68 देशों के शामिल होने की सम्भावना है जिनका वैश्विक जीडीपी में 40 प्रतिशत का योगदान है। इसके दो हिस्से हैं–सिल्क रोड इकोनॉमिक बेल्ट और ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी मैरिटाइम सिल्क रोड़। सिल्क रोड इकोनॉमिक बेल्ट के तहत चीन से यूरोप के बीच सड़क, रेलमार्ग, तेल और प्राकृतिक गैस पाइपलाइन समेत कई इंफ्रास्ट्रक्चर और व्यापारिक परियोजनाएँ शामिल हैं जिसका विस्तार चीन के मध्य में स्थित जियान प्रान्त से शुरू होकर मध्य एशिया से होते हुए मॉस्को, रॉटरडम और वेनिस तक होगा। इस बेल्ट में कई मार्ग होंगे जो चीन–मंगोलिया–रूस, चीन–मध्य और पश्चिम एशिया, चीन–इण्डोचीन प्रायद्वीप, चीन–पाकिस्तान, चीन–बांग्लादेश–म्यांमार से होते हुए गुजरेंगे। जबकि ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी मैरिटाइम सिल्क रोड के तहत समूचे एशिया व प्रशान्त में शिपिंग लेन का समुद्र आधारित नेटवर्क और बन्दरगाह विकास की योजना है जिसका विस्तार दक्षिण व दक्षिण–पूर्व एशिया से होते हुए पूर्वी अफ्रीका और उत्तरी भूमध्यसागर तक होगा। चीन की राज्य मीडिया के अनुसार इस परियोजना में 1 ट्रिलियन डॉलर का निवेश पहले ही हो चुका है और अगले दशक तक कई ट्रिलियन डॉलर के निवेश की योजना है। गौरतलब है कि यह परियोजना केवल इंफ्रास्ट्रक्चर के विकास के अतिरिक्त आर्थिक विकास की नीतियों में तालमेल, इंफ्रास्ट्रक्चर के लिए तकनीकी मानकों में समरूपता, निवेश और व्यापार की बाधाओं को दूर करना, मुक्त व्यापार क्षेत्रों की स्थापना, वित्तीय तालमेल और सांस्कृतिक व अकदामिक लेन–देन के माध्यम से लोगों का लोगों से सम्पर्क स्थापित करना भी शामिल है। इस परियोजना के माध्यम से पूँजी निर्यात करके चीन अपने देश में स्टील, एलुमिनियम और सीमेण्ट जैसे भारी उद्योगों में जारी अति–उत्पादन के संकट से उबरने और साथ ही साथ चीन के मालों में नये बाजार तैयार करने की फिराक में है। आर्थिक प्रभुत्व के साथ ही साथ चीन इस महत्त्वाकांक्षी परियोजना के जरिये अपनी सामरिक शक्ति में भी इजाफा करना चाह रहा है। उदाहरण के लिए इस परियोजना के तहत की चीनी सरकारी कम्पनी कॉस्को ने यूनान के पिरौस बन्दरगाह के 67 प्रतिशत शेयर खरीदकर उस पर अपना नियन्त्रण स्थानित कर लिया जिससे उसे यूरोप में अपना पैर जमाने में मदद मिलेगी। इसी प्रकार इस परियोजना के जरिये हिन्द महासागर तक अपनी पहुँच बनाने के लिए चीन मलक्का जलडमरूमध्य और सिंगापुर पर अपनी निर्भरता कम करने के लिए दक्षिण–पश्चिमी चीन से हिन्द महासागर की ओर एक नये समुद्री मार्ग का निर्माण करना चाहता है। पाकिस्तान के ग्वादार बन्दरगाह का निर्माण भी चीन हिन्द महासागर तक अपनी पहुँच के विकल्पों को बढ़ाने के मकसद से करवा रहा है।

जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया था, श्रीलंका का हम्बनटोटा और मट्टला हवाई अड्डे में काफी हद तक चीन की कम्पनियों का नियन्त्रण्रा स्थापित हो गया है। इससे हिन्द महासागर के समूचे क्षेत्र में चीन का रणनीतिक व सैन्य प्रभुत्व बढ़ेगा। इसी प्रकार चीन–पाकिस्तान–आर्थिक–कोरिडोर के लिए चीन अब तक पाकिस्तान को ऊँची ब्याज दर पर 50 बिलियत डॉलर से भी अधिक ऋण दे चुका है। विशेषज्ञों का मानना है कि पाकिस्ताान इस ऋण को 40 साल से पहले भुगतान नहीं कर पायेगा। पाकिस्तान के ग्वादार बन्दरगाह के निर्माण में भी चीन की बड़ी भूमिका रही है। इसी प्रकार चीन म्यांमार और बांग्लादेश में भी अवरचनागत क्षेत्र में बड़े पैमाने पर निवेश कर रहा है।

27.8 चीन की सैन्य शक्ति :

अपनी आर्थिक शक्तिमत्ता के विस्तार के अनुरूप चीन अपनी सैन्य शक्ति का जबरदस्त विकास कर रहा है। सैन्य सम्बन्धी खर्च की दृष्टि से चीन दुनिया में अमेरिका के बाद दूसरे स्थान पर आता है। पिछले दशक के दौरान चीन ने अपनी सैन्य शक्ति का आधुनिकीकीरण करने पर विशेष जोर दिया है। एक वैश्विक सैन्य शक्ति बनने के मकसद से चीन जहाज, पनडुब्बी, हवाई जहाज, इलेक्ट्रॉनिक खुफिया तन्त्र और विदेशी चौकियों का निर्माण कर रहा है। वह सुदूर सागर में वायु, धरातल और अधस्तल हर परिवेश के अनुसार अपनी सैन्य क्षमताओं को विकसित कर रहा है। चीन अपनी नाभिकीय शक्ति से लैस पनडुब्बियों में लगातार इजाफा कर रहा है। इसके अलावा चीन विदेशों में अपनी चौकियाँ भी स्थापित कर रहा है, मिसाल के लिए अफ्रीका के जिबूती में चीन ने अपनी नयी सैन्य चौकी स्थापित की है। इसके अतिरिक्त श्रीलंका और पाकिस्तान में चीन जिन बन्दरगाहों का निर्माण कर रहा वे उसकी सामरिक शक्ति में विचारणीय इजाफा करेंगे।

हथियारों के निर्यात के मामले में भी चीन ने पिछले दशक में जबरदस्त प्रगति की है। अमेरिका और रूस के बाद चीन दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा हथियारों का निर्यातक देश बन चुका है। इसके अतिरिक्त दुनिया के विभिन्न हिस्सों में

संयुक्त राष्ट्र की शान्ति सेना में चीन 2 हजार से भी अधिक सैनिक भेजता है जो संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के सदस्यों में सबसे अधिक है। इससे चीन के सैनिकों को विभिन्न परिस्थितियों में लड़ने के लिए महत्त्वपूर्ण अनुभव मिलता है।

एक उभरती हुई साम्राज्यवादी ताकत के रूप में विश्वपटल पर चीन की मौजूदगी और उसकी बढ़ती सैन्य शक्ति से दुनिया के पैमाने पर जारी अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा तीखी हुई है। इस प्रतिस्पर्द्धा की घनीभूत अभिव्यक्ति दक्षिण चीन सागर में जारी तनाव में देखी जा सकती है। गौरतलब है कि दुनिया के कुल कच्चे तेल का एक चौथाई हिस्सा और अन्य व्यापारिक वस्तुओं का आधा हिस्सा दक्षिण चीन सागर से होकर गुजरता है। चीन के सैन्य रणनीतिकारों ने 'टू आइलैंड चेन' की धारणा के तहत समूचे विवादित समुद्री क्षेत्र को टापुओं की दो श्रृंखला में बाँटा है। पहली श्रृंखला, "नाइन डैश्ड लाइन", को लेकर चीन का विवाद वियतनाम, फिलीपींस और मलेशिया से है। चीन दक्षिण चीन सागर के लगभग पूरे हिस्से में अपना वर्चस्व कायम करना चाहता है। दूसरी श्रृंखला थोड़ा और आगे से गुजरती है जिसमें चीन का विवाद जापान जैसे साम्राज्यवादी देश से है। चीन के लिए दक्षिण चीन सागर का महत्त्व न सिर्फ व्यापार की दृष्टि से है, बल्कि संसाधनों की दृष्टि से भी यह क्षेत्र बेहद अहम है। मछलियों व समुद्री जीवों के साथ ही साथ इस क्षेत्र में तेल व गैस के भण्डार की भी प्रचुर सम्भावना जताई जाती है। सामरिक और आर्थिक दृष्टि से इतना महत्त्वपूर्ण होने की वजह से इस क्षेत्र में एक तरह से हथियारों की होड़ लगी हुई है और दक्षिण चीन सागर के किनारे स्थित सभी देश अपनी–अपनी सैन्य शक्ति बढ़ा रहे हैं। इस क्षेत्र में स्थित चीन के बढ़ते वर्चस्व को देखकर अमेरिका भी सकते में आ गया है और इसी वजह से इस क्षेत्र में स्थित तमाम देशों को सैन्य मदद प्रदान कर रहा है, जिसकी वजह से स्थिति और तनावपूर्ण होती जा रही है।

हालाँकि चीन की सैन्य क्षमता अब भी अमेरिका की तुलना में बहुत कम होने की वजह से वह अमेरिका को अकेले टक्कर तो नहीं दे सकता, लेकिन हाल के वर्षों में रूस और चीन के संयुक्त नेतृत्व में अमेरिकी साम्राज्यवाद के बरक्स एक नयी साम्राज्यवादी धुरी का उभार साफ देखा जा सकता है। मध्य–पूर्व और विशेषकर सीरिया में जारी युद्ध इस अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा के तीखे होने की स्पष्ट गवाही दे रहा है। शंघाई कोऑपरेशन काउंसिल और ब्रिक्स जैसी बहुपक्षीय संस्थाओं का अस्तित्व में आना अपने आप में एकध्रुवीय विश्व के मिथक को खारिज कर रहा है। उधर पश्चिम में भी ब्रिटेन के यूरोपीय संघ से बाहर जाने और अमेरिका में ट्रम्प की संरक्षणवादी नीतियों की वजह से नाटो में भी दरार के संकेत दिख रहे हैं जो इस सम्भावना को बल देते हैं कि यूरोप के कुछ मुल्क भी अपना खेमा बदल सकते हैं। जो भी हो इतना तो तय है कि आने वाले दिनों में अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा और तीखी होने वाली है। आज के दौर में विश्वयुद्ध की सम्भावनाएँ भले ही क्षीण हों, लेकिन क्षेत्रीय स्तर पर छोटे पैमाने के युद्धों और हिंसात्मक वारदातों की संख्या में निश्चय ही इजाफा होगा।

27.9 सारांश

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि चीन के सैनिक और आर्थिक विकास में माओं ने जो शुरूआत की उसके बाद के नेताओं ने इसको आगे बढ़ाया। माओ की मृत्यु के बाद 1970 के दशक के अन्त तक पूँजीवाद की पुनर्स्थापना हो चुकी थी। इस प्रक्रिया को देड–सियाओ–पेड तथाकथित बाजार समाजवाद के जरिये औपचारिक स्वरूप दिया। बाजार और समाजवाद के संगम में चीन की अर्थव्यवस्था ने तीव्र गति से विकास किया है। चीन में लगभग तीन दशकों से साम्यवादी नेतृत्व द्वारा जो आर्थिक प्रयोग किये गये उससे चीन को 10 प्रतिशत की चमत्कारिक विकास दर प्रदान की है। विशेष आर्थिक क्षेत्र के निर्माण से बुनियादी ढ़ाँचे के निर्माण में महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई हैं। चीन के विशेष आर्थिक क्षेत्र अब शक्तिशाली निर्यात केन्द्र में बदल गये हैं। विदेशी निवेशकों को महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में रियायते प्रदान की गई है इन रियायतों ने चीन में विदेशी पूँजी निवेश की गति काफी तेज कर दी है।

चीन में परिवर्तन के इस दौर में वहाँ समाजवाद को जगह पूँजीवाद का प्रभाव बढ़ता दिखाई दे रहा है। विदेशी निवेशकों ने दक्षिण चीन की अनेक फर्मों पर लगभग पूर्ण नियन्त्रण कर लिया है। 1991 में राज्य स्वामित्व वाली फर्मों का हिस्सा कुल औद्योगिक उत्पादन का 53 प्रतिशत था, जो एक दशक पूर्व के 80 प्रतिशत से कम है और घटने का क्रम जारी है, क्योंकि राज्य के स्वामित्व वाले उपक्रम तेजी से बंद होते जा रहे है या बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के साझेदार बनकर उनके मुनाफे को बढ़ाने में लगे हुए हैं।

इसके परिणामस्वरूप चीन में बेरोजगारी की समस्या बढ़ गई है। केन्द्रीय राजस्व में कमी के कारण सरकार सामाजिक सुरक्षा की अपनी जिम्मेदारी में कटौती कर रही है। लेकिन इसके बावजूद भी चीन आज दुनिया की तीसरी बड़ी ताकत है। चीन में साक्षरता, विज्ञान–प्रौद्योगिकी, अंतरिक्ष अनुसंधान एवं मिसाईल कार्यक्रम समुन्नत हैं।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. शीतयुद्धोत्तर काल में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में चीन की स्थिति का विवेचन कीजिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उभरती हुई शक्ति के रूप में चीन का वर्णन कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में चीन के अभ्युदय पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. वर्तमान समय में चीन की बढ़ती सैन्य शक्ति पर प्रकाश डालिए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. एशियन इन्फ्रास्ट्रेक्चर इन्वेस्टमेन्ट बैंक की स्थापना कब व कहाँ हुई ?
2. वर्तमान में चीन के राष्ट्रपति कौन हैं ?

इकाई–28

केन्द्रीय एशियाई गणतन्त्रों का आविर्भाव

(Emergence of Central Asian Republic)

28.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में केन्द्रीय एशियाई गणतन्त्रों के आविर्भाव सोवियत संघ के विघटन के बाद केन्द्रीय एशिया में राज्य निर्माण व उनकी प्रमुख समस्याओं के बारे में वर्णन किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- केन्द्रीय एशियाई राष्ट्रों के उदय के कारणों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- केन्द्रीय एशियायी राष्ट्रों की समस्याओं के बारे में जान सकेंगे।
- केन्द्रीय एशियाई राष्ट्रों के प्रमुख मुद्दों का मुल्यांकन कर सकेगें।

28.1 प्रस्तावना

सोवियत संघ के विघटन से पूर्व यह 15 गणराज्यों का एक संघ था इन गणराज्यों एवं प्रान्तों के अपने–अपने संविधान थे, जो सम्बद्ध गणराज्यों की विशेषताओं को ध्यान में रखकर बनाये गये थे। लेकिन सोवियत राष्ट्रपति गोर्वाच्योव की ग्लास्नोस्त एवं पेरेस्त्रोइका की नीति तथा कमजोर अर्थव्यवस्था के कारण दिसम्बर 1991 में इसका विघटन हो गया और सभी सोवियत गणराज्यों ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। इन राज्यों में उजबेकिस्तान, कजाखस्तान, तुर्कमेनिस्तान, ताजिकिस्तान, एवं किर्गिस्तान केन्द्रीय या मध्य एशिया में स्थित है। इन गणतन्त्रों को वर्तमान में स्वतंत्र, सप्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्र का दर्जा प्राप्त है।

इस प्रकार मध्य एशिया महाद्वीप का मध्य या केन्द्रीय भाग है। यह पूर्व में चीन से पश्चिम में कैस्पियन सागर तक और उत्तर में रूस से दक्षिण में अफगानिस्तान तक विस्तृत है। भूवैज्ञानिकों द्वारा मध्य एशिया की हर परिभाषा में भूतपूर्त सोवियत संघ के पाँच देश हमेशा गिने जाते है। काजाखस्तान, किरगिजस्तान, ताजिकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान और उजबेकिस्तान। इसके अलावा मंगोलिया, अफगानिस्तान, उत्तरी पाकिस्तान, भारत के लद्दाख प्रदेश, चीन के शिनजियांग और तिब्बत क्षेत्रों और रूस के साइबेरिया क्षेत्र के दक्षिणी भाग को भी अक्सर मध्य एशिया का हिस्सा समझा जाता है। मध्यकाल में इसे तुरकेस्तान, और तातारिस्तान भी कहते थे, क्योंकि यहाँ की भाषा तुर्क भाषा से संबंधित है। सांस्कृतिक रूप से इस क्षेत्र पर ईरान का प्रभाव रहा है, यद्यपि मुख्य आबादी सुन्नी है। सन् 1880 से 1988 के बीच यह रूस जनित सोवियत साम्राज्य का हिस्सा रहा है।

II - मध्य एशिया

क्षेत्रफल – 4003400 किमी

आबादी – 64746854

जन घनत्व – 15 व्यक्ति प्रति किमी

देश – काज़ाखस्तान
किरगिज़स्तान
ताजिकिस्तान
तुर्कमेनिस्तान
उज़बेकिस्तान

इतिहास में मध्य एशिया रेशम मार्ग के व्यापारिक और सांस्कृतिक महत्व के लिए जाना जाता है। चीन, भारतीय उपमहाद्वीप, ईरान, मध्य पूर्व और यूरोप के बीच लोग, माल, सेनाएँ, और विचार मध्य एशिया से गुजरकर ही आते–जाते थे। इस इलाकें का बड़ा भाग एक स्टेपीज घास से ढ़का मैदान है हांलाकि तियान शान जैसी पर्वत शृंखलाएँ, काराकुम जैसे रेगिस्तान और अरल सागर जैसी बड़ी झीलें भी इस भूभाग में आती है।

28.2 केन्द्रीय एशिया में राज्य गठनः केन्द्रीय एशियाई राष्ट्रिक का निर्माण राज्य क्षेत्रीय पहचान – मध्य एशिया के गणतंत्र 20वीं सदी के पूर्वाद्ध में अपने वर्तमान स्वरूप में सोवियतों के अधीन आए। लेकिन उन्होंने अपने देशज जातीय समूहों की अलग पहचान बनाई। आधारभूत सुविधाओं के अभाव में जब इस क्षेत्र का सोवियत संघ द्वारा आधुनिकीकरण किया जा रहा था, तब कुशलता से कृषि क्षेत्र को ओद्यौगिक क्षेत्र में परिवर्तन किया गया और अपने नाममात्र के समूह की पहचान को राष्ट्रीयता एवं संस्कृति के माध्यम से विकसित किया।

आधुनिक काल में जब औद्योगीकरण काफी विकसित स्थिति में पहुँच गया, तब सोवियत संघ के अन्य गणराज्य (रूस, यूक्रेन, बेलारूस एवं स्लाव) से हजारों लोग केन्द्रीय एशिया के इन गणतंत्रों में आए, जिससे कजाकिस्तान में काफी विकट स्थिति उत्पन्न हो गई। वहाँ के मूल निवासी अल्पसंख्यक हो गए। इसके अलावा अन्य गणराज्यों में भी तनाव की स्थिति थी। इससे विभिन्न इलाकों में कुछ समूहों में संघर्ष भी होने लगा। फलतः अर्थव्यवस्था के विकास में अवरोध ने जन्म लिया, प्रतिस्पर्द्धा भी समाप्त हो गई और विखंडन से पूर्व केन्द्र का नियंत्रण कम होने से यहाँ अराजकता की मनोवृति पैदा हो गई, लेकिन विघटन के बाद अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व ने अपने क्षेत्र को विकसित क्षेत्र बनाने का प्रयास कर रहे है।

28.3 गणराज्यों की उपराष्ट्रिक पहचान

केन्द्रीय एशियाई गणराज्यों में सोवियत संघ के विघटन से उत्पन्न हुई असुरक्षा के माहौल में परम्परागत संस्थाओं और पहचान के अस्तित्व में तेजी से वृद्धि हो रही है। भले ही सोवियत संघ की धर्म–निरपेक्ष शिक्षा और आधुनिकीकरण की नीति में इसे महत्त्व नही दिया गया हो, लेकिन ताजिकिस्तान एवं उजबेकिस्तान वंश की मान्यता समुदायों से स्वीकृत है और किर्गिस्तान एवं कजाकिस्तान में यह पारिवारिक बंधनों से लगाव प्रदर्शित करता है। शासक अपनी पहचाने हेतु वंश को महत्त्व प्रदान करते है।

उपराष्ट्रिक पहचान को महत्त्व प्रदान करने के बावजूद वे राष्ट्रीयता के महत्त्व को कम करके नही आँकतें। वे उपराष्ट्रिक पहचान समूह से राष्ट्र में गतिशीलता प्रदान करना चाहते है ताकि विजातीयता, विविधताओं एवं विभाजन की परिस्थति में अल्पसंख्यकों से उत्पन्न चिंता–भय समाप्त किये जा सकें।

सोवियत संघ द्वारा प्रारम्भ किए गए आधुनिकीकरण के बाद भी केन्द्रीय एशिया के मूल निवासी ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि आधारित कार्यो में लगे रहे। कुछ ही लोग शहरी क्षेत्र के उद्योगों, बिजली एवं सेवा क्षेत्र में थे। उद्योगों में निपुण कर्मचारी रूसी थे। वे मूल निवासियों की तुलना में काफी अधिक थे। लेकिन हिंसात्मक संघर्ष, नई भाषा, कानून इत्यादि के अनिश्चिततापूर्ण माहौल में केन्द्रीय एशिया छोड़कर जाने लगे। इन व्यावसायिक कुशल कर्मचारियों के निर्वासन से केन्द्रीय एशिया की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ने लगे, तब यहाँ के नेताओं ने उनसे यहाँ रूके रहने का अनुरोध किया। अधिकांश गणराज्यों ने अपने कानून में रूसी भाषा के अनवरत प्रयोग कि इजाजत प्रदान की। उसी समय सोवियत संघ का विघटन हो गया, जिससे कच्चे तेल एवं ऊर्जा के अपर्याप्त वितरण से औद्योगिक मंदी छाने लगी। फलतः औद्योगिक मंदी एवं सांस्कृतिक पुनरूत्थान ने रूसी अप्रवासन को और अधिक तेज किया।

किन्तु बाद में भाषा संबंधी कानून के लचीले रूख, सामाजिक आर्थिक स्थिरता से अप्रवासन की गति कम हुई। अब इनका भविष्य रूसी गणराज्य की स्थिति पर बहुत हद तक निर्भर करेगा। रूसी गणराज्य से केन्द्रीय एशियाई गणराज्यों के संबंध अच्छे रहे, तो अप्रवासन रूक जाएगा। वैसे अब समाज के बहुजातीय बने रहने की कुछ सकारात्मक स्थिति भी देखी जा रही है। केन्द्रीय एशियाई गणराज्य के नेतृत्व वाले वर्ग इस बात का ध्यान रख रहे है कि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में अल्पसंख्यकों को कोई कठिनाई न हो तथा उनकी एकता हेतु भी प्रयास किए जा रहे है।

28.4 सोवियत संघ के विघटन के बाद केन्द्रीय एशिया में राज्य निर्माण

सोवियत संघ के पतन के पश्चात् केन्द्रीय एशिया के गणराज्यों को राष्ट्र निर्माण कार्य में समूहों के अस्तित्व, उपराष्ट्रीय पहचान एवं विभिन्न प्रतिस्पर्द्धा में लगें गुटों पर नियंत्रण रखना पड़ रहा है। उन्हें अपने राष्ट्र–निर्माण के लक्ष्य से लोगों को अवगत कराना पड़ रहा है, जिसमें विभिन्न गणराज्य देशी संस्कृति का आश्रय ले रहे है, किन्तु राष्ट्रीयता का विकास यहाँ पर्याप्त भिन्नता उपस्थित कर रहा है तथा क्षेत्रीयता, जातीय–उपजातीय, धार्मिक भाषीय समूह राष्ट्र–निर्माण के प्रयासों को कठिन बना रहे है। शासक वर्ग शांत व संतुष्ट होकर सांस्कृतिक एवं राजनीतिक पुनरूत्थान के माध्यम से राष्ट्रीयता के विकास का मार्ग प्रशस्त कर रहें है। केन्द्रीय एशियाई गणतंत्र भूतपूर्व सोवियत संघ के गणराज्यों से मधुर संबंध स्थापित करना चाहते है। साथ ही राष्ट्र की बहुजातीय पहचान को भी सुरक्षित रखना चाहते है। लेकिन समाज की विजातीयता एकीकरण की प्रवृति को बढ़ा रही है।

28.5 गणतन्त्रों का नया संविधान

गणराज्यों के नए संविधान के प्रावधानों से यह स्पष्ट होता है कि केन्द्रीय एशियाई गणराज्य अपनी देशी पहचान के आधार पर राष्ट्र–राज्य निर्माण करना चाहते है।

किर्जिस्तान में 1993 में संविधान स्वीकृत किया गया। यह प्रभुतासंपन्न, एकात्मक, विधि के शासन पर आधारित लोकतंत्रात्मक गणतंत्र, धर्म–निरपेक्ष राष्ट्रवाद के रूप में अपने को स्वीकार करता है। यह जनता में सम्प्रभुता के निवास की घोषणा करता है, लेकिन राष्ट्रपति जैसे उच्च पदों के लिए यह अपेक्षा करता है कि प्रत्याशी को किर्गिज भाषा का ज्ञान हो तथा कम से कम 15 वर्ष गणतंत्र के निवासी के रूप में जीवन व्यतीत किया हो।

1992 में निर्मित उजबेकिस्तान का संविधान यह घोषणा करता है कि उजबेकिस्तान की जनता उजबेक राज्यत्व निर्माण करने में ऐतिहासिक अनुभव द्वारा दिशा–निर्देश प्राप्त करने का प्रयास करेगी। उच्च पदों हेतु राजभाषा का ज्ञान आवश्यक है।

1994 में स्वीकृत ताजिकिस्तान की संविधान प्रस्तावना यह कहती है कि हम ताजिकिस्तान के लोग विश्व समाज के अभिन्न भाग के रूप में भूत, वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए अपने आपकों उत्तरदायी एवं कर्त्तव्यनिष्ठ देखते हुए अपनी राज्यसम्प्रभुता, सुरक्षा एवं विकास सुनिश्चित करने की कामना करते हुए, व्यक्ति के अधिकारों और स्वतत्रताओं को पवित्र मानते हुए, (ताजिकिस्तान के) सभी राष्ट्रिकों और लोगों के अधिकारों एवं मित्रता की समात को स्वीकार करते हुए, न्यायसंगत समाज निर्माण का प्रयास करते हुए वैध संविधान अंगीकृत एवं घोषित करते है। संविधान में अन्तर्जातीय जनसंचार की भाषा स्वीकार करता है तथा गणराज्य में निवास करने वाले राष्ट्रों एवं समूहों को अपनी मातृभाषा स्वतंत्र ढ़ंग से उपयोग करने की सहमति को सत्यापित करता है। यह निश्चित रूप से राज्य एवं उसके कार्यो को धर्म से अलग करता है, लेकिन संविधान राष्ट्र के प्रमुख पद के लिए राजभाषा का ज्ञान एवं 10 वर्ष गणराज्य में निवास को अनिवार्य मानता है।

कजाखस्तान का 1993 एवं 1995 का संविधान भाषा, धर्म और राष्ट्रीयता का ख्याल रखे बिना सभी नागरिकों को समान अधिकार की अनुमति प्रदान करता है। जो नागरिकता प्राप्त करना चाहते है, उन्हें भाषा एवं निवास की अनिवार्यता के बिना हो नागरिकता प्रदान करने की सहमति प्रदान करना है। संविधान किसी भी ऐसे सामाजिक संगठन की स्थापना पर रोक लगाता है, जो बलपूर्वक संवैधानिक व्यवस्था में परिवर्तन करने, राज्य की सुरक्षा को कमजोर करने एवं राज्य की एकता को खंडित करने की कोशिश करता है। लेकिन कजाखस्तान के कानून के अनुसार सभी संवैधानिक पदों एवं कर्मचारियों के लिए कजा भाषा का अच्छा ज्ञान होना आवश्यक है। साथ ही गणराज्य के बाहर रहने वाले कजाखियों के लिए दोहरी नागरिकता एवं उन्हें घर वापस आने तथा घर एवं कार्य प्रदान करने में विशेष सुविधा प्रदान करने की बात कही गई है। निःशुल्क शिक्षा, आवास एवं गणराज्य में यात्रा की सुविधा दी जाने की स्वीकृति प्रदान की गई है। राष्ट्रपति या राज्य के उच्चतम पद कजाखों के लिए निश्चित किए गए है। रूसी अल्पसंख्यकों की भाषायी पहचान की रक्षा का भी प्रयास किया गया है।

तुर्कमेनिस्तान के संविधान में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राज्य के प्रमुख यानी राष्ट्रपति के लिए तुर्कमान का मूल निवासी होना संवैधानिक बाध्यता है। राज्य के उच्चतम पद की प्राप्ति हेतु तुर्कमेन भाषा का ज्ञान तथा तुर्कमेन नागरिक होना आवश्यक है।

इस प्रकार केन्द्रीय एशियाई गणराज्यों के संविधान के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वे अपने देशीय राष्ट्रिकों की संख्यात्मक शक्ति को राष्ट्र–निर्माण में अधिक महत्त्व प्रदान करते है तथा उसके विकास के लिए भी संविधान के प्रावधानों के माध्यम से प्रयासरत है।

28.6 भाषायी विवाद्

केन्द्रीय एशिया के सभी गणराज्यों ने अपनी नाममात्र की भाषा को राजभाषा की मान्यता प्रदान करने के लिए भाषा संबंधी विधान स्वीकृत किये है। अन्य भाषाओं के प्रयोग ने अवरोध की स्थिति उत्पन्न की, फिर भी रूसी भाषा अभी भी केन्द्रीय एशिया में महत्वपूर्ण संपर्क भाषा के रूप में विद्यमान है। बाद में आधारभूत संरचना में वृद्धि के लिए और अर्थव्यवस्था की स्थिति सुधारने हेतु भाषा संबंधी प्रावधान में कुछ छूट प्रदान की गई। यथा–किर्गिस्तान में सभी प्रशासनिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं में किर्गिज भाषा के प्रयोग हेतु पहले तिथि 1994 नियत की गई, लेकिन विज्ञान के क्षेत्र में रूसी भाषा के सामान्य प्रयोग के कारण 1994 में राष्ट्रपति ने अपने अंतरिम आदेश से प्रवासी प्रक्रियाओं के क्षेत्र में रूसी भाषा के उपयोग को स्वीकृति प्रदान की।

वैसे कजाखस्तान में रूसी भाषा को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। 1993 के संविधान में इसे अन्तर्जातीय जनसंचार का माध्यम बनाने की व्यवस्था थी तथा 1995 के संविधान में इसे राजकीय भाषा का सम्मान भी प्रदान किया गया, लेकिन कजाखस्तान की संसद ने भाषा विधान संशोधन विधेयक के द्वारा यह प्रावधान किया कि 2006 तक गैर–कजाख या कजाख सभी तरह के नागरिक कजाख भाषा सीखने का प्रयास करेंगे।

किन्तु तुर्कमेनिस्तान एवं उजबेकिस्तान में रूसी भाषा को संरक्षण प्रदान करने की व्यवस्था नहीं है, पर राज्य भाषा के प्रयोग की तिथि बढ़ायी गई है और राष्ट्रीय जनसंचार में आज भी रूसी भाषा का प्रयोग किया जाता है।

ताजिकिस्तान में सरकार के एक अनुरोध पत्र द्वार गैर–ताजिक भाषा के प्रयोग एवं विकास को सुसज्जित बनाने के उद्देश्य से विशेष ध्यान दिया गया है। शैक्षणिक संस्थाओं एवं जनसंचार के साधनों में भी गैर–ताजिक भाषाओं के पाठ्यक्रम सम्मिलित है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि केन्द्रीय एशियाई गणराज्यों के सभी क्षेत्रों में स्थानीय भाषा के प्रयोग में अभी भी कठिनाई है। भाषा के प्रयोग हेतु संगठनात्मक आधारभूत सरंचना यथा–पर्याप्त स्कूल, पुस्तकों एवं उच्च योग्य शिक्षकों की

आवश्यकता है। साथ ही वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दों का इन भाषाओं की शब्दावली में अनुवाद भी जरूरी है, तभी सभी नागरिकों से इनके प्रयोग विज्ञान, व्यवसाय या विभिन्न कार्यो में किया जाता है। इसमें किसी भी तरह का परिवर्तन राज्य के संगठन एवं अर्थव्यवस्था में अव्यवस्था उत्पन्न कर सकता है।

28.7 धर्म और राज्य संबंधी मुद्दे

केन्द्रीय एशियाई गणराज्यों में इस्लाम धर्म की सदैव प्रधानता रही है। धर्म आधारित पारिवारिक संरचना में जीवन के अध्यात्मिक पहलू एवं सांस्कृति क्षेत्र में आज भी इस्लाम धर्म का प्रभाव है विवाह, खतना एवं दफन के रूप में इसे देखा जा सकता है। इस्लाम धर्म से प्रभावित होने फलस्वरूप मस्जिदों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। एवं मकबरों एवं समाधियों के पुनरूद्धार से इनके महत्व में वृद्धि हुई है।

केन्द्रीय एशियाई गणतंत्रों में सोवियत संघ के दौरान स्वतंत्र, चुनाव के द्वारा धर्म–निरपेक्ष गणतंत्र की स्थापना की गयी थी, लेकिन अब इस्लाम की बढ़ती हुई लोकप्रियता के कारण नए राज्य धार्मिक पहचान के प्रति कुछ श्रद्धा व्यक्त कर रहे है। इसलिए इस्लामी कट्टरवाद या इस्लाम के नवजागरण की भी संभावना प्रतीत होती है। धार्मिक सक्रियता से अल्पसंख्यक अपने को भयभीत महसूस कर रहे है। वैसे केन्द्रीय एशियाई गणतंत्र के सभी राज्य राजनीतिक व्यवस्था में इस्लामी राजनीतिक संगठनों एवं धर्म के प्रभाव को रोकने का प्रसास कर रहे है।

28.8 आर्थिक और सामाजिक स्थिरता

केन्द्रीय एशियाई गणराज्यों में आयोजित अर्थव्यस्था का बाजारोन्मुखी अर्थव्यवस्था में परिवर्तन अभी कठिन है। स्वतंत्र बैंकिंग व्यवस्था एवं वित्तीय व्यवस्था, नई मुद्रा की शुरूआत तथा आर्थिक संरचना व प्रबन्धन में परेशानी है। इसके परिणामस्वरूप अव्यवस्था एवं आय, उत्पादन व रोजगार में मंदी का दौर है। सरकारें इससे उबरने का प्रयास कर रही है।

सामाजिक क्षेत्र की स्थिति तो और भी अधिक खराब है। बेरोजगारी के परिणामस्वरूप सामाजिक–राजनीतिक क्षेत्रों में अशांति एवं अव्यवस्था उत्पन्न हो रही है। रोजगार के घटते स्तर ने लोगों के जीवन स्तर एवं सामाजिक स्थायित्व को प्रभावित किया है। सामाजिक आर्थिक असमानता राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न कर रही है। समाज का एक छोटा भाग पर्याप्त सुख–सुविधा के साथ सत्ता सुख का उपभोग कर रहा है और बहुत बड़ा भाग इस सुविधा एवं स्वतंत्रता से वंचित है। इस प्रकार सत्ता एवं संसाधनों के असीमित वितरण से जातीयता, संकीर्णता एवं अवसरवादिता इत्यादि को बढ़ावा मिलता है, लेकिन केन्द्रीय एशियाई गणराज्यों का नेतृत्व संवैधानिक मान्यताओं के अतिरिक्त जातीय सद्भाव एवं सामाजिक स्थिर सुनिश्चित करने हेतु व्यापक राज्य निर्माण योजन के लिए लगाकर प्रयास कर रहा है। धार्मिक कट्टरपंथियों की शक्ति पर अंकुश लगाकर वे स्वतंत्र राष्ट्र के निर्माण को बढ़ावा दे रहे है।

28.9 सारांश

इस प्रकार सोवियत संघ के विघटन के बाद केन्द्रीय एशियाई गणराज्य अपने स्वतंत्र अस्तित्व में आ गए है। वे अपनी सांस्कृतिक पहचानों को आधुनिक रूप देने का प्रयास कर रहे है, जिसमें भाषा अवरोध उत्पन्न कर रही है, क्योंकि देशी भाषा में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दों का अभाव है। इसके लिए कठिन परिश्रम की आवश्यकता है। भाषा के प्रश्न को लेकर अल्पसंख्यकों में असुरक्षा व्याप्त है। अल्पसंख्यक यहाँ के गणतंत्रों में औद्योगिक प्रबन्ध सहित अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्र में प्रमुख भूमिका का निर्वाह करते है, क्योंकि सोवियत संघ के काल में जब केन्द्रीय एशियाई गणराज्यों का आधुनिकीकरण किया जा रहा था तो रूस, बेलारूस इत्यादि गणराज्यों से काफी अधिक लोग यहाँ आए थे, जिससे कुछ गणराज्यों में वहाँ के मूल निवासी ही अल्पसंख्यक हो गए। इस समस्या के समाधान हेतु यहाँ के मूल निवासियों को अधिक महत्व प्रदान करने की नीति अपनाई गई। फलतः सोवियत संघ के विघटन के बाद भाषा एवं धर्म को लेकर असुरक्षा के माहौल में उनका अप्रवासन बढ़ा, जिससे केन्द्रीय एशियाई गणराज्यों की अर्थव्यवस्था प्रभावित होने लगी, तो यहाँ के शासक वर्ग ने उन्हें सुरक्षा प्रदान की। कुछ गणराज्यों के संविधान द्वारा उन्हें विशेष सुविधा दी गई और कम भेदभाव की व्यवस्था की गई।

केन्द्रीय एशियाई गणराज्यों में आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में काफी विकट स्थिति है। असमानता एवं बेरोजगारी राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया की गति को मंद कर रही है। धर्म का प्रभाव भी एक विशेष स्थिति पैदा कर रहा है। अतः राष्ट्र निर्माण के कार्य में यहाँ के शासकों को काफी सूझ–बूझ से काम लेना होगा।

अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. केन्द्रीय एशियाई राज्यों के उदय के प्रमुख कारणों का उल्लेख कीजिए।
2. सोवियत संघ के विघटन के बाद केन्द्रीय एशिया में क्या–क्या परिवर्तन आयें समझाईए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. केन्द्रीय एशियाई राष्ट्रों की प्रमुख समस्याओं का वर्णन कीजिए।
2. केन्द्रीय एशियाई राष्ट्रों के धार्मिक मुद्दों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. केन्द्रीय एशियाई राष्ट्रों से क्या अभिप्राय है।
2. किर्जिस्तान का नया संविधान कब लागू हुआ ?
3 मध्य एशिया के भूतपूर्व सोवियत संघ के प्रमुख पांच देशों के नाम लिखिए।

इकाई–29

संजातीय पुनरूत्थान और पहचान युद्ध

(Ethnic Resurgence and Identity Wars)

29.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में संजातीय पुनरूथान और पहचान युद्ध के अर्थ संजातीयता का विकास व पहचान के लिए युद्ध के कारणों का विवेचन किया गया है प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- संजातीयता का अर्थ व प्रकृति जान सकेगें।
- संजातीयता के विकास ने राष्ट्रीयता की भावना का ह्रास किस प्रकार किया इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- पहचान युद्ध के प्रमुख कारणों को जान सकेंगे।

29.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में संजातीय संघर्ष या पहचान के लिए के लिए संघर्ष दिन–प्रतिदिन बढ़ते जा रहे है। सभ्यता के विकास के साथ–साथ राज्य स्वरूप निरन्तर बदलता जा रहा। आज राज्यों में बहु जातीय बहु संस्कृति व अनेक धर्मो के लोग निवास करते इन विभिन्न समुदायों में अपनी विशेष पहचान बनाने के लिए निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। जिसे पहचान के लिए संघर्ष कहा जाता हैं

29.2 संजातीयता का अर्थ

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सामान्यतः इतिहास संस्कृति धर्म भाषा इत्यादि के दृष्टिकोण से समान विशेषता रखने वाले लोगों को संजातीय समूह कहा जाता है। यह ऐसा समूह है जो किसी ऐसे समूह से भिन्न होते है जो सामान्य विशेषता रखते है जो एकल या सामान्य गुणों पर हो सकते है। यह संस्कृतियों एवं राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति को सहमति प्रदान करता है तथा समूह के सदस्यों को पृथक रूप से पहचानने के लिए कोई विशेष समूह नाम या विशिष्ट संस्कृति या निश्चित भूभाग का आश्रय लेते है।

29.3 संजातीयता का विकास और राष्ट्रीयता की भावना का ह्रास

संजातीयता की भावना के विकास से राष्ट्रीयता की भावना का ह्रास हुआ है। संजातीयता की भावना के विकास से व्यक्ति में राष्ट्र की अपेक्षा अपने संजातीय समूह के प्रति विशेष लगाव की भावना उत्पन्न होती है इसे संजातीय राष्ट्र भी कहा जाता है। संजातीय समूहों का आरोप है कि उनकी पहचाने, संस्कृतियों, इतिहासों एवं आकांक्षाओं की उपेक्षा के कारण संजातीयता का पुनरूत्थान हुआ है, क्योंकि मनुष्य कुछ सीमा तक ही कुछ विशेष प्रयोजन से राष्ट्रीयता में सम्मिलित है, परन्तु संजातीयता उन्हें समग्र रूप में एक दूसरे से जोड़ती है।

29.4 संजातीयता का विस्तार

वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में संजातीय राष्ट्रवाद की धारणा से विभिन्न राष्ट्रों के अन्दर एवं सीमा पार संघर्ष तथा जातीय सशस्त्र संघर्ष व जातीय हिंसा इसके प्रमाण हैं कि मनुष्य अपने विनाश के मूल्य पर इनकी अवहेलना कर रहा है। वर्तमान विश्व व्यवस्था के 192 भूभाग क्षेत्र पर प्रभुतासम्पन्न राष्ट्रों एवं लगभग 18–20 गैर–प्रभुतासम्पन्न राजनीतिक सत्ता है। दूसरी तरफ 862 प्रमुख एवं 3000 से ज्यादा लघु संजातीय समूहों की उपस्थिति मानी जाती है, लेकिन संजातीय समूह आपस में संयोजित नहीं है। विशेषज्ञों एवं विभिन्न विचाराकों के अनुसार विश्व के अधिकांश सम्प्रभु राष्ट्रों की सीमाएं संजातीय सीमाओं के अनुरूप नहीं है, जो उनकी स्वाभाविक इच्छा के विपरीत है एवं अन्य विभिन्न कारकों से प्रभावित होकर वे सदैव असंतुष्ट रहते है। फलतः हिन्दू (भारत) से लेकर मुस्लिम (ईरान), यहूदी (इजरायल), बौद्ध (बर्मा), गरीब (पाकिस्तान), अमीर (कनाडा), छोटे (फिजी) और बड़े (इंडोनेशिया) सभी इनसे पीड़ित है। इनके अतिरिक्त भी विश्व में कई राष्ट्र इससे प्रभावित है। विश्व में चल रहे संघर्षो में से 75 प्रतिशत से भी अधिक संघर्ष संजातीय आधार पर ही लड़े जा रहे है। अतः संजातीय संघर्ष एक कठिन समस्या है तथा अन्तर्राष्ट्रीय तनाव का एक मुख्य कारण है।

29.5 आधुनिकीकरण और संजातीय पुनरूत्थान और संघर्ष

द्वितीय विश्व–युद्ध के पश्चात् संजातीय, पुनरूत्थान एवं संघर्ष में वृद्धि हुई है, क्योंकि द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद अनेक स्वतंत्र सम्प्रभु राष्ट्रों की स्थापना हुई और उन्होंने अपने स्वतंत्रता को सुदृढ़ बनाने के लिए एवं आर्थिक और सामाजिक समृद्धि हेतु आधुनिकीकरण को अपनाया। आधुनिकीकरण की प्रतिक्रिया के रूप में संजातीय हिंसा में वृद्धि हुई। आधुनिकीकरण एक बहुपक्षीय प्रक्रिया है। इसकी संकल्पना के कई आयाम है :

1. मनोवैज्ञानिक स्तर पर इसमें लोगों के मन को , मूल्यों और अभिविन्यासों में परिवर्तन की अपेक्षा की जाती है।

2. बौद्धिक स्तर पर इसमें अपने पर्यावरण के विषय में व्यक्ति की विशिष्ट जानकारी एवं अधिक साक्षरता तथा जनसंचार के माध्यम से इस ज्ञान के प्रसार की व्यवस्था की जाती है।
3. जनांकिकीय स्तर पर इसका निहितार्थ जीवन–स्तर में सुधार और लोगों की संचलनशीलता के प्रति प्रगति एवं नगरीकरण से है।
4. सामाजिक स्तर पर इसमें यह प्रवृति पाई जाती है कि परिवार और अन्य प्राथमिक वर्गो के प्रति निष्ठा की भावना के केन्द्रबिन्दु को स्वैच्छिक रूप से संगठित अनुषांगिक संगठनों के प्रति निष्ठा में बदला जाए
5. आर्थिक स्तर पर इसमें बाजारी कृषि के विकास, कृषि के मूल्य पर वाणिज्य में सुधार, औद्योगीकरण का विकास तथा आर्थिक कार्यकलाप को व्यापक बनाने पर जोर दिया जाता है।
6. सांस्कृतिक स्तर पर यह संचार का ऐसा जाल विकसित करता है जो लोगों के मानकों, मूल्यों अभिवृत्तियों और अभिविन्यासों को एक दूसरे रूप में परिवर्तित कर देता है।

इस प्रकार आधुनिकीकरण को एक विशद् घटना समझाा जा सकता है, जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति की दिशा में परिवर्तन लाता है। अतः जैसे ही आधुनिकीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, वैसे ही संजातीय सामाजिक गतिशीलता शुरू हो जाती है। वैसे राजनीति वैज्ञानिकों एवं समाज वैज्ञानिकों का मानना है। कि संजातीयता संघर्ष आधुनिक युग से बहुत पहले से है। उनका कहना है कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया एवं सामाजिक गतिशीलता की शक्तियां राष्ट्र–निर्माण की गतिविधि में किसी भी अलग पहचान को आत्मसात् कर लेती है।

किन्तु कुछ विद्धानों ने नवीनतम शोध के आधार पर यह बताया है कि जनसंचार के साधनों ने संजातीय मसले पर बहुत सीमित मात्रा में जागरूकता उत्पन्न की तथा आधुनिकीकरण एवं सामाजिक गतिशीलता संजातीय समूह को राज्य से जोड़ने में असफल रही है। उनका मानना है कि संजातीय जागरूकता निश्चय ही राजनीति सामर्थ्य के अनुरूप विकसित होती है और हाल ही में परिसीमन किए गए राज्यों के सीमाओं से भी यह स्पष्ट होता है कि आधुनिकीकरण की शक्तियों ने संजायतीय संबंधों को कम करने की बजाय विकसित किया है।

वस्तुतः आधुनिकीकरण के साधन बहुगणित होकर शनैः शनैः आगे बढ़ते जात है और मानव चिंतन या निष्ठा धीरे–धीरे बदलती है। यही वजह है कि आज के इतने बड़े वैज्ञानिक प्रगति के माहौल में सामाजिक–राजनीतिक स्तर पर कोई फेरबदल के चिह्न काफी कठिनाई से खोजने पर दिखाई पड़ते है। इस असंतुलन से संजातीय पुनरूत्थान हुआ तथा आधुनिकीकरण से जो विभाजन उत्पन्न होता है, उसे संजातीय समूह गले लगाने को तैयार नहीं है। सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों और संस्थाओं एवं सामाजिक व्यवस्था हेतु आधुनिकीकरण को संजातीय समूह के नेतृत्व ने पहचान समाप्त होने के खतरे के रूप में देखा है।

दूसरी तरफ संचार साधनों की वृद्धि ने भिन्न–भिन्न संजातीय समूहों को आपस में विभिन्न मसलों पर मधुर संबंध बनाने का मौका प्रदान किया और अंतरसंजातीय एवं अंतः संजातीय समूहों में संचार के माध्यम से क्रियाशीलता आई। फलतः आधुनिकीकरण से संजातीय समूह में जो पहचान समाप्त होने का खतरा उपस्थित हुआ था, उसे संजातीय समूह के भीतर, संजातीय नेतृत्व ने राजनीतिक उद्देश्य हेतु तैयार किया। आधुनिकीकरण की शक्ति से उत्पन्न सामाजिक–आर्थिक माहौल में अंतरसंजातीय और अंतःसंजातीय समूहों में तीव्र प्रतिस्पर्द्धा ने जन्म लिया, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक संघर्ष एवं हिंसा में वृद्धि होती गई।

29.6 आधुनिक राष्ट्र राज्य और संजातीय समूह

आधुनिक राज्य की भूमिका को लेकर संजातीय समूहों में तीव्र विरोध हुआ है। उन्होंनें इसे अपनी पृथक् पहचान पर खतरा माना और राज्य की इस प्रवृत्ति को शक्ति का केन्द्रीकरण मानते हुए इसका विरोध किया। फिर भी राज्य ने सामाजिक–आर्थिक न्याय प्रदान करने हेतु इस संदर्भ में कठोर कार्रवाई की, जिससे संजातीय समूह बुरी तरह प्रभावित हुए। इसमें भीषण रक्तपात एवं हिंसा का दौर चला। तत्कालीन परिस्थिति को देखते हुए प्रतिरोध करने वाले संजातीय समूहों ने आत्मसमर्पण कर दिया, लेकिन घात–प्रतिघात का अवसर तलाशते रहे। यथा–केन्द्रीय एशिया में जार की नीति या भारत में मुस्लिम शासकों द्वारा हिन्दुओं एवं सिक्खों के प्रति अपनाई गई नीति।

29.7 आत्मसात्कारी दृष्टिकोण

आधुनिक राज्य के विभिन्न क्रियाकलापों से विशेषकर आत्मसात्करणवादी नीति से संजातीय समूह के भीतर अवसरवादी कारकों को पनपने का मौका मिला तथा इससे संजातीय समूह की स्वायतत्ता प्रभावित हुई। संजातीय समूह में नेता स्थानीय स्वायतत्ता को छाया रूप में स्पष्ट करते है एवं भेदभाव, शोषण आदि के लिए मूल राज्य को दोषी ठहराते है। अपने हित को एवं आरोपों को प्रमाणित करने के लिए वे सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक इत्यादि क्षेत्रों से तथ्यपूर्ण सूचना एकत्रित करके, उन्हें व्यवस्थित रूप देने का प्रयास करते है और आंदोलन शुरू करते है। राज्य की सीमाओं का चुनौती देने की कोशिश की जाती है और अन्य राज्यों में निवास करने वाले अपने संजातीय रिश्तेदारों से एकीकरण की

मांग की जाती है। सेवा क्षेत्रो, सम्पत्ति एवं भू–स्वामित्व के अधिकारों को संरक्षित करने एवं संजातीय क्षेत्रों से अन्य व्यक्तियों को हटाने की मांग की जाती है। मानव अधिकारों की अवहेलना पर राज्य की आलोचना की जाती है तथा राज्य से संजातीय समूह के संघर्ष में मानव अधिकारों की देखरेख करने वाली अन्तर्राष्ट्रीय संस्था से इस संबंध में उल्लंघन पर सिर्फ आरोपपत्र ही नहीं पेश किया जाता, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय विधानों को क्रियान्वित करने को कहा जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राज्य के विरोधी गुटों से सम्पर्क करके परामर्श एवं सहायता ली जाती है। इससे संजातीय समूहों के कार्यो का जहाँ अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में भी काफी परिवर्तन आ गया।

वस्तुतः विश्व–व्यवस्था में बढ़ती हुई आपसी निर्भरता और अन्तर्राष्ट्रीय एकीकरण की प्रकृत्ति से संजातीय समूहों में भी एकीकरण की प्रक्रिया नीचे तक फैलने लगी। संजातीय अभिलाषाओं एवं उसके फलस्वरूप हुए विद्रोहों पर राज्यों ने समुचित ढंग से नियंत्रण नहीं रखा। संजातीय अभिलाषाओं को समायोजित करने हेतु कोई विशेष प्रयत्न नहीं हुए, बल्कि विकासशील देशों के शासनकर्ताओं ने आत्मसात्करणवादियों की नीति का आश्रय लिया। संजातीय विद्रोह को बलपूर्वक सेना के माध्यम खत्म किया फलतः संजातीय समूहों ने आतंकवाद, हिंसा इत्यादि का रास्ता अपनाया और स्वायत्तता की बजाए पूर्ण स्वतंत्रता की इच्छा करने लगे।

संजातीय समूहों मे भी सत्ता के लिए आपस में संघर्ष होता है। राज्य के भीतर विभिन्न सत्ता स्वरूपों से वंचित होने पर संजातीय समूहों में असंतोष जन्म लेता है, जो बाद में संजातीय समूह परंम्परागत अभिजन की असफलता से इस समूह के युवा नेतृत्व के समक्ष एक महत्त्वपूर्ण मसला बन जाता है। संजातीय समूह का युवा नेतृत्व परम्परागत अभिजन के समक्ष मुकाबला पेश करते हैं एवं अपने हितों की पूर्ति के लिए कुछ अधिक मांग उनके समक्ष रखते हैं एवं उन्हें प्राप्त करने के लिए हिंसा को एक आवश्यक माध्यम बनाना चाहते है। जनसामान्य को अपनी ओर लाने के लिए लोक–लुभावन योजना का आश्रय लेते हैं। राज्य इन मांगों के औचित्य के प्रति इतना सावधान नहीं रहता, फलतः राज्य के अंदर संजातीय समूहों में मुख्य शक्ति के रूप में नए अभिजन वर्ग की उत्पत्ति होती है।

29.8 विश्व व्यवस्था में संजातीय समूह

आज के प्रतिस्पर्द्धा के युग में सामाजिक–सांस्कृतिक व राजनीतिक चेतना में जागरूकता आई है। विश्व के विकसित देश संजातीय जागरूकता को संयोजन के माध्यम कम करने का प्रयास कर रहे हैं वहीं विकासशील देश इसे अपने अखंडता के ऊपर खतरा समझकर इसके विरूद्ध आत्मसात्करणवादी नीति या बलपूर्वक सैनिक कार्यवाही द्वारा खत्म करने का प्रयास कर रहे है।

इस प्रकार संपूर्ण विश्व संजातीय पुनरूत्थान से प्रभावित हो रहा है। संजातीय संघर्ष के उभरते हुए प्रतिमान से राष्ट्र–राज्य के साथ अन्तर्राष्ट्रीय जगत में हलचल है। इसमें विवेकशील नीति की आवश्यकता है, जिसे संजातीय समूहों एवं राष्ट्र–राज्य के संतुलित विचार से एक अलग रूप प्रदान किया जा सकता है।

29.9 पहचान के लिए युद्ध

पहचान को व्यक्तित्व की एक स्थायी भावना माना जा सकता है। यह सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के अनुरूप व्यक्ति में एक विशिष्टता के सिद्धांत पर आधारित है। अतः इसे एक मनोवैज्ञानिक भावना भी कहा जा सकता है, जो संजातीय बंधनों से उत्पन्न होती है।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में संजातीय संघर्ष या पहचान के लिए संघर्ष दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। वैसे पहचान की समस्या कोई आज की समस्या नहीं है। यह प्राचीन समय से ही मनुष्य को परेशानी में डाल रही है, लेकिन आधुनिक काल में इसने भयानक हिंसात्मक रूप ले लिया है। आज विश्व के अधिकांश राष्ट्र–राज्यों की एकता एवं अखण्डता के साथ–साथ सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था भी इससे प्रभावित हो रही है। जहां लाखों लोग शरणार्थी बनकर जी रहें है, तो लाखों लोग मौत के मुँह समा गए। फिर भी यह विश्व के समक्ष खतरे के रूप में उपस्थित है। पहचान सं संबंधित संघर्ष संजातीयता की समस्या का एक रूप है।

29.10 पहचान के लिए संघर्ष के कारण

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में पहचान के लिए संघर्ष के अनेक कारण है जिनमें प्रमुख निम्नलिखित है।

29.10.1. पहचान समाप्त होने का भय – विश्व व्यवस्था में किसी राष्ट्रीय क्षेत्र के निर्माण या नई राजनीतिक संरचना की स्थापना से किसी विशेष संजातीय समूह को अपनी पहचान खोने का भय उत्पन्न हो जाता है और वे संघर्ष या हिंसा का रास्ता इसके विरोध में अपना लेते है, यथा भारत में नागा एवं मिजो या असम की विभिन्न जनजातियों ने पहचान में संकट की स्थिति में ही विरोध का रास्ता अपनाया। साथ ही विश्व में कई जगह यह तथ्य दिखाई पड़ा।

29.10.2. अल्पसंख्यक संजातीय समूह में असुरक्षा की भावना – जब किसी संजातीय राष्ट्र में शासक वर्ग द्वारा बहुसंख्यक संजातीय समूह को महत्त्व प्रदान किया जाता है, तो अल्पसंख्यक संजातीय समूह में असुरक्षा की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और इससे अल्पसंख्यक राजनीति प्रारंभ होती है। लोकतांत्रिक शासन–व्यवस्था में इसके विभिन्न

स्वरूप देखने को मिलते है, यथा भारत में कश्मीरी या पंजाबी को या विभिन्न अल्पसंख्यक राजनीति को इस संदर्भ में देखा जाता है।

29.10.3. अल्पसंख्यक समुदाय के प्रति भेदभाव पूर्ण नीति – जब संजातीय समूह के किसी बहुसंख्यक वर्ग द्वारा अल्पसंख्यक संजातीय समूह के प्रति भेदभाव किया जाता है या उन्हें कुछ अधिकारों से वंचित किया जाता है या उन्हें यह आभास होता है कि राज्य की सेवाओं में उनका उचित प्रतिनिधित्व नहीं है, तो ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है, यथा श्रीलंका में तमिलों द्वारा की गई कार्यवाही।

29.10.4. आत्मसात्करण का भय – संजातीय समूह के विभिन्न अल्पसंख्यक वर्ग को अपने बहुसंख्यक वर्ग की ओर से आत्मसात्करण का डर रहता है अतः वे अपनी संजातीय के आधार पर एक संजातीय क्षेत्रीय सीमा बनाए रखने का प्रयास करते है, यथा–पंजाब में सिख समुदाय ने अपनी संजातीयता को बनाए रखने या पहचान बनाए रखने हेतु ही खालिस्तान की मांग की या अन्य उग्रवादी आंदोलनों को संचालित किया।

29.11 सांराश

इस प्रकार संजातीय पुनरूत्थान और पहचान युद्ध के अध्ययन से विश्व संजातीयता की अंसगति तथा आधुनिकीकरण से उनकी पहचान विलुप्त होने की संभावना प्रकट होती है। इस सांस्कृतिक गतिशीलता से विश्व में अनेक जगह कट्टरपंथवाद व संघर्ष की प्रवृत्ति बढ़ी है, क्योंकि संजातीय समूहों ने राज्य के विभिन्न क्रियाकलापों को अपनी संस्कृति एवं अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप माना। राज्य में संजातीय अल्पसंख्यक अपने प्रति भेदभाव के कारण भी स्वायत्तता एवं विभिन्न संघषों को कार्यरूप प्रदान किया। संजातीय संघर्षों एवं विभिन्न संघर्षों को कार्यरूप प्रदान किया। संजातीय संघर्षों को अन्तर्राष्ट्रीय समर्थन मिलने की वजह से भी गति आई।

अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. संजातीयता के विस्तार एवं स्वरूप को समझाईए।
2. पहचान के लिए युद्ध के प्रमुख कारणों का विवेचन कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. संजातीय समूह ने राष्ट्रीयता की भावना को किस प्रकार सीमित किया है ? समझाईए।
2. आत्मसात्कारी दृष्टिकोण को समझाईए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. संजातीयता से क्या अभिप्राय है ?
2. पहचान युद्ध से क्या अभिप्राय है ?

इकाई–30

आदिवासी/मूलवासी आंदोलन संरचना

(Aboriginal / Indigenous Movement)

30.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आदिवासी/मूलवासी आन्दोलन की संरचना, आदिवासी समाज की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक स्थिति मूलवासी आन्दोलन का विस्तार आदि का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- आदिवासी समाज की विशेषताओं को जान सकेंगे।
- आदिवासी समाज की आर्थिक व राजनीतिक स्थिति का अध्ययन कर सकेंगे।
- मूलवासी आन्दोलन के स्वरूप को समझ सकेगे।

30.1 प्रस्तावना

आदिवासी शब्द दो शब्दों 'आदि' और 'वासी' से मिलकर बना है जिसका अर्थ है मूल निवासी। पुरातन लेखों में आदिवासी को आत्विका और वनवासी भी कहा गया है।

सामान्यतः आदिवासी (ऐबोरिजिनल) शब्द का प्रयोग भौगोलिक क्षेत्र में उन निवासियों के लिए किया जाता है जिनका उस भौगोलिक क्षेत्र से प्राचीन सम्बन्ध रहा हो। परन्तु संसार के विभिन्न भू भागों में जहाँ अलग–अलग धाराओं में अलग–अलग क्षेत्रों से आकर लोग बसे हो उस विशिष्ट भू भाग के प्राचीनत्तम अथवा प्राचीन निवासियों के लिए भी इस शब्द का उपयोग किया जाता है। अधिकांश आदिवासी, संस्कृति के प्राथमिक धरातल पर जीवन यापन करते है। वे सामान्यतः क्षेत्रीय समूह में रहते है और उनकी संस्कृति अनेक दृष्टियों से समान होती है। उत्तर और दक्षिण अमरीका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, एशिया तथा अनेक द्वीपों और द्वीप समूहों में आज भी आदिवासी संस्कृतियों के अनेक रूप देखे जा सकते है।

30.2 आदिवासी समाज की विशेषताएँ

आदिवासी समाज की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित है।

1. आदिवासी समाज के लोग आम दुनिया से या समाज से कटे हुए रहते हे।
2. यह पुरातन सामाजिक प्रथाओं में गहरी आस्था रखते है।
3. आदिवासी समाज के लोग सामुदायिक सहभागिता में विश्वास करते है।
4. इनकी अलग भाषा, अलग संस्कृति एवं रीति–रिवाज होते है।
5. इनका तकनीकी ज्ञान और स्तर निम्न होता है।
6. यह लोग भविष्य के लिए बचाकर रखने या संग्रह करने की प्रकृति से मुक्त होते है।
7. आदिवासी समाजों में मुनाफाखोरी की प्रकृति नहीं पायी जाती।
8. आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धों में भेद नहीं होता है।
9. आदिवासी लोगों में नित्यपति आविष्कार, नवाचार और परिवर्तन कम ही होते है।
10. आदिम समाज में व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों प्रकार की सम्पत्ति देखने को मिलती है।

30.3 आदिवासी समाज के आर्थिक संसाधन

आदिवासी समाज के प्रमुख आर्थिक संसाधन निम्नलिखित है।

30.3.1 प्राकृतिक वस्तुएं – आदिम समाजों में प्रकृति द्वारा प्रदत्त अनेक वस्तुएं, सम्पत्ति मानी जाती है। भूमि, प्रारम्भ से ही अचल सम्पत्ति मानी जाती रही है। शिकार करने, फल–फूल एकत्रित करने व पशुचारण करने का आदिम समाजों में एक निश्चित क्षेत्र होता है जिसे सामूहिक सम्पत्ति माना जाता है और सभी लोगों को उस भूमि में शिकार करने, फल–फूल एकत्रित करने व पशुचारण करने का अधिकार होता है। इस क्षेत्र में आने वाले नदी, तालाब, पहाड़, समुद्र, आदि भी सामूहिक सम्पत्ति माने जाते है। भूमि को आदिवासी आर्थिक दृष्टि से ही नहीं देखते वरन् उसके प्रति वे धार्मिक एवं पवित्र दृष्टिकोण भी रखते है। अरूण्टा जनजाति में यह विश्वास प्रचलित है कि कुछ स्थान ऐसे है जहां उनके देवता निवास करते है, स्त्रियां गर्भ–धारण करती है, टोटम निवास करता है या जहां सम्पूर्ण जनजाति की उत्पत्ति हुई है। वह स्थान सारे समूह के द्वारा पवित्र माना जाता है। कई बार भूमि को व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में रखा जाता है। कृषक समुदायों में

प्रत्येक व्यक्ति की कृषि–योग्य भूमि होती है। जिस पर वैयक्तिक अधिकार होता है। ओजिब्वा में कृषि–योग्य भूमि वैयक्तिक सम्पत्ति होती है। कभी–कभी कोई जनजाति यदि दूसरे के क्षेत्र में पशु–चारण, शिकार या फल–फूल एकत्रित करना चाहती है तो उसे उस भूमि में निवास करने वाली जनजाति के मुखिया की स्वीकृति लेनी होती है। अफ्रीका की जनजातियों में सम्पूर्ण भूमि का स्वामी तो राजा होता है, परन्तु वह उस भूमि पर बगीचा लगाने व फल पैदा करने के लिए उसे गोत्र व परिवारों में बांट सकता है। **आस्ट्रेलियन, अफ्रीकन, बुशमैन, श्रीलंका के वेड्डा, साइबेरिया के टुंगस् एस्किमो, कोमाची इण्डियन, शोशोनी** भूमि को सामूहिक सम्पत्ति मानते है तो **ओजिब्वा एवं पश्चिमी अफ्रीका** की जनजाति में भूमि व्यक्तिगत सम्पत्ति मानी जाती है।

30.3.2 मानव निर्मित वस्तुएँ–मानव निर्मित वस्तुएँ जैसे औजार एवं उपकरण जो – एक व्यक्ति के द्वारा बनाये जाते है, वह व्यक्तिगत सम्पत्ति ही होती है। फिर भी दूसरे व्यक्ति उनकों मांगकर अपने काम में ले सकते है जब काम पूरा हो जाय तो उन्हें वापस लौटा देते है। **कैनगैंग** और **एस्किमों** लोगों में औजार व उपकरण निर्मित करने वाले की सम्पत्ति तो होती है परन्तु आवश्यकता होने पर दूसरे व्यक्ति भी उन्हें काम में ले सकते है।

30.3.3 अभौतिक सम्पत्ति – आदिम समाजों में जादू, टोना, कथाएं, गीत–संगीत, आदि भी सम्पत्ति मानी जाती है। अतः एक गोत्र या वंश का कथाओं तथा जादू–टोना, आदि का भी हस्तान्तरण उसी प्रकार से होता है जैसे भौतिक सम्पत्ति का। ट्रोब्रियाण्डा द्वीप में भानजा अपने मामा की भौतिक सम्पत्ति के साथ–साथ जादू–टोना व पद का भी उत्तराधिकारी होता है। हमने ऊपर पॉटलैच प्रथा का उल्लेख किया और देखा कि कई बार व्यक्ति पॉटलैच अपने पूर्वज के पद व नाम को ग्रहण करने के लिए भी देता है। अनेक जनजातियों में पद एवं जादू–टोने, आदि को सीखने के लिए संघर्ष पाया जाता है क्योंकि इनको प्राप्त करने पर व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा ऊंची हो जाती है।

30.4 आदिवासी समाजों में राज्य एवं सरकार

विश्व में अनेक भागों में आदिम समाज में सरकार के विभिन्न रूप दिखाई देते है जिनमें प्रमुख निम्न है।

1. **जनतन्त्र** (Democracy) – इस प्रकार की सरकार उत्तरी अमेरिका की इण्डियन जनजातियों में पायी जाती है। इन लोगों में शासन संचालन का कार्य समाज के सभी लोगों की सहायता से किया जाता है। इनके पूरे समाज को पुलिस समाज भी कहा जाता है।

2. **एकतन्त्र** (Monarchy) – इस प्रकार की सरकार में सत्ता मुखिया या राजा या किसी व्यक्ति में निहित होती है। अफ्रीका में कई जनजातियों में यह व्यवस्था देखी जा सकती है। राजाओं एवं सैनिकों के बीच दायित्वों का वितरण भी ऐसी सरकार में देखने को मिलता है।

3. **वृद्धतन्त्र** (Gerentocracy) – ऐसी सरकार गांव, गोत्र या कुल के वयोवृद्ध मुखियाओं द्वारा संचालित होती है। भारत में असम की नागा जनजाति में मुखिया को सहायता देने के लिए वयोवृद्ध लोगों की परिषदें देखी जा सकती है।

4. **अल्पजन शासित सरकार** (Oilgarchy) – इस प्रकार की सरकार में सरकार का संचालन समाज या समूह के एक छोटे वर्ग के हाथ में होता है।

5. **ईश्वरतन्त्र** (Theocracy) – जब सरकार संचालन का कार्य पुरोहितों या अलौकिक शक्ति के प्रभाव से किया जाता है तो उसे ईश्वरतन्त्रीय सरकार कहते है। अफ्रीका एवं ओसनिया में तथा ट्रोब्रियाण्डा द्वीपवासियों में इस प्रकार की सरकार देखी जा सकती है। कई समाजों में तो धार्मिक पक्ष और लौकिक पक्ष के अलग–अलग प्रशासक होते है।

6. **मूलवासी** (Indigenous) – मूलवासियों को प्रायः अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नागरिक नहीं माना जाता है। उन्हें राज्यों में आरक्षित राज्य क्षेत्रों तक या फिर दुर्गम क्षेत्रो तक परिरूद्ध किया गया है। वहीं सरकार द्वारा अपनाई गई दमनकारी नीतियों ने उन्हें विलोप होने के लिए उनके भाग्य भरोसे छोड़ दिया है परन्तु अब नई अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा उनकी अनूठी जीवन पद्धति को स्वीकारती है। विशेष अभिकत्ताओं के रूप में मूलवासी लोगों का आविर्भाव न केवल राष्ट्रीय स्तर पर हुआ है, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उनके कार्यक्षेत्र को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राजनीति में मूलवासी लोगों की बढ़ती हुई लोकप्रियता को स्वीकारते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा वर्ष 1993 को विश्व के मूलवासी लोगों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष के रूप में तथा 1995 से 2004 को अन्तर्राष्ट्रीय दशक के रूप में घोषित किया गया।

आज दुनिया में मूलवासी तथा देशी शब्दों की चर्चा जोरों पर है। वहीं जनजाति शब्द से आशय ऐसे नृजातीय समूह से लगाया जाता है, जो किसी देश विशेष की मुख्यधारा से पृथक् होता है। आधुनिक भारतीय इतिहास में जनजाति शब्द का प्रयोग भारतीय समाज की मुख्य विशेषता जातीय व्यवस्था से भिन्न समाजों के लिए किया जा रहा है, जनजातीय समुदाय भारतीय जीवन की मुख्य धारा से पृथक् रहे है। उन समाजों में सामाजिक समानता विद्यमान होती है, फिर भी उन्हें मुख्य समाज से भिन्न माना जाता है। हालांकि यह भारत के संदर्भ में कुछेक खाद्य संग्राहक जनजातियों के संदर्भ में ही सत्य है, क्योंकि जनजाति समाज प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज के अंग रहें है। जनजातीय समाज के नाम

समय–समय पर बदलते भी रहे है जैसे यूरोप के लैपसों को अब सभी के रूप में जाना जाता है। वहीं कनाडा के एस्कियों को उन्यूट और अफ्रीका के बुशमैन को आज साम के नाम से जाना जाता है। उसी तरह ब्रिटिश आउसेल्स के केल्टिक जनसमुदाय फ्रांस में ब्रिटेनी और स्पेन में गेलिसिया फ्रांस, पुर्तगाल और स्पेन के बास्क लोग, ग्रीनलैण्ड, नार्वे, स्वीडन, फिनलैण्ड और पूर्व सोवियत संघ के सामी लोग। एशिया में, भारत, बंगलादेश, पाकिस्तान और चीन में विभिन्न जनजातियां या पर्वतीय लोग, जापान के ऐमू लोग इसके अलावा साइबेरिया में कई मूलवासियों के समूह उनमें से कुछ को उन्सूट लोगों का भाग माना जाता है। वहीं ओसियाना में फिलिपाइन्स इंडोनेशिया, बुनेई और पापुआ न्यूगिनी में मूलवासी लोगों की संख्या अधिक है। वहीं आस्ट्रेलिया में आदिम जाति के कुछेक लोग है, तो न्यूजीलैण्ड में माओरी लोग मूलवासी है। मूलवासी लोगों का विस्थापन सामान्यतः संजातीय रूप से और सांस्कृतिक रूप से उन भिन्न–भिन्न समूहों द्वारा उनके राज्य क्षेत्र के आक्रमण के परिणामस्वरूप होता है। मूलवासी समुदाय को नियंत्रण में लेने के बाद उनके सांस्कृतिक मानक भी बदलते है, और मूलवासी लोगों की संस्कृति, पहचान तथा उसके परम्परागत इतिहास का दमन करते है। दुनिया में उपनिवेशवाद की व्यवस्था के ऐतिहासिक पहलुओं का अध्ययन करके उसके वास्तविक चरित्र का पता लगाया जा सकता है। वैसे उपनिवेशी देश अपनी इच्छा से ही यह विश्वास कर लेता है कि भौतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से उसकी संस्कृति मूलवासी लोगों की संस्कृति से अधिक श्रेष्ठ है। विश्व के अधिकांश मामलों में आक्रमणकारी देश उस हारे हुए समाज के विभिन्न संसाधनों पर पर्याप्त नियंत्रण स्थापित कर लेता है तथा मूलवासी लोगों को विजय की प्रक्रिया में हुए अन्याय को सुधारने के प्रयास में थोपी गई कानूनी प्रणाली अपनाने के लिए बाध्य करता है।

30.5 मूलवासी आंदोलनों का विस्तार

आधुनिक विश्व इतिहास में जनजातीय विरोधी आंदोलन का स्वरूप एक समान रहा है, क्योंकि ये जनजातिया किसी एक क्षेत्र से संबंधित होती थी। इसलिये जनजातीय आंदोलन का एक क्षेत्र विशेष का संपूर्ण जनसमुदाय आंदोलित हो उठता था। जनजातीय समुदाय स्वयं को एक विशिष्ट पहचान के रूप में मानते थे। वस्तुतः एक जनजाति किसी दूसरी जनजाति पर तब तक आक्रमण नहीं करती थी, जब तक वह उनेक शत्रु की सहायता न कर रही हो। लगभग सभी जनजातीय आंदोलन बाहरी लोगों के विरोध में हुए, किन्तु इन आंदोलनकारियों ने उन गैर–जनजातीय गरीबों के साथ कभी हिंसा नहीं की, जो जनजातीय गांवों की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

यद्यपि मूलवासी आंदोलन के व्यापक विस्तार के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विकास से संबंधित थे। नाजीवादी व्यवस्थाओं के विरूद्ध संघर्ष प्रजातिवाद–विरोधी और मानव अधिकार के झंडे के नीचे आरंभ किया गया था। इसलिए मांगों की अनदेखी करना कठिन था, जो उन संजातीय समूहों से आई थी, जिन्हें पहले असभ्य और लुप्त होने के कगार पर समझा गया था। वहीं दुनिया से उपनिवेश व्यवस्थाओं से मुक्ति की लहर ने संजातीय समूहों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न की, जो आंतरिक उपनिवेश की प्रजा थी। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उपनिवेश मुक्ति आंदोलन संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा आगे बढ़ाया गया, जब 1960 में एक संकल्प ने यह सिद्धांत निर्धारित किया कि सभी लोगों को आत्मनिर्णय का अधिकार है इसलिए अपना सामाजिक और सांस्कृति विकास का निर्धारण करने के लिए स्वतंत्रता तो अवश्य होनी चाहिए, क्योंकि यह समस्त मानवीय अधिकारों के रक्षासूत्र है। जैसा कि ज्ञातव्य है मानव अधिकारों पर अभिसमयों के माध्यम से 1966 में अल्पसंख्यकों को तदनुसार परन्तु अधिक सीमित सिद्धांत प्रदान किए गए। हालांकि वास्तविक तौर पर 1970 के ईद–गिर्द संयुक्त राष्ट्र के अन्दर मुद्दे के रूप में उठाए जाने के लिए संजातीय लोगों के प्रश्न का मार्ग प्रशस्त किया था।

मानवीय कल्याण के आधार पर सबसे संजातीय समूहों की सहायता करने की आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही औद्योगिक एवं प्रौद्योगिक विकास की गति तेज की गई थी। इस कार्य को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, लीग ऑफ नेशन्स के एक अंग ने काफी पहले 1920 के दशक में ही आरम्भ कर दिया था। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि मूलवासी से संबंधित लोगों के इस विषय ने अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप ले लिया था, जिसके कारण उससे निपटने के लिए विश्वव्यापी नीति की आवश्यकता थी। चूँकि उस समय दुनिया में आंतरिक संजातीय राजनीतिक परिस्थिति बदल गई थी, जिसके कारण राष्ट्र राज्य के अंदर उनकी स्थिति पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विचार करना पड़ा। फर्स्ट नेशन्स पीपल ऑफ चर्च, अमेरिका और उत्तरी यूरोप के सामी, दोनों का भिन्न–भिन्न आंतरिक इतिहास था और अपने–अपने राष्ट्र–राज्यों में अलग–अलग तरह का था। इन दोनों मूलवासियों में एक समानता थी कि 1970 के दशक के दौरान दोनों संजातीय लोगों का अन्तर्राष्ट्रीय नेटवर्क बनाने में और संजातीय लोगों को अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर लाने में सक्रिय थे। हालांकि शुरू में यह किसी भी दशा में अभिगृहण योग्य नहीं समझा गया कि उन समूहों में संजातीय राजनीतिक आंदोलन अन्तर्राष्ट्रीय रूप में ले सकेंगा, चूँकि अधिकाश मूलवासी लोगों से संबंधित मामला है तथा उनके संबंध केवल स्थानीय मुद्दों से जुड़े होते थे, जिनका समाधान राष्ट्र–राज्य की सीमा के अंदर ही किया जा सकता था। अतः कहा जा सकता है कि 1970–1980 के दशक में जाकर मूलवासी लोगों का संगठन स्थानीय और क्षेत्रीय तथा विभिन्न राष्ट्रीय स्तर के संघीय संगठनों तक प्रचुर मात्रा में अस्तित्व में आया, जिसके कारण सुविकसित अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों तथा दलों से उनका संबंध स्थापित हो सका।

30.5.1 संयुक्त राज्य अमेरिका– विश्व की महाशक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका एक संघीय गणतंत्र है। उसमें 50 राज्य (प्रान्त) शामिल है, जिनका अपना अलग–अलग संविधान है। 1944 में पहला पैन–इंडियन संगठन नेशनल कांग्रेस ऑफ अमेरिकन इंडियन्स का गठन किया गया था। इस संगठन का मूल उद्देश्य मूलवासी लोगो को शिक्षा, स्वास्थ्य, उनकी संस्कृति तथा उनके परम्परागत इतिहास की सूविधा मुहैया कराने के लिए अभियान चलाना था। 1944 में सिर्फ 50 जनजाति के प्रतिनिधि थे। वह 1978 में 158 हो गए। 1973 में मूलवासी लोगो को विश्वव्यापी संगठन बनाने का मौका मिला, जिसने बाद में जाकर 1975 में पोर्ट अल्बेनी में आयोजित सम्मेलन में वर्ल्ड कौंसिल ऑफ इंडियन्स पीपल्स की स्थापना की। इस सगंठन ने 1972 में पूरे देश में प्रदर्शन किए और शासन व्यवस्था पर अधिक से अधिक दबाव डालने के लिए 1974 में अपने राजनायिक साधन के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय इंडियन संधि परिषद की स्थापना की। 1977 में यह पहला संगठन था जिसे गैर–सरकारी संगठन के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मान्यता प्रदान की गई थी। कहा जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय इंडियन संधि परिषद मूलवासी लोगों का अंग था, जिसने संयुक्त राष्ट्र प्रणाली में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कर्या किया। अन्तर्राष्ट्रीय इंडियन संधि परिषद की शक्ति इस तथ्य में निहित है कि यह शत–प्रतिशत अमेरिकी है और इससे उसे अन्य राष्ट्र राज्यों में मूलवासी लोगों की इच्छाओं और रणनीतियों से कोई संबंध नहीं है। पैन अमेरिकी संगठन सार्वजनिक चर्चाओं और ध्यान आकर्षण के माध्यम से उन मूलवासी लोगों पर चर्चा के रूप और वाक्पटुता दोनों को प्रभावित करते है, जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आम दृष्टिगोचर हो रहे है।

30.5.2 ऑस्ट्रेलिया – ऑस्ट्रेलिया संघीय राज्य है जिसका 1901 में यहां के सारे प्रान्तों ने मिलकर ऑस्ट्रेलिया राष्ट्रकुल का निर्माण किया तथा अपनी राजधानी 1910 ई. में केनबरा में बनायी। 1920 से 1930 तक ऑस्ट्रेलिया की सरकार आदिवासियों पर ध्यान नहीं देती थी, जिसके कारण उसे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दबाव झेलना पड़ा था। यद्यपि 1974 तक अश्वेतों का आवागमन बंद रहा है। 1986 ई. में रानी एलिजाबेथ द्वितीय ने ऑस्ट्रेलिया एक्ट पर हस्ताक्षर करके ऑस्ट्रेलिया के साथ अंतिम संबंध भी समाप्त कर दिए। एलिजाबेथ संवैधानिक रूप से ऑस्ट्रेलिया की भी साम्राज्ञी थी। मार्च, 2002 में क्वींसलैंड के कूलम में राष्ट्र मंडल सम्मेलन हुआ था, जिसमें आतंकवाद मिटाने की कार्य योजना पर विशेष बल दिया गया।

30.5.3 कनाडा – कनाडा विश्व का द्वितीय सबसे बड़ा राष्ट्र हे। कनाडा एक संघ राज्य है। इसका कुल क्षेत्रफल 99,84,670 वर्ग किलोमीटर है। 1982 के ऐतिहासिक कनाडा एक्ट के द्वारा ब्रिटेन ने कनाडा को समस्त संवैधानिक अधिकार प्रदान कर दिये गये। कनाडा में बसे भारतीय मूल के लोगों के साथ भी 1970 से पहले अधिक भेदभाव किया जाता था। जब राष्ट्रीय इंडियन परिषद की स्थापना हुई, तब जाकर भारतीय संस्कृति को राजनीतिक अनुरूपता के समान दर्जा मिल सका। हालांकि संगठन को अपनी स्थापना के समय से ही प्रमुख आंतरिक विभाजन अधिकारों के विरूद्ध संघर्ष करना पड़ा था, अब भी वहां की सरकार उस तरह की संस्था जैसे राष्ट्रीय इंडियन परिषद को प्रतिनिधि संस्था नहीं मानती, जबकि 1969 के श्वेतपत्र द्वारा यह स्वीकार किया गया कि सभी कनाडावासियों के साथ एक समान व्यवहार किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय इंडियन परिषद के बाद 1969 में एक नया संगठन राष्ट्रीय सरकारी श्वेतप्रत्र का विरोध किया गया था, जबकि वर्तमान में मूलवासी लोगों की कोई अलग से नीति नहीं है। अब तो मूलवासी लोगों को अपना अन्तर्राष्ट्रीय नेटवर्क बनाने की पहल करने का अवसर प्राप्त हो चुका है। वर्तमान समय में राष्ट्रीय भाईचारा नामक संस्था का नाम ''असेम्बली ऑफ फर्स्ट नेशन्स'' रख दिया गया।

30.5.4 लेटिन अमेरिका – लेटिन अमेरिका में 1960 के दशक में पहला मूलवासी आंदोलन इक्वाडोर में प्रारम्भ हुआ था। भूतपूर्व स्पेनिश उपनिवेश इक्वाडोर दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट पर स्थित है। 1533 में स्पेन के अधीन आने के पूर्व इक्वाडोर महान् इन्कों साम्राज्य का एक भाग था। उसे 1830 में स्वाधीनता प्राप्त हुई। हालांकि यहअपनी स्वतन्त्रता के बाद भी लगातार राजनीतिक अस्थिरता के दौर से गुजर रहा है। 1978 में एक नए संविधान को अंगीकृत किया है। 1999 का वर्ष आर्थिक दृष्टिकोण से पिछले 70 वर्षों के मुकाबले आर्थिक स्थिति अधिक दयनीय रही, क्योंकि उस दौरान उसकी मुद्रा सुक्रे की कीमत एक अमेरीकी डॉलर के बदले 8,650 सुक्रे हो गयी थी।

मूलवासी आंदोलन के प्रमुख मुद्दे – विश्व में मूलवासी आंदोलन का स्वरूप एक समान रहा है तथा उसकी प्रमुख मांग आत्मनिर्णय की रही है। मूलवासी लोग अपने जीवकोपार्जन के लिए वनों एवं कृषि पर निर्भर करते थे, जिसके कारण उन्हें भूमि से अधिक लगाव था। मूलवासी लोगों के पादपों और परम्परागत उपचार प्रथाओं से विकसित औषधियों के लिए बौद्धिक सम्पदा अधिकारों से संबंधित प्रश्न उठाए गए है। इस नयी बौद्धिक सम्पदा अधिनियम से अनुसधानकर्त्ता परम्परागत औषधियों का अध्ययन करते है और उसके प्रयोग तथा प्रभाविता की जांच करते जाते है जब अनुसंधानकर्त्ता तब औषधि का परिष्करण करता है और अनुसंधानकर्त्ता या उसकी कंपनी को पेटेन्ट का अधिकार प्राप्त होता है। हालांकि विश्व स्तर पर इस संस्था की स्थापना 1970 में की गई थी, जिसका मुख्य कार्य प्रौद्योगिकी हस्तांतरण प्रक्रिया को सरल बनाना, रचनात्मक गतिविधियों को प्रोत्साहन देना, कलात्मक तथा साहित्य के प्रसार द्वारा औद्योगिक एवं सांस्कृतिक विकास को बढ़ावा देना, बौद्धिक सम्पदा संरक्षण में सहायक चालू संधियों एवं समझौतों को स्वीकृत करना एवं प्रोत्साहन

देना, राष्ट्रीय बौद्धिक सम्पदा कानूनों के निर्माण में मदद करना तथा विकासशील देशों को विधिक एवं प्रौद्योगिकी संबंधी सहायता प्रदान करना इस संगठन के प्रमुख कार्य है।

वस्तुतः इस सबके बावजूद इस व्यवस्था से मूलवासी लोगों के आर्थिक आधार पर खतरा उत्पन्न होगा, क्योंकि अधिकाश मामलों में उस जनजाति को कोई क्षतिपूर्ति नहीं दी जाती, जिसने उसे सुरक्षित रखा और वास्तव में दवाई की खोज की थी। उसमें सम्मिलित मूलवासी लोगों को क्षतिपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए प्रक्रिया का सुधार करने के प्रस्ताव पर हाल ही में चर्चा की गई और जिसे विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन द्वारा अस्वीकृत किया गया। आज भी दुनिया में मूलवासियों की आवश्यकताओं और इच्छाओं को ध्यान में रखे बिना उस संसाधन का दोहन करके लाभ प्राप्त कर रहा है। इसके अलावा सास्कृतिक परम्पराओं और भाषाओं का संरक्षण बहुत से उन मूलवासियों के लिए उच्च प्राथमिकता का विषय है जो सामान्यतः उपनिवेश के समाज में अल्पमत में है। अधिकांश ऐसे बहुसंख्यक समाज औपचारिक सरकारी कामकाज में देशी भाषाओं के प्रयोग करने की अनुमति देने में अत्यधिक अनिच्छुक रहते है, यद्यपि देशीय भाषाओं को देशीय लोगों के प्रयोग के लिए सरकारी भाषा के रूप में स्वीकृत किए जाने के उदाहरण लिए जा सकते है।

30.6 सारांश

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि आदिवासी या मूलवासी लोग निर्धनता अज्ञानता, बीमारियों तथा सब प्रकार के शोषण से ग्रस्त है। सदियों तक मूलवासी जनसख्या भौगोलिक पृथक्करण में रही है जबकि आदिवासी लोग प्रारम्भिक संघर्षकर्त्ता है जिन्होंने विदेशी शासकों के विरूद्ध न केवल आवाज उठाई बल्कि संघर्ष भी किए। इस प्रकार आदिवासी या मूलवासी समाज विभिन्न समस्याओं से ग्रसित है। यद्यपि संयुक्त राष्ट्र संघ, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन व मानवाधिकार आयोग जैसी सस्थाएँ इनकी समस्याओं के समाधान के लिए प्रयास कर रही है लेकिन यह पर्याप्त नही है।

अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. आदिवासी समाज के प्रमुख आर्थिक संसाधनों का विवेचन कीजिए।
2. मूलवासी आंदोलन के प्रमुख मुद्दों एवं इसके वेश्विक विस्तार को समझाईए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. आदिवासी समाज की प्रमुख विशेषताए लिखिए।
2. आदिम समाज में सरकार के कौन–कौनसे रूप दिखाई देते है।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. आदिवासी शब्द का अर्थ बताईए।
2. आदिवासी की अभौतिक सम्पत्ति क्या है?

इकाई – 31

जनसंख्या विस्थापनः राज्यांतरिक और अंतर्राज्य

(Displacement of Population Intra-State)

31.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में जनसंख्या विस्थापन के विभिन्न पक्षों, जनसंख्या विस्थापन के कारण, जनसंख्या विस्थापन में बाधाएं एवं इसका प्रभाव आदि का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- जनसंख्या विस्थापन के अर्थ को समझा सकेगें।
- जनसंख्या विस्थापन के विभिन्न पक्षों की जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- जनसंख्या विस्थापन के मार्ग में बाधाएँ और इसके प्रभावों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

31.1 प्रस्तावना

जब मानव या मानव समूह एक निवासित स्थान से अन्य स्थान पर एक क्षेत्र से अन्य क्षेत्र को, एक देश से अन्य देश में स्थान परिवर्तन करता है, तो उसे जनसंख्या विस्थापन या जनसंख्या स्थानान्तरण कहा जाता है। मनुष्य जहाँ से स्थान परिवर्तन करता है, वहां उसके स्थानान्तरण को प्रवासन (Emigration) तथा प्रवासित जनसंख्या जहां जाकर बसती है, वहां उसे आवासन (Emigration) की संज्ञा दी जाती है।

अंतर्राज्यीय विस्थापन से अभिप्राय राष्ट्रीय सीमाओं के पार लोगों के जबरदस्ती अप्रवासन से है। ध्यान रहे अन्तर्राष्ट्रीय कानून के मुताबिक जिन्हें राष्ट्रीय सीमाओं के पार विस्थापित किया जाता है या अंतर्राज्यीय रूप से विस्थापित किया जाता है, उन्हें ही शरणार्थियों के रूप में परिभाषित किया जाता है। जैसे–यूरोप में श्रींलका के शरणार्थी तथा संयुक्त राज्य अमेरिका में वियतनाम के शरणार्थी।

वहीं राज्यांतरिक विस्थापन में राज्य की राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर विस्थापित होते है। राज्य की राष्ट्रीय सीमाओं के अंदर विस्थापन के परिणामस्वरूप बलपूर्वक स्थानान्तरण को देशीय व्यक्तियों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। जिन लोगों को विकास कार्यो, जैसे–सड़कों, रेलमार्गो, बाँधों तथा परियोजनाओं के निर्माण के कारण बलपूर्वक स्थानान्तरित किया जाता है, वे राज्यांतरिक विस्थानक की श्रेणी में आते है।

31.2 जनसंख्या विस्थापन/स्थानान्तरण के पक्ष (Aspects of Displacement / Migration of Population)

जनसंख्या स्थानान्तरण के पाँच महत्त्वपूर्ण पक्ष होते है।

1. देश पक्ष (Space Aspect)
2. काल पक्ष (Time Aspect)
3. कारण पक्ष (Cause Aspect)
4. संख्या पक्ष (Number Aspect)
5. स्थिरता पक्ष (Stablility Aspect)

1. देश पक्ष (Space Aspect) – देश पक्ष में यह विचार किया जाता है, कि जनसंख्या किस प्रदेश या क्षेत्र से कहाँ को प्रवास करती है। उदाहरण के लिये, मध्य एशिया से शक और हूण वर्गों के मनुष्य भारत और यूरोप को आये थे। चीन में कई मानव–वर्ग हिन्द चीन, वियतनाम, कम्पूचिया, आदि को गये थे। ब्रिटेन के मनुष्य कनाड़ा, ऑस्ट्रेलिया आदि में जाकर बस गये। इस स्थान–पक्ष की दृष्टि से स्थानान्तरण के चार भेद होते है।

(i) अन्तर्महाद्वीपीय स्थानान्तरण (Inter-continental migration) में एक महाद्वीप से, दूसरे महाद्वीप को मानव–प्रवास होता है। इस प्रकार के सबसे बड़े स्थानान्तरण सत्रहवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक यूरोप के पश्चिमी देशों से उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड को हुये थे।

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय (International) स्थानान्तरण में एक ही महाद्वीप के अन्दर, एक देश के मनुष्य दूसरे देश को चले जाते है। उदाहरण के लिये, चीन के मनुष्य इण्डोनेशिया और वियतनाम में जाकर बस गये है। भारत और पाकिस्तान के बीच जो जनसंख्या स्थानान्तरण हुआ है, वह अन्तर्देशीय (International) है, अर्थात् एक महाद्वीप के अन्दर ही दो देशों के बीच है।

(iii) अन्तर्प्रान्तीय (Inter-provincial) स्थानान्तण में एक ही देश या राष्ट्र के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को मानव–प्रवास होता है। जैसे कि पंजाब के बहुत से परिवार उत्तर प्रदेश में आकर बसे गये है, या मारवाड़ी परिवार महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश, पश्चिमी बंगाल आदि क्षेत्रों में जाकर बस गये है।

(iv) स्थानीय प्रवास (Local migration) में एक जिले से दूसरे जिले को या गाँव से नगर की स्थानान्तरण होते है। कहीं–कहीं एक गाँव के मनुष्य दूसरे गाँव में खेती के लिये अधिक भूमि या अन्य सुविधा पाकर वहाँ जा बसते है। किसी बड़े नगर के समीपवर्ती गाँवों के बहुत–से मनुष्य मजदूरी या नौकरी करने के लिये या तो उस नगर में जा बसते है, या प्रतिदिन वहाँ जाते रहते है।

बीसवी शताब्दी में, लगभग सभी देशों में औद्योगीकरण का विकास हुआ है। सबेसे अधिक औद्योगीकरण पश्चिमी यूरोप और संयुक्त राज्य में हुआ है। इसके फलस्वरूप वहाँ बड़े–बड़े औद्योगिक नगर बस गये है। चीन, जापान, भारत और पाकिस्तान में भी अब नगरीकरण बढ़ रहा है। अतः नगरों के बढ़ते हुये कारखानों, मिलों, फैक्टरियों और कार्यालयों में मजदूरों तथा नौकरी करने के लिये गाँवों से बहुत से मनुष्य नगरों में जा बसे है।

2. काल पक्ष (Time Aspect) – काल पक्ष के अन्तर्गत प्रवासन या आवासन समय को महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस दृष्टि से इसका अध्ययन निम्नांकित रूप में किया जा सकता है।

(i) दीर्घकालीन प्रवास – इसमें प्रव्रजन की कालिक प्रवृत्ति दीर्घकालीन होती है। ऐसे प्रव्रजन प्रायः अन्तर्महाद्वीपीय व अन्तर्राष्ट्रीय हुआ करते है। 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में लोग यूरोप महाद्वीप से उत्तरी अमेरिका व दक्षिणी अमेरिका आदि महाद्वीपों में जाकर बसे एवं विकास कार्य किये। कुछ देशों में भी लोग राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक आदि कारणों से दीर्घकालीन प्रवास व आवासन करते रहते है।

(ii) अस्थाई या मौसमी प्रवास – अस्थाई प्रव्रजन अल्पकालिक होता है। इसके अन्तर्गत जनसंख्या किसी देश अथवा स्थान में स्थायी रूप से बसती नहीं है। बल्कि अपने उद्देश्यों की पूर्ति के पश्चात् पुनः अपने मूल स्थान को प्रत्यावर्तित हो जाती है। इसी के अन्तर्गत एक अन्य तरह का प्रवास होता है, जिसे मौसमी प्रवास (Transhumance) की संज्ञा दी जाती है। ऐसे प्रवास क्षेत्रीय उच्चवच व जलवायु से प्रभावित होते है। इस प्रकार के प्रवास का सुन्दर उदाहरण भारतवर्ष के पर्वतीय क्षेत्रों में पशुचारकों से लिया जा सकता है, जो ग्रीष्म ऋतु में पर्वतों पर जाकर पशुचारण करते है तथा शीत ऋतु में मैदानी भागों की ओर वापस आ जाते है। ऐसे उदाहरण विश्व के अनेक क्षेत्रीय पशुचारक जनजातियों से ग्रहण किये जा सकते है।

(iii) दैनिक प्रवास – इस प्रकार का प्रव्रजन पूर्णरूपेण अस्थाई होता है। ऐसे प्रव्रजन के अन्तर्गत बड़े–बड़े नगरों, कस्बों आदि में ग्रामीण क्षेत्रों से मजदूरी करने, दूध, शाक–सब्जी, बेंचने एवं अध्ययन–अध्यापन व अन्य कार्यों से आना जाना होता है, जिसकी अवधि मात्र दिनभर की होती है।

3. कारण पक्ष – कारण पक्ष के अन्तर्गत जनसंख्या स्थानान्तरण होने के कारणों का विवेचन किया जाता है। प्रव्रजन निम्नांकित कारणों से सम्भव होता है।

(i) भौतिक कारण – प्रव्रजन को प्रभावित करने वाले भौतिक कारणों में जलवायु परिवर्तन, भूकम्प, भयंकर बाढ़ या तूफान का आना, भू–आकृतिक परिवर्तन आदि कारण मुख्य है। इन कारणों से जनंसख्या स्थान व क्षेत्र त्यागकर अन्यत्र जाकर बसती ही नही है, वरन् अपार धन–जन की हानि भी होती है।

(ii) आर्थिक कारण – विश्व के लगभग सम्पूर्ण कार्य आर्थिक दृष्टि से हुआ करते है। किसी देश, क्षेत्र अथवा स्थान से भुखमरी एवं अनार्थिकता से जूझता हुआ मनुष्य अन्यत्र, जहाँ उसे राहत मिलने की सम्भावना दिखती है, स्थानान्तरण कर जाता है। भले ही इसका प्रवास मात्र महीनों या कुछ वर्षो का ही क्यों न हो। भारतवर्ष में ऐसे उदाहरण अनेक है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में अधिसंख्यक लोग गरीबी के कारण मुम्बई, कोलकाता, दिल्ली आदि विशाल नगरों में जाकर अर्थोपार्जन कर रहे है। यहाँ से मजदूर कारीगर, लिपिक, डाक्टर आदि के रूप में अपेक्षाकृत अधिक धन अर्जित करने हेतु लोग अरब देशों में दिखाई दे रहे है, जबकि इससे उनके पारिवारिक जीवनतंत्र में शिथिलता आ जाती है।

(iii) सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारण – सामाजिक व सांस्कृतिक कारणों से भी प्रव्रजन प्रभावित होता है। भारतवर्ष से श्रीलंका, चीन, जापान आदि देशों में धार्मिक प्रवास हुए है। यूरोपीय देशों से उत्तर व दक्षिण अमेरिकी, अफ्रीकी व एशियाई देशों में धार्मिक प्रचार व प्रसार के लिये 19वीं शताब्दी में महत्त्वपूर्ण प्रवास हुए है। इन प्रवासों द्वारा विभिन्न देशों के मध्य सांस्कृतिक प्रगाढ़ता उत्पन्न होती है।

(iv) राजनीतिक कारण – राजनीतिक कारणों से अन्तर्राष्ट्रीय प्रव्रजन हुआ करते है। जब दो देशों के बीच युद्ध होता है तो विजय, पराजय अथवा समझौतें की स्थिति में जनसंख्या का प्रवासन या अप्रवासन होता है, जो अधिक कष्टकर होता है। इसका उदाहरण भारत–पाक विभाजन के समय दोनों देशों की ओर आने–जाने वाली जनसंख्या से ले सकते है। आज विश्व की महाशक्तियों की कुदृष्टि से सम्पूप्र विश्व विशेषकर दक्षिण व दक्षिण–पश्चिमी एशिया तथा अफ्रीकी लोग त्रस्त है। प्रव्रजन को प्रभावित करने वाले प्रमुख राजनीतिक कारक निम्नलिखित है।

(अ) आक्रमण – एक देश के दूसरे देश पर आक्रमण करने से उन देशों में निवास करने वाली जनसंख्या को बहुत कष्ट का सामना करना पड़ता है। युद्धोपरांत उन्हें हार–जीत या समझौते के अनुसार अपनी सम्पत्ति आदि की बिना परवाह

किये किसी ओर आना–जाना पड़ता है। आज विश्व के अनेक देशों में ऐसी स्थिति दिखाई पड़ रही है। इस समय विश्व का सबसे बड़ा संकट अस्त्र–शस्त्र की जमाखोरी की होड़ तथा आणविक हथियारों के फलस्वरूप उत्पन्न विनाशकारी स्थिति है जिससे मानवता ही संकटग्रस्त दिखाई दे रही है।

(ब) उपनिवेशन – विश्व में वृहत् स्तर पर हुए प्रव्रजन का कारण उपनिवेश की क्रिया ही रही है। यूरोपीय देशों के लोगों ने संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाड़ा, दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीकी, एशियाई देश तथा आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैण्ड को अपना उपनिवेश बनाया, जिसके फलस्वरूप भारी संख्या में जनसंख्या स्थानान्तरण हुआ है। इसका विस्तृत वर्णन आगे किया गया है।

(स) बलात् प्रव्रजन – कभी–कभी किसी देश की सरकार बलात् प्रव्रजन करने को बाध्य किया करती है। ऐसा प्रव्रजन अन्तर्देशीय या अन्तर्राष्ट्रीय होता है। सरकार का, जिनसे शान्ति भंग, तख्ता पलटने का भय होता है, उन्हें बलात् निर्वासित कर दिया जाता है। इस प्रकार का निर्वासन किसी देश के अन्दर एक जनपद से दूसरे जनपद में, एक राज्य से दूसरे राज्यों में तथा एक देश से अन्य देश में होता दिखाई देता है। उदाहरण के लिए तमिल नेता को भारत सरकार ने श्रीलंका में विद्रोह फैलाने के आरोप में विमान द्वारा बलात् अमेरिका भेज दिया। ऐसे उदाहरण आजकल बहुत देखने को मिलते है।

(4) संख्या पक्ष (Cause Aspect) – प्रव्रजन ने संख्या पक्ष के अन्तर्गत प्रवसित या अप्रवासित जनसंख्या की संख्या पर विचार किया जाता है। इस दृष्टि से निम्नलिखित 3 प्रकार के प्रव्रजन का अध्ययन किया जाता है।

(i) वृहद्स्तरीय प्रव्रजन – संख्या की दृष्टि से यह प्रव्रजन प्रथम वर्ग का है। इसके अन्तर्गत प्रायः अन्तर्महाद्वीपीय प्रव्रजन सम्मिलित किये जाते है जिनमें लाखों की संख्या में जनसंख्या का स्थानान्तरण होता है। ऐसे उदाहरण 18वीं व 19वीं शताब्दी में देखने को मिले है।

(ii) मध्यमस्तरीय प्रव्रजन – मध्यमस्तरीय प्रव्रजन के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय व अन्तदेशीय स्थानान्तरण सम्मिलित किये जाते है, जो संख्या की दृष्टि से मध्यम स्तर के माने जाते है।

(iii) लघुस्तरीय प्रव्रजन – इस प्रव्रजन के अन्तर्गत अस्थाई, मौसमी तथा दैनिक स्थानान्तरण सम्मिलित किये जाते है। ये स्थानान्तरण संख्या की दृष्टि से सबसे छोटे स्तर के माने जाते है।

(5) स्थिरता पक्ष – इस पक्ष के अन्तर्गत प्रवासी जनसंख्या नये देशों में, जाकर स्थाई रूप से बस जाती है। उदाहरणस्वरूप यूरोपीय जनता उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका व आस्ट्रेलिया में स्थाई रूप से बस गई है।

31.3 विश्व में प्रमुख प्रतिस्थापन / स्थानान्तरण (Major Displacement / Migrations of the world)

विश्व में हुए मानक के प्रमुख प्रव्रजन या स्थानान्तरण को अध्ययन की सूविधा की दृष्टि से, दो प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है।

(अ) प्रागैतिहासिक प्रव्रजन

(ब) ऐतिहासिक प्रबन्धन (18वीं से 20वीं शताब्दी तक)

(अ) प्रागैतिहासिक प्रव्रजन – प्रागैतिहासिक काल में जनसंख्या का प्रमुख स्थानन्तरण मध्य एशिया से विश्व के अनेक क्षेत्रों अथवा देशों की ओर हुआ था।

1. मध्य एशिया से पूर्वी यूरोप में यूक्रेन प्रदेश, वोल्गा घाटी तथा पश्चिमी काला सागर तटीय भाग से होते हुए डेन्यूब घाटी तक।
2. मध्य एशिया से मंगोलिया एवं अनादिर प्रायद्वीप की ओर।
3. अनादिर प्रायद्वीप से भी कुछ जनसंख्या बेरिंग सागर होते हुए उत्तरी अमेरिका गई। उस समय कनाडा की जलवायु आज जैसी कठोर नहीं थी।
4. मध्य एशिया से पूर्वी चीन की ओर।
5. मध्य एशिया से खैबर तथा अन्य दरों के रास्ते सिन्धु घाटी में आकर सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रसार हुआ।
6. मध्य एशिया से ईरान, दजलाफरात के उर्वर प्रदेश होते हुए मिस्त्र की नील घाटी की ओर।

(ब) ऐतिहासिक प्रव्रजन (18वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी तक) – इस प्रकार प्रव्रजन सघन जनसंख्या वाले क्षेत्रों से कम आबादी वाले क्षेत्रों की ओर हुए है। इसके अतिरिक्त ऐसे प्रव्रजन ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय व औद्योगिक केन्द्रों की ओर भी हुए है। इस प्रकार प्रव्रजन का स्वरूप अन्तर्महाद्वीपीय, अन्तर्राष्ट्रीय, अन्तर्राज्यीय व स्थानीय स्तर पर देखा जा सकता है। विश्वस्तर पर निम्नांकित प्रव्रजन प्रमुख रहे है।

1. यूरोपीय प्रव्रजन – 17वीं शताब्दी से लेकर 20वीं शताब्दी के मध्य तक यूरोपीय देशों से उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका, उत्तरी व दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैण्ड तथा साइबेरिया की ओर अन्तर्महाद्वीपीय प्रव्रजन हुए है। सन् 1846 से 1932 तक 5 करोड़ लोग इन देशों की ओर स्थानान्तरित हुए थे। यहाँ की जनसंख्या जहाँ भी स्थानान्तरित हुई,

वहाँ अपनी तकनीक क्षमता को भी ले गई। उन नये देशों की उर्वरशील, संसाधन–सम्पन्न भूमि पर यूरोपीय लोगों की अपनी वैज्ञानिक–तकनीकी क्षमता के उपयोग द्वारा कच्ची सामग्रियों का उत्पादन इतना अधिक बढ़ा लिया कि वे अधिकता वाले पदार्थों को अपने देशों में सस्ती दरों पर भेजने लगे।

19वीं व 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में परिवहन व संचार के साधनों में तीव्रतर विकास से प्रव्रजन को और भी बल मिला। यूरोप से प्रवास किये लोगों की अधिकांश संख्या (लगभग 4 करोड़) संयुक्त राज्य अमेरिका में बसी। 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक केवल ब्रिटेन से ही 2.5 करोड़ लोग विदेशों में जाकर बस गये।

सन् 1870 ई० से 1950 ई० तक के 80 वर्षों के कालखंड में पोलैण्ड जर्मनी व पूर्व सोवियत रूस से अधिक संख्या में लोग शरणार्थी के रूप में आकर ब्रिटेन में बस गये। द्वितीय महायुद्ध (1945) के बाद ब्रिटेन से प्रतिवर्ष लगभग 8.50 लाख लोग कामनवेल्थ के देशों में जाकर रहने लगे।

19वीं शताब्दी में ही यूरोपीय सरकारों ने उपनिवेशों को अपने नियंत्रण में ले लिया। फलस्वरूप स्वतंत्र रूप से प्रव्रजन को प्रोत्साहन मिला। सन् 1850 ई० तक ब्रिटिश द्वीपों से लगभग 3 लाख लोग प्रतिवर्ष बस जाते रहे, परन्तु इसके प्रश्चात् प्रवासी संख्या में हास दिखाई देने लगा। इटली, जर्मनी, हंगरी व आस्ट्रिया से भी अधिक संख्या में लोग संयुक्त राज्य अमेरिका में जाकर बस गये।

ब्रिटिश उपनिवेश अफ्रीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, भारतवर्ष, म्यांमार, श्रीलंका, ब्रिटिश गुयाना, ट्रिनीडाड, मलाया, बोर्नियों, जमैका, फिजी व पापुआ द्वीप आदि में दूर–दूर तक विस्तृत था। फ्रांस के उपनिवेशों का विस्तार हिन्दचीन, मेडागास्कर, अफ्रीका के सहारा व सूडान प्रदेशों में रहा है। डच लोगों का उपनिवेश इण्डोनेशिया व गायन में विस्तृत था। इनके अतिरिक्त जर्मनी, इटली, बेल्जियम व स्पेन के उपनिवेश विश्व के अनेक भागों में फैले थे।

उपर्युक्त उपनिवेश अपने मातृ देशों के लिए आर्थिक स्तम्भ रहे है। उपनिवेशों से खाद्य सामग्री, कच्ची सामग्री, खनिज पदार्थ व अन्य उपयोग की वस्तुयें, मसाले आदि मातृ देशों को भेजी जाती थीं और उनके बदले में विनिर्मित तैयार माल अत्यधिक दरों पर उपनिवेशों को भेज दिये जाते थे। इन उपनिवेशों की मानवशक्ति का उपयोग युद्ध के समय मातृ देशों की रक्षा आदि के लिए सैन्य सेवा में किया जाता था।

सन् 1922 ई० में टर्की व बुल्गारिया से जनसंख्या का प्रवास यूनान की ओर हुआ। इसी प्रकार इटली, स्पेन व पूर्व सोवियत रूस में जनसंख्या का प्रवास शरणार्थी जनसंख्या की कुल संख्या 20 लाख थी।

सन् 1945 (द्वितीय विश्व युद्ध) के पश्चात् लगभग 80 लाख यूरोपीय शरणार्थी संयुक्त राष्ट्र संघ की सहायता से उनके स्वदेशों (इटली, फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी, नीदरलैण्ड्स) में पुनर्स्थापित किये गये।

(2) संयुक्त राज्य अमेरिकी प्रव्रजन – पिछली दो शताब्दियों में संयुक्त राज्य अमेरिका की जनसंख्या लगभग 190 गुनी बढ़ी है। जिसका प्रमुख कारण यूरोपीय लोगों का प्रव्रजन ही है। यहाँ की जनसंख्या प्रव्रजन के सम्बन्ध में निम्नांकित बातें मुख्य है।

(i) यूरोपीय जनसंख्या का आव्रजन ही इस देश की जनसंख्या वृद्धि में प्रमुख कारण रहा है।

(ii) आने वाले यूरोपीय लोग सर्वप्रथम यहाँ के पूर्वी अटलांटिक तटीय क्षेत्र में बसे। धीरे–धीरे पश्चिम की ओर बढ़े परन्तु वहीं तक गये जहाँ तक की प्राकृतिक दशायें उनके अनुकूल रही।

(iii) इस देश के पूर्वी भाग के सघन आबाद क्षेत्र में, औद्योगिक क्रान्ति के बाद पश्चिमी ग्रामीण जनसंख्या का आव्रजन पूर्वी नगरों की ओर प्रारम्भ हुआ।

(iv) देश के पूर्वी औद्योगिक नगरीय क्षेत्रों में सघनता बढ़ जाने पर जनसंख्या व उद्योग दोनों का पश्चिम की ओर स्थानान्तरण हुआ।

(v) इस देश में आये अधिकांश (लगभग 90%) लोग नवीन कृषि भूमि, खनिज व शक्ति के स्त्रोतों के भूदृश्य का उपयोग कर सुखी जीवन व्यतीत करने के उद्देश्य से आये थे।

(vi) ऐसे शरणार्थी, जिन्हें शासन का भय व आतंक था, इस देश में आकर निवास करने लगे, जैसे–यहूदी आदि।

(vii) ब्रिटेन आदि देशों से निर्वासित लोग यहाँ आकर शरण लिये।

(viii) दास–प्रथा के तहत अफ्रीका से नीग्रो लोग कृषि फार्मों पर कार्य करने के लिए यहाँ लाये गये।

(ix) दास–प्रथा समाप्त हो जाने पर चीन, भारत, जापान के लाखों श्रमिक यहाँ ठेके पर कार्य करने के लिए आया–जाया करते थे।

इनमें से अधिकांश संयुक्त राज्य में ही स्थायी रूप से बस गये।

सन् 1860 ई० के पश्चात् प्रति दशक लगभग 1 करोड़ मनुष्य यहाँ आव्रजन करते रहे। परन्तु यह संख्या सन् 1930 के बाद घटने लगी। इस देश में आव्रजन करने वालों की संख्या में सबसे अधिक वृद्धि सन् 1880–1930 तक के 50 वर्षों

की समयावधि में हुई। सन् 1900 ई० में 1919 तक के लघु कालखण्ड में ही लगभग 90 लाख मनुष्य इस देश में बाहर से आकर बस गये।

इस देश में औद्योगिक विकास सन् 1920 ई० के बाद अधिक तीव्रगति से हुआ। उस समय ग्राम्य नगरीय प्रव्रजन भारी संख्या में प्रारम्भ हुआ जिसके फलस्वरूप 1920–30 के मध्य लगभग 80 लाख जनसंख्या ग्रामों में नगरों से आकर बस गई, जिनकी आयु की सीमा 25 वर्ष से कम थी। संयुक्त राज्य अमेरिका में जल–विद्युत आदि शक्ति के विकास के परिणामस्वरूप उद्योगों का विकेन्द्रीकरण हो रहा है, परिवहन के साधनों का फैलाव बढ़ रहा है। फलस्वरूप अब ग्रामीण क्षेत्र में भी उद्योगों का प्रसार हो रहा है। अतएव अब औद्योगिक केन्द्रों के लिए दैनिक प्रवास की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इस प्रवृत्ति में लगभग 10% की वृद्धि 1950–1970 के मध्य पायी गई है।

(3) एशियाई प्रव्रजन – इस महाद्वीप से प्रागैतिहासिक कालों में जनसंख्या का प्रव्रजन भारी संख्या में अनेक बार हुआ। इस काल में प्रव्रजन प्रमुखतः मध्य एशिया से हुए है।

ऐतिहासिक काल में (13वीं शताब्दी में) चंगेज खाँ आदि आक्रमणकारियों ने चीन के पूर्वी भाग की ओर आक्रमण किया, इन आक्रमणकारियों में से अधिकांश लोग चीन में ही बस गये।

चीन से प्रवास करने वालों की सर्वाधिक संख्या 18वीं तथा 19वीं शताब्दी में रही। हजारों की संख्या में चीनी इण्डोनेशिया, मलाया, कम्बोडिया, हिन्दचीन, कोरिया व मंचूरिया की ओर प्रवास कर गये। यहाँ से अधिकांश संख्या में लोग ठेके पर काम करने के लिए दक्षिण अफ्रीका एवं संयुक्त राज्य अमेरिका चले गये। सन् 1900 से 1910 के बीच लगभग 2 लाख चीनी मजदूर केवल दक्षिणी अफ्रीका को प्रवास किये।

बीसवीं शताब्दी के मध्य तक लगभग 50 लाख चीनी लोग दक्षिण–पूर्वी एशिया के देशों में स्थानान्तरण किये। द्वितीय विश्व–युद्ध से पूर्व एशिया महाद्वीप के पूर्वी प्रदेशों में भारी संख्या में स्थानान्तरण हुआ। उत्तरी चीन से लगभग 12 लाख लोग प्रति वर्ष मंचूरिया में जाकर स्थायी रूप से बसे। दक्षिणी चीन के सघन आबादी वाले क्षेत्रों से भी लाखों की संख्या में लोग प्रतिवर्ष मलाया, वियतनाम, लाओस, सुमात्रा, बोर्नियो में जाकर बसते रहे।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में जापना से भारी संख्या में प्रवास हुआ। यहाँ से हजारों की संख्या में लोग कोरिया प्रवासित हुये। जापान से अधिक संख्या में लोग हवाई द्वीप, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा में जाकर बस गये। सन् 1909 के आस–पास यहाँ की जनसंख्या का प्रवास ब्राजील, आस्ट्रेलिया, कोरिया, मंचूरिया में हुआ, जिनकी संख्या 10 लाख से भी अधिक थी। उत्तरी मंचूरिया की असहनीय अति ठण्डी जलवायु के कारण वहाँ से लोग जापान की ओर प्रवास किये। सन् 1915 के पश्चात् जापान में तीव्रतर औद्योगिक विकास के कारण यहाँ जनसंख्या में नगरीकरण की प्रवृत्ति अधिक बढ़ी। यहाँ की नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत विगत् 50 वर्षो में 30% से बढ़कर 65% के कारण यहाँ जनसंख्या में नगरीकरण की प्रवृत्ति अधिक बढ़ी। यहाँ भी ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों की ओर जनसंख्या का पलायन अधिक रहा।

31.4 स्थानान्तरण के मार्ग में बाधायें (Barriers in Migration)

स्थानान्तरण के मार्ग में दो प्रकार की बाधायें होती है।

(i) प्राकृतिक बाधायें

(ii) कृत्रिम बाधायें

(i) प्राकृतिक बाधायें (Natural Barriers) – प्राकृतिक बाधाओं को भू–आकृति, जलवायु आदि प्रस्तुत करते है, जैसे–

(1) महासागर और समुद्रों द्वारा रूकावट। यद्यपि वर्तमान युग में जलयानों द्वारा सुविधायें मिली है, फिर भी इन रूकावटों पर मानव का पूरा नियन्त्रण नहीं है।

(2) ऊँचें पर्वतों द्वारा रूकावट।

(3) उच्च अक्षांशों के प्रदेशों में सदैव जीम रहने वाली बर्फ के हिम क्षेत्र।

(4) मरूस्थलों में जल न मिलने की तथा धूप में झुलसते हुए रेत से रूकावट सहारा, अरब, थार, पश्चिमी आस्ट्रेलिया और मंगोलिया में है।

(5) विषुवत्रेखीय उष्ण–आर्द्र वनों की अति सघनता, जिनमें होकर मनुष्य का जाना बहुत ही कठिन हो जाता है, और रेंग कर चलने वाले जन्तुओं तथा सांप आदि का सामना करना पड़ता है। अमेजन के वनों में इस प्रकार की बाधायें है।

(6) दलदलों द्वारा रूकावटें, साइबेरिया के उत्तरी भाग में अधिक है।

(ii) कृत्रिम बाधायें (Artificial Barriers) – ये मानव द्वारा निर्मित या प्रस्तुत होती है, जैसे–

(1) आक्रमणों को रोकने के लिये बनाई गई दीवारें, उदाहरण के लिये चीन की प्रसिद्ध लम्बी दीवार (The Great Wall of China) जिसको चीन की जनता और राजाओं ने मध्य एशिया से आने वाले आक्रमणकारियों को रोकने

के लिए बनाया था। इस प्रकार की शत्रुओं से सुरक्षित बने रहने के लिये, किन्हीं नगरों या क्षेत्रों में बनाई गयी दीवारें कहीं–कहीं मानव–स्थानान्तरण में बाधा बन जाती है।

द्वितीय महायुद्ध के समय जर्मनी ने अपने देश की बाहरी सीमा पर सीगफ्रीड लाइन (Seigfried line) और मैगनिटो लाइन (Magnito line) का निर्माण किया था। पिछली शताब्दियों में आक्रान्ताओं के रोक देने के लिये बड़े नगरों के चारों ओर दीवारें बनाई जाती थी, और उनके आने–जाने के लिए जो द्वार बनाये जाते थे, उनको सैनिकों द्वारा सुरक्षित रखा जाता था।

(2) राजनीतिक बँटवारों के लिये निर्माण की गई दीवारें, उदाहरण के लिय बर्लिन की दीवार (Berlin wall) जो बर्लिन व पूर्वी जर्मनी के बीच कम्युनिस्ट सरकार ने बनाई थी। इस दीवार को पार करने वाले व्यक्तियों को पहरेदार पुलिस गोली मार देते थे। अब यह दीवार तोड़ दी गयी है।

(3) राजनीतिक नियमों और प्रतिबन्धों से स्थानान्तरण में सबसे बड़ी रुकावटें उत्पन्न होती है। आजकल आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, कनाडा आदि देशों ने अपनी श्वेत नीति के द्वारा एशियाई व्यक्तियों को स्थानान्तरण करके वहाँ बसने से रोका हुआ है।

31.5 स्थानान्तरण के प्रभाव (Effects of Migration)

स्थानान्तरण के प्रभाव प्रवासित (emigrated) और आवासित (immigrated) दोनों ही क्षेत्रों पर होते है। ये प्रभाव मुख्यतः निम्नलिखित है।

31.5.1. जनसंख्या भार (Population Pressure) में परिवर्तन – जिस प्रदेश से जनसंख्या जाती है, वहाँ जनसंख्या का भार कम हो जाता है, और आर्थिक स्थिति नीचे गिरने से रूक जाती है, नये प्रदेश में जनसंख्या पहुँचने पर, वहाँ उसका भार बढ़ता है। इसके अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के परिणाम होते है। बर्मा, श्रीलंका और दक्षिणी अफ्रीका में उन देशों की अपनी ही जनसंख्या बढ़ गई है, अतः वे अपने देशों से भारतीय आवासितों को वापिस लौटाना चाहते है।

31.5.2. सांस्कृतिक समेकन (Cultural Fusion) – यूरोपीय देशों से बाहर जाने वाले मनुष्य अपने साथ अपनी यूरोपियन सभ्यता भी लेते गये और नये देशों में तथा उपनिवेशों में उन्होंने अपनी सभ्यता का प्रसार किया। भारत, बर्मा, श्रीलंका, इण्डोनेशिया, ईरान आदि देशों की सभ्यता पर यूरोपीय सभ्यता की गहरी छाप लग गई है। इन देशों में पूर्वी सभ्यता और पश्चिमी सभ्यता का सम्मिश्रण और समेकन हुआ है।

31.5.3. नये देशों का आर्थिक विकास (Economic Development) – यूरोपीय देशों से गये मनुष्यों ने उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, दक्षिणी आस्ट्रेलिया आदि देशों में जाकर, वहाँ के प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करके विज्ञान और टैक्नोलॉजी द्वारा ही इन देशों की आर्थिक उन्नति की है। आज उत्तरी अमेरिका संसार का सबसे अधिक धनी देश है। रूसी मनुष्यों ने साइबेरिया में जाकर वहाँ के कोयले, लोहे, ताँबे, सोने, पैट्रोल, आदि के भण्डारों का उपयोग करना आरम्भ कर दिया है।

31.5.4. पारस्परिक उन्नति (Mutual Progress) – प्रायः ऐसा होता है कि जिस प्रदेश से जनसंख्या प्रवास करती है, उस मातृ–प्रदेश के लिये वह गई हुई जनसंख्या अपने नये बसाये देश का उत्पादन खाद्य सामग्री और कच्चा माल भेजती रहती है। नये बसे देशों से यूरोप को अनाज, माँस, दूध, कच्चे माल आदि जाते है। इसके बदले में नये देशों को निर्मित तथा सामान वैज्ञानिक और औद्योगिक शिक्षा मिलती है। जो लोग बाहर मजदूरी करने जाते है, वे वापसी में अपने देशों को धन लेकर आते है। गाँवों से नगरों को होने वाले दैनिक स्थानान्तरण से भी नगरों और गाँवों दोनों का ही विकास होता है।

31.5.5. जनसंख्या के आयु–वर्गों (Age-groups) पर प्रभाव – जिस प्रदेश से जनसंख्या बाहर को प्रवास करती है, वहाँ से नौजवान और जवान मनुष्यों का प्रवास होता है तथा बच्चे और बूढ़े उसी प्रदेश में रह जाते है। इस प्रकार प्रवासित क्षेत्र में काम करने वाले वर्ग में कमी आ जाती है। इसके विपरीत नये बसे देश में जवानों और नौजवानों का आवास होता है। वहाँ काम करने वालों की संख्या अधिक होने से आर्थिक विकास तीव्रता से होता है। अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, पूर्ववर्ती सोवियत संघ के पूर्वी भाग की तीव्र उन्नति होने का यह मुख्य कारण है।

31.5.6.नये वातावरण से समायोजन (Adjustment) – अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, भारत, इण्डोनेशिया आदि की जलवायु यूरोप की जलवायु से भिन्न है। अतः जो मनुष्य यूरोपीय देशों से या संयुक्त राज्य कनाडा आदि से इन उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों को जाते है, वे नये प्रदेशों में पहुँच कर वहाँ की जलवायु और परिस्थिति के साथ समायोजन करते हैं भारत से जाने वाले मनुष्यों को बाहर की जलवायु से अनुकूलन करना होता है। कभी–कभी सहन न होने पर वापिस भी लौटना पड़ता हैं जैसे कि बहुत से जापानी मनुष्य उत्तरी मंचूरिया की कठोर जलवायु को सहन न कर सकने कारण वापिस अपने देश को लौट आये थे। कहीं–कहीं साँस्कृतिक समायोजन भी करना पड़ता है और नये देश की भाषा या कुछ सामाजिक प्रथायें सीखनी पड़ती है।

31.5.7. अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना की वृद्धि – स्थानान्तरण का प्रभाव वर्तमान काल में मानवता के लिये बहुत हितकर हो रहा है। विभिन्न राष्ट्रों के मनुष्यों में आपस में एक–दूसरे राष्ट्र के प्रति जानकारी बढ़ती है। इससें पारस्परिक सहानुभूति, मित्रता और सहायता बढ़ रही है।

31.5.8. विज्ञान और उन्नति – पारस्परिक विचारों के आदान–प्रदान से अपने–अपने आविष्कारों को एक–दूसरे को बतलाने से, वर्तमान काल में वैज्ञानिक उन्नति भी बड़ी तीव्र गति से हो रही है। यदि इन आविष्कारों का सदुपयोग होता रहा तो इससे भविष्य में मानव के कल्याण की बड़ी आशा हैं

31.6 सारांश

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है की विश्व में जनसंख्या विस्थापन प्रागऐतिहासि काल से ही हो रहा है मानव जातियाँ आदि काल से ही समय–समय पर उद्‌गम से बाहर को प्रवास करती रही हैं जनसंख्या विस्थापन में भौतिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक कारणों की महत्वूपर्ण भूमिका रही है। जनंसख्या विस्थापन के राष्ट्रों पर सकारात्मक व नकारात्मक दोनों प्रभाव पड़े है।

अभ्यास प्रश्न

निबन्धात्मक प्रश्न

1. जनसंख्या विस्थापन के प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।
2. जनसंख्या विस्थापन के मार्ग में प्रमुख बाधाओं का उल्लेख कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. जनसंख्या विस्थापन के प्रभावाओं को समझाये।
2. जनसंख्या विस्थापन के सामाजिक व सांस्कृतिक कारण बताईए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. जनसंख्या विस्थापन क्या है?
2. जनसंख्या विस्थापन के दो कारण लिखिए।

इकाई – 32

पार राष्ट्रीय आन्दोलनः सांस्कृतिक और सभ्यतामूलक

(Transitional Movement : Culture and Civilization)

32.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में पार राष्ट्रीय आन्दोलन का अर्थ, पार राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रकार, व गैर राज्यकर्ताओं की भूमिका का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- पार राष्ट्रीय आन्दोलन का अर्थ समझ सकेगें।
- पार राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रकृति एवं प्रकारों की जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
- पार राष्ट्रीय आन्दोलन में गैर राज्यीय कर्त्ताओं की भूमिका को समझ सकेगें।

32.1 प्रस्तावना

युद्धोत्तर काल में राष्ट्र राज्यों की संख्या में तीव्र वृद्धि के साथ–साथ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में विभिन्न अराज्यीय कर्त्ताओं का भी प्रादुर्भाव हुआ है। राज्य केन्द्रित अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के समकालीन युग में, इन अराज्यीय कर्त्ताओं की बढ़ती हुई भूमिका के कारण बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। इन्होनें अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में प्रभुसत्ता तथा राष्ट्रवाद के संचालन को गम्भीर रूप से प्रभावित किया है।

समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में अराज्यीय कर्त्ताओं की बढ़ती हुई भूमिका के फलस्वरूप पार–राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य का प्रादुर्भाव हुआ है तथा यह प्रवृत्ति पार–राष्ट्रीयवाद परिप्रेक्ष्य के पक्ष में एक अलग रूप में सुदृढ़ होती जा रही है। पार–राष्ट्रीय आंदोलन सांस्कृतिक एवं सभ्यतामूलक समूह की ऐसी राजनीति पर अवस्थित है जिसमें राष्ट्र–राज्य एवं राज्येतर अभिकत्ताओं की पारस्परिक क्रियाएँ सम्मिलित होती है। पार–राष्ट्रीय आंदोलनों ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तथा राज्य–केन्द्रित अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को प्रभावित किया है। इन्होंने राष्ट्र–राज्य की भूमिका को अन्तर्राष्ट्रीस संबंधों में भी प्रभावित किया है। अन्तर्राष्ट्रीय अन्तनिर्भरता को बढ़ाने में तथा अन्तनिर्भरता के इस युग में संबंधों को संगठित करने में एक उपकरण सिद्ध हुए है। आज लोगों के साथ लोगों का संबंध काफी विस्तृत एवं सुदृढ़ हुआ है तथा यह विश्व जनमत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे है।

32.2 पार–राष्ट्रीय आन्दोलन का अभिप्रायः

पार–राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कई ऐसे संगठन कार्यरत है जो राष्ट्र राज्यों के मध्य सामाजिक आर्थिक तथा सांस्कृतिक सहयोग बढ़ाने में लगे और विश्व के लोगों में अन्तर्राष्ट्रीयता बढ़ने लगी। राष्ट्र राज्य को इसके परिणामस्वरूप मिलजुल कर कार्य करने को बाध्य होना पड़ा। अन्तर्राज्यीयकर्त्ता के रूप में पार राष्ट्रीय गतिविधियाँ विश्व के विभिन्न राज्यों में सामान्यजन को प्रभावित कर रही है लेकिन ये औपचारिक रूप से सरकारी पद्धति से जुड़ी नहीं होती 20वीं शताब्दी के आरम्भ में ही अन्तर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठनों की संख्या वृद्धि हुई। यह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में काफी सक्रिय भूमिका निभा रहे है। राष्ट्रीय हितों के साथ–साथ अब अन्तर्राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा को भी एक बड़ा उद्देश्य माना जाता है। ऐसी व्यवस्था की अतः क्रियाओं कों सामूहिक रूप से पार राष्ट्रीय अन्तःक्रियाएँ कहा जाता है।

32.3 पार–राष्ट्रीय संगठन (Transnational Organisation) : जब एक राज्य के समूह, संस्थाएं, संगठन अथवा व्यक्ति अपने कुछ हितों की पूर्ति के लिए संगठन बना कर कार्य करना आरम्भ कर देते हैं तो ऐसे संगठनों को पार–राष्ट्रीय संगठन कहा जाता है। ऐसे संगठनों में राज्यों अथवा सरकारों के प्रतिनिधि सदस्य नहीं होते। जब किसी एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में राज्यों और सरकारों के प्रतिनिधि शामिल न हो तथा इनको लोगों के समूहों अथवा संगठनों से संगठित करके इनका संचालन कर रहे हों तो ऐसे समूहों या संगठनों को पार–राष्ट्रीय समूह या संगठन कहा जाता है तथा इनके सम्बन्धों और व्यवहार को पार–राष्ट्रीय सम्बन्ध/व्यवहार कहा जाता है।

वर्तमान समय में हजारों की संख्या में गैर–सरकारी संगठन तथा पार–राष्ट्रीय संगठन अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में कार्य कर रहे है तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को कई प्रकार से प्रभावित कर रहे है। इसी लिए आज इनके अध्ययन को बहुत महत्त्व दिया जाने लगा है। आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक गैर–सरकारी संगठनों जैसे Green Peace, OXFAM, IPPF, Amnesty International काफी लोकप्रिय तथा सक्रिय संगठन है। आज आपदा सहायता, वातावरण की सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा, मानवीय अधिकारों की सुरक्षा में गैर–सरकारी संगठन बहुत व्यापक लाभदायक तथा समर्पित भूमिकाएं निभा रहे है। विश्व में लगभग 195 राष्ट्र राज्य विघमान है। इसकी तुलना में गैर राज्यीय कत्ताओं की संख्या 15000 से भी अधिक है।

32.4 राज्येत्तर अथवा अन्तरा–राष्ट्रीय कर्त्ताः प्रकार एवं प्रकृति (Nonstat or Transnational Actor: Kind and Nature)

वर्तमान में निम्न प्रकार के गैर राज्यीय कर्त्ता अथवा अन्तरा–राष्ट्रीय संगठन विश्व राजनीति में सक्रिय है।

32.4.1. बहुराष्ट्रीय निगम (Multinational Corporatins) : बहुराष्ट्रीय निगम या कम्पनियां प्रभावी अन्तर्राष्ट्रीय कर्ता है। एक अध्ययन के अनुसार आधुनिक विश्व में 38,500 प्रमुख बहुराष्ट्रीय कम्पनियां कार्यरत है। इनमें से प्रमुख कम्पनियां है– शैल, बार्कलेज बैंक, कोका–कोला, जनरल मोटर्स, इन्टेल, नेसले, एस्सो, कॉर्टलेक्स, सोनी, आदि। इन प्रधान कम्पनियों के साथ 2,50,000 विदेशी सहायक हिस्सेदार कम्पनियां जुड़ी हुई है। सन् 1971 में इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने 50,000 करोड़ डॉलर के मूल्य का नया धन पैदा किया था जो विश्व के समग्र राष्ट्रीय उत्पादन (समाजवादी देशों को छोड़कर) का पांचवां भाग था। इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की विकास दर देखते हुए यह अनुमान लगाया गया है कि वर्ष 2020 तक बहुराष्ट्रीय कम्पनियां विश्व के कुल उत्पादन के (समाजवादी देशों को छोड़कर) 80 प्रतिशत पर नियन्त्रण कायम कर लेंगी। अमेरिका की तीन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों–जनरल मोटर्स, स्टैण्डर्ड आयल और फोर्ड की वार्षिक बिक्री भारत के कुल राष्ट्रीय उत्पादन के बराबर है। अमेरिका की 10 ब्रिटेन की 5 और स्विट्जरलैण्ड की 3 बहुराष्ट्रीय कम्पनियां पूंजीवादी जगत के कुल उत्पादन का क्रमशः 40, 30 और 20 प्रतिशत पैदा करती है। अमेरिका में 500 बड़ी कम्पनियां है जो अमेरिका के कुल उत्पादन के 60 प्रतिशत पर नियंत्रण करती है।

राज्येतर कर्ता के रूप में ये कम्पनियां विश्व राजनीति में सक्रिय रहती है। मध्य–पूर्व के तेल भण्डार के अधिकांश भाग पर इन कम्पनियों का कब्जा है। अंगोला के सोने, लोहे तथा तेल के भण्डारों पर इन कम्पनियों का नियंत्रण रहा है। चिली में अलंदे की सरकार ने अमेरिकी बहुराष्ट्रीय कम्पनी के राष्ट्रीयकरण के कदम उठाए तो इन कम्पनियों ने अलंदे की हत्या करवा दी तथा सरकार को उलटवा दिया।

32.4.2. गैर–सरकारी संगठन (Non-Governmental Organisation) : दुनिया भर में लगभग दस हजार गैर–सरकारी संगठन सक्रिय है। ये संगठन किसी एक देश में कार्यरत रहते है। और इनकी प्रकृति गैर–सरकारी संगठन की होती है। ये संगठन बिना किसी स्वार्थ के, बिना किसी लाभ कमाने के उद्देश्य से सक्रिय होते है। ऐसे संगठनों में प्रमुख है–संयुक्त राज्य अमेरिका में कार्यरत फ्रीडम हाउस, फ्रांस में कार्यरत मेडिसिन सेन्स फ्रन्टीयर्स, इंग्लैण्ड में कार्यरत पापुलेशन कर्सन तथा वॉटर एड। जून 1992 में सम्पन्न रियो पृथ्वी सम्मेलन के अवसर पर तथा दिसम्बर 1997 में सम्पन्न ग्लोबल वार्मिंग पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में अनेक देशों के गैर–सरकारी संगठनों ने भाग लेकर पर्यावरणीय मसलों को प्रभावित करने का प्रयास किया। इसी प्रकार सिएटल में सम्पन्न विश्व व्यापार संगठन के तीसरे मन्त्रीस्तरीय सम्मेलन के अवसर पर अनेक गैर–सरकारी संगठनों ने प्रदर्शन आयोजित किए। ऐसा देखा गया है कि पर्यावरणीय मसलों तथा विश्व व्यापार से सम्बन्धित मुद्दों को प्रभावित करने में गैर–सरकारी संगठनों की प्रभावी भूमिका रही है।

32.4.3. अन्तर्सरकारी संगठन (Inter-Governmental Organisation-IGOs) : अनेक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ और उसके मुख्य तथा विशिष्ट अंग, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, यूनेस्को का अपना अलग अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व है। इनके अपने वैधानिक अधिकार एवं कर्तव्य होते है। स्टार्क , ओपेनहीम जैसे विद्वान अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों को अन्तर्राष्ट्रीय कानून का विषय मानते है।

अन्तर्सरकारी संगठनों में कई प्रकार के संगठन है, जैसे–संयुक्त राष्ट्र संघ, यूनेस्कों, विश्व स्वाथ्य संगठन अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, विश्व व्यापार संगठन, राष्ट्र मण्डल, आदि। इसके अतिरिक्त नाटो, वारसा पैक्ट, सीटो, सेण्टो जैसे क्षेत्रीय सैनिक स्वरूप वाले संगठन भी एक तरह से अन्तर–सरकारी प्रकृति के कर्ता है। इसके अतिरिक्त पिछले 10–15 वर्षों में निम्नांकित कर्ता भी उभरकर आए है जिन्हें इसी श्रेणी में रखा जा सकता है।

इस्लामिक सम्मेलन संगठन, अफ्रीकी एकता संगठन, ओपेक, अंकटाड, ग्रुप–77, जी–15, आसियान, सार्क, एपेक, नाफ्टा, हिमतेक्ष, बिम्स्टेक, जी–7, डी–8, ब्रिक्स, शंघाई सहयोग संगठन, जी–20।

32.4.4. अन्तर्राष्ट्रीय गैर–सरकारी संगठन (International Non-Governmental Organisation-INGOs) : कतिपय गैर–सरकारी संगठन क्षेत्र एवं भूमिका की दृष्टि से इतने व्यापक होते हैं कि उनका कार्यक्षेत्र राष्ट्रीय सीमाओं से आगे अन्तर्राष्ट्रीय हो जाता है। कुछ अन्तर्राष्ट्रीय गैर–सरकारी संगठन इतने लोकप्रिय हो गए है कि उन्हें हर कोई जानता है। इनमें से प्रमुख है :

1. एमनेस्टी इन्टरनेशनल (Amnesty International)
2. ग्रीनपीस (Greenpeace)
3. रेड क्रास (Red Cross)
4. सेव दी चिल्ड्रन (Save the Children)
5. केयर एण्ड ऑक्सफेम (Care and Oxfam)

मानव अधिकारों के संरक्षण की दिशा में एमनेस्टी इन्टरनेशनल के प्रतिवेदन प्रभावी भूमिका अदा करते है। दुनिया के अधिकांश देश एमनेस्टी इन्टरनेशनल से भय खाते हुए मानव अधिकारों के संरक्षण की दिशा में सक्रिय रहते है। पर्यावरण संरक्षण की दिशा में ग्रीन पीस और युद्धरत पक्षों को राहत पहुँचाने में रेड क्रास विशेष रूप से सक्रिय संगठन है।

32.4.5. धार्मिक संगठन (Religious Organisation) : अनेक धार्मिक संगठन भी आज अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय है। इनमें से प्रमुख है:

1. क्रिश्चियन चर्च (Christian Church)
2. रोमन कैथोलिक चर्च (Roman Catholic Church)
3. वर्ल्ड कांग्रेस ऑफ चर्च (World Congress of Religions)
4. बैपटिस्ट वर्ल्ड अलाइन्स (Baptist Word Alliance)
5. विश्व हिन्दू परिषद (VHP)

ये धार्मिक संगठन राष्ट्रीय सीमाओं को तोड़ते हुए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने धार्मिक कार्यक्रम चलाते है। इन संगठनों का प्रमुख कार्य अपने धर्म का प्रचार एवं प्रसार, धार्मिक संस्थाओं की स्थापना, अपने धर्मावलम्बियों के हितों की रक्षा करना तथा अपने धर्म की पृथक् पहचान एवं संस्कृति को बनाएरखना है।

32.4.6. गुरिल्ला एवं आतंकवादी संगठन (Guerillas and Terrorist Organisation) : आज अनेक गुरिल्ला संगठन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सक्रिय है। ऐसे संगठन हिंसा, हत्या, मारकाट, विमान अपहरण जैसे साधनों का भी प्रयोग करते है। ऐसे संगठनों में अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस (ANC), साउथ वेस्ट अफ्रीकन पीपूल्स आर्गेनाइजेशन (SWAPO), पेलिस्टीन लिबरेशन आर्गेनाइजेशन (PLO), लिट्टे (LITTE), अल–कायदा, हिजबुल मुजाहिदीन, अल–जिहाद, हमास, लश्करे–तोयबा, जैश–ए–मुहम्मद, तालिबान, अल–शबाव, आईएसआईएस आदि प्रमुख है।

32.5 गैर राज्यीय कर्ताओं की भूमिका (Role of Non-State Actors)

गैर–राज्यीय कर्ताओं की भूमिका को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सकता है।

32.5.1. प्रमुसत्ता तथा राष्ट्रवाद की धारणाओं में परिवर्तन (Change in the concepts of sovereignty and Nationalism) : अराज्यीय कर्ताओं के प्रादुर्भाव तथा पार–राष्ट्रीय सम्बन्धों ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों तथा राज्य केन्द्रित अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को प्रभावित किया है। अराज्यीय कर्ताओं ने प्रभुसत्ता तथा राष्ट्रवाद की धारणा को ही बदल कर रख दिया है। इन्होंने राष्ट्र–राज्यों की अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में कर्ताओं की भूमिका को भी प्रभावित किया है। आज राष्ट्र–राज्यों की नीतियां, निर्णय तथा कार्य सभी पर अराज्यीय कर्ताओं का प्रभाव होता है क्योंकि अराज्यीय कर्ता अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में शक्तिशाली अराजनीतिक, व्यापारिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा वाणिज्य कर्ताओं के रूप में उभर कर सामने आए है। अराज्यीय कर्ताओं, अन्तःसरकारी संगठनों (IGOs), अन्तर्राष्ट्रीय अन्तःसरकारी संगठनों (INGOs or NGOs) तथा बहुराष्ट्रीय निगमों (MNCs) भूमिका का विश्लेषण करते हुए –नी (Ney) तथा कियोहेन (Keohane) लिखते हैं कि ये अराज्यीय कर्ता संप्रेषण पेटी (Transmission-Belt) के रूप में कार्य करके राष्ट्रीय–निर्णय निर्माताओं की विदेश नीति दूसरे राष्ट्र की विदेश नीति के प्रति संवेदनशील होती है। इसके साथ ही अराज्यीकर्ता राष्ट्र राज्यों के सीधे नियन्त्रण से बाहर बड़ी सीमा तक अपने हितों की प्राप्ति में लगे है जबकि इसके साथ ही अपने कार्यो के परिणामस्वरूप पैदा होने वाली विशेष समस्याओं में सरकारों को भी यदा–कदा शामिल कर लेते है।

32.5.2. गैर–राज्यीय कर्ता तथा राष्ट्रराज्य व्यवस्था (Non-state Actors and Nation-state System) : अराज्यीय कर्ताओं ने राष्ट्र–राज्य व्यवस्था तथ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में राष्ट्र–राज्यों की भूमिका में बहुत बड़े परिवर्तन कर दिए है। ये अन्तर्राष्ट्रीय अन्तर्निर्भरता को बढ़ाने में तथा अन्तर्भिरता के इस युग में सम्बन्धों का संगठन करने में उपकरण सिद्ध हुए है। कुछ क्षेत्रों में इन्होंने राष्ट्र–राज्यों की भूमिका को मात कर दिया है तथा कर भी रहे है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में निम्न राजनीति ने अधिक महत्त्व ग्रहण कर लिया है क्योंकि अब बहुराष्ट्रीय निगमों जैसे अराज्यीय कर्ताओं की भूमिका में काफी वृद्धि हो गई है।

35.5.3. नई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की उपज के रूप में गैर–राज्यीय कर्ता (Non-state Actors as the Product of New Internation System) : अपने आप में यह अराज्यीय कर्ता तो परमाणु युग, अन्तरिक्ष युग, संचार क्रांति के युग, यातायात क्रांति, कल्याणवाद तथा अन्तर्राष्ट्रीवाद की उपज है जो स्वयं राष्ट्र–राज्य व्यवस्था की उपज है। इनमें से बहुत से अराज्यीय कर्ता तो इसलिए बने तथा काम कर रहे है क्योंकि राष्ट्र–राज्यों ने इनकी उपयोगिता को स्वीकार किया है। अन्तःसरकारी संगठन तथा संयुक्त राष्ट्र जैसे संगठन तथा इसी प्रकार के कई अन्य अन्तर्राष्ट्रीय संगठन राष्ट्र–राज्यों की इच्छाओं के कारण ही बने है। राष्ट्र राज्यों के पास आज भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में शक्ति का प्रयोग कर सकने का एकाधिकार है। ये आज भी अराज्यीय कर्ताओं की गतिविधियों को, उनके अपने व्यवहार पर अधिकार से कहीं अधिक नियन्त्रित करते है।

35.5.4. गैर–राज्यीय कर्ता तथा विश्व जनमत (Non-State Actors and world Public Opinion) : गैर–राज्यीय कर्ताओं की गतिविधियों के कारण विभिन्न देशों के नागरिकों में आपसी सम्बन्ध विकसित हुए है। ये सम्बन्ध राष्ट्र–राज्य की सीमाओं को पार करके भी स्थापित हुए है। आज लोगों के लोगों के साथ सम्बन्ध (People to People Relations), काफी

विस्तृत तथा सुदृढ़ हुए है। यह विश्व जनमत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे है। आज इन्हें लोगों की लोगों के साथ कूटनीति (People to people Diplomacy),का नाम दिया गया है अच्छी बात यह है कि यह कूटनीति खुली भी है तथा नैतिकता पर भी आधारित रहती है।

35.6 सांराश

इस प्रकार आज गैर–सरकारी संगठन, अन्तर्राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न पहलुओं में सक्रिय तथा महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभा रहे है। आपदा सहयता प्रदान करना, जनसंख्या नियंत्रण, शिक्षा का प्रसार, एड्स की रोकथाम के सम्बन्ध में शिक्षा प्रसार, सामाजिक सुरक्षा के प्रति चेतना का विस्तार, वातावरण शिक्षा, मानव अधिकार शिक्षा आदि अनेक प्रमुख क्षेत्रों में यह संगठन महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न कर रहे है।

बहुराष्ट्रीय निगमों जैसे गैर–राज्जीय कर्ताओं ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को और अधिक जटिल तथा समस्यात्मक बना दिया है। ये ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में राजनीतिक सम्बन्धों के घटे हुए महत्व के लिए उत्तरदायी है इनमें से कुछ तो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा के अग्रदूत है जबकि कुछ अन्य विकसित राष्ट्रों पर अविकसित राष्ट्रों की निर्भरता एवं नव–उपनिवेशवाद लाने वाले अभिकरणों के रूप में कार्य कर रहे है। इनमें से कई एक कर्ताओं ने अन्तर्राष्ट्रीयवाद, सार्वभौमिकता के पक्ष में राष्ट्रवादी भावना को समाप्ति तथा विभिन्न सशक्त शान्तिपूर्ण, विकासवादी तथा पर्यावरण रक्षक आन्दोलनें को उत्पन्न किया है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विद्यार्थी जब तक अराज्जीय कर्ताओं तथा पार–राष्ट्रीय सम्बन्धों के बारे में पूर्णतया अध्ययन नहीं कर लेते तब तक वे अपने विषय के स्वरूप तथा क्षेत्र के बारे में अध्ययन नहीं कर सकते। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में महत्वपूर्ण कर्ताओं की भूमिका निभाने वाले विभिन्न अराज्यीय संगठनों द्वारा पार–राष्ट्रीय सम्बन्धों का संस्थानीकरण समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के निरन्तर चलते रहने वाले कार्य है। यह निश्चित है कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के भविष्य में अराज्यीय कर्ता बने रहेंगे तथा ये और अधिक प्रभावशाली कर्ता बन जाएंगे।

अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. परा राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख संगठनों का विवेचन कीजिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय गैर राज्यीय कर्ताओं की भूमिका का उल्लेख कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. पार राष्ट्रीय संगठन क्या है ?
2. अन्तर्राष्ट्रीय कर्ता के रूप में बहुराष्ट्रीय निगमों की भूकिा बताईए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. पार राष्ट्रीय आंदोलन से क्या अभिप्राय है ?
2. गैर राज्यीय कर्ता क्या है ?

इकाई – 33

गैर सरकारी संगठनों की भूमिका
(Role of NGO's)

33.0 उद्देश्य

इस इकाई में गैर सरकारी संगठनों का विकास संगठन एवं भूमिका का विवेचन किया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- गैर सरकारी संगठनों का अर्थ समझ सकेंगे।
- प्रमुख गैर स.रकारी संगठनों के कार्यो के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- गैर सरकारी संगठनों की भूमिका के बारे में जान सकेंगे।

33.1 प्रस्तावना

लोकतन्त्र के पाँचवे स्तम्भ के रूप में जन कल्याण के उद्देश्य से गठित एवं कार्यरत अलाभकारी स्वैच्छिक संस्थाएँ गैर सरकारी संगठन कहलाते है। गैर सरकारी संगठन या एनजीओ एक निजी संगठन होता जो लोगों के दुःख दर्द दूर करने, निर्धनों के हित का संवर्द्धन, पर्यावरण की रक्षा करने, बुनियादी सामाजिक सेवायें प्रदान करने अथवा सामुदायिक विकास के लिए गतिविधियाँ चलाते है।

यह गैर लाभकारी संगठन होते है। यह लाभ का वितरण अपने मालिकों और निदेशको के बीच एकत्र नहीं करते बल्कि संगठन के विकास के लिए उपयोग करते है। इनकी स्थापना किन्ही सार्वजनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की जाती है। वर्तमान आधुनिक युग में गैर–सरकारी संगठन जनहित एवं लोक–कल्याण के कार्यो हेतु आन्दोलनरत रहकर सिविल सोसायटी का प्रतिनिधित्व करते है।

33.2 गैर सरकारी संगठनों का अर्थ

गैर सरकारी संगठन (NGO) ऐसे पंजीकृत संगठन होते है जो सरकार से स्वतन्त्र काम करते है। ये स्वैच्छिक संस्थाएँ लोकहित के उद्देश्य से गैर लाभकारी कार्यो में सलंग्न रहते है।

ऐसे संगठन जो मानव कल्याण एवं जनकल्याण की भावना से प्रेरित होकर सरकारी तन्त्र के बाहर स्थापित एवं संचालित होते है, गैर सरकारी संगठन कहलाते है। गैरे सरकारी संगठन वास्तव में स्वैच्छिक संगठन है जिन्हें उत्साही लोग आत्मप्रेरणा से किसी मानववादी लक्ष्य की पूर्ति के लिए स्थापित करते है गैर सरकारी संगठन और सामाजिक आन्दोलन में एक समान सामाजिक चेतना पायी जाती है। लेकिन जहाँ सामाजिक आन्दोलन अपना तात्कालीन लक्ष्य पूरा हो जाने के बाद सिमट जाते है, वही गैर सरकारी संगठन उस लक्ष्य की निरन्तर पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहते है।

33.3 गैर सरकारी संगठनों का विकास

औपचारिक रूप से यह माना जाता है कि सर्वप्रथम 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा इस शब्दावली का उपयोग किया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के अध्याय–10 के अनुच्छेद–71 में एनजीओं का उल्लेख किया गया है। सरकारी नियन्त्रण से पृथक कोई संगठन या संस्था एजीओ हो सकता है। बशर्ते उसमें निम्न विशेषताएँ हो।

(1) लाभ रहित कार्य–कलापों से जुड़ा हों।

(2) अपराधिक या असामाजिक कार्यों में संलग्न नहीं हो।

(3) मात्र विपक्षी या विरोधी राजनीतिक दल न हो।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गैर सरकारी संगठनों की नियामक संस्था के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय एनजीओ एकांडटेबिलिट चार्टर (INGO AC-International/NGO Accountability) की स्थापना की गई। विश्व के चुनिन्दा एनजीओ द्वारा 2006 में इस उत्तरदायी चार्टर का निर्माण किया गया है। आज अधिकांश एनजीओ इससे जुड़े हुए है। हाल ही में विदेशी फंड को लेकर चर्चित ग्रीनपीस संगठन भी इस चार्टर संस्थापक सदस्य है।

33.4 प्रमुख एनजीओं एवं स्वैच्छिक संगठन (Main NGOs and Voluntary Organisations) -विभिन्न क्षेत्रों में स्वैच्छिक संगठनों का गठन इसलिए किया जाता है कि वे लोगों के सामाजिक–सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन पर प्रभाव डाल सकें। पर्यावरण, स्वास्थ्य सेवा, भ्रष्टाचार विरोध, बाल श्रम उन्मूलन, शिक्षा, महिलाओं और बच्चों के मानवाधिकारों का संरक्षण और बच्चों के मानवाधिकारों का संरक्षण, उपभोक्ता संरक्षण आदि क्षेत्रों में अनेक स्वैच्छिक संगठन सक्रिय है।

- **इंटरनेशनल रैडक्रांस सोसयटी** – मानवीय पीड़ा की रोकथाम तथा निवारण के लिए विश्व भर में कार्यरत है। स्विस व्यापारी हेनरी ड्यूनांट (Henry Dunant) एवं गुस्ताव मॉनीर द्वारा जेनेवा में (विचार–1859, स्थापना–1863) स्थापित रैडक्रॉस की भारत में 700 से अधिक शाखाएं संचालित है।

- **एमनेस्टी इंटरनेशनल** – यह विश्वभर में मानव–अधिकारों के लिए कटिबद्ध है। इसको स्थापना 1961 में पीटर बेनेन्सन (Peter Benenson) द्वारा ब्रिटेन में की गई।
- **रोटरी इंटरनेशनल** – समाज सेवा में कार्यरत स्वैच्छिक संगठन है।
- **पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज** (PUCL) – नागरिक अधिकारों की रक्षार्थ भारत में कार्यरत।
- **पीपुल्स यूनियन फोर डेमोक्रेटिक राइट्स** (PUCDR) – मानव अधिकारों एवं लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए भारत में प्रयासरत।
- **वेंकट रमैय्या फाउंडेशन** – यह महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में सक्रिय है और यह भारत में बाल श्रम उन्मूलन के लिए प्रख्यात है।
- **सेंटर फार साइंस एण्ड एनवायरमेंट** (CSE) – यह पर्यावरण, शिक्षा और संरक्षण में योगदान कर रहा है। गांधी शांति प्रतिष्ठान, बांबे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी, असम साइंस सोसायटी आदि भी इसी क्षेत्र में कार्यरत है।
- **नर्मदा बचाओं आंदोलन** – पर्यावरण नीति को प्रभावित करने में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।
- **बचपन बचाओं आन्दोलन** – बाल अधिकारों की रक्षा के लिए समर्पित इस एनजीओ को 1980 में कैलाश सत्यार्थी द्वारा स्थापित किया गया। कैलाश सत्यार्थी का पाकिस्तान की मलाला युसफजई के साथ 2014 का शांति के लिए नोबल पुरस्कार दिया गया है।
- **इंडिया अगेंस्ट करप्शन** – अन्ना हजारे एवं अरविन्द केजरीवाल के नेतृत्व में भ्रष्टाचार के विरूद्ध संघर्ष में ये संगठन बहुत सक्रिय रहा है। चेन्नई स्थित भ्रष्टाचार विरोधी स्वैच्छिक संगठन 'फिफथ पिलर इंडिया' ऐसा ही एक और संगठन है जिसने देश में भ्रष्टाचार के विरूद्ध संदेश के प्रचार के लिए 'शून्य रूपए' के नोट की शुरूआत की है।
- **सेंन्टर फार सोशल रिसर्च** – सीएसआर 1983 से महिलाओं और बालिकाओं के कल्याण के लिए काम कर रहा है।
- **आल इंडिया ह्युमन राइट्स एसोसिएशन** – यह लोगों को अपने अधिकारों और विशेषाधिकारों के बारे में शिक्षित करने के लिए काम कर रहा है। इसी प्रकार उपभोक्ताओं के हितों और अधिकारों के संरक्षण के लिए क्षेत्र में काम करने वाले संगठनों में कंज्यूमर एजुकेशन एण्ड रिसर्च सेंटर प्रमुख है। यह संगठन मुख्यतः मीडिया उपभोक्ता अनुसंधान और अनुरक्षण के जरिये विभिन्न परियोजनाओं पर काम करता है।
- **भारतीय स्वैच्छिक स्वास्थ्य संघ** (Voluntary Health Association of India VHAI) – वीएचएआई भारत में स्वास्थ्य और चिकित्सा के सभी पहलुओं पर काम करने वाला संगठन है। तंबाकू, औषधि नीति और शिशु आहार जैसे मुद्दों पर वीएचआई सरकारी दृष्टिकोण के विरोध में खड़ा हुआ दिखाई देता है। व्यवस्थित शोध लोगो और मीडिया को शिक्षित कर आवश्यकतानुसार कानूनी रास्ता अपनाकर इसने इन मुद्दों पर अधिकाधिक जनोन्मुखी नीतियां अपनाने पर जोर दिया है।
- **ग्रीन पीस** (Green Peace) – ग्रीन पीस इन्टरनेशनल पर्यावरण संरक्षण एवं शंति स्थापना के उद्देश्य से 1969–1972 के दौरान वैंकूवर (कनाडा) में स्थापित किया गया। वर्तमान में इसका समन्वयक कार्यालय एमस्टरडम (नीदरलैण्ड) में है जिससे करीब 1500 स्वयंसेवक तथा 30 लाख समर्थक जुड़े हुए है। ग्रीन पीस भारत सहित विश्व के 40 देशों में कार्यरत है। ग्रीन पीस अपने समर्थकों से चंदा एकत्र करता है तथा किसी सरकार या राजनीतिक दल या निगमों से कोई चंदा नहीं लेता है। एनजीओ के उत्तरदायित्व के चार्टर (INGOAC) का यह संस्थापक सदस्य है।

भारतीय अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुँचाने के आरोप लगे है। भारतीय आसूचना ब्यूरों की (जून 2014) एक रिपोर्ट के अनुसार ग्रीन पीस इन्डिया भारतीय कंपनियों के विरूद्ध पर्यावरण के नाम पर आन्दोलन करके उनके कामकाज में बाधा पहुंचाती है, वहीं विदेशी कंपनियों के बारे में वह तटस्थ रहती है। इस प्रकार ग्रीनपीस को भारत की आर्थिक सुरक्षा के लिए खतरा बताया गया है।

अन्य गैर सरकारी संगठन एवं संस्थाएं

कुछ अन्य गैर सरकारी संगठन एवं संस्थाए निम्नलिखित है।

- **एनएनजीओ** (NNGO – National NGO) – जो केवल एक देश विशेष में कार्यरत हो।
- **आईएनएनजीओ** (INNGO – International NGO) – दो या अधिक देशों में संचालित संगठन।
- **बीआईएनजीओ** (BINGO – Business Friendly International NGO) – व्यापार संबंधी संगठन।
- **टीएएनजीओ** (TANGO – Technical NGO) – तकनीकी सदस्यों से जुड़े संगठन।

- **जेओएनजीओ** (GONGO – Government Operated NGO) – दानदाताओं के द्वारा संगठित समूह।
- **क्यूयूएएनजीओ** (QUANGO – Quasi Autonomous NGO) – अर्ध–स्वायत्त एनजीओ जैसे आईएसओ – इन्टरनेशनल ऑर्गनाइजेशन फोर स्टैण्डर्डाइजेशन।
- **ईएनजीओ** (ENGO – Environmental NGO) – पर्यावरण सम्बन्धी संगठन।
- **ट्रेक– II कूटनीति** (Track-II Diplomacy) – अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में कूटनीतिक वार्ताओं की एक रणनीति जिसमें सरकारी प्रतिनिधियों के पारस्परिक वार्तालाप (ट्रैक–1 कूटनीति) के बजाय गैरसरकारी वार्ताकारों की केन्द्रीय भूमिका होती है।
- **समुदाय आधारित संगठन** (CBOs – Community Based Organizaiton) – ये लोगों की स्वप्रेरणा से विकसित होते है।
- **तृतीय क्षेत्र संगठन** (TSO – Third Sector Organisation)
- **गैर लाभकारी संगठन** (NPO – Non-Profit Organisation)
- **स्वैच्छिक संगठन** (VO – Voluntary Organisation)
- **नगरिक समाज संगठन** (CSO – Civil Society Organisation)
- **ग्रासरूट संगठन** (GRO – Grass Root Organisation)
- **समाजिक आन्दोलन संगठन** (SMO – Social Movement Organisation)
- **निजी स्वैच्छिक संगठन** (PVO – Private Voluntary Organisation)

33.5 विकास योजनाओं में एनजीओ (गैर सरकारी संगठन) की भूमिका –

स्वैच्छिक संगठनों एवं एनजीओ ने देश के विकास एवं योजनाओं के क्रियान्वयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जैसे भारत एक विशाल देश है और इसकी जनसंख्या भी बहुत अधिक है। ऐसे में सरकार के लिए सभी कल्याणकारी गतिविधियों की देखभाल करना व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है। अतः देश में विकास कार्यक्रमों एवं अन्य जन–केन्द्रित गतिविधियों की देखभाल के लिए स्वैच्छिक संगठनों की सहायता की आवश्यकता है।

लोगों के जीवनस्तर में सुधार की आवश्यकता को देखते हुए भारतीय स्वैच्छिक संगठन विभिन्न परियोजनाओं पर कार्य कर रहें है। इससे लोगों की जीवन शैली में सुधार में निश्चित ही मदद मिलेगी। स्थानीय स्वैच्छिक संगठन क्षेत्र के विकास में बेहतर मदद कर सकते है क्योंकि वे स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप अपनी कार्यप्रणाली में लचीलापन ला सकता है। और इस प्रकार विकास की एकीकृत परियोजनाएं अपना सकते है। लोगों के साथ साझा संपर्क होने के कारण वे स्थानीय गरीबों, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में अच्छी मदद कर सकते है। वे बिना झंझट के विशेषज्ञों और अनुप्रेरित कर्मचारियों को सरकार की अपेक्षा आसानी से काम पर रख सकते है। सामाजिक गतिविधियों में स्वैच्छिक संगठनों के सक्रिय हस्तक्षेप में नेतृत्व का गुण भी विकसित होता है। स्वैच्छिक संगठन शिक्षा, स्वास्थ्य और इसी प्रकार की अन्य गतिविधियां चलाते है। इस देश में स्वेच्छिक संगठन वास्तव में आशा की एक किरण के रूप में उभरे है। भारत में स्वैच्छिक संगठनों का नीति वाक्य गरीब बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देना और गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाना है।

भारत में ऐसे सैकड़ों कल्याणकारी कार्यक्रम है जो लोगों की भलाई के लिए चलाए जा रहे है। भारत जैसे विशाल देश में स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका की उपेक्षा नही की जा सकती, वस्तुतः भारत में तेजी से बढ़ रहा स्वेच्छिक संगठन का क्षेत्र सक्रिय है। वे पर्यावरण स्वास्थ्य, भ्रष्टाचार–विरोध, बाल श्रम उन्मूलन, शिक्षा, महिलाओं और बच्चों के अधिकारों का संरक्षण, उपभोक्ता संरक्षण, आपदा प्रबंधन और अन्य अनेक क्षेत्रों में कार्य कर रहे है। यद्यपि स्वैच्छिक संगठनों की गतिविधियों से करोड़ो भारतवासियों को लाभ हो रहा है तथापि बिना किसी लाभ के उद्देश्य से काम करने वाले संगठनों के प्रति लोगों में पर्याप्त चेतना नहीं है। सरकार और स्वैच्छिक संगठन के बीच स्वस्थ संबंध समय की आवश्यकता है। यह भी महत्वपूर्ण है कि भारत में सामाजिक संगठनों के सकारात्मक दृष्टिकोण को देखते हुए उनकी उचित मान्यता एंव अनुदान मिलना चाहिए और उन पर व्यापक शोध होना चाहिये।

33.6 ग्रामीण विकास में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका (Role of NGOs in Rural Development) - ग्रामीण विकास में स्वयंसेवी संस्थाएं एक अरसे से अग्रणी भूमिका निभाती आ रही है। इन्होंने जनता के प्रति सेवा, सरोकर और घनिष्ठता के उत्कृष्ट गुणों का परिचय दिया है। इसके अलावा नए कार्यक्रमों को प्रारम्भ करने एवं उनका सफलतापूर्वक क्रियान्वयन करने की क्षमता भी दर्शाई है। इन संस्थाओं ने विकास संबंधी कठिन समस्याओं के समाधान के सरल एवं व्यवहारिक तरीके भी सुझाए है। फलस्वरूप ऐसे कार्यक्रमों को संस्थाओं ने सफलतापूर्वक संचालित किया है। आज विकास के जो

परिणाम है चाहे वे शिक्षा के क्षेत्र में हो या स्वास्थ्य के क्षेत्र में, उनमें स्वयंसेवी संस्थाओं का उल्लेखनीय योगदान रहा है। इस तरह के कई उदाहरण है, जो स्वयंसेवी संगठनों की भूमिका का गौरवान्वित करते है।

भारत में अनेक स्वयं सेवी संगठन सभी क्षेत्रों में विकास कार्यों एवं सामाजिक सेवा में भागीदारी निभा रहे है। यद्यपि इनकी देशव्यापी गणना एवं विश्लेषण के आंकड़े उपलब्ध नहीं है फिर भी एक अनुमान के अनुसार देश में छोटे–बड़े छह लाख संगठन बन चुके है। इनमें से कई ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय तौर पर कार्य कर ग्रामीण विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है।

33.7 स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों में एनजीओं की भूमिका (Role of NGOs, in Voluntary Health Programme) – स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों में भी गैर सरकारी संगठनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है जैसे भारत में स्वैच्छिक स्वास्थ्य कार्यक्रम बहुत प्रचलित है, इनकों विशिष्ट सामुदायिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों एकीकृत विकास कार्यक्रम विशेष समूह के लोगों हेतु स्वास्थ्य सेवा, सरकारी स्वैच्छिक संगठन, रोटरी एवं लायन्स क्लब, उद्योग एवं व्यापार मण्डलों, अभियान समूहों, स्वास्थ्य अनुसंधानकर्ताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा प्रायोजित स्वास्थ्य कार्यक्रमों में वर्गीकृत किया जा सकता है और उन्हें अलग–अलग प्रकार का कार्य उनकी क्षमता और सुविधा के अनुसार सौपा जा सकता है। गैर–सरकारी स्वैच्छिक संगठन चिकित्सा एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र में परिवार नियोजन, एकीकृत बाल विकास और इसी प्रकार के अन्य सरकारी स्वास्थ्य कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में सहयोग कर रहे है। एक सामाजिक सर्वेक्षण के अनुमान के अनुसार देशभर में 7000 से अधिक ऐसे स्वैच्छिक संगठन है जो देश के कोने–कोने में स्वास्थ्य सें संबन्धित उपर्युक्त क्षेत्रों में काम कर रहे है। देश के विभिन्न भागों में किफायती और प्रभावी स्वास्थ्य सेवाएँ पहुचाने के वैकल्पिक आदर्श के रूप में स्वैच्छिक संगठन महत्त्वपूर्ण साबित हुए है। उपयुक्त प्रौद्योगिकी के विकास के साथ–साथ सरकारी स्वास्थ्य सेवा और कार्यक्रमों के व्याप्त अभावों को दूर करने में ये संगठन पर्याप्त रूप से सफल रहे है।

33.8 कापार्ट (जनकार्य एवं ग्रामीण प्रौद्योगिकी प्रोन्नयन परिषद्) और गैर–सरकारी संगठन (CAPART and NGOs) – काउसिल फार एडवांसमेंट आफ पीपल्स एंड रूरल टेक्नोलॉजी यानि कपार्ट (जनकार्य एवं ग्रामीण प्रौद्योगिकी प्रोन्नयन परिषद्) ने गैर–सरकारी संगठनों के जरिये ग्रामीण भारत के विकास की प्रक्रिया आसान बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कापार्ट एक स्वायत्तशासी निकाय है जिसका पंजीकरण 1986 में भारत सरकार के ग्रामीण विकास मंत्रालय के प्रावधान में किया गया था। कापार्ट का उद्देश्य देश में स्वैच्छिक आंदोलन को सुदृढ़ बनाने में उत्प्रेरक भी भूमिका निभाना और नवीन ग्रामीण प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहन करने में सहायता करना है। समग्र ग्रामीण विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कार्पाट ग्रामीण क्षेत्रों में विकास कार्यो की गति तेज करने में लगा हुआ है। उसने गैर–सरकारी संगठनों और स्वेच्छिक संगठनों को सुदृढ़ बनाकर ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति सुधारने में योगदान करने के लिए उन्हें प्रेरित किया है। कार्पाट विभिन्न परियोजनाओं के अन्तर्गत अनेक नई विकास परियोजनाएं सरकारी तंत्र और गैर–सरकारी संगठनों के जरिये कार्यान्वित करता रहा है। ऐसा करते हुए उसने खासतौर से ग्रामीण भारत के पिछड़े इलाकों तक पहुंच बनाई है।

कार्पाट का मिशन (Mission of CAPART)

1. कार्पाट की दूरदृष्टि विभिन्न सरकारी एजेसियों और गैर सरकारी संगठनों के साथ गतिशील और उत्प्रेरक भूमिका निभाना, सार्वजनिक नीतियों को प्रभावित करना और देश के बहुपक्षीय विकास में अपना योगदान करना है।
2. कार्पाट का मिशन गावों में काम कर रहे गैर–सरकारी संगठनों के साथ घनिष्ठ तालमेल बैठाना और उन्हें निम्नलिखित उपायोग द्वारा सशक्तीकृत करना हैं।

- उन्हें संवाद में शामिल करना।
- उनके विचारों का सम्मान करना।
- उनकी आवाज पर ध्यान देना।
- उनके संसाधनों का संरक्षण करना।
- उनकी गतिविधियों के लिए निधियों की व्यवस्था करना।
- उनके और खासतौर से महिलाओं, ग्रामीण समाज के कमजोर वर्गो के हाथ मजबूत करना।
- ग्रामीण समृद्धि के रास्ते पर उनके हाथो में हाथ डालकर साथ–साथ चलन।

3. कार्पाट ग्रामीण समृद्धि के लिए परियोजनाओं के कार्यान्वयन में स्वैच्छिक कार्य को प्रोत्साहित करना और उसमें सहायता करना।
4. नई तकनीकी ज्ञान को ध्यान में रखते हुए, ग्राम विकास के स्वैच्छिक प्रयासों को सुदृढ़ और समुचित प्रचार प्रसार के जरिये ग्रामीण समस्याओं को सुलझाना और विकास को गति तेज करना।

5. स्वैच्छिक कार्य के लिए, परियोजनओं को प्रोत्साहित, नियोजित, विकसित अनुरक्षित करना और उनके साथ सहयोग करना। इसके द्वारा ग्रामीण सामुदायिक जीवन में सुधार लाना तथा लघु उद्यमों और स्व–सहायता समुहों के जरिये रोजगार के अवसरों का सृजन करना, जागरूकता लाना, ग्रामीण गरीबों को संगठित करना और ग्रामीण उत्पादों के लिए विपणन, व्यवस्था आसान बनाना।
6. ग्रामीण लोगों में चेतना लाना और उन्हें बौद्धिक संपदों अधिकारों से संबंधित गैर–सरकारी संगठनों के जरिये अनेक प्रकार की सेवाएं उपलब्ध कराना तथा उनके ज्ञान–आधार की रक्षा करते हुए उनकी सहायता करना, उनके लिए पेटेंट अधिकारों की व्यवस्था करना और इसमें संबन्धित अन्य कार्य संपन्न करना।

33.9 एनजीओं की आर्थिक व्यवस्था (Economic System of NGOs)

स्वयंसेवी संस्थाओं के सामने बड़ी समस्या आर्थिक स्तर पर रहती है। राज्य सरकार के कुछ कानून एवं नीतियां भी आर्थिक मदद मिलने में कठिनाइयां उत्पन्न करती है। कई विकसित देश जैसे– ब्रिटेन, जापान, अमेरिका, स्वीडन, डेनमार्क, कनाडा आदि स्वयंसेवी संगठनों को धन देते है, किन्तु वह धन सरकार की स्वीकृति से और उन्हीं कार्यो के लिए दिया जाता है जो जनकल्याण से जुड़े होते है। कई अन्तर्राष्ट्रीय एजेंसिया, जैसे– WHO, UNESCO, UNICEF, UNDP, ILO, IMF आदि भी स्वैच्छिक संगठनों को आर्थिक सहयोग देते है। यह सरकार की निगरानी में विभिन्न परियोजनाओं के लिए दिया जाता है। यह अनुदान स्वास्थ्य, परिवार, कल्याण, समाज कल्याण, पर्यावरण, स्त्रियों और बच्चों की शिक्षा, ग्रामीण विकास, विज्ञान और तकनीकी क्षेत्रों में कार्यरत संस्थाओं को दिया जाता है। इसके लिए विदेशी अनुदान नियमन अधिनियम, 1976 (संशोधन 2010) में निगररानी प्रावधान किए गए है। अब सरकार की नीतियां, स्वयंसेवी संस्थानों को बढ़ावा देने वाली बन गई है। केन्द्र में मानव संसाधन मंत्रालय और स्थानीय स्तर पर जिला ग्रामीण विकास अभिकरण, जिला परिषद् इत्यादि आर्थिक सहयोग करते है।

33.10 सारांश

इस प्रकार एनजीओ एक निजी संगठन होता है जो लोगों का दुख–दर्द दूर करने, निर्धनों के हितों का संवर्द्धन करने, प्रर्यावरण की रक्षा करने, बुनियादी सामाजिक सेवा प्रदान करने अथवा सामुदायिक विकास के लिए गतिविधियां चलाता हैं दूसरे शब्दों में एनजीओं वैधानिक रूप से गठित संगठन होते है जो सरकार से स्वतंत्र काम करते है। इन्हें आम तौर पर सार्वजनिक हितों के उद्देशयों की आगे बढ़ाने वाले गैर–सरकारी समूहों के तौर पर देखा जाता है, जिसका लक्ष्य लाभ कमाना नही होता। स्वैच्छिक संगठनों का मूल उद्देश्य सामाजिक न्याय, विकास और मानवाधिकारों की रक्षा के लिए काम करना है। इनका वित्तपोषण प्रायः पूर्ण रूप से अथवा आंशिक रूप से सरकार से प्राप्त धनराशि से होता है और वे सरकारी प्रतिनिधियों से दूरी बनाते हुए अपना गैर–सरकारी स्वरूप बनाए रखते है। परन्तु यह ध्यान रखना होगा कि स्वैच्छिक संगठन राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय कानून के तहत वैधानिक इकाइयां नही होती हैं।

अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. गैर सरकारी संगठन अर्थ एवं प्रमुख गैर सरकारी संगठनों का उल्लेख कीजिए।
2. गैर सरकारी संगठनों की विकास योजनाओं भूमिका स्पष्ट कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. गैर सरकारी संगठनों के प्रमुख कार्य बताईए।
2. गैर सरकारी संगठनों की समस्याएं बताईए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. ग्रीन पीस इन्टरनेशनल क्या हैं
2. एमनेष्टी इटरनेशनल की स्थापना कब व किसने की।
3. दो गैर सरकारी संगठनों के नाम लिखिए।

इकाई – 34

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में न्याय की अवधारणा

(Concept of Justice in International Relations)

34.0 उद्देश्य

इस इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में न्याय की अवधारणा का विकास व अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में इसकी भूमिका का उल्लेख किया गया है इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में न्याय के अर्थ के बारे में जान सकेगें।
- अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में न्याय की भूमिका के बारे में जान सकेगें।
- अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में न्याय की स्थापना में अ अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों की भूमिका के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

34.1 प्रस्तावना

न्याय किसी भी व्यवस्था की कसौटी है। यह व्यक्ति की आत्मिक चेतना है तो व्यवस्थित शासन का आदर्श और लक्ष्य। इसी से राजनीतिक प्रणाली का औचित्य सिद्ध होता है। न्याय का अभिप्राय समाज के कल्याण के साथ व्यक्ति के आचरण का समरसतापूर्ण समन्वय है। सर्वसामान्य का कल्याण न्याय का सार है। प्रारम्भ से लेकर आज तक न्याय–वितरण राज्य का सर्वप्रमुख दायित्व बना हुआ है। न्याय के अभाव में समाज और राज्य में अराजकता फैल जाएगी। न्याय की अवधारणा हमें यह स्मरण दिलाने में सहयोग करती है कि सभी सामाजिक मूल्य अन्ततः व्यक्ति की आवश्यकताओं, इच्छाओं, आनन्द, संभावनाओं, लक्ष्य एवं उपलब्धियों सहित उसके व्यक्तित्व के मूल्यांकन पर निर्भर है। न्याय नीतिशास्त्र, विवेकशीलता, कानून, प्राकृतिक कानून, धर्म एवं सभ्यता पर अवलंबित नैतिक नेकशीलता की अवधारणा है। यह उचित और निष्पक्ष होने की कला भी है।

34.2 अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में न्याय का अर्थ

अंग्रेजी शब्द Justice (न्याय) की उत्पत्ति लैटिन भाषा के Justitia शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है जोड़ने का कार्य। इस प्रकार न्याय उस व्यवस्था का नाम है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से जुड़ा रहता है। यह समाज के लिए अनिवार्य होता है समाज में सुव्यवस्था और शांति बनाए रखने के लिए कुछ नियम अवश्य होते है। यदि ऐसा न हो, तो समाज में अर्थव्यवस्था फैल जाएगी और अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। जब मनुष्य किसी समाज या राष्ट्रीय राज्य के रूप में संगठित होते है, तो वे कुछ नियम स्वीकार करते है। जिस प्रकार एक व्यक्ति दूसरे से संबंध बनाने के लिए कुछ मानवीय नियमों को मानता है, उसी प्रकार एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के साथ व्यवहार के लिए कुछ सार्वभौमिक नियमों को स्वीकार करता है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में चूँकि सभी राज्य प्रभुता सम्पन्न है तथापि न्याय महत्त्वपूर्ण तत्वों के रूप में कार्य करता है तथा सभी राज्य अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शांति–व्यवस्था और स्थिरता बनाए रखने के लिए इसके महत्त्व को स्वीकार करते है। इस तरह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में न्याय की अवधारणा प्राचीन काल से ही सभ्य राष्ट्रों के बीच शक्ति के लिए संघर्ष को व्यवस्थित एवं सीमित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। वर्तमन में भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की महत्त्वपूर्ण समस्याओं को हल करने में इसकी श्रेष्ठता अवश्य होनी चाहिए।

34.3 न्याय के सर्वलौकिक और स्थिर आधार तत्व

सामान्यतः कुछ ऐसे तत्व है जो न्याय की सभी धारणाओं में विद्यमान है और जिन्हें न्याय के आधार तत्व कहा जा सकता है। ब्रेचट के द्वारा अपनी पुस्तक 'Political Theory' में इन आधार तत्वों का उल्लेख इस प्रकार से किया गया है।

1. **सत्य (Truth)** - यद्यपि **राडब्रुच** (Radbruch) का विचार है कि **'न्याय का प्रत्यक्ष सम्बन्ध केवल अच्छाई से होता है, सत्य से नहीं सत्य तो विज्ञान का क्षेत्र है'** लेकिन वास्तव में सत्य न्याय का एक बहुत अधिक महत्वपूर्ण तत्व है। वस्तुनिष्ठ रूप (Objective sense) में न्याय की माँग है कि तथ्य और सम्बन्ध विषयक अपने सभी कथनों में हम सत्य का प्रयोग करें। व्यक्तिनिष्ठ रूप (Objective sense) में इसका आशय यह है कि विभिन्न व्यक्तियें और वस्तुओं के सम्बन्ध में हम वही विचार प्रकट करें, जिसे हम ठीक समझते है। विशेष रूप से न्याय के प्रशासन में तथ्यों की सत्यता का बहुत अधिक महत्त्व है।

2. **मूल्यों के आधारभूत क्रम की सामान्यता (Generality of the System of Values)** – विभिन्न मामलों के विषय में विचार करते हुए हमारे द्वारा न्याय की एक ही धारणा को लागू किया जाना चाहिए। यह नितान्त अनुचित होगा कि हमारे द्वारा एक मामले में न्याय की एक धारणा को और दूसरे मामले में न्याय की किसी अन्य धारणा को लागू किया जाये।

3. **कानून के समक्ष समानता या समानता का व्यवहार (Equality before the Law or Treatment of Equality)** – कानून के सामने सभी समान होने चाहिए और उनके प्रति समानता का व्यवहार किया जाना चाहिए। एक ही प्रकार की स्थितियों में मनमानें ढंग से भेद करना अन्यायपूर्ण है कि किसी भी व्यक्ति के साथ धर्म, जाति, भाषा, लिंग के आधार पर भेदभावपूर्ण व्यवहार नहीं होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति तथा विकास के समान अवसर प्राप्त होने चाहिए।

4. **स्वतन्त्रता (Freedom)** – उचित रूकावटों के अलावा मनुष्य की स्वतन्त्रता पर रोक नहीं लगायी जानी चाहिए। मनमाने ढंग से व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर रूकावटें लगाना अन्यायपूर्ण है। शासक के अपने स्वार्थ या शक्ति को बनाये रखने के लिए ही व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर कोई रूकावटें नही लगायी जानी चाहिए।

5. **प्रकृति की अनिवार्यताओं के प्रति सम्मान (Respect for the Necessities of Nature)** – जो कार्य व्यक्ति की सामर्थ्य से बाहर है और जो कार्य प्रकृति की ओर से व्यक्ति के लिए असम्भव है, उन्हें करने के लिए व्यक्ति को बाध्य करना न्याय भावना के विरूद्ध है। अतः जिन कानूनों या आदेशों का पालन करना मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है, ऐसे कानूनों या आदेशों की अवहेलना करने पर व्यक्ति को दण्ड देना या उसकी निदा करना भी अन्यायपूर्ण है। उदाहरण के लिए बहुत अधिक वृद्ध, अन्धे या अपंग व्यक्ति के लिए समाज की दया के आधार पर जीवन व्यतीत करना न्यायपूर्ण है, लेकिन ऐसा व्यक्ति जो शारीरिक और मानसिक दृष्टि से ठीक है उसके लिए खुद काम करके रोजी कमाना ही न्यायपूर्ण है। स्थानीय, राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय सभी क्षेत्रों में न्याय को प्राप्त करने के लिए उपर्युक्त पाँच सिद्धांतों का पालन आवश्यक है।

34.4 अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में न्याय की स्थापना में अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों की भूमिका – वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में न्याय की स्थापना में अन्तर्राष्ट्रीय विधि या अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों का विशेष महत्त्व है जिसे निम्न प्रकार समझाा जा सकता है।

34.4.1. अराजकता से बचाव – मनुस्मृति में कहा गया है कि मानव को पारस्परिक संगठन बनाने के लिए अथवा राष्ट्र के रूप में संगठित होने के लिए आपस में पारस्परिक व्यवहार के लिए कुछ नियमों का निर्माण करना पड़ता है और उन नियमों का पालन करना पड़ा है, अन्यथा अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अव्यवस्था, अशान्ति, अराजकता तथा अनिश्चिततापूर्ण परिस्थितियों के निराकरण के अनेक प्रयासों में अन्तर्राष्ट्रीय कानून का अनुशीलन विशेष रूप से महत्व रखता है।

34.4.2. शक्ति संघर्ष को परिसीमित करना – अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति शाक्ति संघर्ष की राजनीति है। शाक्ति संघर्ष की इस राजनीति में छोटे एवं बड़े राज्य अपने राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के लिए कार्यरत रहते है। अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष को अन्तर्राष्ट्रीय कानून के प्रतिबन्ध द्वारा सीमित दायरे में रखा जाता है। चाहे कानून के प्रतिबन्ध द्वारा सीमित दायरे में रखा जाता है। चाहे वह छोटा राज्य हो अथवा बड़ा किसी भी कार्यकलाप को करने से पहले यह विचार कर लेता है। कि क्या उसकी नीतियों से अन्तर्राष्ट्रीय कानून की उपेक्षा तो नहीं हो रही है ? दूसरे शब्दों में, राज्यों के व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय कानून द्वारा 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' या 'मत्स्य न्याय' की धारणा को गलत साबित कर दिया गया है।

34.4.3. विश्वशान्ति का आधार तैयार करना – विश्वशान्ति आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के द्वारा राष्ट्रों के व्यवहारों हेतु सामान्य नियमों का ''सार्वभौमिक' निर्धारण किया जाता है। यदि विश्व के समस्त राज्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून का समान भाव से आदर करने लग जाएं तो राज्यों के बीच होने वाले मतभेदों एवं संघषों को टाला जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून एक ऐसे विश्व का निर्माण करने का साधन हो सकता है जिसमें संघर्षों के बजाय सहयोग का प्राबल्य हो।

34.4.4. विश्व सरकार की प्राथमिक आवश्यकता को पूरा करना – प्रसिद्ध दार्शनिक बट्रेण्ड रसेल के अनुसार विश्व सरकार के द्वारा ही विश्वशान्ति की स्थापना की जा सकती है। जब तक राष्ट्रों में उग्र राष्ट्रीयता एवं सम्प्रभुता की भावना विद्यमान रहेगी, विश्व सरकार एक सपना ही बना रहेगा, किन्तु यदि अन्तर्राष्ट्रीय कानून की पर्याप्त रचना की जाए, विभिन्न राज्यों में इसके प्रयोग से लाभों का समुचित प्रसार किया जाए तो राज्य सहज में इसका प्रयोग करने लग जाएंगे। उग्र सम्प्रभुता जिसका अन्ततोगत्वा परिणाम युद्ध होता है, का निश्चित रूप से परित्याग होगा और निकट भविष्य में विश्व सरकार की धारणा की पूर्ति की जा सकेगी।

34.4.5. आणविक तथा संहारक शस्त्रों से सुरक्षा – विज्ञान तथा तकनीकी विकास के परिणामस्वरूप विभिन्न राष्ट्रों के पास संहारक शस्त्रों की मात्रा में भयानक वृद्धि हो चुकी है। विश्व की महान् शक्तियों के मध्य संहारक शस्त्रों के निर्माण की भयानक प्रतिस्पर्द्धा चल रही है। आज अमरीका, रूस, फ्रांस तथा चीन के पास आणविक एवं हाइड्रोजन शस्त्रों का विशाल भण्डार है। विभिन्न राष्ट्रों में आपसी मनमुटाव के कारण शस्त्रीकरण की प्रतिस्पर्द्धा को रोका नहीं जा सकता । निःशस्त्रीकरण के लिए किए गए विभिन्न प्रयास असफल सिद्ध हुए है। ऐसी स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय कानून ही मानवता को सुरक्षा प्रदान कर सकते है। इस समय इन कानूनों के द्वारा ही युद्धों में विषैले एवं भयानक शस्त्रों के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाए गए है।

34.4.6. युद्धों का न्यायपूर्वक संचालन – जिस प्रकार राष्ट्रीय कानून की उपस्थिति में भी छोटे–छोटे मतभेदों को लेकर व्यक्तियों में संघर्ष उत्पन्न हो जाते है उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय नियमों के उपरान्त भी विभिन्न राज्यों के मध्य राष्ट्रीय हितों के महत्वपूर्ण प्रश्नों को लेकर उग्रतर मतभेद पैदा हो जाते है और युद्ध प्रारम्भ हो जाते है। अभी वह स्थिति नहीं आयी है कि युद्धों का समूल परित्याग हो जाए। विभिन्न राज्यों के मध्य चलने वाले युद्धों को अन्तर्राष्ट्रीय कानून द्वारा व्यावहारिकता प्रदान की जाती है। युद्ध करना अपराध नहीं है, किन्तु युद्ध में अन्तर्राष्ट्रीय कानून की उपेक्षा करना घोर निन्दनीय अपराध माना जाता है। यदि युद्ध का संचालन करने के लिए पर्याप्त कानून न हों तो युद्धग्रस्त राष्ट्रों की जनता को अपार क्षति उठानी पड़ सकती है।

34.4.7. राष्ट्रों के मध्य आर्थिक एवं व्यावसायिक क्रियाकलापों का संचालन – वैज्ञानिक आविष्कारों, यातायात एवं संचार के साधनों की अभूतपूर्व उन्नति के कारण सब देशों के सम्बन्ध एक–दूसरे के साथ बढ़ रहे है, एक–दूसरे पर निर्भरता में निरन्तर वृद्धि हो रही है। आर्थिक, व्यापारिक, प्राविधिक, शैक्षणिक, राजनीतिक आवश्यकताओं के कारण विभिन्न देशों के पारस्परिक सम्बन्ध इतने प्रगाढ़ हो रहे है कि इस समय कोई भी सभ्य राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों से सर्वथा पृथक् रहकर न तो किसी प्रकार की उन्नति कर सकता है और न अपना चहुंमुखी विकास ही। आज छोटे और बड़े सभी राज्य आपसी लेन–देन और आदान–प्रदान द्वारा ही अपनी जरूरतों को पूरा कर पाते है। राज्यों के बीच व्यापार दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इन सारी स्थितियों का सुविधापूर्वक संचालन अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अभाव में आसानी से किया जाना असम्भव ही प्रतीत होता है।

34.4.8. कूटनीतिक गतिविधियों का संचालन – विभिन्न राज्यों के अपासी सम्बन्धों को संचालन कूटनीतिक प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है। एक राज्य के राजनयिक प्रतिनिधि दूसरे राज्य में निवास करते है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अभाव में राजनयिक प्रतिनिधियों का कार्य अत्यन्त दुष्कर हो जाएगा। इनकी समस्त गतिविधियों का निर्धारण वियना अभिसमय, 1961 (अन्तर्राष्ट्रीय कानून का भाग है) द्वारा किया जाता है।

34.5 न्याय का विद्धत्तापूर्ण चिन्तन

वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्रों का व्यवहार राष्ट्रीय हितों द्वारा निर्धारित है न कि विधि द्वारा अपने राष्ट्रीय हित को प्राप्त करना प्रत्येक राष्ट्र अपना अधिकार मानता है। कूटनीति राष्ट्रीय हित को आगे बढ़ाने का सामान्य साधन है। एक देश का कूटनीतिज्ञ दूसरे राष्ट्र के नीति–निर्माताओं तथा कूटनीतिज्ञों के संपर्क में रहता है तथा राष्ट्रीय हित के वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए समझौता वार्ता का संचालन करता है। कूटनीति की कला में अपने राष्ट्रीय हितों द्वारा लाए गए उद्देश्यों को न्यायपूर्ण तथा उचित मानने पर मजबूर हो जाते है। साथ ही राष्ट्रीय शक्ति किसी राष्ट्र की दूसरे राष्ट्र के व्यवहार को परिवर्तित करने में विशेष रूप में सहायक होती है।

अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में राष्ट्रों के मध्य शक्ति संघर्ष एक विवाद रहित सच्चाई है। राष्ट्र–राज्य अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के मुख्य कर्त्ता है और वे अपने राष्ट्रीय हितों के उद्देश्यों की प्राप्ति शक्ति द्वारा करना चाहते है। इस सत्य के समर्थकों का मानना है कि राष्ट्रीय हितों एवं स्वार्थो का जन्म शक्ति के द्वारा ही होता है इसलिए प्रत्येक राष्ट्र शक्ति प्राप्त करना चाहता है। शक्ति साधन भी है और साध्य भी, लेकिन राष्ट्रीय शक्ति की वृद्धि किसी एक अवयव से नहीं होती। इस संबंध में किसी प्रकार का नियम केवल एक विशेष अवयव के आधार पर नहीं बनाया जा सकता, चाहे वह भौगोलिक हो, या जनसंख्यामूलक हो, या आर्थिक हो, या प्रत्यात्मका भूगोलमूलक राजनीति के विद्धान कहते है कि शक्ति का मुख्य अवयव भूगोल है, लेकिन बल प्रयोग के लिए प्राकृतिक संपदा आवश्यक है। आर्थिक शक्ति राष्ट्रीय शक्ति का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। क्योंकि यह सैनिक शक्ति के लिए साधन है तथा यह लोगो की हित समृद्धि तथा प्रबुद्धता का आधार है। विश्व राजनीति में वही राष्ट्र बड़ी शक्ति बन सकता है, जिसकी अर्थव्यवस्था विकसित, स्वस्थ तथा विकास करने वाली हो। प्रभावशाली आर्थिक संगठन तथा योजना एक शक्तिशाली राष्ट्र का महत्त्वपूर्ण अंग है, इसी तरह सैन्य शक्ति भी किसी राष्ट्र की शक्ति का महत्त्वपूर्ण तत्त्व होती है। राष्ट्रीय शक्ति के रूप में सैन्य शक्ति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है। बहुत से लोग इसे एक दूसरे का पर्यायवाची मानते है।

34.6 भूमंडलीकरण, मानव सुरक्षा और न्याय – भूमंडलीकरण के समर्थकों द्वारा यह प्रचारित किया जा रहा है कि द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद उन्मुक्त बाजार व्यवस्था से दुनिया के सभी देशों में उत्पादन और लोगों का जीवनस्तर बढ़ा है। लेकिन कुछ खास क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ा है विशेषकर नई उपभोक्ता वस्तुओं के क्षेत्र में, इलेक्ट्रॉनिक, प्लास्टिक और तेल से चलने वाले वाहनों के क्षेत्र में। हांलाकि आम लोगों के जीवनस्तर या उनकी गुणवत्ता में सुधार हुआ है। यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता, किन्तु साम्राज्यवाद से त्रस्त देशों का था औ इस तरह उपभोक्तावादी संस्कृति के चंगुल में फंस गए। इस उपभोक्तावादी संस्कृति ने भ्रष्टाचार के साथ जुड़कर एक विचित्र रूप ग्रहण कर लिया।

उन्मुक्त बाजार व्यवस्था के दौरे में विकसित और विकासशील राष्ट्रों के मध्य खाई और चौड़ी होती जा रही है। और गरीब देशों में गरीबी का पैमाना और अधिक गहराया है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने भी इस तथ्य को उजागर किया है कि भूमंडलीकरण के साथ उनके आकार के विस्तार से मुनाफे पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा है।

उधर अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में न्याय को प्रोत्साहन देने के लिए ऐतिहासिक दृष्टि से सामाजिक और मानव विज्ञान ने उदारवादी लोकतंत्र एवं कल्याणकारी राज्य की स्थापना की तथा अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में विश्वव्यापी राज्य की स्थापना की।

नई भूमंडलीय प्रक्रिया ने परा–राष्ट्रीय निगमों एवं राष्ट्र–राज्य की पारस्परिक निर्भरता को बढ़ाया तथा इसका मानव संसाधन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। विश्वव्यापी बौद्धिक क्रम व्यवस्था पर इसका प्रभाव सार्वदेशिक न्याय के अनुरूप नहीं हो सका। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में मानव अधिकार, लिंगभेद एवं पर्यावरण से संबंधित समस्याएँ उत्पन्न हुई, जिससे विकास हेतु अनेक गैर–सरकारी संगठनों का प्रादुर्भाव हुआ।

इस प्रकार भूमंडीकरण ने प्रभुता संपन्न राज्यों में लोकतांत्रिक राजनीति को या तो उनकी राजनीति या समस्याओं के रूप में अभिव्यक्त किया। आज भूंमडलीकरण की प्रक्रिया उत्पादकता बढ़ाने के क्षेत्र में असफल रही है तथा यह सामाजिक स्थायित्व के लिए चुनौती बनी हुई है, लेकिन इसकी असफलताओं के बावजूद इसकी नितांत आवश्यकता है। यह विद्यमान और लगातार बढ़ रही अन्तर्राष्ट्रीय अन्तःनिर्भरता का स्वाभाविक विकास है। अन्तःनिर्भरता को और राष्ट्र–राज्य व्यवस्था को चुनौती मिल रही है। आवश्यकता इस बात की है कि लक्ष्यों को विश्वस्तरीय आंदोलन से एक अवरोधक के रूप में रोका जाए और विश्व सहयोग में वृद्धि हो। एक ऐसी क्षेत्रीय अन्तर्राष्ट्रीय औपचारिक संरचनाएँ बनाई जाएँ, जो भूमंडलीकरण के कार्यो को अधिक कुशलता से कार्य करने में सहायता प्रदान करें। यह समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की विशेषता एंव आवश्यकता भी है।

34.7 सांराश

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में न्याय की अवधारणा का विशेष महत्त्व है एक आदर्श सिद्धांत के रूप में इसे विश्वव्यापी बनाने की आकांक्षा है जिससे न्याया सिद्धांत के अनुकूल निर्णय निर्माण हो सके। संयुक्त राष्ट्र संघ और इससे जुड़ी हुई संस्थाएं इस कार्य को सम्पन्न करने में निरन्तर प्रयासरत है।

अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. न्याय के सर्वलौकिक स्थिर आधार तत्वों का उल्लेख कीजिए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में न्याय की स्थापना में अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों की भूमिका का विवेचन कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में न्याय की अवधारणा को संक्षेप में समझाईए।
2. भूमंडलीकरण के सम्प्रभुता पर प्रभाव की विवेचना कीजिए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. न्याय का अर्थ बताईए।
2. अन्तर्राष्ट्रीय विधि से क्या अभिप्राय है?

इकाई–35

मानव सुरक्षा

(Human Security)

35.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में मानव सुरक्षा का अर्थ, चुनौतियाँ और सम्भावनाओं का विवेचन किया गया है। प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- मानव सुरक्षा के अर्थ के बारे में जान पायेगें।
- मानव सुरक्षा के लिए प्रमुख चुनौतियों का अध्ययन कर सकेगें।
- मानव सुरक्षा की उपलब्धियाँ एवं सम्भावनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

35.1 प्रस्तावना

मानव सुरक्षा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का एक महत्वपूर्ण मुद्दा रहा है। शीतयुद्धोत्तर विश्व में सुरक्षा के लिए उत्पन्न खतरों में गुणात्मक परिवर्तन हुए है जिससे इसका महत्त्व और अधिक बढ़ गया है। सुरक्षा को सदा ही सैनिक पक्ष से सम्बद्ध किया गया है। सभी राज्यों ने चाहे वे शक्तिशाली हो या कमजोर, अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए शस्त्रास्त्र प्राप्त करने अथवा क्षेत्रीय खतरों के विरूद्ध सैनिक संघिया करने का मार्ग अपनाया ताकि वे विदेशी हस्तक्षेप से अपनी सुरक्षा कर सकें। आज संयुक्त राष्ट्रसंघ विभिन्न मंचों के माध्यम से मानव सुरक्षा हेतु प्रयास कर कर रहा है। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय विधि के विकास द्वारा, विभिन्न क्षेत्रीय संगठनों के मंचों द्वारा विश्व के लोगों में आपसी सामाजिक–आर्थिक–सांस्कृति संबंधों को प्रोत्साहन देकर विश्व समुदाय से नस्लवाद, गरीबी, अशिक्षा, खराब स्वास्थ्य एवं विभिन्न बीमारियों के विरूद्ध तथा पर्यावरण प्रदूषण के विरूद्ध आंदोलन चलाकर मानव सुरक्षा हेतु अर्थपूर्ण प्रयास किया जा रहा है।

35.2 मानव सुरक्षा का अभिप्राय

मानव सुरक्षा का तात्पर्य हिंसात्मक एवं अहिंसात्मक धमकियों से सामान्य जन को सुरक्षित करना है तथा इन धमकियों का सामना करने हेतु सुरक्षा के उद्देश्य के प्रति सचेत करना है। आज अनेक देशों के भीतर विभिन्न वर्गों के मध्य गृहयुद्ध होते रहे है। शायद इनकी संख्या विभिन्न राष्ट्रों के बीच आपस में होने वाले युद्धों से अधिक है। लगभग 90 प्रतिशत हिंसात्मक संघर्ष गृहयुद्धों की श्रेणी में आते है। अफगानिस्तान, अंगोला, पूर्व–यूगोस्लाविया, केन्द्रीय अफ्रीकी गणराज्य, जॉर्जिया, हैटी, साइबेरिया, रूआंडा, सियरा सियोन, सोमलिया, ताजिकिस्तान आदि कुछ ऐसे देश है जहां गृहयुद्ध होते रहे है और संघर्षो में छोटे अस्त्र जैसे AK-47 राइफलें, हथगोलें, भूमिगत सुरंगें आदि के प्रयोग से लाखों निर्दोष लोगों पर भीषण अत्याचार हुए और उनकी जानें गई। नस्ली शुद्धता जो बोस्निया–हर्जेगोविना और रूआंडा में अपनायी गई, बालकों को सैनिकों के रूप में बलपूर्वक प्रयोग करना तथा महिलाओं पर सामूहिक बलात्कार कुछ ऐसे असभ्य एवं अभद्र आचरण है जो आधुनिक गृहयुद्धों में सामान्य बात बन गए है। एक अनुमान के अनुसार गृहयुद्धों में मरने वालों की संख्या लगभग 95 प्रतिशत है। हम कह सकते है कि शीतयुद्ध काल में राज्य केन्द्रित सुरक्षा की समस्या अब मानव सुरक्षा की समस्या में परिवर्तित हो गई।

पृथकतावाद एवं जातीय राष्ट्रवाद के अतिरिक्त कुछ अन्य तत्व है जो आतंरिक सुरक्षा के लिए खतरा उत्पन्न करते है। धार्मिक उग्रवाद, नशीली वस्तुओं के व्यापारी, अस्त्रों के व्यापारी आदि तत्वों ने भी अपने काले धन के साथ इस जाल को वृहद किया है। अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद ने तो राज्यों की सुरक्षा को संकट में डालते हुए राज्य व्यवस्था पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिए है।

35.3 मानवीय सुरक्षा के लिए चुनौतियाँ

शीतयुद्धोत्तर विश्व में सुरक्षा के लिए सैनिक खतरों के अतिरिक्त गैर–सैनिक खतरे भी गम्भीर होते जा रहे है। आर्थिक और वित्तीय स्थिरता से संबद्ध मामले, ऊर्जा की आपूर्ति, भूमण्डलीय ताप वृद्धि, जलवायु में परिवर्तन तथा मानव अधिकारों के हनन की समस्या सभी ने मिलकर विश्व समुदाय की सुरक्षा व्यवस्था के लिए संकट उत्पन्न कर दिए है। उदाहरण के लिए, लघु द्वीप देशों नौरू और किरबाती को जलवायु परिवर्तन के कारण सागर में विलीन हो जाने हो जाने का खतरा सता रहा है, इंडोनेशिया के वनों में लगने वाली आग निकटस्थ प्रदेशों के लिए खतरे की घंटी है, पर्यावरण ह्रास के कारण अफ्रीका के अनेक देश व्यापक सूखे की चपेट में है, आर्थिक उदारीकरण के कारण मैक्सिको, दक्षिण कोरिया, थाईलैण्ड, इंडोनेशिया, मलेशिया और जापान जैसे देशों की अर्थव्यवस्थाएं डगमगाने लगीं। अर्जेण्टीना में खाद्य पदार्थो के लिए भड़के दंगों से सरकार गिर गई।अफ्रीका के अल्पविकसित देशों में ऋण की समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है।

मानवीय सुरक्षा की प्रमुख चुनौतियों का अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है।

35.31. परम्परागत हथियार – शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के समक्ष विश्व के अनेक भागों में राज्यों के भीतर संघर्षो के जन्म का सामना करना पड़ा जिनमें छोटे हथियार और हल्के हथियार पसन्दीदा हथियार थे। यद्यपि वे संघर्षों के मूल कारण नहीं थे तथापि इन हथियारों ने हिंसा को उत्तेजित कर दिया। उन्होंने बच्चों/नवयुवकों को लड़ाकुओं के रूप में इस्तेमाल को आसान बना दिया। छोटे हथियारों के विश्व व्यापार का 40 से 60 प्रतिशत अनुमानित भाग अवैध है।

35.3.2. बारूदी सुरंगें – आज समूचे विश्व में बारूदी सुरंगों का प्रसार एवं अनियन्त्रित उपयोग सुरक्षा को खतरे में डाल रहा है। प्रत्येक वर्ष हजारों लोग जिनमें अधिकांश बच्चे, स्त्रियां एवं वृद्धजन होते है। इन 'मौन हत्यारों' द्वारा अपंग कर दिए जाते है या मार दिए जाते है। अफगानिस्तान, डेमोक्रेटिक रिपब्लिक ऑफ कांगो, इथियोपिया–इरिट्रिया, कोसोवो, दक्षिण लेबनान, सुडान, पूर्व यूगोस्लाव आदि क्षेत्र बारूदी सुरंगों से सर्वाधिक त्रस्त रहे है।

35.3.3. मादक पदार्थ तस्करी – मादक पदार्थों की तस्करी ने अनेक देशों को असुरक्षित कर दिया है। नौवें दशक के अन्त तक अफगानिस्तार विश्व की 80 प्रतिशत अवैध अफीम के स्त्रोत के रूप में बदनाम हो चुका था। अफीम हेरोईन के स्त्रोत है। उसकी कुल कृषि योग्य भूमि का एक प्रतिशत भाग, लगभग 640 वर्ग किलोमीटर, अफीम की खेती के लिए उपयोग होता था। अक्टूबर 2003 को संयुक्त राष्ट्र मादक पदार्थ अपराध कार्यालय ने सूचना दी कि अफगानिस्तान विश्व की अफीम के दो–तिहाई भाग की पूर्ति कर रहा है। लगभग 10 लाख 70 हजार अफगान, राष्ट्रीय जनसंख्या का लगभग 7 प्रतिशत भाग, इस उद्योग में लगें हुए है। वर्ष 2008–09 में वहां लगभग 9 हजार टन अफीम पैदा हुई।

अमेरिका के राष्ट्रपति बराक ओबामा ने भारत और उसके तीन पड़ोसी देशों पाकिस्तान, अफगानिस्तान और म्यांमार को उन 22 देशों की सूची में शामिल किया है, जो सबसे अधिक मात्रा में अवैध मादक पदार्थ का उत्पादन करते है या उनकी सर्वाधिक अवैध तस्करी में शामिल है।

इस सूची में इन देशों के अतिरिक्त बहामास, बेलिज, बोलीविया, कोलंबिया, कोस्टा रीका, डोमिनिकन गणराज्य, इक्वाडोर, एल–सल्वाडोर, ग्वाटेमाला, हैती, होंडुरास, जमैका, लाओस, मैक्सिकों, निकारागुआ, पनामा, पेरू और वेनेजुएला शामिल हे।

35.4.4. आणविक शस्त्र – विश्व की पांच परमाणु शक्तियां जहां विश्व को परमाणु अप्रसार की सीख देती है वहां दूसरी ओर सन् 1945 के बाद से उन्होंने हर नौ दिन में एक के औसत से परमाणु परीक्षण किए है। अगस्त 1945 के आरम्भ में अमरीका के पास केवल दो परमाणु बम थे और हिरोशिमा तथा नागासाकी में उनके इस्तेमाल के साथ ही अमेरिका का परमाणु बमों का भण्डार खाली हो गया था, लेकिन 29 अगस्त, 1949 को परमाणु बम की जानकारी और भण्डारण के क्षेत्र में अमरीकी एकाधिकार समाप्त हुआ, जब सोवियत संघ ने अपना पहला सफल परमाणु बम परीक्षण किया। इस तरह परमाणु शस्त्रों की दौड़ या प्रतियोगिता चल पड़ी। मई 1951 में अमरीका ने और नवम्बर 1952 में सोवियत संघ ने अपने प्रथम हाइड्रोजन शक्ति परीक्षण किए। 1952 में ब्रिटेन, 1960 में फ्रांस और 1964 में चीन भी परमाणु शस्त्रों की दौड़ में शामिल हुए । 1974 में भारत में भी पोखरण में आणविक विस्फोट कर दिखाया। अक्टूबर 1957 में रूसी स्पुतनिक के सफल परीक्षण के बाद अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों के युग का सूत्रपात हुआ। हथियारों की होड़ का ताजा उदाहरण है अमरीका का 'न्यूट्रॉन बम'। न्यूट्रॉन बम का एक ऐसा बम है, जिसमें तीव्र विस्फोट नहीं होता और इसलिए सम्पत्ति का नाश भी कम–से–कम होता है, इसके विपरीत इसमें से मुक्त होने वाली न्यूट्रॉन गोलियों से मनुष्य और अन्य जीव–जन्तुओं के लिए तुरन्त और विलम्बित मृत्यु निश्चित है। न्यूट्रॉन पैशाचिक परमाणु हथियार है। इससे प्राणियों का संहार होगा तथा कारखानों व बैंक की रक्षा की जाएगी। क्योंकि उनका सम्बन्ध मात्र लाभ से है, मानव मूल्यों से नही। अभी तक कुल आठ देश आणविक परीक्षण कर चुके है–अमरीका, सोवियत संघ, ब्रिटेन, फ्रांस, चीन, भारत पाकिस्तान और उत्तरी कोरिया। सर्वाधिक आणविक हथियार भी अमरीका और रूस के पास ही है। इस दिशा में तीसरा देश जो तीव्रता से वृद्धि कर रहा है, चीन है। इन सात देशों के अतिरिक्त आठ देश ऐसे है जिनके पास परमाणु हथियार बनाने की क्षमता है, वे है –कनाडा, जर्मनी, इजरायल, इटली, जापान, दक्षिण अफ्रीका, स्वीडन व स्विट्जरलैण्ड। लगभग एक दर्जन देश ऐसे है जो अगले पांच–छः वर्षो में ही अपना परमाणु बम बना सकते है। आज परमाणु विज्ञान के बारे में इतना अधिक साहित्य बाजार में आ गया है कि साधन और सुविधा मिलने पर कोई प्रतिभाशाली वैज्ञानिक बम बना सकता है। इनकी क्षमता का यदि अध्ययन करें तो यह जान कर आश्चर्य होता है कि इन हथियारों से वर्तमान विश्व को एक–दो बार नहीं, वरन् पूरे एक दर्जन बार नष्ट किया जा सकता है। अनेक वैज्ञानिकों का मत है कि अब तक जिनते भी नाभिकीय परीक्षण हो चुके है और उनसे जितनी भी रेडियोधर्मिता फैल चुकी है वही अन्ततोगत्वा मानव जाति के लिए घातक सिद्ध होगी। परमाणु हथियारों के रूप में ऐसा सर्वव्यापी संकट उत्पन्न हो गया है कि जिसने समूची मानव जाति को महाविनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है।

35.3.5. रासायनिक एवं जैविक शस्त्रों के खतरे – आज अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा को सर्वाधिक खतरा रासायनिक एवं जैविक शस्त्रों से है। एंथ्रेक्स की पुष्टि के बाद विश्व में जैव आंतकवाद का खतरा व्याप्त होता जा रहा है। रासायनिक एवं जैविक तत्वों के प्रयोग से ऐसी महामारियां फैल सकती है कि उनका उपचार सम्भव नहीं है।

35.3.6. आतंकवाद – आज सम्पूर्ण मानवता आतंकवाद से त्रस्त है। आतंकवाद ने सभी देशों की सुरक्षा को खतरे में डाल दिया है। आतंकवाद की अभिव्यक्ति कई रूपों में दिखायी देती है। आतंकवाद का पहला रूप मानव बम है–मानव बम एक ऐसा हथियार है जिसकी काट अब तक विश्व की किसी भी सुरक्षा एजेन्सी, सरकार और सेना के पास नहीं है। आतंकवाद का दूसरा रूप सुगठित और समुचित रूप से वित्त पोषित संगठन के रूप में दिखायी देता है जो अपनी हिंसक और बलकारी गतिविधियों द्वारा सम्पूर्ण जनमानस को आतंकित करते है। आतंकवाद का तीसरा रूप राज्य प्रायोजित आतंकवाद है और चौथा रूप इस्लामिक आतंकवाद है। आज आतंकी संगठनों के पास विभिन्न प्रकार के घातक हथियार एवं विस्फोटक उपलब्ध है। नाभिकीय हथियार, रासायनिक हथियार और जैविक हथियार भी उनकी पहुंच की परिधि में है।

35.4 अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली में मानव सुरक्षा. अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली में मानव सुरक्षा के प्रमुख तत्त्व निम्नलिखित है.

35.4.1 अन्तर्राष्ट्रीय कार्यक्षेत्र

संचार क्रांति की पारस्परिक निर्भरता के इस युग में मानव सुरक्षा एजेन्डा को महत्त्व मिला है, जो आर्थिक भूमंडलीकरण और अन्तर्राष्ट्रीय नागरिक समुदाय के आगामन से और अधिक प्रोत्साहित हुआ है। वैसे संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में भी मानव सुरक्षा के लिए अनेक प्रावधान है और घोषणापत्र की प्रस्तावना में मानव के मूल अधिकारों में मानव की गरिमा और महत्त्व स्वीकार करते हुए विश्व के सभी राष्ट्रों के स्त्री–पुरूषों को समान स्थान प्रदान किया गया है।

हम कह सकते है कि व्यक्तियों और समूह की सूरक्षा के सन्दर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज का विस्तार हुआ है। राज्य अब मानते है कि वे लोगों की सेवा के साधन है। साथ ही अन्य कई अन्तर्राष्ट्रीय संधियां मानव सुरक्षा की धारणा को स्वीकृति प्रदान करती है तथा मानव–प्राणों की रक्षा को अपना दायित्व मानती है। इसी प्रकार गैर–राज्कीय कत्ताओं की गतिविधियों के कारण विभिन्न देशों के नागरिकों के आपसी संबंध विकसित हुए है। ये संबंध राष्ट्र–राज्य की सीमाओं को पार करके भी काफी सुदृढ़ अवस्था में विकसित हुए हैं आज लोगों के अन्य लोगों के साथ

35.4.2 मानव सुरक्षा एजेन्डा

विश्व के लोकतंत्रीकरण एवं संचार क्रान्ति के समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में मानव सुरक्षा का सिंद्धात एक आचरण के रूप में विभिन्न परिस्थितियों के निपटने से उत्पन्न हो रहा है। यह एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व बनकर उभरा है। विश्व के लोगों में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक संबंधों को बढ़ावा देकर, परमाणु शस्त्रों, शस्त्र दौर, अतंरिक्ष एवं खुले समुद्र के सौन्यीकरण एवं प्रदूषण के विरूद्ध आंदोलन चलाकर, विश्व समाज से नस्लवाद, गरीबी, अशिक्षा, विभिन्न बीमारियों, कुपोषण एवं निरंकुशता के विरूद्ध विशेष आन्दोलन चलाकर तथा वातावरण की सुरक्षा हेतु संगठित प्रयास करके एवं अन्य साधनों के माध्यम से मानव सुरक्षा के उद्देश्य प्राप्ति हेतु सचेत प्रयास किए जा रहे है।

मानव सुरक्षा हेतु नए मापदण्ड एवं साधन विकसित किए जा रहे है और मानव सुरक्षा के जो साधन विद्यमान है, उन्हें क्रियान्वित करने का प्रयास किया जा रहा है। साथ ही असुरक्षा के मूल कारणों का अध्ययन करके उसके समाधान हेतु मुख्य बिन्दुओं को चिह्नित किया जा रहा है एवं इनके अनुसार नई क्षमताओं के सृजन पर बल दिया जा रहा है। वस्तुतः यह विभिन्न साधनों की सहायता एवं निर्देशन से राजनीतिक, आर्थिक एवं प्रशासनिक क्षमता के पुनरूत्थान के साथ–साथ न्यायपालिका एवं निर्वाचन आयोग की नवीनता को महत्त्व प्रदान करता है अर्थात् मानव सुरक्षा एजेन्डा द्वारा आर्थिक–राजनीतिक संरचनओं में एक नवीन ऊर्जा का रूपान्तरण करता है, ताकि राज्य नई चुनौतियों का दृढ़ता से मुकाबला कर सके तथा विभिन्न संकटों का समाधान करने में अपनी सकारात्मक योग्यता दर्शा सके।

35.4.3 मानव सुरक्षा की उपलब्धियाँ और संभावनाएँ

अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के साथ मानव सुरक्षा पर आज विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इसके लिए जहाँ एक तरफ निःशस्त्रीकरण के प्रयास हो रहे है, वही दूसरी तरफ विभिन्न संधियों के माध्यम से मानव सुरक्षा के आयाम को एक आकार प्रदान किया जा रहा है। इसी क्रम में सितम्बर, 1997 में 90 देशों के प्रतिनिधियों ने 'बारूदी सुरंग प्रतिबंध संधि' के प्रारूप को औपचारिक रूप से अपना लिया। इस संधि पर ओटावा में हस्ताक्षर किए गए। इस संधि का उद्देश्य बारूदी सुरंगों के उपयोग, बिक्री, भंडारण, परिवहन एवं उत्पादन पर प्रतिबन्ध लगाना है। बारूदी सुरंगों की परिभाषा के रूप में कहा गया कि जो किसी व्यक्ति की उपस्थिति, निकटता तथा सम्पर्क द्वारा विस्फोटित हो जाए तथा एक या एक से अधिक व्यक्तियों को विकलांग, घायल कर दे या मार डाले।

ओटावा संधि कनाडा की पहल पर लाई गई तथा अन्तर्राष्ट्रीय गैर–सरकारी संगठनों ने भी इसमें सक्रिय सहयोग प्रदान किया। ओटावा संधि संयुक्त राष्ट्र संघ से अलग निःशस्त्रीकरण की दिशा एवं मानव सुरक्षा के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण कदम है, जो अन्तर्राष्ट्रीय समाज की सहभागिता पर आधारित है। लेकिन यह संधि बारूदी सुरंग के तीन मुख्य उपयोगकर्त्ताओं–भारत, चीन एवं रूस–को अलग रखकर की गई तथा दक्षिण कोरिया से भी अपेक्षित है कि वह संधि से अलग रहे। जापान के अनुसार यह संधि अधिक लचीलापन चाहती है, ताकि रक्षा की विशेष जरूरत वाले देश को इसके बाद की स्थिति में सम्मिलित किया जा सके। अमेरिका ने इस संधि में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों की मांग की, जो उसके अनुसार आवश्यक भी है। इसी तरह भारत ने सभी प्रकार की व्यक्तिरोधक बारूदी सुरंगों पर चरणबद्ध रूप से प्रतिबंध

लगाने का समर्थन किया तथा महत्त्वपूर्ण देशों द्वारा इस संधि को स्वीकार किया जाना अभी बाकी है। लेकिन इस संधि के समर्थक राष्ट्र छोटे एवं बड़े तथा विकसित एवं विकासशील सभी प्रकार के राष्ट्र है। ओटावा संधि मानव सुरक्षा की दिशा में एक सीधा प्रयास है। विश्वव्यापी अन्तर्राष्ट्रीय चेतना के आविर्भाव से इसे मूर्त रूप प्रदान किया गया है।

35.5 शान्ति अनुरक्षण

संयुक्त राष्ट्र संघ की गत वर्षो में शान्ति अनुरक्षण कार्यावाहियों में निम कार्य शामिल है।

35.5.1 युद्धविराम एवं सैन्यबलों के पृथक्करण को बनाए रखना – पक्षों के बीच सीमित समझौते पर आधारित एक कार्यवाही समझौते के लिए अनुकूल वातावरणबना सकती है। वह पक्षों को दम लेने का अवसर देती है।

35.5.2 निरोधक तैयारी – संघर्ष शुरू होने के पूर्व आयोजित कार्यवाही एक आश्वासनकारी उपस्थिति प्रदान करती है। वह राजनीतिक प्रक्रिया के लिए कुछ अंशों तक अनुकूल पारदर्शिता भी पैदा करती है।

35.5.3 मानवीय कार्यवाहियों को संरक्षण – अनेक संघर्षों में राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए नागरिक जनसंख्या को जानबूझ कर लक्ष्य बनाया जाता है। ऐसी स्थितियों में शान्ति अनुरक्षकों को मानवीय कार्यवाहियों को संरक्षण एवं समर्थन प्रदान करने के लिए कहा गया है। तथापि ऐसे कार्य शान्ति अनुरक्षकों को कठिन राजनीतिक स्थितियों में डाल सकते है और उनकी अपनी सुरक्षा के लिए खतरे पैदा कर सकते है।

35.5.4 एक व्यापक शान्ति समाधान का कार्यान्वयन – व्यापक शान्ति समझौते के आधार पर आयोजित पेचीदा, बहुआयामी कार्यवाहियां विविध प्रकार के कार्यो में सहायता पहुंचा सकती है, जैसे– मानवीय सहायता प्रदान करना, मानवाधिकारों की निगरानी चुनावों का अवलोकन एवं आर्थिक पुनर्निर्माण में सहायता का समन्वय।

35.6 अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा या मानवीय सुरक्षा की दृष्टि से संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में निम्न सन्धिया महत्वपूर्ण है।

1. आंशिक आवविक परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि (1963)
2. अणु अप्रसार सन्धि (1968)
3. जैविक हथियार अभिसमय (1972)
4. स्टार्ट–I (1991) स्टार्ट–II (1993) सन्धि
5. रासायनिक हथियार अभिसमय (1997)
6. व्यापक आषविक परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि (CTBT) 1996
7. आतंकवाद की वित्तपोषण बन्द करने हेतु अभिसमय 2001
8. अमेरिका व रूस के मध्य नई स्टार्ट सन्धि (2009)
9. संयुक्त राष्ट्र हथियार व्यापार सन्धि (2014)

35.7 सारांश

इस प्रकार शीतयुद्धोत्तर काल में मानवीय सुरक्षा एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाए, संगठन एवं सन्धियों द्वारा इस हेतु प्रयास किये जा रहे है। यह अवधारणा राज्यों की पारस्परिक निर्भरता एवं लोक–भागीदारी पर आधारित है। इसमें असुरक्षा के मूल कारणों को स्पष्ट करके उनके समाधान हेतु प्रयास किया जाता है।

अभ्यास प्रश्नावली

निबन्धात्मक प्रश्न

1. मानव सुरक्षा से क्या अभिप्राय है मानव सुरक्षा के लिए प्रमुख चुनौतियों का विवेचन कीजिए।
2. मानव सुरक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा किये गये प्रयासों का उल्लेख कीजिए।

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. मानव सुरक्षा का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
2. आतंकवाद मानव सुरक्षा के लिए एक चुनौती है संक्षेप में वर्णन कीजिए।

अति लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. अणु अप्रसार सन्धि को कब स्वीकृत किया गया।
2. मानवीय सुरक्षा के समक्ष किन्ही दों चुनौतियों का उल्लेख कीजिए।